

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

पी.के. विश्वविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.)
से
हिन्दी विषय में पीएच.डी. उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध छात्रा
सोनम सिंह
नामांकन सं.-220101183

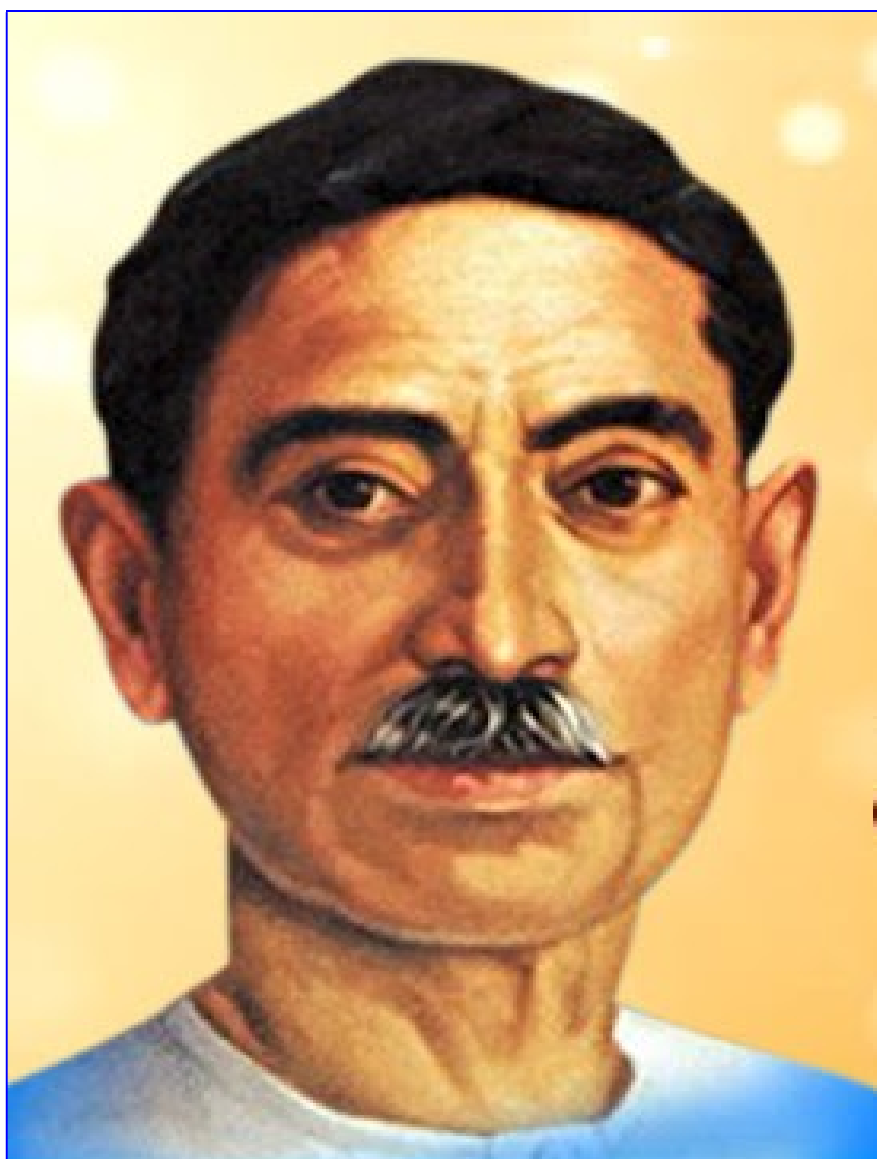
शोध निर्देशक
डॉ० जयसिंह यादव
हिन्दी विभाग
पी.के. विश्वविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.)



2026

पी.के. विश्वविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.)
ग्राम-थनरा, पोस्ट-दिनारा, तहसील-करैरा, एन.एच.-27, शिवपुरी (म.प्र.) पिन-473551
Website: www.pkuniversity.edu.in

मुंशी प्रेमचंद जी





पी०के० विश्वविद्यालय

(यूजीसी अधिनियम 1956 की धारा 2एफ के तहत मध्य प्रदेश सरकार के अधिनियम संख्या 17, 2015 के अनुसार स्थापित विश्वविद्यालय)
ग्राम—थानरा, तहसील—करैरा, पोस्ट—दिनारा, एनएच—27, शिवपुरी (म०प्र०) पिनकोड—473665

घोषणा-पत्र

मैं, **सोनम सिंह** (शोध छात्रा), घोषणा करती हूँ कि हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.) के अन्तर्गत “मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन” विद्यावाचस्पति (पी-एच.डी.) उपाधि हेतु यह शोध प्रबन्ध मेरी स्वयं की मौलिक रचना है। इसके पूर्व यह शोध कार्य किसी अन्य के द्वारा कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया है।

यह शोध कार्य मैंने परम श्रेष्ठ शोध निर्देशक डॉ० जयसिंह यादव, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.) के निर्देशन में पूर्ण किया है। विश्वविद्यालय की नियमावली धारा-07 के अन्तर्गत अपने शोध केन्द्र पर निर्धारित मानक के अनुरूप उपस्थित रहकर निर्देशक महोदय के निर्देशन में मैंने स्वयं पूर्ण किया है।

दिनांक:

शोध छात्रा

सोनम सिंह



पी०के० विश्वविद्यालय

(यूजीसी अधिनियम 1956 की धारा 2एफ के तहत मध्य प्रदेश सरकार के अधिनियम संख्या 17, 2015 के अनुसार स्थापित विश्वविद्यालय)
ग्राम-थानरा, तहसील-करैरा, पोस्ट-दिनारा, एनएच-27, शिवपुरी (म०प्र०) पिनकोड-473665

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सोनम सिंह** ने “मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन” शीर्षक पर मेरे निर्देशन में शोध-प्रबन्ध पूर्ण किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सामग्री मौलिक है। यह सम्पूर्ण या आंशिक रूप से किसी परीक्षा के लिए प्रयोग नहीं की गयी है। यू०जी०सी० विनिमय 2018 के अनुसार शोधार्थी का शोध कार्य किसी अन्य शोध-प्रबन्ध की अनुकृति नहीं है।

इन्होंने मेरे निर्देशन में 240 दिन से अधिक उपस्थित होकर शोध कार्य पूर्ण किया है।

मैं संस्तुति करता हूँ कि यह शोध प्रबन्ध इस योग्य है कि मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया जाये।

- i) अभ्यर्थी द्वारा स्वयं किए गए कार्य का प्रतीक है।
- ii) विधिवत पूरा किया गया है।
- iii) विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि से संबंधित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

दिनांक:

शोध निर्देशक

डॉ० जयसिंह यादव



पी०के० विश्वविद्यालय

(यूजीसी अधिनियम 1956 की धारा 2एफ के तहत मध्य प्रदेश सरकार के अधिनियम संख्या 17, 2015 के अनुसार स्थापित विश्वविद्यालय)
ग्राम—थानरा, तहसील—करैरा, पोस्ट—दिनारा, एनएच—27, शिवपुरी (म०प्र०) पिनकोड—473665

संस्था प्रमुख का अग्रेषण पत्र

पी-एच.डी. का शोधप्रबंध शीर्षक, “मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन” कु० सोनम सिंह (नामांकन सं.-220101183) द्वारा प्रस्तुत विश्वविद्यालय को छः प्रतियों में प्रेषित किया जाता है।

यह प्रमाणित किया जाता है कि उक्त अभ्यर्थी द्वारा समस्त आवश्यक शुल्क जमा कर दिया गया है तथा अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई भी बकाया शेष नहीं है।

नाम :

मुहर (Seal):

दिनांक :

स्थान :

(संस्थानाध्यक्ष के हस्ताक्षर एवं मुहर, जहाँ से

अभ्यर्थी ने पी-एच.डी. हेतु पंजीकरण कराया था)

पर्यवेक्षक के हस्ताक्षर :

दिनांक :

स्थान :

पता :

.....



पी०के० विश्वविद्यालय

(यूजीसी अधिनियम 1956 की धारा 2एफ के तहत मध्य प्रदेश सरकार के अधिनियम संख्या 17, 2015 के अनुसार स्थापित विश्वविद्यालय)
ग्राम-थानरा, तहसील-करैरा, पोस्ट-दिनारा, एनएच-27, शिवपुरी (म०प्र०) पिनकोड-473665

कॉपीराइट हस्तांतरण प्रमाण-पत्र

शोध का शीर्षक: “मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन”

शोध छात्र का नाम: सोनम सिंह

कॉपीराइट हस्तांतरण

अधोहस्ताक्षरी एतद्द्वारा पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) को पी-एच.डी. उपाधि प्रदान करने के लिए प्रस्तुत उपरोक्त शोध प्रबंध के सभी कॉपीराइट हस्तांतरित करते हैं।

दिनांक-

स्थान-

सोनम सिंह

(नामांकन सं.-220101183)

आभार

सर्वप्रथम मैं परमपिता परमात्मा को नमन् करती हूँ, जिनकी असीम कृपा और आशीर्वाद के बिना यह शोध प्रबन्ध संभव नहीं थी। मैं पी.के. विश्वविद्यालय के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता और गहन सम्मान प्रकट करती हूँ, जिसने मुझे “मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन” जैसे महत्वपूर्ण और सार्थक विषय पर शोध करने का अमूल्य अवसर प्रदान किया। इस शोध प्रबन्ध के दौरान विश्वविद्यालय का निरंतर मार्गदर्शन और प्रोत्साहन, विशेषकर श्री जगदीश प्रसाद शर्मा (माननीय कुलाधिपति), प्रो० (डॉ०) योगेश चन्द्र दुबे (माननीय कुलपति), प्रो० मुकेश चंसोरिया (सह-कुलपति), डॉ० जितेन्द्र मिश्रा (प्रशासनिक निदेशक), डॉ० जितेन्द्र मलिक (कुलसचिव), डॉ० ऐमन फातिमा (शैक्षणिक डीन) और डॉ० आशीष विश्वकर्मा (अनुसंधान डीन), मिस निशा यादव (पुस्तकालयाध्यक्ष) के सहयोग के लिए मैं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मेरी आदरणीय डीन कला संकाय प्रो० (डॉ०) महालक्ष्मी जौहरी तथा शोध मार्गदर्शक डॉ० जयसिंह यादव जी के प्रति मैं असीम कृतज्ञता और सम्मान प्रकट करती हूँ। उनका सूक्ष्म मार्गदर्शन, विद्वतापूर्ण परामर्श और निरंतर प्रोत्साहन इस शोध को सही दिशा और प्रमाणिकता प्रदान करने में मौलिक भूमिका निभाता रहा। उनका स्नेहिल मार्गदर्शन और प्रेरणादायी व्यक्तित्व ने इस शोध प्रबन्ध को सार्थक और अविस्मरणीय अनुभव में परिवर्तित कर दिया।

इस शोध कार्य की सफलता मेरे प्रिय जीवनसाथी श्री धीरज सिंह के अटूट सहयोग और प्रेरणा के बिना संभव नहीं थी। उनका धैर्य, प्रोत्साहन और नैतिक संबल मेरे शैक्षणिक सफर की आधारशिला रहा। मैं अपने पिताजी श्री सुरेन्द्र सिंह एवं माताजी श्रीमती सीमा सिंह की भी हृदय से आभारी हूँ, जिनके आशीर्वाद, स्नेह और निरंतर उत्साहवर्धन ने इस यात्रा में सदैव मेरा मार्ग प्रशस्त किया। साथ ही, मैं अपने चाचा-चाची श्री महेन्द्र प्रताप सिंह एवं श्रीमती विभा सिंह तथा श्री धर्मेन्द्र प्रताप सिंह एवं श्रीमती वंदना सिंह के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके स्नेह, प्रेरणा और नैतिक सहयोग ने इस शोध कार्य की सफलता में विशेष योगदान दिया।

अंततः, यह शोध प्रबंध केवल शैक्षणिक उपलब्धि ही नहीं, बल्कि मेरे व्यक्तिगत विकास और आत्मिक संतोष का भी प्रतीक है। मैंने इस शोध को पूर्णनिष्ठा, ईमानदारी और सावधानी से संपन्न किया है; तथापि यदि इसमें कोई त्रुटि शेष रह गई हो तो वह मात्र मानवीय भूल है, जिसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

दिनांक:

शोध छात्रा

सोनम सिंह

अनुक्रमणिका

अध्याय	विवरण	पृ०सं०
प्रस्तावना		i-vii
अध्याय-1	अध्ययन की पृष्ठभूमि	01-56
1.1.	परिचय	01-02
1.2.	प्रेमचंद का जीवन परिचय एवं साहित्यिक रचना की संक्षिप्तता	03-12
1.3.	प्रेमचंद का साहित्यिक योगदान	12-14
1.4.	प्रेमचंद के साहित्य का हिंदी साहित्य पर प्रभाव	14-16
1.5.	साहित्यिक विहंगालोकन	17-34
1.6.	प्रेमचंद युगीन राजनीतिक परिदृश्य	34-41
1.7.	प्रेमचंद युगीन आर्थिक परिदृश्य	41-46
1.8.	साहित्य की समीक्षा	46-49
1.9.	शोध प्रश्न 50	49- 50
1.10.	अनुसंधान उद्देश्य संदर्भ सूची	50 51-56
अध्याय-2	मुंशी प्रेमचंद: नैतिकतावादी लेखक	57-99
2.1.	प्रेमचंद का साहित्यिक प्रभाव	57-61
2.2.	प्रेमचंद की रचनाओं में नैतिक दिशा-निर्देश	61-76
2.3.	सामाजिक यथार्थ और नैतिक चेतना	77-83
2.4.	आदर्शवाद और यथार्थवाद का नैतिक संतुलन	83-87
2.5.	चरित्र निर्माण और नैतिक विकास की प्रक्रिया	87-93
2.6.	भाषा, शैली और नैतिक प्रभाव	93-95

संदर्भ सूची	96-99
अध्याय-3 प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक विषय	100-202
3.1. रिश्तों में नैतिकता	100-141
3.2. समाज में नैतिकता	141-168
3.3. व्यक्तिगत विकल्पों में नैतिकता	
168-191	
संदर्भ सूची	192-202
अध्याय-4 चरित्र विश्लेषण	203-245
4.1. नायक और उनकी नैतिक यात्राएँ	203-211
4.2. विरोधी और नैतिक संघर्ष	211-220
4.3. सामाजिक परिवेश और चरित्र की नैतिक दिशा	221-233
4.4. नैतिक निर्णय और मानवीय संबंध	233-241
संदर्भ सूची	242-245
अध्याय-5 प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक टिप्पणी	246-291
5.1. समकालीन समाज की आलोचना	246-258
5.2. नैतिक सुधार की वकालत	258-268
5.3. सत्ता, न्याय और सामाजिक संस्थाएँ	268-278
5.4. ग्रामीण जीवन और सामाजिक यथार्थ	278-287
संदर्भ सूची	288-291
निष्कर्ष एवं सुझाव	292-313
संदर्भ ग्रंथ सूची	314-340



The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language

Hindi

Submission Information

Author Name	सोनम सिंह
Title	मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन
Paper/Submission ID	5329933
Submitted by	library.pku@gmail.com
Submission Date	2026-03-07 11:39:11
Document type	Thesis Chapter

Result Information

Similarity **6%**

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File



शोध सार

मुंशी प्रेमचंद, जिन्हें हिंदी साहित्य का 'उपन्यास सम्राट' माना जाता है, भारतीय साहित्य के सबसे प्रभावशाली और प्रतिष्ठित लेखकों में से एक हैं। उनके लेखन में भारतीय समाज की जटिलताओं और विषमताओं का सजीव चित्रण किया गया है, जिसमें उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर गहरी समझ और विश्लेषण प्रस्तुत किया। प्रेमचंद का जन्म 1880 में उत्तर प्रदेश के लमही गाँव में हुआ था, और उनका जीवन संघर्षों और कठिनाइयों से भरा था, जो उनके साहित्य को गहरे तरीके से प्रभावित करते हैं। उनका लेखन समाज सुधार और सामाजिक चेतना का एक प्रभावी साधन बन गया था। इस अध्ययन का उद्देश्य उनके जीवन, साहित्यिक योगदान और उनके रचनाओं में निहित नैतिक और सामाजिक संदेशों का आलोचनात्मक विश्लेषण करना है।

प्रेमचंद का साहित्य उन समय के समाज के यथार्थ और निम्न वर्ग के संघर्षों को उद्घाटित करता है। उनकी कहानियाँ, जैसे 'कफन', 'पूँस की रात', और 'नमक का दरोगा', में उन्होंने किसानों, दलितों, महिलाओं और शोषित वर्गों की कठिनाइयों को दिखाया है। प्रेमचंद की लेखनी ने न केवल इन वर्गों के संघर्षों को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया, बल्कि इनकी पीड़ा, आकांक्षाएँ और संवेदनाओं को भी सजीव रूप में उकेरा। उनका लेखन न केवल मनोरंजन का साधन था, बल्कि एक सामाजिक और नैतिक संदर्शन भी था, जो समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और असमानताओं के खिलाफ था। उनके पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने समाज के नैतिक द्वंद्वों और उन पर पड़े प्रभावों को दिखाया, जिससे पाठकों को अपनी नैतिक जिम्मेदारियों पर सोचने का मौका मिलता है।

प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता का स्वर स्पष्ट रूप से उभरता है, जो उनके पात्रों के आचरण, जीवन की घटनाओं और निर्णयों के माध्यम से व्यक्त होता है। उनका लेखन न केवल व्यक्तिगत नैतिकता, बल्कि सामाजिक नैतिकता और न्याय का भी पक्ष प्रस्तुत करता है। उदाहरण के तौर पर 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी अपने पारिवारिक कर्तव्यों और व्यक्तिगत सम्मान के बीच एक कठिन नैतिक दुविधा से गुजरती है, जो प्रेमचंद के लेखन में एक सामान्य विषय है। इसी तरह उनकी अन्य कहानियों में भी नैतिक निर्णयों का द्वंद्व और उन निर्णयों का समाज पर प्रभाव दिखाया गया है। प्रेमचंद के पात्रों को अक्सर आदर्श और यथार्थ के बीच संतुलन

बनाए रखने की चुनौती का सामना करना पड़ता है, जो उनके लेखन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

इस अध्ययन में प्रेमचंद के साहित्य का विश्लेषण करते हुए यह भी देखा गया है कि कैसे उनके समय के सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों ने उनके लेखन को आकार दिया। प्रेमचंद की कहानियाँ उस समय के सामाजिक यथार्थ का सटीक चित्रण करती हैं और वे हमारे समाज में व्याप्त असमानताओं, जैसे जातिवाद, गरीबी और शोषण, के खिलाफ एक स्पष्ट संदेश देती हैं। इस अध्ययन में उनके साहित्य का गहन विश्लेषण किया गया है, जिसमें उनके द्वारा उठाए गए सामाजिक और नैतिक मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है। यह भी दर्शाया गया है कि प्रेमचंद का लेखन केवल उनके समय के लिए नहीं, बल्कि आज भी हमारे समाज में प्रासंगिक है। उनके कार्यों ने न केवल भारतीय साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि समाज सुधार के एक प्रभावी माध्यम के रूप में भी कार्य किया।

अंततः यह अध्ययन प्रेमचंद की साहित्यिक भूमिका और उनके नैतिक योगदान को स्पष्ट करता है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास आज भी पाठकों को जीवन के नैतिक, सामाजिक और मानवीय पहलुओं पर सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। प्रेमचंद ने साहित्य के माध्यम से समाज की कुरीतियों को उजागर किया और समाज में सुधार की आवश्यकता का संदेश दिया। उनका लेखन न केवल समाज को दर्पण प्रदान करता है, बल्कि यह हमें अपने नैतिक कर्तव्यों और समाज में अपने योगदान पर विचार करने के लिए भी प्रेरित करता है। उनकी कृतियाँ आज भी जीवित हैं और समाज में बदलाव लाने के उनके उद्देश्य को जारी रखते हुए, वे भारतीय साहित्य और समाज के लिए एक अमूल्य धरोहर हैं।

अध्याय-1

अध्ययन की पृष्ठभूमि

1.1. परिचय

मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य के सबसे प्रतिष्ठित और प्रभावशाली लेखकों में से एक माने जाते हैं। उनका जन्म 1880 में उत्तर प्रदेश के लमही गाँव में हुआ था। उन्होंने कठिन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत किया, जिसके कारण उनके लेखन में यथार्थवाद की गहरी छाप देखी जा सकती है। उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा स्थानीय स्तर पर हुई, लेकिन उन्होंने अपने आत्म-प्रयास से एक गहन साहित्यिक समझ और दृष्टिकोण विकसित किया। प्रेमचंद का साहित्यिक करियर उर्दू साहित्य से शुरू हुआ, लेकिन हिंदी भाषा में उन्होंने अपनी पहचान बनाई। उनका वास्तविक नाम धनपत राय श्रीवास्तव था, लेकिन उन्होंने अपने साहित्यिक करियर के लिए प्रेमचंद नाम को अपनाया। उनके शुरुआती लेखन में समाज के निम्न वर्ग के संघर्षों और पीड़ा का चित्रण देखने को मिलता है, जिसे उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। यह वह दौर था जब भारत पर ब्रिटिश शासन था, और प्रेमचंद ने अपने साहित्य में इस राजनीतिक और सामाजिक असमानता के खिलाफ आवाज उठाई। उनके पहले उपन्यास 'सेवासदन' ने साहित्य जगत में उन्हें एक विशिष्ट स्थान दिलाया। इसमें उन्होंने नारी जीवन की कठिनाइयों और सामाजिक बंधनों का चित्रण किया। इस तरह के विषयों ने उन्हें समाज सुधारक साहित्यकार के रूप में पहचान दिलाई। प्रेमचंद का साहित्य न केवल एक मनोरंजन का साधन था, बल्कि समाज की कुरीतियों को उजागर करने का एक माध्यम भी था।

साहित्य जगत में जनहितार्थ वाली विचारधारा रूपी दृष्टिकोण को आधार बनाकर अनेक पहलुओं के माध्यम से शब्द रूप में, भाव रूप में, तर्क रूप में समाज के सभी वर्गों के सामने अपनी बातें रखीं। इसलिए समाज के अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, शोषक-शोषित, बच्चा-बूढ़ा, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-निरक्षर, ग्रामीण-नगरीय जैसे सभी समुदायों ने उनकी लेखनी को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसी कारण केवल हिंदी साहित्य ही नहीं, बल्कि विश्व साहित्य में भी उनका नाम स्वर्ण अक्षरों से अंकित हुआ। वे साहित्य कला के उपासक के रूप में महान तो थे, अपितु मानव की मानवता से भरे सुलक्षणों के गुणों से भी महान थे। उनकी वेशभूषा, आचरण, स्वाभाविक व्यवहार, बाल-मानस, विचारधारा, उनके पत्राचार एवं लेखनी कला के माध्यम से वे आकर्षणशील व्यक्तित्व के रूप में महसूस होते हैं। जिन्होंने संपूर्ण संघर्षशील जीवन यात्रा में सरस्वती (ज्ञान)

साधना के माध्यम से समाज उत्थान रूपी आवाज को कलम के माध्यम से बुलंद करने में सफलता पाई। ऐसे सुप्रसिद्ध विद्या के धनी को हम साहित्य की दुनिया में प्रेमचंद के नाम से जानते हैं।

1.2. प्रेमचंद का जीवन परिचय एवं साहित्यिक रचना की संक्षिप्तता

1.2.1. जन्म

वर्तमान भारत की भूमि पर जिस वक्त अंग्रेजों की हुकूमत थी और उनकी डिवाइड एंड रूल की कार्यनीति के माध्यम से शोषण एवं गुलामी प्रथा का दौर था, ऐसे वक्त ब्रिटिश इंडिया में अपनी लेखन-कला के माध्यम से आवाज उठाने वाली एक आत्मा का अवतरण हुआ। यह अवतरण स्थान भारत के धार्मिकता रूपी अति प्राचीनतम भूभाग बनारस से आजमगढ़ की ओर जाने वाली कच्ची सड़क के किनारे बसे हुए गाँव लमही में संवत् 1937, सावन वदी दस, शनिवार अर्थात् 31 जुलाई, 1880 के दिन, कायस्थ परिवार के एक कच्चे पुश्तैनी घर में बालक का जन्म हुआ। जिसका नामकरण धनपत राय रखा गया। वे बाद में प्रेमचंद उपनाम से विश्व प्रसिद्ध हुए। प्रेमचंद की सर्विस बुक पर जन्म तिथि अंकित है: 10 अगस्त, 1881। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 25)

1.2.2. विविध नाम

प्रेमचंद का मूल नाम धनपत राय है। मूल नाम से तात्पर्य है कि जो नाम प्रमाण पत्र में छपा है। उनके चाचा उन्हें नवाब कहकर पुकारते थे, किन्तु उनके जीवन-संघर्ष को देखने पर सिर्फ नाम के ही धनपत राय एवं नवाब थे, असल में नहीं। उन्होंने पहले उर्दू में लिखना प्रारंभ किया तब नवाब राय नाम से लिखते थे। परंतु संयोगवश सोजे-वतन कहानी-संग्रह का अंग्रेज सरकार द्वारा विरोध करने पर नवाब राय नाम को छोड़ना पड़ा। बाद में, जब हिंदी भाषा में लेखनी कार्य प्रारंभ किया और एक नये नाम की जरूरत पड़ी, तभी मुंशी दया नारायण निगम द्वारा प्रेमचंद नाम का सुझाव देने पर उन्होंने उत्तर में श्री निगम को लिखा, "प्रेमचंद अच्छा नाम है। मुझे भी पसंद है।" इस प्रकार उनका प्रेमचंद नामकरण हुआ। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 39)

प्रेमचंद के मित्रों द्वारा उनका नाम बम्बूक रखा गया था। इस नामकरण की कहानी एक सहपाठी मित्र बाबू कृष्णलाल ने बताई कि पढ़ते-लिखते वक्त अक्सर अपना कमरा अंदर से बंद कर लिया करते थे। तफरीह के वक्त दिल खोलकर तफरीह करते। आपकी और मरहूम (स्वर्गीय) बाबू गिरजाकिशोर साहब, असिस्टेंट कमिश्नर, आबकारी की वजह से हमारा एक छोटा सालाफिंग क्लब बन गया था, जिसका रोजाना इजलास

मेरे ही कमरे में हुआ करता था। इसमें शायद और भी एक-दो साहब थे, लेकिन इस वक्त खयाल नहीं आता। बहरहाल, उसमें सभी हँसने वाले थे। मगर धनपत राय गजब करते। जब हँसते तो खूब हँसते, कहकहों पर कहकहे लगाते चले जाते। इसी वजह से हम लोग, खासकर यह अकिंचन, उन्हें बम्बूक कहा करते थे। मुमकिन है, यह लकब (उपाधि) मेरा ही इख्तरा (आविष्कार) हो। अक्सर इसी नाम से मेरी उनसे खतोकिताबत भी हुआ करती थी। इस प्रकार मित्र वर्ग में मनोरंजन एवं विनोदमय स्वभाव के कारण यह नया नाम उन्हें मिला। (हंसराज 'रहबर', 1962, पृ. 52)

1.2.3. माता-पिता

प्रेमचंद की माता का नाम आनन्दी देवी और पिता का नाम अजायब लाल था। अजायब लाल के पिता गुरसहाय लाल गाँव के पटवारी थे। पटवारीगिरी करते हुए उनके पास जमीन अच्छी थी, लेकिन पुत्र-मोह के कारण अजायब लाल के भाई महावीर लाल के नाम जमीन कर दी। (मदन गोपाल, 2016, पृ. 15) परिणामस्वरूप प्रेमचंद के पिताजी के पास जमीन का हिस्सा न के बराबर था। इसी लिए उनके बड़े भाई कौलेश्वर लाल डाकखाने में मुंशी बने। उन्होंने अपने छोटे भाई अजायब लाल को भी अपने ही महकमे में भर्ती करवाया। इसी डाकखानों के कार्य-क्षेत्र में नौकरी के कारण वे मुंशी कहलाए। गुरसहाय लाल के तीसरे लड़के अजायब लाल की सेहत अच्छी नहीं थी। कमजोर थे, परंतु अव्वल दर्जे के भले मानस। जहाँ तक हो सकता, भला करते। गाँव में उनकी इज्जत थी। पंच बनाए जाते तो ईमानदारी से अपना फैसला देते। गीता और दूसरे शास्त्रों का पाठ करते थे, परंतु रस्मी धर्म में उन्हें विश्वास न था। पंडों-पुजारियों में भी विश्वास न था। कहते, धर्म का मूल आधार सदाचार है। धार्मिक अनुष्ठान तो महज ढकोसला है। (मदन गोपाल, 2016, पृ. 16-17) अजायब लाल को बीवी भी अपने ही ढंग की मिली थी। आनन्दी देवी देखने में तो बहुत खूबसूरत थीं ही (इससे अधिक खूबसूरत औरत खानदान में नहीं आईं), अपने पति की तरह वह भी हर एक की सहायता करने को तत्पर रहतीं। किसी से झगड़ा नहीं करतीं और न ही किसी की चुगली। उनके पिता कारिंदा थे। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 25) उन्हें लिखने का शौक भी था। आनन्दी देवी थोड़ी पढ़ी-लिखी थीं, पर जितना ज्ञान उन्हें था, उससे उन्होंने घर की दूसरी औरतों को भी लाभ पहुँचाया। आनन्दी देवी के पहले दो लड़कियाँ हुईं और दोनों मर गईं। लमही की औरतों ने कहा कि उसके मायके में पैदा हुए बच्चे बहुत दिन जिंदा नहीं रह सकते। तीसरी बार जब बच्चा पैदा होने वाला था, आनन्दी देवी मायके नहीं गईं, लमही में ही रहीं। इस बार भी लड़की पैदा हुई, परंतु वह जिंदा रही। उसका नाम सुग्गी पड़ा। इसके जन्म के सात-आठ वर्ष बाद आनन्दी देवी के एक लड़का हुआ। यही बच्चा आगे चलकर प्रेमचंद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार प्रेमचंद माँ के अधिक लाड़ले बेटे थे। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 27)

प्रेमचंद का जन्म तीन लड़कियों के बाद होने के कारण वेततर बालक माने जाते थे। तेतर का अर्थ तीन लड़कियों के बाद पैदा होने वाला एवं कम आयु पाने वाला व्यक्ति होता है। फिर भी, आनन्दी देवी को अपने पुत्र से अधिक प्रेम था, इसीलिए चिंतित रहते हुए वह हरदम झाड़-फूंक करवातीं, राई-नोन से नजर उतरवातीं, क्योंकि उन्हें अपने बेटे को नजर लग जाने का भय था। जब धनपत राय की आयु सात वर्ष की थी, अजायब लाल इलाहाबाद में थे। उसी समय आनन्दी देवी संग्रहणी की पुरानी मरीज होने के कारण बीमार पड़ीं। उन्होंने छह माह बिस्तर पकड़ा। इस दौरान, सुग्गी का विवाह हो चुका था, वह अपने ससुराल चली गईं। दादी वहीं थीं, और चचेरे भाई दवाई का प्रबंध करते थे। स्वयं धनपत राय माँ के सिरहाने बैठकर पंखा झलते। आनन्दी देवी के सिरहाने के पास ही एक शक्कर की बोतल रखी रहती थी। माँ के सो जाने पर धनपत राय चुपके से शक्कर पर हाथ साफ करते। माँ की हालत बिगड़ती गई। मरने से पहले उन्होंने धनपत राय, उनके चचेरे भाई और सुग्गी का हाथ अजायब लाल के हाथ में देकर कहा, "ये तीनों बच्चे तुम्हारे हैं।" माँ की मृत्यु के समय छोटी आयु के कारण प्रेमचंद को कुछ समझ नहीं आया। जब समझ आया तो खूब रोए और मातृ प्रेम का भावनात्मक रूप से साहित्य में वर्णन करते रहे। माँ स्वर्ग सिधार गई, बहन ससुराल चली गई, और बीमार दादी भी गाँव लौट गईं। प्रेमचंद को माँ की याद सताती, तो वे रोते रहते। साथ ही बचपन में गुल्ली-डंडा खेलना, पतंग लूटना जैसे कार्य करते हुए उनकी शरारतें भी बढ़ती गईं। दो वर्ष बाद, पत्नी के बिना रहना कठिन महसूस करते हुए, पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। विवाह के समय प्रेमचंद ने बैतबाजी कविता सुनाने की प्रतियोगिता में अनेक गज़लें सुनाकर सबको चकित कर दिया। सौतेली माँ (चाची) के साथ उनके भाई विजय बहादुर भी आए। विजय बहादुर से प्रेमचंद की खूब बनती थी। दोनों पतंगों के पेच देखते। सौतेली माँ के आगमन का प्रेमचंद ने बड़े प्रेम से स्वागत किया, लेकिन विमाता से प्रेम की जगह दया, लज्जा, अपमान और कठोरता पाई। इसका परोक्ष वर्णन उन्होंने अपने साहित्य में किया।

1.2.4. पिता की आर्थिक स्थिति

प्रेमचंद के पिताजी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इसका वर्णन करते हुए प्रेमचंद कहते हैं, "अंधरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनों तक पहना है। जब तक मेरे पिता जीवित रहे, तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से ज्यादा का जूता और चार आने गज से ज्यादा का कपड़ा कभी नहीं खरीदा।" फिर भी, पिताजी की अच्छाई, नेक-नीयत और विचारधारा का प्रेमचंद पर गहरा प्रभाव पड़ा। जब उनकी आयु पंद्रह-सत्रह वर्ष थी, उसी समय उनके पिता बीमार हो गए। संग्रहणी के मरीज होने के कारण आमदनी दवाई में खर्च हो गई। इसी दौरान, 1867 में उनके पिता का देहांत हो गया। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 28)

पिताजी के स्वर्गवास से परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ प्रेमचंद के कंधों पर आ गईं। इस प्रकार माता-पिता की असमय मृत्यु, आर्थिक कठिनाइयों और मानसिक प्रभावों ने प्रेमचंद के जीवन को गहराई से प्रभावित किया। इन संघर्षों का प्रतिबिंब उनकी साहित्यिक रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। (मदन गोपाल, 2006, पृ. 23)

1.2.5. बचपन

प्रेमचंद के पिता डाकखाने के कर्मचारी थे। इसी कारण पिता के स्थानांतरण के साथ उनका स्थानांतरण हो जाता। उन्हें बचपन में गुड़ खाने का चस्का लग गया था और उनका विशेष गुण बालपन में हवाई किले बनाना था। पाठशाला के बदले बचपन में मिले कजाकी नामक व्यक्ति के अपार स्नेह का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। माँ के अकाल देहांत ने उनके बाल-मन पर कठोर आघात पहुँचाया। बचपन की मनोव्यथा को सौतेली माँ कहानी में व्यक्त किया। इस प्रकार बचपन की यादों को अपनी लेखनी में भी व्यक्त किया। वे चोरी कहानी में बचपन की यादें बयाँ करते हैं कि "हाय बचपन! तेरी याद नहीं भूलती। वह कच्चा टूटा-घर, वह पुआल का बिछौना, वह नंगे बदन, नंगे पाँव खेतों में घूमना, आम के पेड़ों पर चढ़ना - सारी बातें आँखों के सामने फिर रही हैं।" इस प्रकार प्रेमचंद का बचपन बीता। (हंसराज 'रहबर', 1962, पृ. 8)

1.2.6. शिक्षा-दीक्षा

प्रेमचंद 1888 में आठ साल के हुए। उनकी लमही गाँव से मील सवा मील दूर लालपुर गाँव के एक मौलवी साहब के यहाँ उर्दू-फारसी की शिक्षा आरंभ हुई। उस वक्त सरकारी भाषा उर्दू थी। प्रेमचंद कभी-कभी अपने चचेरे भाई बलदेव के साथ स्कूल जाने के लिए घर से निकलते, किन्तु स्कूल न जाकर आवारापन करते। फिर, मौलवी साहब को खुश करने के लिए प्रशंसा कर या भेंट देकर मना लेते। पिता के तबादले के कारण उनका स्कूल भी बदल जाता। 1896 में गोरखपुर स्थित मिशन स्कूल में उन्होंने आठवीं कक्षा पास की। पिता की असमय मृत्यु के कारण, उस वक्त अगले वर्ष होने वाली मैट्रिक की परीक्षा देने का विचार छोड़ दिया। लेकिन 1899 के जनवरी मास में मैट्रिक की परीक्षा दी और द्वितीय श्रेणी में पास हुए। द्वितीय श्रेणी में पास होने पर शिष्यवृत्ति नहीं मिल सकती थी, क्योंकि फर्स्ट क्लास में पास होने वाले छात्र ही उसके अधिकारी होते थे। इसी कारण उन्हें एडमिशन नहीं मिला। उसी वर्ष बनारस में हिंदू कॉलेज खुला। प्रिंसिपल मिस्टर रिचर्डसन थे। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 29) धनपतराय ने इस कॉलेज में पढ़ने का निश्चय किया। उन्होंने प्रिंसिपल के घर जाकर उनसे मुलाकात की, परन्तु फीस माफ नहीं हो सकी। कई दिनों के बाद ठाकुर इंद्रनारायण सिंह से मिलकर सिफारशी चिट्ठी लिखवाई, लेकिन घर आने पर उन्हें ज्वर हो गया। पुरोहित

जी की जड़ी-बूटी से ज्वर उतरा। बीमारी में एक महीना निकल गया। स्वस्थ होकर रिचर्डसन से मिलने गए तो बीमारी की जानकारी के बाद प्रिंसिपल ने प्रवेश-पत्र पर लिखा- "इसकी योग्यता की जाँच की जाए।" धनपत राय के लिए यह नई समस्या थी। भाग्य पर भरोसा करके वे कक्षा में गए और अंग्रेजी पढ़ाने वाले अध्यापक को अपना फार्म दिया। अध्यापक ने परीक्षा लेने के बाद "संतोषजनक" लिख दिया, परन्तु बीजगणित के बंगाली अध्यापक ने परीक्षा के बाद "असंतोषजनक" लिख दिया। हताश होकर धनपत राय प्रिंसिपल से नहीं मिले। इस प्रकार जीवन संघर्ष करते हुए और आर्थिक अभाव झेलते हुए प्रेमचंद ने बी.ए. तक पढ़ाई की। एम.ए. की पढ़ाई और वकील बनने की उनकी इच्छा अधूरी रह गई। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 27)

प्रेमचंद ने छोटी आयु में ऐसी कई बातें जान लीं, जो बाल-मन के लिए सही नहीं थीं। उनका एक सहपाठी तंबाकू व्यापारी का पुत्र था। उसके घर वे तंबाकू सेवन छुपकर करते और तिलिस्मी हौशरूबा की कहानी सुनते। इसके अलावा, किताबें पढ़ने के शौक को पूरा करने के लिए गोरखपुर में पिता के पास जो मकान था, वह गंदा था। उसी के दरवाजे पर एक कोठरी थी, जहाँ नवाब सोते। वे दिल बहलाव के लिए कभी बगल के तंबाकू वाले के पास बैठते और कभी बुकसेलर बुद्धिलाल की दुकान पर। वहाँ से वे उपन्यास लेकर पढ़ते। इस कारण वे कभी-कभी बुकसेलर की दुकान में सामान बेचने में भी सहायता करते। इस प्रकार प्रेमचंद ने संघर्षमय जीवन में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 28)

1.2.7. विवाह

प्रेमचंद ने अपने जीवन में कुल दो ब्याह किए थे।

1.2.7.1. प्रथम विवाह

प्रेमचंद जब नवीं कक्षा के छात्र थे और वार्षिक परीक्षाएँ चल रही थीं, उस वक्त सौतेली माँ (विमाता/चाची) के पिता द्वारा बताया गए ठिकाने पर नवाब का विवाह तय हो गया। स्थान था - बस्ती जिले की मेंहदावल तहसील के रमवापुर सरकारी गाँव। यह एक छोटे-मोटे जमींदार की लड़की थी। विवाह तय होने पर शादी की तैयारियाँ प्रारंभ हो गईं। धनपतराय बहुत खुश थे। मण्डप के लिए बाँस खुद काटे। बारात रमवापुर गई। ससुर जमींदार थे। रीति-रिवाज के अनुसार दूल्हे से हँसी-मजाक हुआ। धनपतराय ने खुशी से सभी रस्मों में हिस्सा लिया। बिदाई हुई, ऊँटगाड़ी से लमही चले। कई रोज की यात्रा के बाद घर पहुँचे। गाड़ी से उतरते ही दुल्हन ने दूल्हे का हाथ पकड़कर चलना शुरू किया। यह गाँव की जिंदगी में एक नई बात थी। सब चकित रह गए। धनपतराय झिझके। दुल्हन को देखा। वह उम्र में दूल्हे से बड़ी थी, एक कंधा दूसरे से ऊँचा, रंग

काला। "जब मैंने उसकी सूरत देखी तो मेरा खून सूख गया।" पिता अजायबलाल ने बहू को देखकर कहा, "लालाजी ने मेरे लड़के को कुएँ में ढकेल दिया। अफसोस, मेरा गुलाब सा लड़का और उसकी यह स्त्री। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 26) मैं तो उसकी दूसरी शादी करूँगा।" चाची ने कहा, "देखा जाएगा।" इस प्रकार प्रेमचंद का उत्साह शादी के बाद हतोत्साह में बदल गया। वे अपनी पत्नी से खुश नहीं थे। दूसरी ओर, विमाता और पत्नी के संबंधों में मिठास न थी। क्योंकि धनपतराय की पत्नी मुँहफट और कटु भाषिणी थी। यह स्वभाव इंसान को और दूर कर देता है। पति की सौतेली माँ से उसकी नहीं पटी। हर वक्त अपनी किस्मत को रोती। (मदन गोपाल, 2006, पृ. 27) ऊपर से चाची एकांत में बहू की शिकायत करती। चक्की के दो पाटों में पिसने जैसी स्थिति थी। दोनों ओर से धनपतराय की आफत। इस प्रकार प्रेमचंद दोनों स्त्रियों से परेशान हो चुके थे।

प्रेमचंद सन् 1905 के जून महीने की छुट्टियों के दौरान गाँव लमही गए। उसी वक्त सास-बहू के झगड़ों के कारण मायके जाने की घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने मुंशी दया नारायण निगम को खत लिखा, "औरतों ने एक-दूसरे को जली-कटी सुनाई। (मदन गोपाल, 2006, पृ. 28) हमारी मखदूमा (स्वामिनी) ने जल-भुन कर गले में फांसी लगाई। माँ ने आधी रात को भांपा, दौड़े, उसको रिहा किया। सुबह हुई, मैंने खबर पाई, झल्लाया, बिगड़ा, लानत-मलामत की। बीवी साहिबा ने अब जिद पकड़ी कि यहाँ न रहूँगी। मायके जाऊँगी। मेरे पास रुपया न था। लाचार, खेत का मुनाफा वसूल किया, उसकी रुखसती की तैयारी की। वह रो-धोकर चली गई। मैंने पहुँचाना भी पसंद न किया। आज उनको गए आठ रोज हो गए हैं, न खत, न पत्र। मैं उनसे पहले ही खुश न था, अब तो सूरत से बेजार हूँ।" इस प्रकार उनकी पत्नी मायके गई। इसके बाद प्रेमचंद उसे लेने कभी नहीं गए और वह भी वहीं रुक गई। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 33)

1.2.7.2. दूसरा विवाह

अब परिवार के लोग उन्हें दूसरी शादी करने को कहने लगे। किन्तु, उन्होंने कुछ समय के लिए शादी के झमेले से दूर रहने का सोचा। समय बीतता गया। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 34) आर्य समाज की विचारधारा से प्रेमचंद प्रभावित हुए और उससे जुड़ते गए। उस समय दिसंबर, 1905 में मुंशी देवीप्रसाद द्वारा "मूर्ख" उपनाम से लिखी कायस्थ-बाल-विधवा-उद्धारक नामक किताब के विचारों को पढ़ा और विचार मन पर अंकित हो गए। जिसके शब्द थे - "हे भाइयो, हम लोग इस कार्य - पुनर्विवाह के करने में अग्रगामी नहीं होते हैं, तो कभी उद्धार न होगा। हे भाइयो, मुस्तैद होकर उस नेक काम पुनर्विवाह का प्रचार जल्द कीजिए और मैं बहुत दावे के साथ

कहता हूँ कि थोड़े-से भाई गण प्रचार अमल करने पर मुस्तैद होकर प्रचार कर चलें, तो परमात्मा से आशा है कि शीघ्र ही उन्नति हो जावे, इसमें सन्देह नहीं है - क्योंकि सब सजातीय भाई इसी शोक-समुद्र में डूबे पड़े हैं। अब मैं वास्ते इत्मीनान वा दिल-जमई इस बात के कि पुनर्विवाह करने की वेद व शास्त्र में इजाजत है, बड़े-बड़े महात्माओं व पंडित जनों से सम्मति लेकर व प्रमाण उन्हीं महात्माओं का हासिल करके अपने भाइयों के सामने पेश करता हूँ कि उसको पढ़कर इसलाह पैदा करें व इसलाह-कौमी की कोशिश करें और पुनर्विवाह करने व कराने के उत्साही हों और हठधर्मी पुरुषों से मैं क्या, विधाता भी हार मान लेवे तो क्या सन्देह।" इस प्रकार किताबी विचारों ने उनके मनोबल को मजबूत बनाया। उन्होंने जनवरी, 1906 में बाल-विधवा शिवरानी देवी से विवाह करना तय करके भावी ससुर को अपनी नौकरी, वेतन, परिवार जैसी जानकारी भेजी और लड़की का फोटो भी मांगा। जिसके उत्तर में फरवरी मास में प्रेमचंद को गांव सलेमपुर, जिला फतेहपुर बुलाया गया। (हंसराज 'रहबर', 1962, पृ. 70) वे गए और भावी पत्नी को पसंद किया। नए ससुर मुंशी देवी प्रसाद ने बरच्छा और किराए के रूप दिए। दूसरी ओर प्रेमचंद के घर वाले उनके इस निर्णय का विरोध करते थे। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि वे ग्रामीण समाज एवं पुरानी ग्रामीण परंपराओं वाले परिवार से ताल्लुक रखते थे। साथ ही, उन्हें यहाँ कुछ नहीं मिलेगा वरन् दूसरी जगह विवाह करने पर दहेज मिलता। इन्हीं कारणों के विरोध के बावजूद वे अपने निश्चय पर अड़े रहे। आखिर उन्होंने दो-चार मित्र, मुंशी दया नारायण निगम, भाई महताबराय को शामिल करके बारात लेकर गए। 1906 का मार्च महीना, फाल्गुन मास में शिवरात्रि के दिन शिवरानी नामक बाल-विधवा के साथ पुनर्विवाह किया।

शिवरानी देवी शादी के बाद स्वामी (पति) के पास आई। लगभग चौदह दिन रहीं, किन्तु घर की बागडोर चाची के हाथ में देखीं, जिससे उन्हें कुछ शंका हुई। फिर, मायके रहने लगीं। जब चाची अपने पुत्र महताब राय के साथ रहने लगीं, तभी पति-पत्नी के संबंध मीठे होने लगे। इनका जीवन निर्वाह बाद में बड़ा ही सहज रूप से चला। नया विवाह नामक कहानी में स्वयं के गृहस्थ जीवन का प्रतिबिंब शाब्दिक रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रेमचंद ने कहा कि विवाह क्या है? "जीवन का आनंद उठाने के लिए झिलमिलाते हुए दीपक में तेल डालना, उसे और तेज करना। अगर दीपक का प्रकाश तेज न हो, तो तेल डालने से लाभ?" कहकर दंपति जीवन की बात रखी। इन दो पत्नियों के अलावा भी उनका एक स्त्री से संबंध था। परंतु कहीं भी उन्होंने इस बात को अपने लेखों में बयाँ नहीं किया। प्रेमचंद ने अपने जीवन का एक सत्य उजागर करते हुए पत्नी को अपनी चोरी का किस्सा सुनाया कि "मैंने अपनी पहली स्त्री के जीवनकाल में ही एक और स्त्री रख छोड़ी थी। तुम्हारे आने पर भी उससे मेरा संबंध था।" पत्नी ने कहा, "मुझे मालूम है।" प्रेमचंद की रखैल शायद इलाहाबाद की कोई स्त्री होगी। अवसर मिलते ही वे इलाहाबाद जाते। रखैल को कुछ राशि भी भेजते रहे होंगे, दूसरी शादी के बाद भी।

(कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 240) वह भी शिवरानी देवी से छिपकर। मई, 1910 में दया नारायण निगम को कुल पहाड़ से लिखे पत्रों में एक लंबे लेखों के लिए दुगुनी रकम मांगते हुए अपनी स्थिति का वर्णन- इस बात का शायद प्रमाण है। दरअसल, उस वक्त सामाजिक प्रतिष्ठा का एक रूप था रखैल रखना। इसीलिए रुतबे को महत्त्व देकर भी अकेलेपन को दूर करने के लिए शायद उस वक्त रखैल रखी हो।

1.2.8. संतान

सन् 1910 के दिसंबर महीने में प्रेमचंद और शिवरानी देवी की पहली संतान लड़की हुई, जो दस दिन ही जीवित रही। दूसरी संतान के रूप में सन् 1913 में एक लड़की का जन्म हुआ, जिसका नाम कमला देवी रखा गया। उसके कुछ वर्ष बाद, सन् 1916 में अगस्त महीने में तबादले के कारण बस्ती से गोरखपुर गए। उसी रात में तीसरी संतान के रूप में श्रीपत राय का जन्म हुआ, जिसे प्रेम से "धुन्नू" कहकर पुकारा जाता था। धुन्नू के जन्म समय की कहानी शिवरानी देवी के शब्दों में:

"गोरखपुर का तबादला हुआ। हमने सब सामान गोरखपुर के लिए बुक कराया। बुक कराने पर पता चला कि जो क्वार्टर हमें गोरखपुर में मिलेगा, वह एक दिन देर से मिलेगा। जब वहां से आने पर आप खाना खाने बैठे, तो बोले - 'अभी तो हमें कल चलना है क्योंकि क्वार्टर खाली नहीं। आज खत आ गया है। मैं भी सोच रहा हूं कि कल ही चलें।'

मैं कई दिनों से बीमार थी। वे सामने बैठे खाना खा रहे थे।

मैं: 'इसके माने यह हैं कि आप महीने-दो महीने की छुट्टी लेकर बैठिये।'

तब आप बोले: 'क्या आज ही चलना चाहती हो?'

मैं: 'हां, आज ही! सामान तो बुक हो गया और मैं बीमार! और क्या मुसीबत होगी?'

आप बोले: 'चलो, एक दिन स्कूल ही में ठहर लेंगे!'

मैं: 'हां, चलिये।'

हम वहां से चले। तीन बजे चलकर शाम को पांच बजे पहुंचे। स्कूल में हम ठहराए गए। स्कूल के बरामदे में हमें सब मास्टर्स तथा दो सौ के लगभग लड़कों ने घेर लिया। कोई आठ बजे के लगभग वहां के एक मास्टर मुझे ऐसी हालत में जानकर अपने घर ले गए। बोले, 'कल क्वार्टर खाली हो जाने पर मैं उसमें चला जाऊंगा। बात एक ही होगी। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 241) इस प्रकार, तबादले की रात

को पुत्र श्रीपत राय का जन्म हो गया। बाद में, प्रेमचंद और शिवरानी देवी को दूसरे पुत्र के रूप में "बन्नु" का जन्म ई.स. 1922 में हुआ, जिनका मूल नाम अमृतराय था।

1.2.9. नौकरी

प्रेमचंद ने सर्वप्रथम सरकारी अध्यापक की नौकरी अठारह रुपये मासिक वेतन पर शुरू की। धीरे-धीरे मॉडल स्कूल के हेडमास्टर के पद पर भी पहुंचे। फिर, आगे बढ़े तो इलाहाबाद डिवीजन में जे. डब्ल्यू. बेकन द्वारा धनपत राय को इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स के पद पर उन्नति प्राप्त हुई। बाद में, गांधी जी की विचारधारा से प्रभावित होकर सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

1.2.10. बाबू प्रेमचंद से मुंशी प्रेमचंद

प्रेमचंद 17 अप्रैल, 1935 को इंदौर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में भाग लेना चाहते थे, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि वे वहाँ नहीं पहुँच सके। 'हंस' पत्रिका को किसी और के हाथों सौंपते समय प्रेमचंद के हृदय में एक हल्की सी टीस जरूर महसूस हुई, क्योंकि उन्होंने इस पत्रिका को अपने बच्चे की तरह स्नेह और परिश्रम से पाला-पोसा था। इसलिए इसके प्रति उनका लगाव स्वाभाविक था। अंततः जुलाई 1935 में 'हंस लिमिटेड' की विधिवत रजिस्ट्री हो गई और अक्टूबर 1935 से यह पत्रिका 'भारतीय साहित्य परिषद' के रूप में प्रकाशित होने लगी। उस समय इसके संपादक थे कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और प्रेमचंद। सीताराम चतुर्वेदी इस संबंध में एक रोचक रहस्योद्घाटन करते हुए लिखते हैं कि 'हंस' पत्रिका के मुखपृष्ठ पर दोनों संपादकों के नाम इस प्रकार प्रकाशित होते थे—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और प्रेमचंद। एक बार हमारे हिंदी के एक चतुर व्यक्ति ने बिना सोचे-समझे 'मुंशी' शब्द को प्रेमचंद के नाम के साथ जोड़कर 'मुंशी प्रेमचंद' के रूप में लिख दिया। इस प्रकार प्रेमचंद के नाम के साथ 'मुंशी' उपनाम स्थायी रूप से जुड़ गया।

1.2.11. अंतिम समय एवं मृत्यु

प्रेमचंद के जीवन का अंतिम चरण शारीरिक पीड़ा, मानसिक संघर्ष और सृजनात्मक दृढ़ता का विलक्षण उदाहरण प्रस्तुत करता है। 16 जून 1936 को उन्हें पेट में तीव्र दर्द हुआ और बार-बार उल्टियाँ होने लगीं, जिससे उनकी स्वास्थ्य-स्थिति अत्यंत गंभीर हो गई। यह स्पष्ट हो गया था कि उनका शरीर अब लंबे संघर्षों का भार सहने में असमर्थ होता जा रहा है, किंतु उनकी चेतना और लेखकीय प्रतिबद्धता अभी भी सक्रिय थी। गंभीर अस्वस्थता के बावजूद उन्होंने अपने अंतिम उपन्यास 'मंगलसूत्र' का लेखन बंद नहीं किया। यह उपन्यास केवल एक साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि उनके

जीवन-दर्शन का सार है। इसके नायक के माध्यम से प्रेमचंद ने सामाजिक विषमता, श्रम के अवमूल्यन और व्यवस्था की अमानवीयता पर गहरे प्रश्न उठाए। नायक का यह प्रश्न कि कठोर परिश्रम करने वाला व्यक्ति भूखा क्यों मरता है और बिना श्रम करने वाला व्यक्ति सुख-संपन्न जीवन क्यों जीता है, वस्तुतः प्रेमचंद के अपने जीवन-अनुभवों से उपजा हुआ प्रश्न है। 'मंगलसूत्र' में अभिव्यक्त यह वैचारिक पीड़ा प्रेमचंद की उस चेतना को प्रकट करती है, जो जीवन के अंतिम क्षणों तक सामाजिक अन्याय से मुठभेड़ करती रही। इस दौर में उनका लेखन आशा से अधिक यथार्थ का साक्ष्य बन गया था, जिसमें आदर्श के साथ-साथ जीवन की कठोर सच्चाइयाँ भी पूरी तीव्रता से उभरकर सामने आती हैं।

अक्टूबर 1936 तक प्रेमचंद की स्थिति अत्यंत नाजुक हो चुकी थी। 1 अक्टूबर 1936 को निराला ने उनकी अवस्था पर गहरी संवेदना व्यक्त करते हुए उन्हें हिंदी साहित्य का युगांतरकारी लेखक बताया, जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी निर्भीक होकर संघर्ष करता रहा। यह वक्तव्य केवल एक साहित्यकार के प्रति सम्मान नहीं था, बल्कि उस संघर्षशील जीवन की स्वीकृति भी थी, जिसे प्रेमचंद ने जिया। उस समय अनेक साहित्यकारों और शुभचिंतकों ने उनके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की कामना की, किंतु उनकी शारीरिक स्थिति निरंतर बिगड़ती चली गई। अंततः 8 अक्टूबर 1936 को प्रातः लगभग सात बजे बनारस में जलोदर रोग के कारण उनका देहावसान हो गया। इस समाचार से साहित्यिक जगत में शोक की लहर दौड़ गई। रवींद्रनाथ ठाकुर की यह टिप्पणी कि तुम्हारे पास एक अनमोल रत्न था, जिसे तुमने खो दिया," प्रेमचंद के महत्त्व को संक्षेप में रेखांकित करती है। प्रेमचंद का जीवन कठोर श्रम और निरंतर संघर्ष का पर्याय था। वे ईश्वर से अधिक अपने श्रम में विश्वास करते थे और यह मानते थे कि मनुष्य अपने परिश्रम के बल पर ही जीवन की दिशा बदल सकता है। विडंबना यह रही कि जीवन-भर अथक परिश्रम करने के बावजूद वे भौतिक समृद्धि प्राप्त नहीं कर सके, किंतु उनकी वैचारिक संपदा असाधारण रूप से समृद्ध थी। उन्होंने मीलों पैदल चलकर, सीमित साधनों में रहते हुए और अभावों के बीच लेखन को साधना बनाए रखा। यही कारण है कि उनका संघर्ष व्यक्तिगत न होकर सामाजिक अर्थ ग्रहण कर लेता है।

प्रेमचंद के अंतिम क्षणों और उनके निधन के बाद का दृश्य अत्यंत करुण और मार्मिक था। 7 अक्टूबर 1936 को प्रातः लगभग दस बजे डॉक्टर को लेकर जैनेन्द्र उनके निवास पर पहुँचे, किंतु तब तक उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। ग्यारह-बारह बजे तक उनके स्वर्णवास का समाचार मित्रों, साहित्यकारों और लमही गाँव तक पहुँच गया। इस समय का वर्णन करते हुए पूर्णानंद वर्मा ने जो दृश्य अंकित किया है, वह प्रेमचंद

के पारिवारिक और सामाजिक महत्व को गहराई से उजागर करता है। शिवरानी देवी का अपने पति के निर्जीव शरीर को गोद में लिए करुण क्रंदन केवल एक पत्नी का विलाप नहीं था, बल्कि उस जीवन-संघर्ष की प्रतिक्रिया थी, जिसे उन्होंने प्रेमचंद के साथ साझा किया था। जब शव को श्मशान ले जाने की बात आई, तो उनका प्रतिरोध स्त्री-हृदय की असहनीय पीड़ा को प्रकट करता है। अंततः अर्थी बनी और लगभग बारह बजे प्रेमचंद का शव मणिकर्णिका घाट ले जाया गया। मार्ग में किसी राहगीर द्वारा उन्हें केवल कोई मास्टर कहा जाना समाज की उस विडंबना को उजागर करता है, जिसमें महान व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसके जीवनकाल में नहीं हो पाता। चिता को अग्नि दी गई और इस प्रकार 56 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु 8 अक्टूबर 1936 को हुई जिसने अपनी लेखनी से भारतीय समाज को यथार्थ का दर्पण दिखाया। प्रेमचंद का निधन एक व्यक्ति का अंत नहीं था, बल्कि वह सामाजिक चेतना की एक सशक्त आवाज़ का मौन हो जाना था। फिर भी उनकी रचनाएँ आज भी जीवित हैं और यह प्रमाणित करती हैं कि प्रेमचंद का वैचारिक सूर्य अस्त होकर भी अपनी प्रकाश-रेखाएँ समाज में छोड़ गया है।

1.3. प्रेमचंद का साहित्यिक योगदान

कोई भी साहित्यकार अपने युग की परिस्थितियों से निश्चित रूप से प्रभावित होता है, लेकिन उसके व्यक्तिगत जीवन की घटनाएँ भी उसके साहित्य पर अपनी छाप अवश्य छोड़ती हैं। प्रेमचंद का साहित्य भी इस तथ्य से अछूता नहीं है। उनका जीवन अत्यंत संघर्षमय रहा, जिसने उनके व्यक्तित्व में अदम्य साहस और सहनशक्ति का विकास किया। उनके साहित्य को पढ़ने से पहले यह जानना आवश्यक है कि वे किस परिवेश में पले-बढ़े और किन परिस्थितियों में उन्होंने अपनी रचनाओं का सृजन किया। क्योंकि कोई भी साहित्यकार अपनी कृतियों में अपना व्यक्तित्व लाए बिना नहीं रह सकता। जब तक कोई साहित्यकार अपने आस-पास के परिवेश से प्रभावित होकर मानव जीवन के यथार्थ को चित्रित नहीं करता, तब तक वह एक सफल साहित्यकार नहीं बन सकता। प्रेमचंद का परिवार आर्थिक रूप से संपन्न नहीं था। स्वयं प्रेमचंद ने अपने जीवन के विषय में कहा है, "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खड्डों को स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ की सैर के शौकीन हैं, उन्हें तो निराशा होगी।"

1.3.1. प्रेमचंद की हिंदी में प्रथम कहानी

प्रेमचंद को 'कहानी सम्राट' कहा जाता है। हिंदी में प्रेमचंद की पहली कहानी 'सौत' 1915 में प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद का परिवेश

सदैव उन्हें प्रभावित करता रहा और उनकी कहानियों के पात्र व विषय वहीं से आते थे। उन दिनों उनके स्कूल में मुहम्मद नाम का एक दफ्तरी कार्यरत था, जिस पर उन्होंने 'दफ्तरी' शीर्षक से कहानी लिखी। इस कहानी के बारे में प्रेमचंद ने इम्तियाज अली ताज को 25 सितंबर 1919 के एक पत्र में लिखा, "दफ्तरी बिल्कुल जीवन से लिया गया है, इसमें कल्पना का बहुत कम योगदान है।" देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ प्रेमचंद को निरंतर प्रभावित करती रहीं। वे कई बार नौकरी छोड़ने का विचार करते थे, परंतु आर्थिक विवशताओं के कारण ऐसा नहीं कर पाए। जैनेन्द्र कुमार को लिखे एक पत्र में उन्होंने अपनी मनःस्थिति व्यक्त की, "कर्जदार हो गया था, कर्ज पटा दूंगा। लेकिन और कोई लाभ नहीं। उपन्यास ('गोदान') के अंतिम पन्ने लिखने बाकी हैं। मन नहीं लगता। जी चाहता है, यहाँ से छुट्टी पाकर पुराने अड़्डे पर जा बैठूँ। वहाँ धन नहीं है, पर संतोष अवश्य है। यहाँ तो लगता है, जीवन व्यर्थ कर रहा हूँ।"

ब्रिटिश सरकार की नौकरी प्रेमचंद के लिए आत्मा पर एक भारी बोझ के समान थी। उनमें स्वाभिमान और आत्मसम्मान कूट-कूट कर भरा था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, जब कांग्रेस के नेता अंग्रेजों के साथ थे और गांधी जी ने रंगरूट भर्ती के लिए प्रयास किए, प्रेमचंद ने इसके विरोध में नवम्बर 1918 में स्कूल में आयोजित विजयोत्सव में भाग नहीं लिया। सरकारी नौकरी के दौरान उनके साथ दो घटनाएँ घटीं, जो उनके स्वाभिमान की स्वभाव को दर्शाती हैं। पहली घटना में प्रेमचंद की गाय कलेक्टर साहब के परिसर में घुस गई, जिस पर कलेक्टर ने उसे गोली मारने की धमकी दी, लेकिन प्रेमचंद अपने स्वाभिमान पर अडिग रहे और तनिक भी भयभीत नहीं हुए।

दूसरी घटना जाड़े के दिनों की है। स्कूल के निरीक्षण के लिए एक इंस्पेक्टर आया हुआ था। पहले दिन प्रेमचंद ने उसे पूरा स्कूल दिखाया। अगले दिन छुट्टी के बाद जब प्रेमचंद अपने घर के दरवाजे पर आराम कुर्सी पर बैठकर अखबार पढ़ रहे थे, तब इंस्पेक्टर अपनी मोटर से गुजर रहा था। प्रेमचंद ने न तो अपनी कुर्सी से उठकर उसका अभिवादन किया और न ही उसे सम्मान देना जरूरी समझा। कुछ दूर जाकर इंस्पेक्टर ने अपनी गाड़ी रोकी और अर्दली को भेजकर प्रेमचंद को बुलाया। उसने नाराजगी व्यक्त करते हुए कहा, "तुम बड़े घमंडी हो। तुम्हारा अफसर दरवाजे से निकलता है, और तुम खड़े होकर सलाम तक नहीं करते।" इस पर प्रेमचंद ने उत्तर दिया, "जब मैं स्कूल में हूँ, तब नौकर हूँ, लेकिन बाद में अपने घर का बादशाह हूँ।"

गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर प्रेमचंद ने 14 फरवरी 1921 को सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने 'लालफीता' शीर्षक से एक कहानी लिखी। उनकी एक अन्य कहानी 'आदर्श विरोध' में उन्होंने पूर्ण स्वराज्य की

आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा, "भारत के उद्धार का यदि कोई एकमात्र उपाय है तो वह स्वराज्य है, जिसका अर्थ है 'मन की स्वाधीनता।' (प्रेमचंद: घर में, शिवरानी देवी प्रेमचंद, पृ. 41)।

1.3.2. मर्यादा व माधुरी पत्रिकाओं का संपादन

सन् 1929-30 के दौरान प्रेमचंद 'माधुरी' पत्रिका के संपादन का कार्य कर रहे थे। इसके पहले उन्होंने अपने जीवनयापन के लिए कुछ समय तक कानपुर के 'मारवाड़ी विद्यालय' तथा 'काशी विद्यापीठ' में हेडमास्टर के रूप में भी कार्यभार संभाला। इसी दौरान उन्होंने काशी से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'मर्यादा' और लखनऊ से प्रकाशित 'माधुरी' का संपादन किया। 'माधुरी' के संपादक के रूप में उन्हें दो सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। इस बार वह लखनऊ में लंबे समय तक रहे और 'माधुरी' का संपादन करते हुए उन्होंने कई नये लेखकों को प्रोत्साहित किया। प्रेमचंद के जीवन की घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि बड़े से बड़े प्रलोभन भी उन्हें उनके आदर्शों और पथ से विचलित नहीं कर सके। सन् 1924 में जब प्रेमचंद का उपन्यास 'रंगभूमि' लखनऊ में छप रहा था, उसी समय अलवर-नरेश ने उन्हें अपना निजी सचिव बनाने का प्रस्ताव दिया। इसके लिए उन्होंने पाँच सौ रुपये मासिक वेतन, एक मोटर और बंगला देने का प्रलोभन दिया, लेकिन प्रेमचंद ने इस प्रस्ताव को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। (प्रेमचंद: घर में, शिवरानी देवी प्रेमचंद, पृ. 71)। यह घटना स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि प्रेमचंद का जीवन उद्देश्य केवल धनार्जन करना नहीं था, बल्कि वे अपने साहित्य और सिद्धांतों के प्रति पूरी निष्ठा रखते थे।

1.4. प्रेमचंद के साहित्य का हिंदी साहित्य पर प्रभाव

प्रेमचंद के साहित्यिक योगदान ने न केवल हिंदी साहित्य में, बल्कि भारतीय साहित्य के व्यापक परिप्रेक्ष्य में भी गहरा प्रभाव छोड़ा है। उनका लेखन समाज के सबसे वंचित वर्गों की आवाज बनकर उभरा और उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक सुधार की दिशा में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। प्रेमचंद ने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना, बल्कि उसे समाज सुधार का एक प्रभावी माध्यम बनाया। प्रेमचंद ने दलित और शोषित वर्ग की व्यथा को अपने साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया, जिससे उनके लेखन में समतावादी दृष्टिकोण उभर कर आया। (कुमार, डी. 2022) प्रगतिशील लेखक आंदोलन के साथ प्रेमचंद की सहभागिता ने उनके साहित्य को और भी व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान किया। उन्होंने साहित्य को एक माध्यम के रूप में देखा, जिसके माध्यम से समाज की कुरीतियों पर सवाल उठाए जा सकते थे और उन्हें सुधारने के प्रयास किए जा सकते थे। उनके विचार समाजवादी थे, और उन्होंने अपने साहित्य में गरीबी, जातिगत भेदभाव, शोषण और सामाजिक

असमानता के खिलाफ आवाज उठाई। 'कर्मभूमि' और 'गबन' जैसे उपन्यासों में उन्होंने इन मुद्दों को गहराई से छुआ और पाठकों को सोचने के लिए मजबूर किया।

प्रेमचंद का लेखन भारतीय साहित्य में एक युगांतरकारी परिवर्तन लाया। उन्होंने यथार्थवाद को हिंदी साहित्य में स्थापित किया और इसे उन मुद्दों पर केंद्रित किया जो पहले उपेक्षित थे। इसके अलावा, उनकी भाषा की सादगी और स्पष्टता ने उन्हें जनसामान्य के बीच लोकप्रिय बनाया। उन्होंने उस समय की आम बोलचाल की हिंदी का प्रयोग किया, जो साहित्य के दायरे को अभिजात्य वर्ग से बाहर निकालकर आम जन तक ले आई। उनके लेखन ने हिंदी भाषा को एक नया जीवन दिया और इसे साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए एक सशक्त माध्यम बनाया। मुंशी प्रेमचंद का हिंदी साहित्य पर प्रभाव आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। उनके उपन्यास और कहानियाँ भारतीय समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक वास्तविकताओं का दर्पण हैं और उनका साहित्य आज भी समाजशास्त्र, राजनीति और इतिहास के संदर्भ में महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय बना हुआ है। उनकी स्थायी विरासत ने उन्हें हिंदी साहित्य का उपन्यास सम्राट बना दिया और उनके योगदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। प्रेमचंद का साहित्य उनके समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का एक जीवंत दस्तावेज है। उनके द्वारा किए गए सुधारात्मक प्रयास और यथार्थवादी दृष्टिकोण ने हिंदी साहित्य में एक नई परंपरा को जन्म दिया, जिसमें निम्न वर्ग और महिलाओं के संघर्ष को प्रमुखता दी गई।

प्रेमचंद के लेखन में यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ-साथ राष्ट्रवादी विचारधारा का समावेश है। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम और समाज सुधार की जरूरत को रचनाओं में बल दिया, जिससे उनके साहित्य का उद्देश्य स्पष्ट होता है। (नस्कर, एस. 2023) प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' और अन्य रचनाओं में किसानों के संघर्ष और शोषण की कहानियाँ हैं, जिनसे उनकी लेखनी का गहन सामाजिक दृष्टिकोण उभरता है। वे अपने पात्रों के माध्यम से सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज उठाते हैं। (चंद्रा, एस. 1982) प्रेमचंद के लेखन में हिंदी और उर्दू की सांस्कृतिक विविधताओं के प्रति सम्मान और उन दोनों भाषाओं में सौंदर्य बोध का एक अनूठा समायोजन दिखाई देता है, खासकर 'सेवासदन' और बाजार-ए-हुस्न जैसी रचनाओं में। (अनंतराम, ए. 2012) प्रेमचंद ने अपने साहित्य में दलित और पिछड़े वर्गों की स्थिति को संवेदनशीलता के साथ उभारा, जिससे उनकी रचनाएँ भारतीय समाज की विविधता और गहराई को प्रतिबिंबित करती हैं। (सुंदरम, आर. 2015) 'सेवासदन' जैसे उपन्यास में महिलाओं को समाज के नैतिक मानकों और यौनिकता के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव के संदर्भ में चित्रित किया गया है। यह साहित्यिक दृष्टिकोण उस समय के सामाजिक मापदंडों पर सवाल उठाता है और महिलाओं के नए स्वरूप को प्रस्तुत करता है। (गुलाटी, एन. 2015)

तत्कालीन भारतीय समाज के विविध सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों को समेटने के कारण प्रेमचंद के उपन्यास हमारे राष्ट्रीय जागरण के इतिहास के अद्वितीय दस्तावेज हैं। यदि भविष्य में इस युग का इतिहास लुप्त हो जाए और केवल प्रेमचंद की रचनाएँ शेष रह जाएँ, तो उनके माध्यम से उस समय की सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का सटीक आभास प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि शिवनारायण श्रीवास्तव लिखते हैं, "कालांतर में यदि इस समय का इतिहास लुप्त हो जाए और इनकी रचनाएँ बची रह सकें, तो इन्हीं के आधार पर विचारशील निर्णायक देश की सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागृति का व्यापक आभास प्राप्त कर सकता है। (शिवनारायण श्रीवास्तव 2016) प्रेमचंद स्वयं कहते हैं, "जब हम देखते हैं कि हम भीषण-भीषण से राजनीतिक और सामाजिक बंधनों में जकड़े हुए हैं, जिधर भी दृष्टि जाती है, दुःख और दरिद्रता के भयावह दृश्य दिखाई देते हैं, और विपत्ति का करुण क्रंदन सुनाई देता है, तो यह कैसे संभव है कि किसी विचारशील व्यक्ति का हृदय न दहल उठे।"

उस समय की विकट परिस्थितियों में जब चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था और गरीबी के भयानक दृश्य आम थे, साहित्यकार के लिए इन स्थितियों से अछूता रहना असंभव था। देश अपने स्वतंत्रता के अधिकारों को प्राप्त करने के लिए महासंघर्ष में लगा हुआ था। इन संघर्षपूर्ण परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार के हृदय और मस्तिष्क पर गहराई से पड़ता था। इनसे प्रेरित होकर वह अपने आक्रोश और चिंताओं को अपनी रचनाओं में व्यक्त करता था। समस्याओं के समाधान के उपायों पर विचार करना और उन्हें अपने लेखन में स्थान देना, उसकी संवेदनशीलता को दर्शाता है। यदि कोई साहित्यकार ऐसा न करे, तो यह उसकी संवेदनशीलता की कमजोरी मानी जाती है। संवेदनशीलता, जो किसी भी लेखक की सबसे बड़ी शक्ति होती है, यदि कमजोर हो जाए, तो रचनाओं में वह प्रभाव, नवीनता और ऊर्जा नहीं आ सकती जो समाज को जागृत कर सके। यही कारण है कि प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय जागरण का एक सजीव और प्रामाणिक चित्रण मिलता है। जैसा कि डॉ. नंदकुमार कहते हैं, "गांधी-युग के प्रारंभिक तीन चरणों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक मुद्दों को जितनी गहराई और सटीकता से प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है, वैसा हिंदी साहित्य में ही नहीं, बल्कि भारतीय साहित्य में भी अद्वितीय है।" (मदन गोपाल 2006) वास्तव में, जब उत्तर भारत के इस ऐतिहासिक कालखंड का सांस्कृतिक इतिहास लिखा जाएगा, तो प्रेमचंद के उपन्यासों से अधिक व्यवस्थित और सटीक सामग्री अन्यत्र मिलना कठिन होगा।

1.5. साहित्यिक विहंगालोकन

मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य के आधार स्तंभ हैं। हिंदी साहित्य सृजन कला में प्रेमचंद का नाम एवं स्थान श्रद्धा पूर्वक आदरणीय है। उन्होंने अपनी विचारशीलता एवं सर्जनशीलता द्वारा मानवीय मूल्य रूपी आत्मा को शब्दमय देह प्रदान किया, जिसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, बाल-कथा, अनुवाद आदि की रचनाकीय लंबी सूची है। इनमें गांव-शहर, बालक-वृद्ध, यौवन-बूढ़ा, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-निरक्षर, पंडित-दलित, धनवान-गरीब, सेठ-नौकर, समृद्ध-मध्यम, वैश्या-प्रतिव्रता, शोषक-शोषित जैसे समाज के पात्र, उनके प्रश्न, राजनीति, अर्थव्यवस्था, नारी उत्कर्ष, अनेक समस्याएँ, सामाजिक व्यवस्था के विविध पहलू, समाज के प्रति मानवीय दृष्टिकोण, उदात्त भावना, समाज रचना पर व्यंग्य, समाज में छुपी सुषुप्त भावना उजागर करने जैसी कई प्रवृत्तियों की ओर विविध दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर कथा-साहित्य संसार की रचना कर डाली। इनके साहित्य माध्यम से समाज को नई उत्कर्षमय विचारधारा रूपी पथ प्रदर्शन प्राप्त हुआ। उनकी लेखनी ने लोगों में शारीरिक-मानसिक-आर्थिक वैचारिक गुलामी से बाहर निकालने की ताकत रूपी भाव पैदा किया। वे नवीन सर्जन एवं विचार से भरे साहित्य की रचना करते थे। इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य बहुमुखी एवं वैविध्यपूर्ण है। प्रेमचंद की प्रारंभिक शिक्षा उर्दू (फारसी) में हुई थी। इसी कारण लगभग तेरह वर्ष तक हिंदी से अनजान थे। प्रेमचंद एक स्थानीय बुकसेलर की दुकान पर बैठते थे। वहीं से मिर्जा पं. रतननाथ, सरशार, मौलाना शाह, मौलवी मुहम्मद अली आदि की उर्दू किताबें, रेनाल्डो के उपन्यास के अनुवाद, तिलस्मी होशरुबा के कई खंड, नवलकिशोर प्रेस में छपे पुराणों के उर्दू अनुवाद आदि को तीन साल में पढ़ लिया। मुंशी प्रेमचंद की लेखन कला की परंपरा के बुनियादी बीज यहाँ से प्रारंभ होते हैं, जो उर्दू और उसके बाद हिंदी साहित्य के वटवृक्ष रूपी नाटक, कहानी, जीवनी, उपन्यास, अनुवाद, बाल-साहित्य, पत्र, निबंध, दर्जनों लेखन, पत्रकारिता, फिल्मी पटकथा रूपी शाखाओं के माध्यम से प्रस्तुत हुई।

1.5.1. उर्दू साहित्य

प्रेमचंद को उपन्यास-सम्राट की संज्ञा बंगला कथाकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने दिया था। 'असरारे मआविद' प्रेमचंद का प्रथम उपन्यास है। तथा प्रेमचंद का पहला प्रौढ़ हिन्दी उपन्यास 'सेवा सदन' है।

प्रेमचंद द्वारा लिखे मूल उर्दू में उपन्यास का उनके द्वारा किया गया हिन्दी उपान्तर निम्नलिखित है-

प्रेमचंद के उपन्यास (उर्दू एवं हिंदी)

मूल उर्दू उपन्यास	वर्ष	हिंदी रूपांतर	वर्ष
असरारे मआबिद	1903— 1905	सेवासदन	1905
हमखुर्मा व हमसवाब	1906	प्रेमा अर्थात दो सखियों का विवाह	1907
किशना	1907	गबन	1931
जलवाए ईसार	1912	दर्दान	1921
बाजार-ए-हुस्न	1917	सेवासदन	1918
गोशा-ए-आफ़ियत	—	प्रेमाश्रम	1922
चौगान-ए-हस्ती	—	रंगभूमि	1925

‘इश्के दुनिया व हुब्बे वतन’ (सांसारिक प्रेम और देश प्रेम) सिल-ए-मातम (शोक का पुरस्कार) नवाब राय ने ‘सोजे वतन’ कहानी संग्रह लिखा जो जमाना प्रेस, कानपुर से प्रकाशित हुई। जिसमें ‘दुनिया का सबसे अनमोल रतन’, ‘मखमूर’, ‘यह मेरा वतन है’, ‘शोक का पुरस्कार’, ‘सांसारिक प्रेम और देश प्रेम’ कहानियाँ समाविष्ट थी। 1908 में प्रकाशित यह पाँच उर्दू कहानियों का संग्रह था, जिसमें देश की दुर्दशा एवं देश भावना को जागृत करने वाला भाव था। इसी कारण अंग्रेजी हुकूमत का विरोध करने वाली संग्रह की सभी प्रतियाँ अंग्रेज सरकार ने जप्त कर लीं। बाद में हमीरपुर के कलेक्टर द्वारा देशद्रोह का आरोप लगाकर सारी प्रतियाँ जला दी गईं और आगे से न लिखने का आदेश देते हुए उन्हें छोड़ दिया।

1.5.2. हिंदी साहित्य

धनपत राय के वर्तमान समय में अंग्रेजी हुकूमत शासन कर रही थी। उस वक्त नवाबराय नाम त्याग कर अब हिंदी की ओर उनका झुकाव बढ़ने लगा और एक नए नाम प्रेमचंद को स्वीकृत करते हुए साहित्य साधना करने लगे। सरकार के आदेश के

बाद मन बदला तो प्रेमचंद ने उर्दू से हिंदी की ओर अपना पथ बदला। उस वक्त हिंदी के गोपालराम गहमरी, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकी नंदन खत्री आदि द्वारा तिलिस्मी, मिलाप-विरह, अपराध जैसी दास्तानों को पढ़नेवाला एक लंबा-चौड़ा वर्ग था। इनकी रचनाओं की बोलबाला थी। ऐसे समय में उपन्यास एवं कहानी क्षेत्र में समाज जीवन से जुड़ी यथार्थ और आदर्श प्रस्तुत करने वाली हिंदी साहित्य की विशालतम लेखनी को उन्होंने लिखा। बाद में, इसी नए नाम से अपनी लेखन-कला का डंका पूरे जोर-शोर से हिंदी साहित्य क्षेत्र में बजाया। मुंशी प्रेमचंद ने हिंदी कथा-साहित्य क्षेत्र की विविध विधाओं में अपनी कलम से रचनाएँ लिखीं। उस समय इन पाठक वर्ग को प्रेमचंद अपनी ओर खींच लाने में सफल हुए। प्रेमचंद आर्य समाज की विचारधारा के दृष्टिकोण से जुड़े हुए थे। तदुपरांत जमीनी हकीकत के पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए अपनी रचनात्मकता शैली से अन्य पाठक गण को अपना पाठक वर्ग बनाने में सफल हुए। इन रचनाओं का वर्गीकरण इस प्रकार है-

उपन्यासः. मुंशी प्रेमचंद रचित प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यास क्रमानुसार इस प्रकार हैं।

प्रेमा	-	1907
सेवासदन	-	1918
प्रेमाश्रम	-	1922
रंगभूमि	-	1925
कायाकल्प	-	1926
निर्मला	-	1927
प्रतिज्ञा	-	1927
गबन	-	1931
कर्मभूमि	-	1932
गोदान	-	1936
मंगलसूत्र	-	1948 (अपूर्ण)

प्रेमचंद का हिंदी में मूल रूप से लिखा प्रथम उपन्यास 'कायाकल्प 1926 है। तथा 1907 ई. में प्रेमचंद ने 'रूठी रानी' नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की।

प्रेमचंद ने सन् 1929 ई. में 'प्रेमा' उपन्यास को संशोधित करके 'प्रतिज्ञा' शीर्षक से प्रकाशित करवाया। प्रेमचंद ने 'आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी', उपन्यास लेखन की परम्परा को प्रवर्तन किया। प्रेमचंद ने लिखा है, "सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर होता है।" प्रेमचंद ने हिन्दी में मूल रूप से कायाकल्प नामक पहला उपन्यास लिखा था।

प्रेमचंद लिखित सन् 1908 से 1918 तक तकरीबन 40 कहानियां उर्दू में छपी। ये प्रमुख कहानी प्रमुख कहानी संग्रह निम्नलिखित हैं-

‘सोज-ए-वतन’	-	सन् 1908
‘प्रेम पचीसी भाग’-1	-	सन् 1914
‘प्रेम पचीसी भाग’-2	-	सन् 1918
सप्त सरोज	-	1917
प्रेम पचीसी	-	1923
प्रेम प्रसूना	-	1924
प्रेम द्वादशी	-	1926
प्रेम प्रतिमा	-	1926
प्रेम प्रतिज्ञा	-	1929
प्रेम चतुर्थी	-	1929
प्रेम कुंज	-	1930
सप्त सुमन	-	1930
‘कफन’	-	1936

उपर्युक्त उर्दू कहानी संग्रह: में देशप्रेम की भावना, भारत के महान वीरों की वीरता, त्याग, बलिदान, सत्य रूपी गुण-गान के माध्यम से लोगों में उदात्त गुणों के भावारोपण करने का कार्य हुआ है। इसके अलावा समाज के विविध पहलुओं को उजागर

करके मानवीय मूल्यों के प्रति लोगों का नजरिया मनोवैज्ञानिक पद्धति से बदलने का कार्य किया है।

मुंशी प्रेमचंद द्वारा हिंदी साहित्य में तीन सौ से अधिक कहानियां लिखी गईं। अपने इस अद्भुत योगदान के कारण वे समाज के सभी जनमानस पर आज भी राज करते हैं। मुंशी प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी सौत सन् 1895, दिसंबर मास में प्रकाशित हुई। इनकी लगभग 300 कहानियाँ मानसरोवर के भाग-1 से 8 तक नामकरण से संकलित हैं, जो इस प्रकार हैं:

मानसरोवर	भाग-1-	177	कहानियां
मानसरोवर	भाग-2-	104	कहानियां
मानसरोवर	भाग-3-	32	कहानियां
मानसरोवर	भाग-4-	20	कहानियां
मानसरोवर	भाग-5-	24	कहानियां
मानसरोवर	भाग-6-	20	कहानियां
मानसरोवर	भाग-7-	23	कहानियां
मानसरोवर	भाग-8-	31	कहानियां

कुल कहानियां

उपरोक्त 'मानसरोवर' भाग 1 से 8 में समाविष्ट कहानियों की सूची इस प्रकार है।

मानसरोवर भाग-1

1. सत्याग्रह	2. सवा सेर गेहूँ	3. गुरु-मंत्र
4. पूर्व-संस्कार	5. नेउर	6. ब्रह्म का स्वांग
7. शतरंज के खिलाड़ी	8. ऐक्टर्स	9. बड़े भाई साहब
10. विध्वंस	11. ढपोरसंख	12. बहिष्कार
13. विचित्र होली	14. समर-यात्रा	15. फातिहा
16. दफ्तरी	17. सेवा-मार्ग	18. कौशल
19. दीक्षा	20. लैला	21. पछतावा
22. सचाई का उपहार	23. बासी भात में खुदा का साझा	24. स्वामिनी

25. क्षमा	26. महातीर्थ	27. गरीब की हाय
28. विमाता	29. अलगयोझा	30. दण्ड
31. लांछन	32. मंदिर	33. कानूनी कुमार
34. जादू	35. खुदाई फौजदार	36. बोध
37. गुप्तधन	38. मूठ	39. आप-बीती
40. स्वर्ग की देवी	41. जुगुनू की चमक	42. मनोवृत्ति
43. मर्यादा की वेदी	44. माता का हृदय	45. हार की जीत
46. भाड़े का टट्टू	47. मोटर के छोटे	48. कप्तान साहब
49. यह भी नशा, वह भी नशा	50. यही मेरा वतन है	51. सुभागी
52. स्मृति का पुजारी	53. मंत्र	54. मृत्यु के पीछे
55. जीवन-सार	56. पंडित मोटेराम की डायरी	57. पूस की रात
58. अभिलाषा	59. डिक्री के रुपये	60. कजाकी
61. पत्नी से पति	62. रियासत का दीवान	63. गिला
64. कायर	65. बलिदान	66. शेख मखमूर
67. अमावस्या की रात्रि	68. अग्नि-समाधि	69. ईदगाह
70. उन्माद	71. मिस पत्ता	72. सुहाग की साड़ी
73. नैराश्य	74. दुनिया का सबसे अनमोल रतन	75. कश्मीरी सेव
76. उपदेश	77. सद्गति	78. दो बैलों की कथा
79. बेटों वाली विधवा	80. दारोगाजी	81. जुलूस
82. मंत्र	83. धोखा	84. तावान
85. घरजमाई	86. कफन	87. आभूषण
88. अधिकार-चिन्ता	89. दिल की रानी	90. धिक्कार
91. गुल्ली-डंडा	92. मेरी पहली रचना	93. धर्म संकट
94. नाग-पूजा	95. परीक्षा	96. आत्म-संगीत
97. तगादा	98. प्रारब्ध	99. विनोद
100. सौत	101. लांछन	102. परीक्षा
103. नशा	104. पिसनहारी का कुआँ	105. पाप का अग्निकुंड
106. हिंसा परमो धर्म:	107. बाबा जी का भोग	108. मुक्तिबंधन
109. यह मेरी मातृभूमि है	110. विषम समस्या	111. दो भाई
112. घास वाली	113. जेल	114. सभ्यता का रहस्य
115. जुर्माना	116. बालक	117. मुक्ति-मार्ग

मानसरोवर भाग-2

ईश्वरीय न्याय	सोहाग का शव	रहस्य
ममता	जिहाद	बैंक का दिवाला
राजा हरदौल	कामना तरु	गृह-नीति
कुसुम	ज्योति	दुर्गा का मंदिर
बूढ़ी काकी	अनुभव	नैराश्य-लीला
नया विवाह	प्रायश्चित्त	लोकमत का सम्मान
चमत्कार	सती	शाप
चकमा	अनिष्ट शंका	आत्माराम
विस्मृति	आंसुओं की होली	राज्य-भक्त
आधार	मुफ्त का यश	डामुल का कैदी
ठाकुर का कुआँ	सज्जनता का दंड	कैदी
शंखनाद	त्यागी का प्रेम	पंच-परमेश्वर
आगा-पीछा	सौभाग्य के कोड़े	जीवन का शाप
खून सफेद	विद्रोही	विश्वास
झांकी	वैर का अंत	दो बहनें
कुत्सा	इस्तीफा	स्त्री और पुरुष
प्रेम की होली	सांसारिक प्रेम और देश प्रेम	होली का उपहार
आदर्श विरोध	लॉटरी	शान्ति
निमंत्रण	पशु से मनुष्य	दुराशा
शोक का पुरस्कार	बड़े घर की बेटी	आहुति
मृतक-भोज	वेश्या	मनुष्य का परम धर्म
न्याय	प्रेम का उदय	एक आंच की कसर
स्वत्व-रक्षा	शराब की दुकान	शूद्रा
चोरी	तथ्य	निर्वासन
मैकू	दुस्साहस	धिकार
मांगे की घड़ी	गृह-दाह	लाग-डाट
दूध का दाम	रसिक सम्पादक	नरक का मार्ग
शिकार	वज्रपात	तैतर
शान्ति	बेटी का धन	बौद्ध
ज्वालामुखी	लेखक	दो सखियां
रामलीला	शिकारी राजकुमार	नमक का दरोगा
भूत	मां	दो कब्रें
सुजान भगत	रानी सारन्धा	प्रेरणा
आखिरी होली	डिमांसट्रेशन	खुचड़
उद्धार	सती	

मानसरोवर भाग-3

1. विश्वास	2. परीक्षा	3. सौभाग्य के कोड़े
4. नरक का मार्ग	5. तेंतर	6. विचित्र होली
7. स्त्री और पुरुष	8. नैराश्य	9. मुक्ति-मार्ग
10. उद्धार	11. दण्ड	12. डिक्री के रुपये
13. निर्वासन	14. धिक्कार	15. शतरंज के खिलाड़ी
16. नैराश्य लीला	17. लैला	18. वज्रपात
19. कौशल	20. मुक्तिधन	21. सत्याग्रह
22. स्वर्ग की देवी	23. दीक्षा	24. भाड़े का टट्टू
25. आधार	26. क्षमा	27. बाबा जी का भोग
28. एक आंच की कसर	29. मनुष्य का परम धर्म	30. विनोद
31. माता का हृदय	32. गुरु-मंत्र	

मानसरोवर भाग-4

प्रेरणा	अभिलाषा	सवा सेर गेहूँ
सद्गति	खुचड़	सभ्यता का रहस्य
तगादा	आगा-पीछा	समस्या
दो कब्रें	प्रेम का उदय	दो सखियाँ
ढपोरसंख	सती	माँगे की घड़ी
डिमांसट्रेशन	मृतक-भोज	स्मृति का पुजारी
दारोगाजी	भूत	

मानसरोवर भाग-5

1. मंदिर	2. चोरी	3. आत्म संगीत
4. निमंत्रण	5. लांछन	6. ऐक्ट्रेस
7. रामलीला	8. कजाकी	9. ईश्वरीय न्याय
10. मंत्र	11. आँसुओं की होली	12. ममता
13. कामना तरु	14. अग्नि-समाधि	15. मंत्र
16. सती	17. सुजान भगत	18. प्रायश्चित्त
19. हिंसा परमो धर्म:	20. पिसनहारी का कुआँ	21. कसान साहब
22. बहिष्कार	23. सोहाग का शव	24. इस्तीफा

मानसरोवर भाग-6

1. यह मेरी मातृभूमि है	2. पाप का अग्निकुंड	3. चकमा
4. राजा हरदौल	5. आभूषण	6. पछतावा
7. त्यागी का प्रेम	8. जुगनू की चमक	9. आप-बीती
10. रानी सारंधा	11. गृह-दाह	12. राज्य-भक्त
13. शाप	14. धोखा	15. अधिकार-चिन्ता
16. मर्यादा की वेदी	17. लाग-डाट	18. दुराशा
19. मृत्यु के पीछे	20. अमावस्या की रात्रि	

मानसरोवर भाग-7

1. जेल	2. आत्माराम	3. दो भाई
4. पत्नी से पति	5. दुर्गा का मंदिर	6. महातीर्थ
7. शराब की दूकान	8. बड़े घर की बेटी	9. विस्मृति
10. जुलूस	11. पंच-परमेश्वर	12. प्रारब्ध
13. मैकू	14. शंखनाद	15. सुहाग की साड़ी
16. समर-यात्रा	17. जिहाद	18. लोकमत का सम्मान
19. शांति	20. फातिहा	21. नाग-पूजा
22. बैंक का दिवाला	23. बैर का अंत	

मानसरोवर भाग-8

1. खून सफेद	2. मूठ	3. गुप्त धन
4. गरीब की हाय	5. ब्रह्म का स्वांग	6. आदर्श विरोध
7. बेटी का धन	8. विमाता	9. विषम समस्या
10. धर्म-संकट	11. बूढ़ी काकी	12. अनिष्ट शंका
13. सेवा-मार्ग	14. हार की जीत	15. सौत
16. शिकारी राजकुमार	17. दफ्तरी	18. सज्जनता का दंड
19. बलिदान	20. विध्वंस	21. नमक का दरोगा
22. बोध	23. स्वत्व-रक्षा	24. उपदेश
25. सच्चाई का उपहार	26. पूर्व-संस्कार	27. परीक्षा
28. ज्वालामुखी	29. दुस्साहस	30. बौद्ध
31. पशु से मनुष्य		

प्रमचंद की प्रसिद्ध कहानियाँ, काल क्रमानुसार निम्नलिखित हैं

नमक का दरोगा	-1913
सज्जनता का दंड	-1916
ईश्वरीय न्याय	-1917
दुर्गा का मन्दिर	-1917
बूढ़ी काकी	-1920
शांति	-1921
सवा सेर गेहूँ	-1924
शतरंज के खिलाड़ी	-1924
मुक्ति-मार्ग	-1924
सौभाग्य के कोड़े	-1924
दो सखियाँ	-1928
अलग्गोझा	-1919
सद्गति	-1930
पूस की रात	-1930
समर यात्रा	-1930
पत्नी से पति	-1930
दो बैलों की कथा	-1931
होली का उपहार	-1931
ठाकुर का कुआँ	-1932
ईदगाह	-1933
नशा	-1934
बड़े भाई साहब	-1934
कफन	-1936

1.5.3. प्रेमचंद के उपन्यास

प्रेमचंद जी के उपन्यासों में अधिकांश समस्याएँ सामाजिक दृष्टिकोण से उभरती हैं, लेकिन उनके विषय इतने व्यापक होते हैं कि उनमें वैयक्तिक, ग्रामीण, राजनीतिक और आर्थिक सभी प्रकार की समस्याएँ समाहित हो जाती हैं। प्रेमचंद का हर पात्र किसी न किसी समस्या को अपने साथ लेकर चलता है और एक विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

उभरी समस्याएँ

- **‘निर्मला’ (1927):** प्रेमचंद का यह बहुचर्चित उपन्यास दहेज प्रथा, अनमेल विवाह और उसके दुष्परिणामों को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इसमें निर्मला का विवाह वकील तोताराम से होता है, जो उससे आयु में काफी बड़े हैं। तोताराम की पहली पत्नी से तीन बेटे होते हैं—मंसाराम, जियाराम और सियाराम। संदेह और पारिवारिक तनाव के कारण मंसाराम को घर से अलग कर दिया जाता है और वह बीमारी से मृत्यु को प्राप्त होता है। इसके बाद जियाराम आत्महत्या कर लेता है और सियाराम एक ढोंगी साधु के साथ चला जाता है। अंत में निर्मला भी अस्वस्थ होकर मृत्यु को प्राप्त होती है, और परिवार बिखर जाता है।
- **‘सेवासदन’ (1918):** यह उपन्यास नारी समस्या पर आधारित है। इसमें अनमेल विवाह, वैधव्य और वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं का चित्रण किया गया है। उपन्यास की मुख्य पात्र सुमन, ‘भोली’ नामक एक वेश्या से प्रभावित हो जाती है। सुमन एक बार कहती है, “वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं। उसकी दुकान खुली हुई है, मेरी बंद है। वह डालियों पर स्वतंत्रता से चहकती है और मैं पिंजरे में बंद तड़पती हूँ। उसने लज्जा त्याग दी है और मैं उसे पकड़े हुए हूँ।” अंततः सुमन ‘सेवासदन’ का प्रभार संभाल लेती है।
- **रंगभूमि (1925):** इस उपन्यास में प्रेमचंद पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उन्होंने औद्योगिकीकरण का विरोध किया है। जिस प्रकार एशिया के कई देशों में मशीनों का विरोध हुआ, उसी तरह इस उपन्यास में भी गांधीजी के स्वदेशी वस्त्रों और वस्तुओं के उपयोग की अवधारणा को प्रोत्साहित किया गया है।
- **‘कर्मभूमि’ (1933):** इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद ने समाज में सामूहिक चेतना लाने का प्रयास किया है। यह उपन्यास सामाजिक एकता और जागरूकता का संदेश देता है।

- **‘गोदान’ (1936):** प्रेमचंद का ‘गोदान’ किसानों की समस्याओं पर आधारित एक कालजयी रचना है। इसका मुख्य पात्र होरी एक किसान है, जो परिस्थितियों से जूझते हुए अंततः मजदूर बन जाता है। इस उपन्यास में किसान जीवन की वास्तविक कठिनाइयों को बेहद प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है।
- **देवस्थान रहस्य (1905):** यह उपन्यास मंदिर व्यवस्था के भीतर छिपे भ्रष्टाचार को उजागर करता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि धर्म के नाम पर जनता की आस्था का शोषण होता है। पुजारी और प्रबंधक दान और चढ़ावे को निजी लाभ के लिए प्रयोग करते हैं। गरीब भक्त न्याय और सहारा खोजते हैं, पर उन्हें केवल ढोंग मिलता है। मंदिर, जो नैतिकता का प्रतीक होना चाहिए, लालच और सत्ता का केंद्र बन जाता है। लेखक स्पष्ट करते हैं कि सच्चा धर्म सेवा और सत्य में है, न कि बाहरी आडंबर में। यह कृति धार्मिक संस्थाओं में सुधार की मांग करती है।
- **प्रेमा (1907) :** यह प्रेमचंद का प्रारंभिक सामाजिक उपन्यास है। इसमें विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा का प्रश्न उठाया गया है। नायिका सामाजिक बंधनों के बीच अपने सम्मान की रक्षा करती है। लेखक दिखाते हैं कि रूढ़ियाँ मानव जीवन को दुखी बनाती हैं। समाज सुधार की भावना पूरे कथानक में स्पष्ट है। प्रेमचंद ने सरल भाषा में नारी स्वतंत्रता का पक्ष रखा। यह कृति उस समय की कुरीतियों पर प्रहार करती है और नए सामाजिक विचारों को आगे बढ़ाती है।
- **वरदान (1921):** यह उपन्यास प्रेम, त्याग और नैतिक आदर्शों पर आधारित है। पात्र अपने कर्तव्य को व्यक्तिगत सुख से ऊपर रखते हैं। कथा में विश्वास और मानवीय संबंधों की पवित्रता दिखाई देती है। प्रेमचंद ने समाज में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर बल दिया है। संघर्ष के बीच भी पात्र सत्य का साथ नहीं छोड़ते। भाषा सहज और भावपूर्ण है। यह कृति बताती है कि सच्चा वरदान धन नहीं, बल्कि चरित्र की मजबूती है।
- **‘प्रेमाश्रम (1922):** यह उपन्यास देशभक्ति और सामाजिक चेतना से जुड़ा है। इसमें राष्ट्र प्रेम को व्यक्तिगत जीवन से जोड़ा गया है। पात्र अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर देश सेवा का मार्ग चुनते हैं। सामाजिक अन्याय और गुलामी की भावना को उजागर किया गया है। प्रेमचंद ने युवा पीढ़ी को जागरूक करने का प्रयास किया। कथा में त्याग, साहस और समर्पण प्रमुख हैं। यह कृति राष्ट्र प्रेम और नैतिक जिम्मेदारी का संदेश देती है।
- **कायाकल्प (1926):** यह उपन्यास सामाजिक परिवर्तन की कल्पना प्रस्तुत करता है। इसमें आदर्श और यथार्थ के बीच संघर्ष दिखाया गया है। युवा पात्र समाज

सुधार का सपना देखते हैं। धर्म और अंधविश्वास की आलोचना की गई है। प्रेमचंद ने नैतिक जागृति की आवश्यकता पर बल दिया। कथा में शिक्षा और जागरूकता को महत्व दिया गया है। यह कृति बताती है कि समाज की सच्ची कायाकल्प भीतर से शुरू होती है।

- **गबन (1931):** यह मध्यम वर्ग के जीवन और लालसा की कथा है। रमानाथ दिखावे और धन के मोह में फँस जाता है। सामाजिक प्रतिष्ठा की चाह उसे अपराध की ओर ले जाती है। पत्नी जालपा के माध्यम से नैतिक शक्ति दिखाई गई है। प्रेमचंद ने लोभ और आडंबर की आलोचना की है। कथा मनुष्य की कमजोरियों को उजागर करती है। यह उपन्यास बताता है कि सच्चा सम्मान चरित्र से मिलता है, धन से नहीं।
- **मंगलसूत्र (1948) (अपूर्ण) :** यह उपन्यास दांपत्य जीवन और सामाजिक संबंधों पर आधारित है। विवाह को केवल परंपरा नहीं, बल्कि जिम्मेदारी के रूप में दिखाया गया है। स्त्री और पुरुष दोनों के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। कथा में नैतिक संघर्ष और सामाजिक दबाव स्पष्ट हैं। प्रेमचंद ने पारिवारिक जीवन की जटिलताओं को सरल भाषा में रखा। यह कृति बताती है कि वैवाहिक बंधन विश्वास और सम्मान पर टिके रहते हैं।

प्रेमचंद जी संयुक्त परिवार की अवधारणा में गहरा विश्वास रखते थे। 'गोदान' में भी संयुक्त परिवार टूटने की व्यथा दिखाई देती है। उनका मानना था कि जो कार्य संगठन के बल पर हो सकता है, वह अकेले रहकर संभव नहीं है। अपनी एक कहानी में उन्होंने लिखा है, "जब दोनों भाई साथ थे, वे किसान थे, लेकिन जब अलग हो गए, तो मजदूर बन गए।" यह कथन उनके इस विश्वास को स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि एकता में ही बल है और पारिवारिक संगठन से ही समाज में मजबूती आती है।

1.5.4. प्रेमचंद कहानीकार

साहित्य में प्रेमचंद का आगमन एक ऐतिहासिक परिवर्तन के समान था। यद्यपि प्रसाद प्रेमचंद से पहले ही हिंदी कहानी के क्षेत्र में पदार्पण कर चुके थे, लेकिन प्रेमचंद का व्यक्तित्व भारतीय कहानी के लिए अत्यंत सामर्थ्यशाली सिद्ध हुआ। "वे कहानी को स्वप्नलोक से निकालकर यथार्थ की धरती पर लाते हैं और उसके विषय को सामाजिक तथा कथावस्तु को विश्वसनीय बना देते हैं।" (प्रेमचंद एक विवेचन: इंद्रनाथ मदान)। प्रेमचंद यथार्थवादी साहित्यकार थे, जिनकी रचना दृष्टि समकालीन जीवन के यथार्थ से निर्मित हुई थी। उनके कथा साहित्य में समाज की अच्छाइयों और बुराइयों का इतना सजीव चित्रण मिलता है कि यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें अपने युग और समाज की

हर धड़कन का गहरा ज्ञान था। ऐसी संवेदनशीलता और सामाजिक चेतना बहुत कम लेखकों में दिखाई देती है। प्रेमचंद के भीतर अपने देश के गरीब, शोषित और पीड़ित वर्ग के प्रति गहरी करुणा और सहानुभूति थी। इसी कारण उन्होंने अपने कथा-साहित्य में विभिन्न वर्गों के पात्रों को उनकी आर्थिक परिस्थितियों, सामाजिक समस्याओं, अंतर्विरोधों, मनोभावनाओं एवं गतिविधियों के साथ अत्यंत आत्मीयता से चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ संघर्ष, बेचैनी और विरोधाभासी परिस्थितियों से उत्पन्न द्वंद्व से निर्मित हुई हैं। इन कहानियों में महानता की बजाय साधारण मनुष्य की जीवन-गाथा को विशेष महत्व दिया गया है, जो उन्हें यथार्थवादी कथा साहित्य का अप्रतिम उदाहरण बनाती हैं।

1.5.5. प्रेमचंद की कथा-यात्रा के तीन पड़ाव

प्रेमचंद के साहित्य में तीन महत्वपूर्ण चरण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। पहला चरण आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का है, जहाँ उनकी रचनाओं में किसी न किसी आदर्श की स्थापना यथार्थ की यात्रा के माध्यम से होती है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में यह आदर्शात्मक दृष्टिकोण प्रमुखता से देखने को मिलता है। दूसरा चरण वह है, जहाँ प्रेमचंद जीवन के यथार्थ को गहरे विचार स्तर पर अनुभव करते हैं और उसे अपनी रचनाओं में सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस पड़ाव पर उनकी रचनाओं में यथार्थ का विश्लेषण अधिक विचारपूर्ण ढंग से व्यक्त होता है। तीसरा और अंतिम चरण वह है, जहाँ प्रेमचंद आदर्शों के आग्रह से मुक्त होकर समाज के संलित यथार्थ का एक प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस चरण में उनकी रचनाएँ पूर्णतः यथार्थवादी हो जाती हैं, जिनमें समाज की वास्तविक स्थिति को बिना किसी आदर्शवादी दृष्टिकोण के दर्शाया गया है।

प्रेमचंद की कला का स्रोत भारतीय जनता थी

प्रेमचंद ऐसी कहानियाँ लिखने में सफल रहे, जिनमें समाज के हर वर्ग ने अपने जीवन की झलक देखी। उनके साहित्य में पीड़ित विधवाओं की करुणा, सौतेली माताओं से त्रस्त बच्चों की व्यथा, महंतों और पुरोहितों द्वारा ठगे जाने वाले किसानों की पीड़ा, दूसरों की गुलामी करने के बावजूद भूख से त्रस्त अछूतों की दुर्दशा, महाजनों का सूद चुकाते-चुकाते बर्बाद हो चुके किसानों की मर्मांतक स्थिति को बखूबी अभिव्यक्ति मिली है। प्रेमचंद की कहानियाँ इन वंचितों के लिए एक सच्चे दोस्त की तरह थीं। इसके विपरीत, समाज के शोषक, अत्याचारी, निठल्ले, मुफ्तखोर और अंग्रेजी राज के वफादार सहयोगी प्रेमचंद के साहित्य में अपनी असली सूरत देख सकते थे, जो एक जागरूक और जनहितैषी साहित्यकार के रूप में प्रकट होती है। प्रेमचंद सही मायनों में जनता के साहित्यकार थे। उन्होंने मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में देखा, न कि देवता या

ईश्वर के रूप में। उनका विश्वास था कि मनुष्य जब देवता बनने की लालसा में पड़ता है, तो अपनी मानवता को खो बैठता है। वे मानते थे कि मानव बुरा नहीं होता, बल्कि परिस्थितियाँ ही उसे बुराई की ओर धकेलती हैं। प्रेमचंद का यह मानवीय दृष्टिकोण ही उन्हें जनता के प्रिय साहित्यकार के रूप में स्थापित करता है।

1.5.6. प्रेमचंद और भारतीयता

प्रेमचंद की आत्मा में ग्राम्य संस्कृति गहराई से रची-बसी हुई थी। उनका साहित्य गाँव, किसान और साधारण जन-जीवन की अनुभूतियों से उपजा हुआ था। उनकी जीवन-शैली भी भारतीय परंपरा के अनुरूप सादगी, संयम और आत्मानुशासन से युक्त थी। वे दिखावे और आडंबर से दूर रहकर सामान्य जीवन जीने में विश्वास रखते थे। उनकी विचारधारा पर आर्य समाज और महात्मा गांधी दोनों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसी प्रभाव के कारण उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया और विधवा-विवाह जैसे साहसिक निर्णय लिए। साथ ही, राष्ट्रीय चेतना और नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता के चलते उन्होंने सरकारी नौकरी तक छोड़ दी। प्रेमचंद का जीवन स्वयं उनके विचारों का प्रत्यक्ष उदाहरण था, जिसमें कर्म, त्याग और सामाजिक उत्तरदायित्व को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। वे साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं मानते थे, बल्कि समाज-सुधार का प्रभावी माध्यम समझते थे।

साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद का योगदान अत्यंत व्यापक और दूरगामी रहा। उन्होंने हिंदी साहित्य को जासूसी, तिलस्मी और ऐय्यारी कथानकों की सीमित दुनिया से बाहर निकालकर यथार्थ की ठोस भूमि पर स्थापित किया। उनके साहित्य में माँ, मातृभूमि और मातृभाषा जैसे विषयों को केंद्रीय स्थान मिला, जिससे राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक आत्मबोध को बल मिला। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में किसान, मजदूर, दलित और नारी जैसे उपेक्षित वर्गों के जीवन-संघर्ष को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया। दहेज, छुआछूत, नैतिकता, कर्म और सामाजिक अन्याय जैसे विषयों को उठाकर उन्होंने भारतीय समाज की रूढ़ियों पर प्रहार किया और जनमानस में जागरूकता फैलाने का कार्य किया। गुलाम भारत के लोगों के सामने उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से यथार्थ और आदर्श दोनों को संतुलित रूप में रखा, जिससे पाठक केवल परिस्थितियों को समझे ही नहीं, बल्कि उन्हें बदलने की प्रेरणा भी प्राप्त करे। इस प्रकार प्रेमचंद ने साहित्य के माध्यम से भारतीय विचारों, मूल्यों और सामाजिक चेतना को प्रोत्साहित किया और हिंदी साहित्य को एक सशक्त सामाजिक भूमिका प्रदान की।

1.5.7. प्रेमचंद और मीडिया

नवाबराय का सफर उर्दू से हिंदी भाषा की ओर मुड़ने का समय कठिन रहा। अब वे प्रेमचंद नाम से हिंदी में लिखने लगे। उनकी कलम का जादू असर करने लगा था। उनकी प्रतिष्ठित साहित्यकारों में गणना होने लगी थी। प्रेमचंद को जागरण और हंस पत्रिका से घाटा हो रहा था। इसी कारण उनकी आर्थिक दशा तंग हो गई थी। दूसरी ओर, फिल्मों का मूक सफर बोलने लगा था, जिसके कारण फिल्म उद्योग का बड़ा आकर्षण जनमानस में था। ऐसे समय 'सेवासदन' उपन्यास आधारित पटकथा के फिल्मांकन हेतु उन्हें सात सौ रुपये मिले थे। इसके अलावा फिल्मों की पटकथा लिखने के लिए बंबई से अजन्ता सिनेटोन ने उनको बुलावा भेजा। इस विषय में जैनेन्द्र को लिखे गए पत्र में जिक्र मिलता है कि बंबई की एक फिल्म कंपनी मुझे बुला रही है। वेतन की बात नहीं, कॉन्ट्रैक्ट की बात है, आठ हजार रुपये साल। (कमल किशोर गोयनका, 1981, पृ. 241) मैं उस अवस्था को पहुंच गया हूँ जब मेरे लिए हां के सिवाय और कोई उपाय नहीं रह गया। या तो वहां चला जाऊंगा या अपने उपन्यास बाजार में बेचूंगा। मैं इस विषय में तुम्हारी राय जरूरी समझता हूँ। कंपनी वाले हाजिरी की कोई कैद नहीं रखते। मैं जो चाहे लिखूँ, जहां चाहे लिखूँ, इनके लिए चार-पांच सिनेरियो तैयार कर दूँ। मैं सोचता हूँ, क्यों न एक साल के लिए चला जाऊँ। वहां साल भर रहने के बाद कुछ ऐसा कॉन्ट्रैक्ट कर लूंगा कि मैं यही बैठे-बैठे तीन-चार कहानियां लिख दिया करूँ और चार-पांच हजार रुपये मिल जाया करें।

उससे जागरण और हंस दोनों मजे से चलेंगे और पैसे का संकट कट जाएगा। इसी प्रकार आखिर वे बंबई चले गए। फिल्मी दुनिया में प्रेमचंद ने अब मजदूर नामक फिल्म के लिए संवाद लिखना प्रारंभ किया, जिसमें अपने अनुभवी ज्ञान को काम में भी लिया। स्वयं ने फिल्मी पटकथा के दृश्य में पंच की भूमिका वाले किस्से में मुखिया का अभिनय भी अदा किया। किन्तु जब यह फिल्म प्रदर्शित हुई तो मजदूरों पर इसका प्रभाव पड़ा। पुलिस प्रशासन को भी बुलाना पड़ा। इसके कारण दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब में बड़े अवरोधों के बाद भी फिल्म प्रदर्शित हुई। (हंसराज 'रहबर', 1962, पृ. 129) मिल-मालिक की संघर्षमय कथा फिल्म सेंसर बोर्ड को भी नापसंद पड़ी और उत्तेजना भरे माहौल के चलते भारत सरकार ने फिल्म प्रदर्शन पर रोक लगा दी। प्रेमचंद निराश हो गए। बाद में नवजीवन या शेरदिल औरत की कहानी लिखी, परन्तु उनकी इच्छानुसार फिल्म नहीं बनी। इस विषय में शिवरानी देवी से कहा, "यहां जो कुछ है, सिनेमा के मालिक लोगों के हाथ में है। लेखक को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता, वे तो हमेशा कमाना जानते हैं।" इस बात से उनकी नाराजगी सिनेमा जगत के प्रति व्यक्त होती है।

इसके अलावा 'सेवासदन' पर बनी फिल्म पर भी वे नाखुश थे। धीरे-धीरे अजन्ता सिनेटोन की आर्थिक स्थिति कमजोर हो रही थी। दूसरी ओर बंबई टॉकीज के डायरेक्टर दिनेश राय ने अपनी कंपनी के लिए कहानियां लिखने को कहा, परन्तु बंबई की जलवायु स्वास्थ्य अनुकूल न बताकर जगह छोड़ने का निर्णय सुनाया।

प्रेमचंद स्वयं फिल्म और साहित्य नामक लेख में लिखते हैं, "सिनेमा हमारी कुत्सित भावनाओं को स्पर्श करके हमें मतवाला बनाता है और इसकी दवा प्रोड्यूसर के पास नहीं। जब तक एक चीज की माँग है, वह बाजार में आएगी और कोई उसे रोक नहीं सकता। अभी वह जमाना बहुत दूर है, जब सिनेमा और साहित्य का एक रूप होगा। लोक-रुचि जब इतनी परिष्कृत हो जाएगी कि वह नीचे ले जाने वाली चीजों से घृणा करेगी, तभी सिनेमा में साहित्य की सुरुचि दिखाई पड़ सकती है।" इस प्रकार के विचारों से स्पष्ट था कि तत्कालीन फिल्मी जगत से प्रेमचंद निराश थे। (हंसराज 'रहबर', 1962, पृ. 130)

1.5.8. सरस्वती प्रेस, हंस तथा जागरण

बनारस में 'सरस्वती प्रेस' की स्थापना के साथ ही प्रेमचंद का वर्षों पुराना सपना साकार हुआ। 20 जुलाई, 1923 को 'सरस्वती प्रेस' में काम आरंभ हो गया। प्रेमचंद ने इस प्रेस से 'हंस' नामक पत्रिका का प्रकाशन और 'जागरण' नामक साप्ताहिक पत्र शुरू करने का निर्णय लिया। इन पत्रिकाओं के प्रकाशन से पहले, 15 अगस्त 1932 को प्रेमचंद ने जैनेन्द्र को लिखे एक पत्र में कहा, "इसमें कई हजार का घाटा उठा चुका हूँ, लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। कोशिश कर रहा हूँ कि यह पत्र सर्वसाधारण के अनुकूल हो। इसमें भी हजारों का घाटा होगा, पर क्या करूँ, यहाँ तो जीवन ही एक लंबा घाटा है।" यह कथन प्रेमचंद की निष्ठा और उनके संघर्षमय जीवन का सजीव प्रमाण है। उनकी लेखनी का उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ नहीं था, बल्कि जनसाधारण तक अपनी बात पहुँचाना और समाज को जागरूक बनाना था।

1.5.9. प्रेमचंद जी महात्मा गांधी के अनुयायी तथा गांधीवादी मार्ग के पथिक थे।

प्रेमचंद केवल आदर्शवादी नहीं, बल्कि कर्मवादी भी थे। उनका मानना था कि वास्तविक भारतीय जीवन ग्रामीण जीवन में निहित है। उन्होंने गाँव के हर रास्ते की खाक छानी, मंदिरों और मस्जिदों में जाकर अंधविश्वास और पाखंड को नजदीक से देखा और अपने साहित्य में उन छोटे-बड़े, धनी-निर्धन सभी पात्रों को स्थान देकर उनकी वास्तविकता को चित्रित किया। प्रेमचंद ने अपनी तूलिका से इन सभी को सजीव रूप प्रदान किया। प्रेमचंद की रचनाओं की व्यापकता का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है, "तुलसीदास के बाद हिंदी में यह पहला बड़ा कलाकार था, जिसकी रचनाएँ

केवल अपनी भाषा के क्षेत्र में ही सीमित नहीं रहीं, बल्कि सुदूर दक्षिण के गाँवों तक भी पहुँच गई थीं।" उनकी यह उपलब्धि प्रेमचंद को हिंदी साहित्य का जनप्रिय साहित्यकार सिद्ध करती है।

1.6. प्रेमचंद युगीन राजनीतिक परिदृश्य

प्रेमचंद का कार्यकाल 1905 से 1936 ई. के बीच का है। इस अवधि में देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति अत्यंत विकट थी। यह समय भारतीय समाज के राष्ट्रीय संघर्ष का युग था। गुलामी की जकड़न ने भारत के विकास को ठहरा दिया था, और चारों ओर अराजकता और अस्थिरता का वातावरण छाया हुआ था। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद युगीन परिस्थितियों पर चर्चा करते हुए लिखा है, "प्रेमचंद भारत की नई राष्ट्रीय चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। उन्होंने उस समय लिखना आरंभ किया जब प्रथम विश्व युद्ध के बादल मंडरा रहे थे। जब उनकी मृत्यु हुई, तब द्वितीय विश्व युद्ध की तैयारियाँ चल रही थीं। इस दौरान विश्व मानव संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का प्रभाव हिंदुस्तान पर भी पड़ा, और उसने इन परिवर्तनों में अपना योगदान दिया।" (शर्मा, रामविलास, 1967, पृ. 7) इस प्रकार, प्रेमचंद के लेखन के प्रारंभिक समय से लेकर उनके अंतिम दिनों तक, देश में अनेक राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक बदलाव हुए, जिनका गहरा प्रभाव मानव संस्कृति पर पड़ा। इन परिवर्तनों का भारतीय समाज पर भी गंभीर असर हुआ।

प्रेमचंद का युग मुख्य रूप से राजनीतिक संघर्ष का युग था। इस समय ब्रिटिश शासन पूरी तरह स्थापित हो चुका था। हालांकि, भारत में राष्ट्रीय चेतना और राजनीतिक संघर्ष की शुरुआत 1857 के व्यापक आंदोलन से ही हो चुकी थी, जिसे अंग्रेजों ने केवल सैनिक विद्रोह करार दिया था। इस आंदोलन ने भारतीयों के भीतर स्वतंत्रता की भावना को जागृत किया, जो आगे चलकर प्रेमचंद के साहित्य में भी अभिव्यक्त हुई। यह आंदोलन अंग्रेजों के खिलाफ भारतीय एकता का पहला बड़ा प्रयास था। 1858 ई. में महारानी विक्टोरिया की घोषणा के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त कर भारतीय शासन ब्रिटिश मंत्रीमंडल के अधीन कर दिया गया। लेकिन इस घोषणा को पूर्ण रूप से लागू नहीं किया गया, जिससे भारतीयों के भीतर असंतोष पुनः जागृत होने लगा। ब्रिटिश शासन की नीति कूटनीति और दमन पर आधारित थी। जवाहरलाल नेहरू ने 'हिंदुस्तान की कहानी' में लिखा है कि 'ब्रिटिश शासनकाल में हिंदुस्तानियों के बीच फूट डालने और उन्हें एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा करने की नीति अपनाई गई। 'राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के साथ यह नीति और अधिक चालाक और खतरनाक रूप में सामने आई। इसे खुले तौर पर स्वीकार न करते हुए भी अधिक प्रभावी ढंग से लागू किया गया।' (रामचंद्र टंडन, 1947, पृ. 357)

इन परिस्थितियों में ए.ओ. ह्यूम जैसे कुछ लोगों ने जनता के असंतोष को कम करने की बात कही। उन्होंने ऐसी संस्था की कल्पना की जो जनता और शासन के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके और जनता की समस्याओं को शासन तक पहुँचा सके। इसी उद्देश्य से 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। (गुप्त, रामदीन, 1988, पृ. 105) प्रारंभ में कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य शासन की गतिविधियों की आलोचना मात्र करना था, और इसमें मुख्यतः उच्चवर्गीय लोग ही शामिल थे। इसका लाभ भी उन्हीं को हुआ। सरकार भी यही चाहती थी क्योंकि वह भारतीय समाज को वर्ग, धर्म और जाति के आधार पर विभाजित करना चाहती थी। उच्च शिक्षित वर्ग को सम्मान और सुविधाएँ देकर ब्रिटिश शासन उन्हें अपने पक्ष में बनाए रखना चाहता था ताकि जनता को आसानी से नियंत्रित किया जा सके। आज हमारे समाज में मौजूद वैमनस्य और भेदभाव की भावनाएँ उसी दौर की देन हैं। 'हमारी अधिकांश बड़ी समस्याएँ, जैसे राजा और नवाब, अल्पसंख्यक समस्या, उद्योगों की कमी, खेती की अनदेखी, सामाजिक क्षेत्रों में पिछड़ापन और जनता की गहरी गरीबी, ब्रिटिश नीति के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुई हैं।' (रामचंद्र टंडन, 1947, पृ. 377) यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अंग्रेजों ने भेदनीति, साम्प्रदायिकता और सामंतवाद के सहारे भारतीय जनता को नियंत्रित करने और देश के विकास को रोकने का प्रयास किया। हालांकि, उनकी दमनकारी नीतियाँ राष्ट्र को पूरी तरह तोड़ने में असफल रहीं।

अंग्रेजों द्वारा हिंदू-मुस्लिम दंगे भड़काने के प्रयासों के बावजूद, दोनों समुदायों के बीच एकता बनी रही। किसान और मजदूर अपनी दयनीय स्थिति के खिलाफ संघर्ष के लिए तैयार हो रहे थे, और युवा शिक्षित वर्ग पूरी तरह से देश को स्वतंत्र कराने के लिए संकल्पित था। देशभर में आंदोलनों की लहर उठ रही थी, और ब्रिटिश नीतियों ने इस संघर्ष को और उग्र बनाने में भूमिका निभाई। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास कायाकल्प में इस स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। उस समय समाज के कुछ लोग ऐसा मानते थे कि अंग्रेजों के बिना भारत अनाथ हो जाएगा और विकास संभव नहीं होगा। इस संदर्भ में राजेन्द्र मोहन भटनागर लिखते हैं, 'कांग्रेस का नरम दल, जिसकी पकड़ में कांग्रेस की सम्पूर्ण व्यवस्था थी, उस समय यह मानता था कि परमात्मा की कृपा से भारत को ब्रिटिश सरकार की छत्रछाया मिली है। वास्तव में अंग्रेजों का हृदय अंदर से अत्यंत कोमल और दयालु है। उनके इस देश से चले जाने पर भारत का सर्वनाश हो जाएगा। यह विचार उस समय समाज के एक विशेष वर्ग की मानसिकता को दर्शाता है।' (राजकुमार, 1962, पृ. 214) इससे यह स्पष्ट होता है कि कांग्रेस का नरम दल भी आरंभ में अंग्रेजों का समर्थक था और उन्हें भारतीयों के लिए दयालु मानता था। उनका विश्वास था कि यदि अंग्रेज देश छोड़कर चले गए, तो भारत का पतन हो जाएगा।

1.6.1. बंग-भंग आंदोलन का देश पर प्रभाव तथा सरकार की रणनीति

उस समय भारत में विभिन्न परिस्थितियों के चलते दो प्रकार की मानसिकताएँ सक्रिय थीं। एक तरफ, कुछ लोग अंग्रेजों का समर्थन कर रहे थे, जबकि दूसरी तरफ, अंग्रेजी नीतियों ने देश में आंदोलन की लहर को भड़काने का काम किया। लॉर्ड कर्जन द्वारा बनाई गई योजनाएँ, जिनमें बंगाल का विभाजन भी शामिल था, विदेशी शासन के खिलाफ वैधानिक आंदोलनों को राजनीतिक आंदोलनों का स्वरूप देने में अहम साबित हुई। डॉ. राजकुमार ने उल्लेख किया है कि लॉर्ड कर्जन ने 1905 में बंगाल को दो हिस्सों में विभाजित किया। इसमें एक हिस्सा 'पश्चिमी बंगाल और बिहार' तथा दूसरा 'पूर्वी बंगाल और असम' था। यह विभाजन अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का स्पष्ट उदाहरण था। (अमृतराय, 1962, पृ. 256-257) पश्चिमी बंगाल राजनीतिक क्रियाकलापों का केंद्र था, जबकि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की अधिकता थी। कर्जन ने मुसलमानों को अधिक सुविधाएँ देकर उन्हें राजनीतिक आंदोलनों से दूर रखने की मंशा से बंगाल का विभाजन किया, लेकिन उनकी यह योजना विफल रही। 20 जुलाई 1905 को बंग-भंग की घोषणा हुई और 7 अगस्त 1905 से इसका विरोध शुरू हो गया।

बंग-भंग के विरोध में छिड़े आंदोलन ने न केवल बंगाल की जनता को एकजुट किया बल्कि पूरे देश में क्रांति की एक नई लहर पैदा कर दी। इस आंदोलन में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार पर विशेष ध्यान दिया गया। हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं, "उस समय राजनीति केवल उच्च वर्ग तक सीमित थी, लेकिन बंगाल के आंदोलन ने मध्यम वर्ग और आम जनता को भी सक्रिय कर दिया।' (भटनागर, 1989, पृ. 141) इस आंदोलन के चलते देश में राजनीति का दायरा व्यापक हुआ। मजदूर, किसान, युवा और छात्र क्रांति का मुख्य हिस्सा बनने लगे। इसके समानांतर, कांग्रेस की नीति सरकार से सुधार की प्रार्थना करने तक सीमित थी। लेकिन सरकार उनकी माँगों को कभी नजरअंदाज करती तो कभी मामूली रियायतें देकर टाल देती। सत्यकाम लिखते हैं, "अंग्रेजी सरकार का मुख्य उद्देश्य अपने शासन को बनाए रखना था। जनता के कल्याण में उनकी कोई रुचि नहीं थी।' (सत्यकाम, 1994, पृ. 120) इन परिस्थितियों ने देश में उग्र विचारधारा को जन्म दिया।

उग्र विचारधारा के नेताओं जैसे विपिन चंद्र पाल, बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय ने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर जोर दिया। इसके विपरीत, कांग्रेस का नरम दल अपनी पुरानी नीतियों पर कायम था। इन मतभेदों के कारण कांग्रेस दो भागों में बँट गई—गरम दल और नरम दल।

गरम दल ने प्रभावी आंदोलन की आवश्यकता महसूस की और अलग रास्ता चुना। इस दौरान देश में एक नई जागरूकता का उदय हुआ।

प्रेमचंद भी इस जागृति से अछूते नहीं रहे। उनके भीतर राष्ट्रीयता की भावना गहराई तक समाई हुई थी। अमृतराय लिखते हैं, "यह समय देश के तेजी से बदलने का था, और प्रेमचंद का जीवन व उनकी सोच भी इस नई दिशा में बढ़ रही थी।" (हरिभाऊ उपाध्याय, 1965, पृ. 55-56) उस समय प्रेमचंद के देशभक्ति से प्रेरित उपन्यासों में राष्ट्रीयता का गहरा प्रभाव दिखता है। उनकी यह देशभक्ति और स्वतंत्रता की चाहत समय के साथ बढ़ती गई।

ब्रिटिश सरकार हिंदू-मुसलमानों के मिलकर एकजुट होने से सबसे अधिक भयभीत थी। इसलिए, उन्होंने दोनों समुदायों के बीच वैमनस्य फैलाने की साजिश रची। 1906 में अंग्रेजों के सहयोगी आगा ख़ाँ के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का गठन हुआ, लेकिन यह योजना भी कारगर साबित नहीं हो सकी।

1.6.2. प्रथम विश्व युद्ध, रूसी क्रांति तथा भारत पर इसका प्रभाव

सन् 1914 से 1918 के बीच का समय न केवल भारत में, बल्कि अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में भी बड़े राजनीतिक परिवर्तनों का गवाह बना। इस दौर में पूरे विश्व में प्रथम विश्व युद्ध की आहट महसूस की जा रही थी, और आखिरकार 1914 में यह युद्ध शुरू हो गया। इसी समय, 1917 में रूस में ज़ारशाही को समाप्त करने के लिए हुई रूसी क्रांति ने वैश्विक राजनीति पर गहरा प्रभाव छोड़ा। इस क्रांति ने न केवल दुनिया के समाजवादी आंदोलन को नई दिशा दी, बल्कि भारत के नेताओं और आम जनता को भी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया।

इसी दौरान, दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह का सफल प्रयोग किया, जिसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक नई प्रेरणा दी। ब्रिटिश शासकों ने हिंदू-मुसलमानों के बीच वैमनस्य पैदा करने के हरसंभव प्रयास किए, लेकिन इसके बावजूद आम जनता में आपसी एकता और सहयोग की भावना बढ़ी। इस एकजुटता का परिणाम 1916 के कांग्रेस अधिवेशन में देखने को मिला, जब मुस्लिम लीग ने इसमें भाग लिया, जो भारतीय राजनीति में एक ऐतिहासिक घटना थी।

इस दौरान विश्व स्तर पर एक और महत्वपूर्ण घटना घटी—रूस की क्रांति। इस क्रांति ने दुनिया को झकझोर दिया और समाजवाद के युग का आरंभ किया। यह प्रभाव इतना व्यापक था कि दुनिया के हर छोटे-बड़े व्यक्ति पर इसका असर पड़ा। प्रेमचंद भी इससे अछूते नहीं रहे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, "मैं खुद सोशलिस्ट विचारों का

आदमी हूँ। मेरी सारी ज़िंदगी गरीबों और दलितों की वकालत करते गुजरी है।" (अमृतराय, 1962, पृ. 80)

प्रेमचंद, जो एक गहरे सामाजिक व्यक्तित्व के धनी थे, समाजवादी विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। प्रथम विश्व युद्ध के कारण भारत में भुखमरी और महामारी जैसी स्थितियाँ बनी हुई थीं, लेकिन ब्रिटिश सरकार को इसकी कोई चिंता नहीं थी। भारतीय समाज की इस दयनीय स्थिति का मुख्य कारण साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, सामंती व्यवस्था और ज़मींदारी प्रथा का वर्चस्व था, जिसने जनता को शोषित और वंचित बनाए रखा।

1.6.3. गांधी जी का आगमन

उस समय भारतीय राजनीतिक मंच पर महात्मा गांधी का उदय हो चुका था, जिन्होंने भारतीय राजनीति में एक नई ऊर्जा और हलचल पैदा कर दी थी। उनका प्रभाव समाज के हर वर्ग पर गहराई से दिखाई दिया। जवाहरलाल नेहरू अपनी पुस्तक हिंदुस्तान की कहानी में गांधी जी के बारे में लिखते हैं, "गांधी जी ताजी हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे, जिसने हमें पूरी तरह फैलना और गहरी साँस लेना सिखाया। वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जिसने अंधकार को चीरते हुए हमारी आँखों के सामने से पर्दा हटा दिया। वह बवंडर की तरह थे, जिसने मजदूरों के दिमाग को झकझोर कर रख दिया।" (रामचन्द्र टंडन, 1947, पृ. 444) गांधी जी, जो कुछ ही समय पहले विदेश से लौटे थे, भारतीय राजनीति का बारीकी से अध्ययन कर रहे थे। उनके आगमन से राजनीति में एक नई रोशनी और जागरूकता आई, जिसने भारतीय जनता के दृष्टिकोण को पूरी तरह बदल दिया। प्रेमचंद जैसे विचारशील व्यक्ति भी गांधी जी से अछूते नहीं रहे और उन्होंने तुरंत यह महसूस किया कि गांधी जी एक अलग व्यक्तित्व हैं।

प्रेमचंद गांधी जी से अत्यधिक प्रभावित थे, और यह प्रभाव उनके साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। उनके उपन्यास रंगभूमि के पात्र 'सूरदास' और 'कर्मभूमि' के 'शांतिकुमार' में गांधीवादी विचारधारा की झलक देखी जा सकती है। इस बीच, प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था, लेकिन भारत को इससे कोई लाभ नहीं हुआ। इसके विपरीत, भारतीय जनता पर अत्याचार बढ़ गए। 1919 में 'रौलट एक्ट' लाया गया, जिसने ब्रिटिश सरकार को राजनीतिक आंदोलनकारियों पर कठोर दमन का अधिकार दिया। इसके तहत फाँसी और काले पानी की सजा जैसी सख्त सजाएँ दी जा सकती थीं। इस कानून का पूरे देश में व्यापक विरोध हुआ। गांधी जी ने पहले ही चेतावनी दी थी कि यदि यह बिल पारित हुआ, तो वह सत्याग्रह छेड़ देंगे।

विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद भारत की बदतर स्थिति पर टिप्पणी करते हुए नेहरू लिखते हैं, "पहला महायुद्ध समाप्त हुआ, लेकिन शांति और प्रगति के बजाय दमनकारी कानून और पंजाब में फौजी शासन लागू किया गया। जनता में अपमान और नाराजगी की भावना गहराई तक भर चुकी थी। लगातार शोषण ने हमें गरीबी और असहाय के गर्त में धकेल दिया था। सुधारों और नौकरियों के भारतीयकरण की बातें करना केवल हमारा अपमान था।" (रामचन्द्र टंडन, 1947, पृ. 443)

इस समय भारतीय जनता हर प्रकार से शोषण का सामना कर रही थी, और हर ओर असहाय का वातावरण व्याप्त था। गांधी जी ने सत्याग्रह का आह्वान किया, और पूरे देश में उपवास, प्रार्थना, और हड़तालों का आयोजन हुआ। हड़तालें इतनी शक्तिशाली थीं कि हिंदू और मुसलमान एकजुट होकर इसमें भाग ले रहे थे। सत्याग्रह धीरे-धीरे व्यापक और अधिक प्रभावशाली होता जा रहा था। यह आंदोलन पूरी तरह से अहिंसक था, लेकिन अंग्रेजी सरकार इसे कुचलने के लिए हर संभव प्रयास कर रही थी। इसी का नतीजा था 13 अप्रैल 1919 को जलियाँवाला बाग हत्याकांड, जिसमें निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चलाकर सरकार ने निर्दयता की हदें पार कर दीं।

इस समय मुसलमानों के बीच भी अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की भावना तेजी से बढ़ रही थी। डॉ. शीला गुप्ता लिखती हैं, "अंग्रेजों ने तुर्की के खलीफा के खिलाफ जो कदम उठाए थे, उनसे मुसलमानों में गहरा असंतोष और विद्वेष उत्पन्न हुआ। वे भी अंग्रेजी शासन के विरोध में शामिल होने को तैयार हो गए।" (गुप्ता, 1972, पृ. 34) तुर्की खलीफा के विरोध ने मुसलमानों को अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए और अधिक प्रेरित किया।

1.6.4. गांधी जी का कांग्रेस में प्रवेश और विभिन्न आंदोलनों की शुरुआत

गांधी जी के कांग्रेस में प्रवेश के साथ ही उनके व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव कांग्रेस के कार्यों और स्वरूप पर दिखाई देने लगा। उन्होंने कांग्रेस को एक स्पष्ट दिशा दी और इसमें नई ऊर्जा का संचार किया। रामचन्द्र टंडन लिखते हैं, "कांग्रेस संस्था में गांधी जी पहली बार दाखिल हुए और तुरंत ही उस संस्था के विधान में पूरी तरह तब्दीली आई। उन्होंने कांग्रेस को लोकतांत्रिक और सार्वजनिक संस्था बना दिया।" (टंडन, 1947, पृ. 447)

गांधी जी के आने से कांग्रेस एक मजबूत जनसंगठन के रूप में उभरी, जिसने वैधानिक बदलावों का मार्ग प्रशस्त किया। उस समय देश में अस्थिरता का माहौल था, लेकिन कांग्रेस अब एक प्रभावशाली जनआंदोलन का केंद्र बन रही थी। गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन ने व्यापक रूप ले लिया। 1920 में कलकत्ता कांग्रेस के

अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव पारित हुआ। इसके तहत विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई, सरकारी स्कूल और कॉलेज बंद कर दिए गए, अदालतों और काउंसिलों का बहिष्कार किया गया। इस आंदोलन में गांधी जी की अपार प्रेरणा शामिल थी। छात्र स्कूल छोड़ने लगे, काउंसिल के सदस्यों और वकीलों ने त्यागपत्र दिए, सरकारी नौकरियाँ छोड़ दी गईं। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार हुआ और खादी को राष्ट्रीयता का प्रतीक बनाया गया। प्रेमचंद भी गांधी जी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी बीस साल पुरानी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

हालाँकि, प्रेमचंद ने सक्रिय राजनीति में भाग नहीं लिया, लेकिन अपने लेखों और पत्रिकाओं के माध्यम से ब्रिटिश सरकार की तीखी आलोचना करते रहे। गांधी जी का आंदोलन वास्तव में लोक-जागरण का आंदोलन था, जिससे अंग्रेज सरकार भी भली-भाँति अवगत थी। जब गांधी जी को गिरफ्तार कर छह साल की सजा दी गई, तो देश में अराजकता का माहौल बन गया। क्रांतिकारी नवयुवक हिंसात्मक गतिविधियों में जुट गए, और हिंदू-मुस्लिम एकता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके बावजूद मजदूर-किसानों और शोषित वर्ग में एक नई जागरूकता उत्पन्न हुई, जिसका असर आगे देखने को मिला।

1927 में ब्रिटिश सरकार ने शासन व्यवस्था की जाँच के लिए साइमन कमीशन की नियुक्ति की, जिसका भारत में व्यापक विरोध हुआ। कांग्रेस ने भी इसका विरोध किया, और लाहौर में विरोध प्रदर्शन के दौरान लाला लाजपत राय को गंभीर चोटें आईं, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। इस घटना ने देश में क्रांति की आग को और भड़काया। गांधी जी और उनकी अहिंसावादी नीति जनता पर सबसे अधिक प्रभाव डाल रही थी। 1930 में अहमदाबाद में कांग्रेस की कार्यकारिणी ने सत्याग्रह आंदोलन शुरू करने का प्रस्ताव पारित किया।

1930 में गांधी जी ने दांडी यात्रा के माध्यम से नमक सत्याग्रह शुरू किया। उन्होंने जनता से नमक बनाने का आह्वान किया, जो वास्तव में अंग्रेजी शासन के खिलाफ एक बड़े जनआंदोलन का प्रतीक था। इस आंदोलन में लाखों लोग शामिल हुए, जिनमें महिलाओं की भागीदारी भी उल्लेखनीय थी। दूसरी ओर, क्रांतिकारियों पर दमनकारी नीतियाँ लागू की जा रही थीं। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दी गई, जिससे जनता में आक्रोश फैल गया।

गांधी जी के नेतृत्व में आंदोलन तेजी से आगे बढ़ रहा था। सरकार इस आंदोलन से भयभीत हो गई और अंततः 5 मार्च 1931 को गांधी-इरविन समझौता किया गया। इस समझौते का कुछ असर दिखाई दिया, लेकिन स्थिति में तनाव बना रहा। जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं, "हिंदुस्तान की परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही थीं।

तनाव जारीरहा, बल्कि और भी ज्यादा हो गया।" (हरिभाऊ उपाध्याय, 1965, पृ. 187-188)

1.7. प्रेमचंद युगीन आर्थिक परिदृश्य

प्रेमचंद के युग की आर्थिक परिस्थितियाँ मुख्य रूप से कृषि और उद्योग के दो प्रमुख स्तंभों पर आधारित थीं। किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का आधार ये दोनों क्षेत्र होते हैं। प्रेमचंद ने उस समय की आर्थिक परिस्थितियों और समाज की चुनौतियों को अपने साहित्य के माध्यम से प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया। डॉ. रक्षा पुरी के अनुसार, "युग विशेष का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन एक-दूसरे से गहराई से जुड़े होते हैं। इन विभिन्न पक्षों को प्रकट कर ही कोई साहित्यकार अपने समय का वास्तविक चित्रण कर सकता है। प्रेमचंद के साहित्य में उस समय के समाज का व्यापक और यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है।" (पुरी, 1970, पृ. 235)

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में केवल सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन को ही नहीं, बल्कि आर्थिक जीवन और उससे जुड़ी समस्याओं को भी व्यापक रूप से उजागर किया। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से उस समय की प्रमुख आर्थिक समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। डॉ. रक्षा पुरी लिखती हैं, "भारतीय अर्थव्यवस्था के दो मुख्य आधार कृषि और उद्योग-धंधे हैं। प्रेमचंद ने अपने कथा-साहित्य में इन दोनों स्तंभों और उनसे संबंधित समस्याओं पर गहराई से विचार किया है। उन्होंने अर्थव्यवस्था के संक्रमणकाल को भी उजागर किया और आर्थिक जीवन में फैली विषमताओं को स्पष्ट रूप से सामने रखा है।" (पुरी, 1970, पृ. 235)

प्रेमचंद ने भारतीय अर्थव्यवस्था के इन दोनों स्तंभों—कृषि और उद्योग-धंधों—का सजीव चित्रण अपने साहित्य में किया है। इनसे संबंधित समस्याएँ उनके उपन्यासों में बार-बार सामने आती हैं। प्रेमचंद के युग की आर्थिक परिस्थितियों को समझने के लिए इन बिंदुओं पर विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

1.7.1. भारतवर्ष में कृषक की समस्याएँ

भारतीय अर्थव्यवस्था का संतुलन हमेशा से ही अंग्रेजों की स्वार्थपूर्ण आर्थिक नीतियों के कारण प्रभावित होता रहा, जिसके परिणामस्वरूप कृषि पर लगातार दबाव बढ़ता गया और भारतीय किसानों की स्थिति अत्यंत खराब होती गई। प्रेमचंद के हृदय में इन पीड़ित किसानों के प्रति गहरी सहानुभूति थी। वे भारतीय किसानों की मजबूरियों और उनकी आर्थिक बदहाली को भली-भाँति समझते थे। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में न केवल शहरी जीवन की समस्याओं को उजागर किया, बल्कि ग्रामीण जीवन की

कठिनाइयों को भी बेहद प्रभावी ढंग से अभिव्यक्ति दी है। उनकी रचनाएँ प्रेमाश्रम और 'गोदान' को भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त, उनके उपन्यास वरदान और कायाकल्प में भी भारतीय किसानों और जमींदारों की समस्याओं पर गंभीरता से विचार किया गया है।

भारतीय कृषक की आर्थिक दुर्दशा और उसका कारण

भारत में भिन्न परिस्थितियों के चलते किसानों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। उनकी कई समस्याएँ उनकी आर्थिक बदहाली से उत्पन्न हुई थीं, और इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी दुर्दशा के मूल में यही कारण थे। गहन विश्लेषण और सूक्ष्म अवलोकन के बाद, प्रेमचंद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब तक किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं होगा, तब तक उनकी समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। उन्होंने न केवल किसानों की आर्थिक समस्याओं को रेखांकित किया, बल्कि उनके मूल कारणों पर भी गहराई से प्रकाश डाला। वरदान उपन्यास में विरजन, मझगांव जाकर वहाँ के किसानों की वास्तविक समस्याओं से रूबरू होती है। वह अपने पत्र में कमलाचरण को लिखती है, "जो सुनती थी और जो देख रही हूँ, उसमें जमीन-आसमान का फर्क है। टूटे-फूटे फूस के झोपड़े, मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूड़े के ढेर, कीचड़ में लथपथ भैंसें और दुर्बल गायें—यह सब देखकर मन करता है कि कहीं दूर भाग जाऊँ। और यदि मनुष्यों को देखो, तो उनकी दशा और भी खराब है। उनकी हड्डियाँ साफ झलकती हैं। वे विपत्ति और दरिद्रता के सजीव चित्र हैं। किसी के पास पहनने को एक फटा-पुराना वस्त्र भी नहीं, और कितने दुर्भाग्यशाली हैं ये कि दिन-रात मेहनत करने के बाद भी कभी भरपेट भोजन नहीं मिलता।" (प्रेमचंद, 1999, पृ. 68) इस मार्मिक उदाहरण के माध्यम से प्रेमचंद ने किसानों की त्रासदी को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। अपने प्रसिद्ध उपन्यास प्रेमाश्रम में उन्होंने किसानों की आर्थिक स्थिति को विस्तार से उभारा है। लखनपुर गाँव के किसान अत्यंत दयनीय हालत में जीवन जी रहे हैं। गाँव का सबसे संपन्न व्यक्ति सुक्खू चौधरी है, लेकिन बाकी सभी किसान इतने गरीब हैं कि उनके घरों में दोनों समय चूल्हा तक नहीं जलता। (प्रेमचंद, 1999, पृ. 51)

इस प्रकार, प्रेमचंद के लगभग सभी उपन्यास किसानों की दयनीय स्थिति और उनकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हैं।

1.7.2. जमींदारी व्यवस्था की स्वार्थपरक नीति

किसान जीवन की त्रासदी और आर्थिक दुर्दशा के प्रमुख कारणों में से एक जमींदारों की स्वार्थपूर्ण नीतियाँ थीं। प्रेमचंद के समय में जमींदारों द्वारा किसानों का

शोषण एक गंभीर समस्या थी। उनके उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में जमींदार राय कमलानंद का उल्लेख मिलता है, "वे प्लेग और अकाल के समय भी नाच-रंग में लीन रहते हैं और इसके लिए निर्धन असामियों से धन वसूलते हैं। धन न देने पर वे असामियों को हंटरों से पीटते हैं।' (प्रेमचंद, 1999, पृ. 86) इसी प्रकार, प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'सेवासदन' में भी जमींदारों के अत्याचार को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। इस उपन्यास में महंत रामदास नामक जमींदार की क्रूरता का वर्णन मिलता है, "एक दिन कई महात्मा चैतू को पकड़कर लाए। ठाकुर द्वारे के सामने उसे पीटा गया। चैतू ने प्रतिरोध किया। हाथ बँधे होने के बावजूद वह मुँह से विरोध करता रहा और जब तक उसकी आवाज बंद नहीं हुई, वह चुप नहीं हुआ। इतने अत्याचार के बाद भी ठाकुरजी को संतोष नहीं हुआ। उसी रात चैतू की जान ले ली गई।' (प्रेमचंद, 2005, पृ. 8) यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद के युग में किसानों की आर्थिक दुर्दशा का एक बड़ा कारण जमींदारों का अत्याचार और उनसे धन वसूली तथा लगान की कठोर मांगें थीं। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में इन समस्याओं का यथार्थ और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

1.7.3. कृषि संबंधी समस्याएँ

प्रेमचंद सदैव ग्रामीण जीवन के निकट रहे, इस कारण वे वहाँ की समस्याओं और परिस्थितियों से भली-भाँति परिचित थे, जिनके बीच वे अपना जीवन बिताते थे। उन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संदर्भ में सहयोग और सामूहिक प्रयास की आवश्यकता को स्वीकार किया। उनके विचारों में यह स्पष्ट होता है कि समाज की समस्याओं का समाधान एकजुट होकर कार्य करने और पारस्परिक सहयोग से ही संभव है।

1.7.4. आर्थिक मंदी के समय कृषक की दशा व समस्याएँ

प्रथम विश्व युद्ध के बाद अनाज के मूल्यों में लगातार वृद्धि होती रही, जिससे किसानों की समस्याएँ बढ़ गईं। इसी दौरान जमींदारों ने भी लगान में वृद्धि कर दी। इसके परिणामस्वरूप किसानों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ, बल्कि हालात और बिगड़ गए। समय के साथ, सन् 1929 में जब वैश्विक आर्थिक मंदी आई, अनाज की कीमतें अत्यधिक गिर गईं, लेकिन किसानों से लगान वसूली की प्रक्रिया में कोई रुकावट नहीं आई। जमींदार अपनी आय में कमी करने को तैयार नहीं थे, और सरकार भी, जिसके पास भूमि से होने वाली आय का बड़ा हिस्सा था, अपने राजस्व में कमी स्वीकारने के लिए राजी नहीं थी। इस स्थिति में किसान जमींदार और सरकार के बीच पिसते रहे। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में किसानों की इसी आर्थिक दुर्दशा का गहराई से चित्रण किया है। उन्होंने अपने दूसरे उपन्यास 'कर्मभूमि' में आर्थिक मंदी के दौर में जमींदारों और सरकार द्वारा किए गए अन्याय, किसानों की दयनीय दशा, और उनके संगठन द्वारा किए गए विरोध आंदोलनों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

औद्योगिक समस्याएँ

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का आधार मुख्य रूप से कृषि और उद्योग-धंधे होते हैं। ब्रिटिश शासनकाल में उनकी स्वार्थपूर्ण आर्थिक नीतियों ने भारत के प्राचीन उद्योग-धंधों और शिल्प को बर्बाद कर दिया, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था का संतुलन पूरी तरह बिगड़ गया। इसके बाद, प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् भारत ने औद्योगीकरण की दिशा में कदम बढ़ाना शुरू किया। इस प्रक्रिया के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में नई शक्तियों का उदय हुआ, लेकिन इसके साथ ही औद्योगीकरण से जुड़ी अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न हुईं। प्रेमचंद ने उस समय की अर्थव्यवस्था का गहन निरीक्षण किया और अपने उपन्यासों में इन समस्याओं को विस्तार से प्रस्तुत किया। उन्होंने 'गोदान' और 'रंगभूमि' में औद्योगिक समस्याओं पर गंभीर चिंतन किया है। इसके अतिरिक्त, 'गबन' और 'प्रेमाश्रम' में भी औद्योगिक मुद्दों को प्रमुखता से उठाया है।

पूँजीपतियों की मनोवृत्ति

औद्योगीकरण के साथ किसी भी देश में पूँजीवादी प्रवृत्ति का उदय स्वाभाविक है। औद्योगिक सभ्यता ने सदैव समाज को दो वर्गों में विभाजित किया है—एक वर्ग, जो उद्योग-धंधों से लाभ अर्जित करता है, और दूसरा वर्ग, जो श्रमिकों का होता है। औद्योगिकीकरण के बाद देश की संपत्ति कुछ गिने-चुने पूँजीपतियों के हाथों में सिमटती जा रही थी, और उनकी शक्ति और अधिकार निरंतर बढ़ रहे थे। प्रेमचंद औद्योगिक समस्याओं के इन सभी पहलुओं से भली-भाँति परिचित थे। उनके उपन्यास 'रंगभूमि' में पूँजीवादी मानसिकता का उत्कृष्ट चित्रण जानसेवक के चरित्र के माध्यम से किया गया है। जानसेवक ताहिर अली से कहता है, "मेरा विचार है कि म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब से मिलकर इस इलाके में एक शराब और ताड़ी की दुकान खुलवा दूँ। इससे आसपास के चमार यहाँ रोज़ आएंगे, और आपको उनसे मेल-जोल बढ़ाने का अवसर मिलेगा। आज के समय में इन छोटी-छोटी चालों के बिना कोई काम आगे नहीं बढ़ता। (प्रेमचंद, 1999, पृ. 4) इस संदर्भ में प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से औद्योगिक और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के बीच व्याप्त आर्थिक असमानता को उजागर किया है। वह यह भली-भाँति समझते थे कि समाज पर धनी वर्ग का अधिकार हमेशा के लिए कायम नहीं रह सकता। निम्नवर्ग में नवचेतना के सतत विकास के कारण उनके शोषण के रास्ते कठिन हो जाएँगे। इस कारण प्रेमचंद ने आर्थिक समानता को एक स्वस्थ और आदर्श समाज का मूलभूत सिद्धांत माना और अपने साहित्य में इसे प्रमुखता से प्रस्तुत किया।

1.7.5. प्रेमचंद युगीन सामाजिक महत्वपूर्ण

किसी भी युग की सामाजिक परिस्थितियाँ उतनी ही महत्वपूर्ण होती हैं जितनी कि उस समय की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और साहित्यिक अवस्थाएँ, क्योंकि साहित्य समाज से ही जन्म लेता है और इसे समाज का दर्पण माना जाता है। सदियों तक गुलामी और विदेशी शासन की कठोरता ने भारतीय जनमानस में आत्महीनता की गहरी भावना भर दी थी। प्रेमचंद के समय में चारों ओर अराजकता और निराशा का माहौल फैला हुआ था। समाज मानसिक जड़ता और निष्क्रियता की ओर बढ़ रहा था। आर्थिक पिछड़ेपन और अशिक्षा ने समाज के आत्मविश्वास को पूरी तरह तोड़ दिया था, जबकि भीतर से कई सामाजिक बुराइयाँ उसे दीमक की तरह खोखला कर रही थीं। प्रेमचंद के युग की सामाजिक परिस्थितियाँ उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती हैं। उनके साहित्य में उस समय के समाज की वास्तविकताओं और समस्याओं का बारीकी से चित्रण किया गया है, जो उस समय की सामाजिक स्थिति को गहराई से समझने में सहायक है। उनके रचनात्मक दृष्टिकोण से समाज के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करना संभव होता है।

1.7.6. परंपराओं और रूढ़ियों से ग्रस्त समाज

तत्कालीन समाज में, जहाँ किसान, मजदूर और गरीब जनता का शोषण अपनी चरम सीमा पर था, वहीं समाज अनेक कुप्रथाओं, अंधविश्वासों और रूढ़ियों से जकड़ा हुआ था। यह समाज आंतरिक रूप से कमजोर और मानसिक रूप से जड़ता की स्थिति में था। हालांकि, उस समय पूरे विश्व में नवजागरण की लहर उठ रही थी, जिसने सामाजिक चेतना को नई दिशा प्रदान की। इसका प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ना स्वाभाविक और अनिवार्य था। यह नवजागरण भारतीय समाज को न केवल प्रगति की ओर प्रेरित कर रहा था, बल्कि उसमें एक नई ऊर्जा और आत्मविश्वास भी भर रहा था।

1.7.7. पाश्चात्य सभ्यता का संपर्क तथा मनीषियों और समाज सुधारकों का उदय

पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क में आने से उनके उन्नत विचारों का प्रभाव भारत पर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पाश्चात्य संस्कृति के भारत पर प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया है: "हिंदुस्तान पर पाश्चात्य संस्कृति का आघात था, जो मध्यकालीन विचारधारा से बँधा हुआ था और जो अपने ढंग से कितना ही तरक्कीयाफ़्त या रंगाचुना हो, अपनी जन्मजात खामियों की वजह से तरक्की नहीं कर सकता था।" (रामचन्द्र टण्डन, 1947, पृ. 357) इस प्रकार, समाज में जहाँ एक ओर रूढ़ियों, पाखंड और अशिक्षा का वर्चस्व था, वहीं दूसरी ओर इन बुराइयों के विरुद्ध

समाज को जाग्रत करने के लिए विभिन्न आंदोलनों के माध्यम से जागरूकता फैलाने के प्रयास किए जा रहे थे।

हिंदू समाज को रूढ़िवाद और अंधविश्वास से मुक्त करने के लिए 'ब्रह्मसमाज' और 'आर्यसमाज' जैसे सुधार आंदोलनों ने एक अहम भूमिका निभाई। इसी प्रकार, मुस्लिम समाज को अशिक्षा और परंपरागत रूढ़ियों से अलग करने में सर सैय्यद अहमद खाँ, अल्ताफ हुसैन हाली, शिबली नोमानी और मौलाना आजाद जैसे समाज सुधारकों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। इस संदर्भ में श्रीमती शीला गुप्त का कहना है: "समाज में एक ओर घुँघरू की झंकार और रागिनियों की मधुर तानें गूँज रही थीं, वहीं दूसरी ओर करुण क्रंदन, विलाप, हाहाकार और भूख से तड़पते हृदयों की मूक वेदना थी, जिसे सुनने वाला कोई नहीं था।" (गुप्त डॉ॰ श्रीमती शीला, 1972, पृ. 40)

इन सब परिस्थितियों ने भारतीय समाज को झकझोर दिया, और समाज हर क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता महसूस करने लगा। इन सभी परिवर्तनों और सुधारों का सजीव चित्रण प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया।

1.8. साहित्य की समीक्षा

प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक असमानता और नैतिक संघर्ष के गहरे संबंध को प्रमुखता से रेखांकित किया गया है। उनके अनुसार 'सद्गति' जैसी कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि जाति और धर्म के नाम पर होने वाला अन्याय केवल सामाजिक समस्या नहीं रहता, बल्कि वह व्यक्ति की नैतिक चेतना को भीतर से चुनौती देता है और उसे विवेक तथा सामाजिक दबाव के बीच खड़ा कर देता है। वे यह भी बताते हैं कि प्रेमचंद के पात्र ऐसे तंत्र से जूझते हैं जो मानवीय गरिमा को कमजोर करता है, जिससे नैतिक निर्णय केवल व्यक्तिगत इच्छा का परिणाम नहीं रह जाते, बल्कि सामाजिक संरचना की प्रतिक्रिया बन जाते हैं (श्यामसुंदर मिश्र, 2017)। इसी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए अरुण राय ने तर्क दिया है कि प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि केवल व्यक्ति के चरित्र तक सीमित नहीं रहती, बल्कि पंचायत, धर्म, परिवार और वर्ग व्यवस्था जैसी सामाजिक संस्थाओं की आलोचनात्मक समीक्षा भी करती है; 'पंच परमेश्वर' और 'कफन' यह दिखाते हैं कि जब संस्थाएँ अपने नैतिक आधार से हट जाती हैं, तब व्यक्ति को अपने विवेक के सहारे न्याय और सत्य का पक्ष लेना पड़ता है (अरुण राय, 2019)। साथ ही यह भी कहा गया है कि प्रेमचंद के पात्र सामाजिक व्यवस्था के भीतर रहते हुए भी उससे प्रश्न करने का साहस रखते हैं और यही साहस उनकी नैतिक पहचान को गढ़ता है; यह प्रक्रिया नैतिकता को केवल आदर्श के स्तर पर नहीं छोड़ती, बल्कि उसे सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में स्थापित करती है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की कहानियाँ नैतिकता को एक सक्रिय सामाजिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत

करती हैं, जहाँ सही और गलत का चुनाव निजी निर्णय भर नहीं रहता, बल्कि अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का सामाजिक दायित्व बन जाता है (राजेश द्विवेदी, 2021)।

प्रेमचंद की कहानियों में पारिवारिक संबंधों को नैतिक शिक्षा का केंद्रीय आधार माना गया है। परिवार को उनके पात्रों का पहला नैतिक विद्यालय बताया गया है, जहाँ व्यक्ति अनुभवों के माध्यम से सही और गलत का अर्थ समझता है; पारिवारिक वातावरण केवल मूल्यों का संचार नहीं करता, बल्कि नैतिक संघर्षों को भी जन्म देता है, जो आगे चलकर सामाजिक व्यवहार को आकार देते हैं (मधुमिता मुखर्जी, 2016)। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि 'बूढ़ी काकी' जैसी कहानियाँ दिखाती हैं कि उपेक्षा और करुणा दोनों परिवार के भीतर विकसित होती हैं और वही व्यक्ति के नैतिक चरित्र की दिशा निर्धारित करती हैं; भोजन, सम्मान और देखभाल से जुड़े छोटे व्यवहारिक निर्णय भी गहरे नैतिक अर्थ रखते हैं (सुनील शर्मा, 2018)। साथ ही 'ईदगाह' के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि बाल पात्रों की सरलता और संवेदना नैतिक मूल्यों को सहज रूप में प्रस्तुत करती है; हामिद द्वारा दादी के लिए चिमटा खरीदना पारिवारिक प्रेम और नैतिक जिम्मेदारी की सशक्त अभिव्यक्ति है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि भावनात्मक संबंधों से गहराई से जुड़ी है और परिवार को नैतिक विकास की प्रयोगशाला के रूप में स्थापित करती है, जहाँ दैनिक जीवन के साधारण निर्णय भी व्यापक सामाजिक नैतिकता को प्रतिबिंबित करते हैं (किशोर कुमार, 2020)।

प्रेमचंद की कहानियों में न्याय और नैतिक सत्ता के संबंध का विश्लेषण किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि नैतिक शक्ति अक्सर औपचारिक कानून से अधिक प्रभावशाली होती है, क्योंकि कानून बाहरी दबाव से लागू होता है, जबकि नैतिकता व्यक्ति के भीतर से उत्पन्न होती है; प्रेमचंद के पात्र न्याय का समर्थन केवल नियमों के आधार पर नहीं, बल्कि अपने विवेक और आत्म-सम्मान के आधार पर करते हैं (रमेश राव, 2019)। इसी संदर्भ में भाषा और संवाद की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचंद की सरल शैली गहरे नैतिक अर्थों को प्रभावी ढंग से व्यक्त करती है; संवादों के माध्यम से पात्रों की आंतरिक स्थिति और नैतिक द्वंद्व स्पष्ट होते हैं (अरुण राय, 2021)। साथ ही पंचायत और ग्रामीण संस्थाओं के संदर्भ में यह रेखांकित किया गया है कि 'पंच परमेश्वर' में न्याय का आधार निजी संबंध नहीं, बल्कि निष्पक्ष विवेक है, जो सार्वजनिक विश्वास को सुदृढ़ करता है; इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की नैतिकता व्यक्तिगत गुणों से आगे बढ़कर सार्वजनिक जीवन और सामाजिक संरचनाओं तक विस्तृत है, जहाँ न्याय, ईमानदारी और विश्वास समाज की नैतिक नींव का निर्माण करते हैं (प्रदीप सिंह, 2022)।

प्रेमचंद की कहानियों को सामाजिक जीवन से उपजी नैतिक चेतना का साहित्यिक रूप माना गया है। यह कहा गया है कि नैतिकता किसी स्थिर सिद्धांत की तरह नहीं, बल्कि अनुभव और परिस्थिति से विकसित होने वाली प्रक्रिया के रूप में सामने आती है; 'पंच परमेश्वर' में अलगू चौधरी का नैतिक परिवर्तन यह दर्शाता है कि सार्वजनिक उत्तरदायित्व व्यक्ति को निजी संबंधों से ऊपर उठाकर विवेक और न्याय की ओर ले जाता है (शुक्ल, रामविलास, 2015)। इसी दृष्टि को आगे बढ़ाते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि नैतिक निर्णय केवल व्यक्तिगत भावना का परिणाम नहीं होते, बल्कि वे वर्ग, गरीबी और सत्ता संबंधों से भी प्रभावित होते हैं; 'सद्गति' और 'कफन' जैसी कहानियों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि सामाजिक संरचना किस प्रकार व्यक्ति की नैतिक सीमाएँ निर्धारित करती है (राम सिंह, 2018)। साथ ही यह भी रेखांकित किया गया है कि करुणा, लज्जा और आत्म-सम्मान जैसे आंतरिक भावनात्मक तत्व नैतिक व्यवहार को दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं; इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की नैतिकता एक बहुस्तरीय संरचना है, जिसमें सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक दबाव और व्यक्तिगत संवेदना परस्पर जुड़कर नैतिक निर्णयों को आकार देते हैं, और उनकी कहानियाँ केवल उपदेशात्मक न होकर सामाजिक संवाद का माध्यम बनती हैं (देवेन्द्र वर्मा, 2020)।

प्रेमचंद को मानवीय संवेदना का लेखक बताया गया है। यह प्रतिपादित किया गया है कि उनकी नैतिक दृष्टि करुणा और सहानुभूति से प्रेरित है, जिसके कारण उनके पात्रों के व्यवहार और निर्णयों में मानवीय गरिमा का गहरा बोध दिखाई देता है; उनकी कहानियाँ पाठक को केवल सामाजिक यथार्थ से परिचित नहीं करातीं, बल्कि उसे दूसरों के दुःख और संघर्ष को अनुभव करने की क्षमता भी प्रदान करती हैं (अमरेश राय, 2017)। इसी संदर्भ में यह कहा गया है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद सामाजिक सुधार की प्रक्रिया से जुड़ा है और उनकी रचनाओं में प्रस्तुत यथार्थ नैतिक जागरूकता को जन्म देता है; जब पाठक अन्याय, गरीबी और शोषण को निकट से देखता है, तो उसके भीतर परिवर्तन की इच्छा उत्पन्न होती है, और यह यथार्थवाद केवल वर्णन तक सीमित न रहकर समाज के प्रति जिम्मेदारी की भावना विकसित करता है (संजय चंद्रा, 2020)। साथ ही यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचंद की सरल भाषा और सहज कथन जटिल नैतिक प्रश्नों को सामान्य जीवन की घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक पात्रों के संघर्ष से भावनात्मक रूप से जुड़ पाता है; इससे स्पष्ट होता है कि उनकी नैतिकता आदर्श और यथार्थ के संतुलन से निर्मित है, जहाँ करुणा, सत्य और सरल अभिव्यक्ति मिलकर नैतिक चेतना का निर्माण करते हैं (हरीश त्रिवेदी, 2022)।

प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक पहचान के निर्माण को सामाजिक अनुभवों से जुड़ी प्रक्रिया बताया गया है। यह तर्क दिया गया है कि पात्रों की नैतिकता उनके जीवन की परिस्थितियों से निरंतर आकार ग्रहण करती है; 'कफन' और 'सद्गति' यह स्पष्ट करती हैं कि अभाव, भूख और सामाजिक बहिष्कार व्यक्ति को ऐसे नैतिक मोड़ों पर ला खड़ा करते हैं, जहाँ निर्णय निजी स्वभाव से अधिक सामाजिक दबाव की प्रतिक्रिया बन जाते हैं (देवेंद्र वर्मा, 2018)। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचंद के पात्र व्यवस्था के भीतर रहते हुए उसके नैतिक आधार पर प्रश्न उठाते हैं, जिससे उनकी कहानियाँ सामाजिक आलोचना का माध्यम बनती हैं; यह आलोचना प्रत्यक्ष विरोध के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय अनुभवों के चित्रण से प्रकट होती है (विनोद मिश्रा, 2020)। साथ ही यह कहा गया है कि प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि परंपरा और परिवर्तन के बीच संतुलन स्थापित करती है तथा नैतिकता को स्थिर मूल्य नहीं, बल्कि विकसित होती चेतना के रूप में प्रस्तुत करती है; इससे स्पष्ट होता है कि उनकी नैतिकता सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक मूल्यों और व्यक्तिगत अनुभवों के संगम से निर्मित होती है (मनोज तिवारी, 2022)।

प्रेमचंद की कहानियों में आत्म-सम्मान और नैतिक साहस की भूमिका को प्रमुख माना गया है। यह कहा गया है कि उनके पात्र कमजोर परिस्थिति में भी अपने विवेक के आधार पर निर्णय लेते हैं; 'नमक का दरोगा' में ईमानदारी का पक्ष लेना केवल व्यक्तिगत गुण नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था के भीतर नैतिक प्रतिरोध का रूप है (सुशील शर्मा, 2017)। इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रेमचंद की कहानियाँ सामाजिक संवाद का माध्यम बनती हैं, जहाँ नैतिकता पाठक और समाज के बीच विचार-विमर्श की प्रक्रिया का रूप ले लेती है; यह साहित्य पाठक को निष्क्रिय उपभोक्ता नहीं रहने देता, बल्कि उसे नैतिक प्रश्नों का सहभागी बनाता है (अजय गुप्ता, 2019)। साथ ही कथा-संरचना के संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया है कि घटनाओं का क्रम इस प्रकार विन्यस्त होता है कि नैतिक निर्णय क्रमशः उभरते हैं और पाठक भी पात्रों के साथ नैतिक यात्रा में सम्मिलित होता है; इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद की नैतिकता आत्म-सम्मान, सामाजिक संवाद और प्रभावी कथा-शैली के संयोजन से निर्मित होती है (प्रमोद सेन, 2021)।

1.9. शोध प्रश्न

शोध उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, इस शोध में निम्नलिखित प्रमुख प्रश्नों पर ध्यान दिया जाएगा—

- मुंशी प्रेमचंद की लघुकथाओं में प्रमुख नैतिक विषय क्या है?

1.10. अनुसंधान उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य मुंशी प्रेमचंद की लघु कहानियों का व्यापक नैतिक विश्लेषण करना है, जिससे उनकी कहानियों में निहित जटिल नैतिक आयामों को उजागर किया जा सके। उनके पात्रों द्वारा सामना की गई नैतिक दुविधाओं का विश्लेषण करके और उनकी कहानियों के व्यापक नैतिक परिप्रेक्ष्य की खोज करके यह शोध साहित्य और समाज में नैतिक चेतना पर उनके कार्यों की स्थायी प्रासंगिकता और प्रभाव पर प्रकाश डालना चाहता है।

संदर्भ सूची

- [1]. गोयनका, कमल किशोर. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 25.
- [2]. गोयनका, कमल किशोर. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 39.
- [3]. रहबर, हंसराज. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 52.
- [4]. मदन गोपाल. (2016). प्रेमचंद: जीवन और कृतित्व. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 15.
- [5]. मदन गोपाल. (2016). प्रेमचंद: जीवन और कृतित्व. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 16-17.
- [6]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 25.
- [7]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [8]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [9]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 23.
- [10]. हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 8.
- [11]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 29.
- [12]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [13]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.

- [14]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 26.
- [15]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [16]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [17]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 33.
- [18]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 34.
- [19]. हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 70.
- [20]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 240.
- [21]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 241.
- [22]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 241.
- [23]. हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 129.
- [24]. हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 130.
- [25]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 243.
- [26]. हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 156.
- [27]. शिवरानी देवी प्रेमचंद. (वर्ष). प्रेमचंद: घर में. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 41.
- [28]. शिवरानी देवी प्रेमचंद. (वर्ष). प्रेमचंद: घर में. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 71.

- [29]. कुमार, डी. (2022). प्रेमचंद का साहित्य और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: साहित्य भवन.
- [30]. नस्कर, एस. (2023). प्रेमचंद और राष्ट्रवादी चेतना. कोलकाता: प्रगतिशील प्रकाशन.
- [31]. चंद्रा, एस. (1982). प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक दृष्टि. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- [32]. अनंतराम, ए. (2012). हिंदी-उर्दू साहित्य में प्रेमचंद का योगदान. जयपुर: साहित्य सदन.
- [33]. सुंदरम, आर. (2015). प्रेमचंद और दलित विमर्श. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
- [34]. गुलाटी, एन. (2015). प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी चेतना. चंडीगढ़: मानव पब्लिशर्स.
- [35]. शिवनारायण श्रीवास्तव. (2016). प्रेमचंद और राष्ट्रीय चेतना. वाराणसी: भारतीय साहित्य केंद्र.
- [36]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [37]. शर्मा, रामविलास. (1967). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 7.
- [38]. टंडन, रामचंद्र. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 357.
- [39]. टंडन, रामचंद्र. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 377.
- [40]. गुप्त, रामदीन. (1988). भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ. 105.
- [41]. राजकुमार. (1962). कांग्रेस का इतिहास और विचारधारा. नई दिल्ली: जनवादी प्रकाशन, पृ. 214.
- [42]. अमृतराय. (1962). कलम का सिपाही. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 256–257.
- [43]. भटनागर, एस. (1989). भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, पृ. 141.

- [44]. सत्यकाम. (1994). ब्रिटिश शासन और भारतीय राजनीति. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 120.
- [45]. हरिभाऊ उपाध्याय. (1965). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 55-56.
- [46]. अमृतराय. (1962). कलम का सिपाही. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 80.
- [47]. रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 443.
- [48]. रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 444.
- [49]. रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 447.
- [50]. हरिभाऊ उपाध्याय. (1965). आधुनिक भारत का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 187-188.
- [51]. गुप्ता, डॉ. शीला. (1972). भारतीय समाज और राष्ट्रीय आंदोलन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 34.
- [52]. गुप्ता, डॉ. शीला. (1972). भारतीय समाज और राष्ट्रीय आंदोलन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 40.
- [53]. पुरी, रक्षा. (1970). प्रेमचंद का साहित्य और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: साहित्य भवन, पृ. 235.
- [54]. प्रेमचंद. (1999). वरदान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 68.
- [55]. प्रेमचंद. (1999). प्रेमाश्रम. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 51.
- [56]. प्रेमचंद. (1999). प्रेमाश्रम. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 86.
- [57]. प्रेमचंद. (2005). 'सेवासदन'. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 8.
- [58]. इंद्रनाथ मदान. (वर्ष). प्रेमचंद: एक विवेचन. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [59]. शर्मा, रामविलास. (1986). प्रेमचंद और भारतीय समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [60]. जैनेन्द्र कुमार. (1973). जैनेन्द्र की पत्रावली. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
- [61]. चतुर्वेदी, सीताराम. (1968). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

- [62]. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (1936). निराला रचनावली (खंड 4). इलाहाबाद: साहित्य भवन.
- [63]. ठाकुर, रवींद्रनाथ. (1936). रवींद्र रचनावली (खंड 12). कोलकाता: विश्वभारती प्रकाशन.
- [64]. प्रेमचंद. (1999). प्रतिज्ञा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [65]. चंद्रा, एस. (2020). प्रेमचंद का यथार्थवाद और सामाजिक सुधार की चेतना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- [66]. द्विवेदी, आर. (2021). हिंदी कथा साहित्य में सामाजिक संस्थाएँ और नैतिक चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- [67]. गुप्ता, ए. (2019). साहित्य और समाज के बीच संवाद: प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण. जयपुर: शिवना प्रकाशन।
- [68]. कुमार, के. (2020). बाल पात्र और नैतिक मूल्यों का विकास: प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन. पटना: भारती भवन।
- [69]. मिश्र, एस. (2017). सामाजिक असमानता और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद का साहित्यिक विश्लेषण. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
- [70]. मिश्र, वी. (2020). हिंदी साहित्य में सामाजिक आलोचना और नैतिक चेतना. नई दिल्ली: किताब महल।
- [71]. मुखर्जी, एम. (2016). परिवार और नैतिक संरचना: हिंदी कथा साहित्य में अध्ययन. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [72]. राय, ए. (2017). प्रेमचंद के साहित्य में मानवतावाद और नैतिक दृष्टि. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- [73]. राय, ए. (2019). भाषा, संस्थाएँ और नैतिकता: प्रेमचंद साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- [74]. राय, ए. (2021). कथा-संवाद और नैतिक अभिप्राय: हिंदी साहित्य में अध्ययन. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
- [75]. राव, आर. (2019). प्रेमचंद की कथाओं में न्याय और नैतिक सत्ता. हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- [76]. सेन, पी. (2021). कथा-संरचना और पाठक प्रतिक्रिया: प्रेमचंद का नैतिक प्रभाव. कोलकाता: पपाइरस प्रकाशन।

- [77]. शर्मा, एस. (2017). हिंदी कहानियों में आत्म-सम्मान और नैतिक साहस. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस।
- [78]. शर्मा, एस. (2018). परिवार, करुणा और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- [79]. सिंह, आर. (2018). प्रेमचंद में सामाजिक यथार्थ और नैतिक दृष्टि. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन।
- [80]. सिंह, पी. (2022). ग्रामीण संस्थाएँ, पंचायत और नैतिक न्याय: हिंदी साहित्य में अध्ययन. लखनऊ: प्रभात प्रकाशन।
- [81]. तिवारी, एम. (2022). परंपरा और परिवर्तन: प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक चेतना. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ।
- [82]. त्रिवेदी, एच. (2022). आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में कथा-शैली और नैतिक प्रभाव. नई दिल्ली: रूटलेज इंडिया।
- [83]. वर्मा, डी. (2018). प्रेमचंद में नैतिक पहचान और सामाजिक अनुभव. नई दिल्ली: मनोहर प्रकाशन।
- [84]. वर्मा, डी. (2020). भावना, लज्जा और आत्म-सम्मान: प्रेमचंद के पात्रों का नैतिक विकास. भोपाल: मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।

अध्याय-2

मुंशी प्रेमचंद: नैतिकतावादी लेखक

2.1. प्रेमचंद का साहित्यिक प्रभाव

मुंशी प्रेमचंद का साहित्य भारतीय समाज के अंतःकरण की गूंज है। उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में उस वर्ग को आवाज दी जो सदियों से शोषण और उपेक्षा का शिकार रहा। उनके साहित्यिक प्रभाव को केवल भाषा या शैली तक सीमित करना उनकी महत्ता को कम आंकना होगा, क्योंकि उन्होंने साहित्य को सामाजिक दायित्व से जोड़ा और लेखन को एक नैतिक उपकरण के रूप में प्रयोग किया। प्रेमचंद का लेखन केवल सौंदर्यबोध या कथा-संरचना तक नहीं जाता, बल्कि उसके मूल में समाज की पीड़ा, वर्ग-संघर्ष, जातीय भेदभाव, स्त्री असमानता, और गरीब किसान-मजदूर का शोषण है, जिसे उन्होंने न केवल चित्रित किया बल्कि उसके समाधान की नैतिक राह भी सुझाई। उनके पात्र कोई काल्पनिक आदर्श नहीं बल्कि जीवंत और सामाजिक परिस्थितियों से जूझते वास्तविक लोग हैं – जैसे 'घीसू', 'माधव', 'जुम्मन शेख', या 'हामिद'। इन पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने भारतीय जनजीवन को साहित्य में स्वीकृति दिलाई, जिससे हिंदी साहित्य की दशा और दिशा दोनों बदली (शुक्ला, र. 2018, पृ. 59)।

प्रेमचंद के साहित्यिक प्रभाव को समझने के लिए उनकी भाषा और शिल्प पर ध्यान देना आवश्यक है। उन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में लिखा और उस समय की शास्त्रीय, संस्कृतनिष्ठ भाषा परंपरा को तोड़ते हुए सरल, लोकप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया। इससे उनका साहित्य आम जनता से गहराई से जुड़ गया। उन्होंने कहानी को उच्च वर्ग के 'ड्राइंग रूम' से निकालकर खेत-खलिहान, गाँव, चौपाल, और दलित बस्तियों तक पहुँचा दिया। यह काम उन्होंने केवल विषयवस्तु के स्तर पर नहीं, बल्कि संवेदना के स्तर पर भी किया। प्रेमचंद ने भारतीय साहित्य में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की नींव रखी, परंतु यह यथार्थ केवल घटनाओं का नहीं, बल्कि भावनाओं और नैतिक द्वंद्वों का भी था। उनकी कहानियाँ जैसे 'ईदगाह', 'सद्गति', 'कफन', 'बूढ़ी काकी' — पाठकों को केवल कथा नहीं सुनातीं, बल्कि उन्हें अपनी अंतरात्मा से संवाद करने के लिए विवश करती हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद का साहित्य एक नैतिक अनुभव बन जाता है – पाठक नायक से सहमत हो या असहमत, परन्तु उसे अपने भीतर झाँकने के लिए प्रेरित अवश्य होता है (वर्मा, डी. 2015, पृ. 91)।

प्रेमचंद का साहित्यिक प्रभाव उनके समकालीन लेखकों पर ही नहीं, बल्कि आज के रचनाकारों और पाठकों पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने कहानी को 'साहित्यिक प्रयोगशाला' बनाने के बजाय 'समाज का आईना' बना दिया। उनके लेखन ने यह स्थापित कर दिया कि साहित्य केवल कल्पना नहीं, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप का भी माध्यम है। यहीं से लेखक की सामाजिक जिम्मेदारी का विचार सशक्त रूप में सामने आया। उनके बाद यशपाल, रेणु, अमृतलाल नागर जैसे कई लेखक प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, परंतु मूल दिशा वही रहती है – सामाजिक यथार्थ में नैतिक चेतना की खोज। प्रेमचंद का साहित्य इस रूप में एक आंदोलन है, जो आज भी हिंदी साहित्य को मूल्य, दिशा और सामाजिक प्रासंगिकता प्रदान कर रहा है। वे न केवल एक साहित्यकार थे, बल्कि अपने युग के नैतिक विवेक भी थे – एक ऐसे लेखक जिन्होंने लेखन को लोकमंगल से जोड़ा और यह दिखाया कि साहित्य, जब वह ईमानदार हो, तो वह समाज को बदलने की क्षमता रखता है।

2.1.1. समकालीन लेखकों पर वैचारिक प्रभाव

मुंशी प्रेमचंद न केवल हिंदी कथा साहित्य के महान स्तंभ रहे, बल्कि उन्होंने अपने समकालीन लेखकों की सोच, दृष्टिकोण और लेखन शैली को भी गहराई से प्रभावित किया। प्रेमचंद की रचनाएँ सामाजिक यथार्थ, नैतिकता और मानवीय मूल्यों से भरपूर थीं, जिन्होंने उस दौर के अन्य लेखकों को कल्पनालोक से बाहर आकर ज़मीनी सच्चाई को देखने और लिखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि साहित्य का कार्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक दायित्व निभाना भी है। इस विचारधारा ने जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, इलाचंद्र जोशी और रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे लेखकों को सामाजिक और नैतिक विषयों की ओर आकृष्ट किया। इन लेखकों ने प्रेमचंद की प्रेरणा से किसान, मजदूर, स्त्रियाँ, और शोषित वर्गों को अपनी रचनाओं में केंद्र में स्थान देना शुरू किया (गुप्ता, बी. 2017, पृ. 213)।

प्रेमचंद के प्रभाव का एक और महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि उन्होंने कथा-साहित्य को केवल उच्च वर्ग की अनुभूति से अलग कर के आमजन की जीवन स्थितियों से जोड़ा। उनके यथार्थवाद और आदर्शवाद के समन्वय ने अन्य लेखकों को भी यह समझने में मदद की कि साहित्यिक रचना को विचारधारा और संवेदना दोनों से पोषित किया जाना चाहिए। प्रेमचंद की रचनाओं ने यह मार्ग प्रशस्त किया कि लेखक समाज के नैतिक मापदंडों का पर्यवेक्षक ही नहीं, बल्कि दिशा-निर्देशक भी हो सकता है। यही कारण है कि प्रेमचंद के समकालीन लेखकों की रचनाओं में सामाजिक न्याय, नैतिक मूल्यों और मानवीय करुणा के स्वर अधिक मुखर होकर सामने आने लगे।

2.1.2. हिंदी कथा परंपरा में यथार्थवाद का विस्तार

हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद की अवधारणा को एक नई दिशा देने का श्रेय यदि किसी एक लेखक को दिया जाए, तो वह मुंशी प्रेमचंद हैं। उन्होंने साहित्य को कल्पना की उड़ान से निकालकर सामाजिक यथार्थ की ठोस ज़मीन पर खड़ा किया। प्रेमचंद के पहले की कहानियाँ या तो पौराणिकता से प्रभावित थीं, या फिर नैतिक उपदेशों के शुष्क माध्यम। प्रेमचंद ने इन सीमाओं को तोड़ते हुए कहानी को लोकजीवन, संघर्ष और सामाजिक असमानता से जोड़ा। उनके पात्र आम किसान, मजदूर, स्त्रियाँ, बूढ़े, भूखे, उपेक्षित लोग हैं—जो अब तक साहित्य में अदृश्य थे। ‘कफन’, ‘सद्गति’, ‘पूँस की रात’ जैसी कहानियाँ न केवल इन पात्रों की करुणा और पीड़ा को उजागर करती हैं, बल्कि पाठक को उस समाज की सच्चाई से भी साक्षात्कार कराती हैं जिसमें ये पात्र रहते हैं। यह यथार्थ केवल स्थितियों का नहीं बल्कि मानसिक द्वंद्वों, नैतिक असमंजस और सामाजिक विडंबनाओं का है (दुबे, एल. 2019, पृ. 191)। प्रेमचंद ने यथार्थ को केवल देखने का माध्यम नहीं, बल्कि समझने और बदलने का औजार बनाया।

हिंदी कहानी को उनकी यथार्थवादी दृष्टि ने एक नई भाषा, एक नई संवेदना और एक नई भूमिका दी। उन्होंने पाठकों को यह दिखाया कि कथा में सौंदर्य केवल अलंकारों से नहीं, बल्कि सच्चाई की गहराई से उत्पन्न होता है। प्रेमचंद ने हिंदी कहानी को भावुकता और आदर्शवाद से निकालकर सामाजिक सरोकारों की ओर मोड़ा, जिससे यह विधा अधिक ज़िम्मेदार और प्रभावी बन सकी। उनके बाद आने वाले कहानीकारों जैसे अज्ञेय, भीष्म साहनी, राजेंद्र यादव और मन्मू भंडारी ने इसी यथार्थवादी परंपरा को और समृद्ध किया, परंतु इसकी नींव प्रेमचंद ने ही रखी थी। प्रेमचंद के यथार्थवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें करुणा थी, पक्षधरता थी और नैतिक दृष्टिकोण था। वे केवल चित्रकार नहीं थे, बल्कि संवेदनशील समाजचिंतक भी थे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि साहित्यकार की भूमिका केवल जीवन को दिखाना नहीं, बल्कि उसे दिशा देना भी है। यह यथार्थवाद ही वह क्रांति थी जिसने हिंदी कथा साहित्य को लोक के अधिक निकट लाकर खड़ा किया (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 370)।

2.1.3. सामाजिक सुधार आंदोलनों से साहित्य का संबंध

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी का भारत सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आंदोलनों का केंद्र था, और मुंशी प्रेमचंद इस कालखंड के ऐसे साहित्यकार थे जिन्होंने इन सुधार आंदोलनों को न केवल अपने साहित्य में प्रतिबिंबित किया, बल्कि उन्हें वैचारिक आधार भी प्रदान किया। यह वह समय था जब भारत में ब्राह्म समाज, आर्य समाज, स्त्री शिक्षा आंदोलन, जाति उन्मूलन, बाल विवाह निषेध, विधवा पुनर्विवाह जैसे कई सामाजिक सुधार आंदोलन सक्रिय रूप से चल रहे थे। प्रेमचंद ने इन आंदोलनों की

भावना को कथा साहित्य में स्थान देकर जनता को इन विचारों से परिचित कराया और सामाजिक चेतना को शब्द दिए। उनका लेखन महज कल्पना नहीं, बल्कि समय की नब्ज पर आधारित दस्तावेज था। 'निर्मला', 'सद्गति', प्रेमाश्रम, 'सेवासदन' जैसे उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने स्त्री शोषण, जातीय भेदभाव, धार्मिक पाखंड, और गरीब वर्ग की उपेक्षा जैसे मुद्दों को उठाया, जो उस समय के सुधार आंदोलनों की मूल चिंता थे। प्रेमचंद का दृष्टिकोण सुधारवादी था लेकिन उन्होंने कभी उपदेशात्मक शैली नहीं अपनाई, बल्कि अपने पात्रों के माध्यम से पाठकों को सोचने और आत्ममंथन करने को प्रेरित किया। उनका उद्देश्य समाज को नैतिक रूप से संवेदनशील बनाना था, और यही कार्य वे साहित्य के माध्यम से करते रहे। उदाहरणस्वरूप, 'सद्गति' में उन्होंने वर्ण व्यवस्था और धार्मिक पाखंड के विरुद्ध मौन विद्रोह दर्शाया, जबकि 'निर्मला' में दहेज और वृद्ध विवाह जैसी कुप्रथाओं के सामाजिक दुष्परिणाम को उजागर किया। प्रेमचंद की रचनाएँ सुधार आंदोलनों का विस्तार मात्र नहीं थीं, बल्कि उन्होंने साहित्य को सुधारों का नैतिक आधार बनाकर उसे जनचेतना का वाहक बना दिया। इस रूप में प्रेमचंद का साहित्य उस युग के समाज सुधार आंदोलनों के समानांतर एक विचारधारा बन गया जो न केवल परिवर्तन की मांग करता है, बल्कि उसका मानवीय औचित्य भी स्पष्ट करता है (त्रिपाठी, के. 2016, पृ. 164)।

2.1.4. पाठक वर्ग और जनसामान्य तक साहित्य की पहुँच

मुंशी प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य को पाठकों की एक सीमित, शिक्षित और अभिजात वर्गीय सीमा से निकालकर उसे आमजन की जीवनशैली, भाषा और संवेदना से जोड़ा। उन्होंने कहानी और उपन्यास को ऐसे विषयों से जोड़ा जो सीधे ग्रामीण भारत, निम्नवर्गीय समाज, स्त्रियों और दलितों के जीवन अनुभवों से संबंधित थे। प्रेमचंद की भाषा शैली ने उनकी पहुँच को और अधिक व्यापक बनाया न तो वह शुद्ध क्लिष्ट संस्कृतनिष्ठ हिंदी थी, और न ही अत्यंत साहित्यिक उर्दू, बल्कि वह जनभाषा थी जो आम लोगों की जुबान से मेल खाती थी। यही कारण था कि प्रेमचंद का साहित्य केवल विद्वानों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि गाँवों की चौपाल, स्कूलों की कक्षाओं, सामाजिक आंदोलनों की गोष्ठियों, और घरेलू पाठन तक पहुँचा। उन्होंने उन मुद्दों को उठाया जिनसे पाठक पहले भी परिचित था, पर साहित्य में उसे पहली बार सम्मानपूर्वक प्रस्तुत होते देखा जैसे गरीबी, सामाजिक भेदभाव, अन्याय, और जातिगत अपमान। पाठक वर्ग को पहली बार यह अनुभव हुआ कि उनका जीवन, संघर्ष और मूल्य भी साहित्य में स्थान पाने योग्य हैं। प्रेमचंद ने साहित्य को संपन्नों की भाषा से निकालकर जनता की संवेदना बना दिया। उन्होंने यह भी स्थापित किया कि साहित्यकार का कर्तव्य केवल सुंदर रचना नहीं, बल्कि समाज के प्रति उत्तरदायी होना भी है। इस दृष्टि से उनका लेखन जनतांत्रिक बन गया, और यही विशेषता उन्हें पाठकों के इतने व्यापक वर्ग से जोड़ पाई (जैन, पी. 2013, पृ. 229)।

2.1.5. क्षेत्रीय भाषाओं और अनुवाद पर प्रभाव

मुंशी प्रेमचंद का साहित्य न केवल हिंदी और उर्दू के साहित्यिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा, बल्कि उन्होंने भारतीय भाषाओं की आपसी सांस्कृतिक अंतर्क्रिया में भी अहम भूमिका निभाई। उनके लेखन की विषयवस्तु इतनी सार्वभौमिक और मानवीय थी कि वह क्षेत्रीय सीमाओं से परे जाकर विभिन्न भाषाओं और समाजों के लिए प्रासंगिक हो गई। उनकी रचनाओं का मराठी, बंगाली, तमिल, मलयालम, गुजराती, कन्नड़, पंजाबी और असमिया जैसी भाषाओं में अनुवाद हुआ, जिससे प्रेमचंद का साहित्य बहुभाषी भारत में समान रूप से लोकप्रिय हुआ। प्रेमचंद की यथार्थवादी दृष्टि, लोकभाषा का प्रयोग, और मानवीय संवेदनाओं की सादगी ने उन्हें ऐसे लेखक के रूप में प्रस्तुत किया जिसे हर क्षेत्र का पाठक अपना समझता है। क्षेत्रीय भाषाओं में हुए अनुवादों ने न केवल प्रेमचंद को अधिक व्यापक पाठकवर्ग प्रदान किया, बल्कि उन भाषाओं के साहित्यकारों को भी यथार्थवादी लेखन की प्रेरणा दी। बंगाली और मराठी लेखकों ने विशेष रूप से प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ और वर्ग संघर्ष को गहराई से देखा और अपने साहित्य में उन्हें स्थान दिया (राय, एस. 2018, पृ. 141)।

इसके अतिरिक्त प्रेमचंद की कहानियाँ केवल भारत के भीतर ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अनुवादित हुईं। उनकी रचनाओं का अंग्रेज़ी, रूसी, चीनी, जापानी, जर्मन और फ्रेंच जैसी विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ, जिससे भारतीय समाज और उसकी जटिलताएँ अंतरराष्ट्रीय पाठकों तक पहुँचीं। 'गोदान', 'गबन', 'कफन', और 'ईदगाह' जैसी कृतियाँ विश्व साहित्य में सामाजिक यथार्थ और नैतिक संघर्ष के उदाहरण के रूप में देखी गईं। प्रेमचंद के अनुवादों ने भारत की भाषायी विविधता और सामाजिक संरचना को समझने का एक सशक्त माध्यम उपलब्ध कराया। उनके साहित्य ने यह सिद्ध किया कि जब किसी लेखक की दृष्टि मानवीय और नैतिक हो, तो वह भाषाई सीमाओं से परे जाकर विश्वजन को भी प्रभावित कर सकता है। इस संदर्भ में प्रेमचंद का योगदान न केवल एक लेखक के रूप में, बल्कि एक सांस्कृतिक दूत के रूप में भी महत्वपूर्ण है।

2.2. प्रेमचंद की रचनाओं में नैतिक दिशा-निर्देश

मुंशी प्रेमचंद के साहित्य का सबसे विशिष्ट पक्ष उनका नैतिक दृष्टिकोण है, जो उनकी प्रत्येक कहानी में किसी न किसी रूप में परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने कथा-संसार को केवल सामाजिक चित्रण तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसमें नैतिकता, आदर्श और मानवीय मूल्यों का गहरा समावेश किया। प्रेमचंद की कहानियाँ जीवन के जटिल यथार्थ से उपजी हैं, पर उनमें नैतिक विचारधारा की स्पष्ट उपस्थिति होती है कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से। उनके पात्र संघर्षशील होते हुए भी अपने नैतिक दायित्वों को नहीं भूलते; या जब भूलते हैं, तो लेखक पाठक को उस नैतिक पतन की

भयावहता का बोध कराता है। यह दृष्टिकोण प्रेमचंद को मात्र यथार्थवादी कथाकार नहीं, बल्कि नैतिक दार्शनिक भी बनाता है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से यह दिखाया कि समाज की समस्याओं का हल केवल राजनीतिक या आर्थिक सुधारों से नहीं, बल्कि गहरे नैतिक आत्ममंथन से संभव है (वर्मा, डी. 2015, पृ. 95)। इसी कारण उनकी रचनाएँ पाठकों को केवल सोचने के लिए नहीं, बल्कि आत्मावलोकन के लिए भी प्रेरित करती हैं।

प्रेमचंद की कहानियाँ जैसे 'नमक का दरोगा', 'पंच परमेश्वर', 'ईदगाह', 'कफन', 'सद्गति', 'बूढ़ी काकी', 'बड़े घर की बेटा', 'दो बैलों की कथा', 'पूँस की रात' और 'शतरंज के खिलाड़ी' सभी विशिष्ट नैतिक विमर्श प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों में प्रेमचंद ने विविध जीवन परिस्थितियों को चुना है: प्रशासनिक व्यवस्था, पंचायत व्यवस्था, धार्मिक पाखंड, जातिगत भेदभाव, पारिवारिक संबंध, आर्थिक विषमता, सामंती ठाठ—और इन सबके भीतर छिपी नैतिक उलझनों और द्वंद्वों को रेखांकित किया है। उनके पात्र जीवन की कठिनाइयों से जूझते हैं, गिरते हैं, संभलते हैं और इस पूरे प्रक्रिया में पाठक को नैतिक दृष्टि से शिक्षित करते हैं। प्रेमचंद की दृष्टि में नैतिकता कोई उपदेशात्मक तत्व नहीं, बल्कि जीवन की बुनियादी आवश्यकता है। उनका साहित्य यह सिद्ध करता है कि जब समाज में संवेदना, कर्तव्यबोध, न्यायप्रियता, त्याग और सहानुभूति जैसे मूल्य कमजोर पड़ते हैं, तो न केवल व्यक्ति, बल्कि पूरी सामाजिक संरचना टूटने लगती है। इसलिए उनका कथा साहित्य केवल 'कहानी' नहीं, बल्कि 'नैतिक संवाद' है जो लेखक और पाठक के बीच संवेदना और विवेक की सेतु बनाता है।

2.2.1. 'नमक का दरोगा' – ईमानदारी और कर्तव्य की नैतिक परीक्षा

प्रेमचंद की कहानी 'नमक का दरोगा' भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था, भ्रष्टाचार और नैतिक दृढ़ता के त्रिकोण को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। इस कहानी का नायक मुंशी वंशीधर एक साधारण सरकारी कर्मचारी है, जो अपनी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के कारण उच्च पदों और अवसरों से वंचित तो होता है, पर अंततः अपने आत्मसम्मान और नैतिक मूल्यों के साथ विजयी होता है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या सच्चाई और ईमानदारी का कोई मूल्य शेष है? क्या एक व्यक्ति, जो भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा होता है, समाज में सम्मान पा सकता है? यह कहानी केवल प्रशासनिक व्यवस्था की आलोचना नहीं करती, बल्कि एक गहरे नैतिक संदेश को भी उजागर करती है – कि ईमानदारी का पथ कठिन अवश्य है, पर अंततः वही सच्चे सम्मान की ओर ले जाता है।

मुंशी वंशीधर जैसे पात्र आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं, जहाँ नैतिकता और मूल्य निरंतर बाजारवाद और अवसरवाद से दबते जा रहे हैं (शुक्ला, र. 2018, पृ. 63)।

यह कहानी एक साधारण व्यक्ति को नैतिक साहस का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत करती है, जो प्रेमचंद के नैतिक साहित्यिक दृष्टिकोण की उत्कृष्ट मिसाल है।

भ्रष्ट व्यवस्था बनाम नैतिक दृढ़ता

मुंशी वंशीधर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था का हिस्सा होते हुए भी अपने सिद्धांतों से नहीं डिगता। जब अन्य दरोगा घूस लेकर अधिकारियों और व्यापारियों से सांठगांठ करते हैं, वहीं वंशीधर समाज के सबसे प्रभावशाली व्यक्ति पंडित आलोपीदीन को नमक तस्करी के आरोप में पकड़ लेता है। यह घटना प्रेमचंद की उस दृष्टि को दर्शाती है, जहाँ लेखक सत्ता और पैसे के दबाव के सामने नैतिक संकल्प को प्राथमिकता देता है। प्रेमचंद यहां संकेत करते हैं कि नैतिकता व्यक्ति की भीतरी शक्ति है, जो बाहरी प्रलोभनों से अधिक बलशाली हो सकती है (मेहता, किरण. 2014, पृ. 79)। लेखक वंशीधर के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि एक व्यक्ति अकेले भी व्यवस्था को चुनौती दे सकता है, बशर्ते उसमें ईमानदारी और आत्मबल हो।

आत्म-सम्मान और नैतिक पुरस्कार

कहानी का उत्कर्ष बिंदु तब आता है जब पंडित आलोपीदीन, जो कि बहुत प्रभावशाली व्यक्ति हैं, कोर्ट में सजा पाकर वंशीधर की ईमानदारी से इतने प्रभावित होते हैं कि उन्हें अपनी कंपनी का मुखिया नियुक्त कर देते हैं। यह मोड़ दर्शाता है कि ईमानदारी का प्रतिफल देर से सही, पर अवश्य मिलता है। प्रेमचंद यहाँ नैतिक पुरस्कार की अवधारणा को सामाजिक मान्यता और आत्मगौरव से जोड़ते हैं। वंशीधर की नौकरी जाती है, पर उसे आत्मगौरव और सम्मान प्राप्त होता है यह प्रेमचंद की मूल्यपरक दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ नैतिक निर्णय अंततः बेहतर भविष्य का मार्ग खोलते हैं (राय, एस. 2018, पृ. 147)। यह संदेश वर्तमान समाज में भी अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ मूल्य अक्सर समझौतों के आगे झुक जाते हैं।

पात्र का प्रतीकात्मक अर्थ

मुंशी वंशीधर केवल एक कहानी का पात्र नहीं, बल्कि नैतिक संकल्प और ईमानदारी का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद ने इस पात्र के माध्यम से यह सन्देश दिया कि हर कालखंड में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जो अकेले भी सही के पक्ष में खड़े हों। यह चरित्र समाज के उस आदर्श को प्रस्तुत करता है, जहाँ नैतिकता को केवल निजी चयन नहीं बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व माना गया है। प्रेमचंद की लेखनी इस पात्र को नायक बनाकर यह सिखाती है कि ईमानदारी केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि परिवर्तन की शक्ति भी है। वंशीधर समाज को आईना दिखाता है कि असली 'पद' वह

नहीं जो सरकार देती है, बल्कि वह है जो नैतिक आचरण से अर्जित होता है (गुप्ता, बी. 2017, पृ. 220)।

2.2.2. 'पंच परमेश्वर' – न्याय, निष्पक्षता और नैतिक साहस

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पंच परमेश्वर' भारतीय ग्राम्य समाज की पारंपरिक पंचायत व्यवस्था और उसमें निहित नैतिकता की गहराई को उजागर करती है। यह कहानी केवल दो मित्रों जुम्मन शेख और अलगू चौधरी के बीच की मित्रता या मतभेद की कथा नहीं है, बल्कि यह कहानी न्याय और निष्पक्षता के सिद्धांतों की कसौटी पर मनुष्य के नैतिक साहस की परीक्षा है। प्रेमचंद ने इस कहानी में यह दिखाया कि जब कोई व्यक्ति 'पंच' की भूमिका में होता है, तो वह निजी संबंधों, पूर्वाग्रहों और भावनाओं से ऊपर उठकर समाज और ईश्वर के प्रति जवाबदेह होता है।

कहानी का केंद्रीय बिंदु यह है कि अलगू जब जुम्मन के विरुद्ध निर्णय देता है, तो वह अपने आत्मीय मित्रता के बंधन को न्याय के लिए त्याग देता है। यही वह क्षण है जब प्रेमचंद न्याय को केवल कानूनी प्रक्रिया नहीं, बल्कि आत्मा की पुकार और नैतिक चेतना का रूप बताते हैं। 'पंच के मुंह से ईश्वर बोलता है' यह वाक्य प्रेमचंद की उस मूल अवधारणा को रेखांकित करता है कि न्याय के लिए निष्पक्षता और साहस आवश्यक है, भले ही उसके लिए व्यक्ति को अपने प्रिय संबंधों का त्याग ही क्यों न करना पड़े (शर्मा, वी. 2014, पृ. 83)।

न्याय की नैतिक व्याख्या और सामाजिक परिप्रेक्ष्य

'पंच परमेश्वर' कहानी में प्रेमचंद ने न्याय को केवल एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक नैतिक मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया है। जुम्मन और अलगू जैसे पात्रों के माध्यम से उन्होंने दिखाया कि जब व्यक्ति 'पंच' की कुर्सी पर बैठता है, तो उसका आत्मा से संवाद प्रारंभ हो जाता है। कहानी में जब जुम्मन की बूढ़ी मौसी न्याय की माँग करती है, तो यह केवल पारिवारिक विवाद नहीं बल्कि सामाजिक अन्याय और नैतिक असंवेदनशीलता का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद ने ग्रामीण समाज में न्याय की धारणा को जनमानस से जोड़कर उसे आत्मिक दृष्टि दी कि पंच बनने का अर्थ केवल फैसला देना नहीं, बल्कि अपने भीतर ईश्वर की आवाज़ को सुनना है। यह अवधारणा भारतीय सामाजिक सोच में न्याय को धर्म और सत्य से जोड़ती है, और प्रेमचंद उसी सांस्कृतिक सोच को आधुनिक संदर्भ में व्याख्यायित करते हैं। इस संदर्भ में 'पंच परमेश्वर' केवल एक कहानी नहीं बल्कि न्याय की भारतीय अवधारणा का साहित्यिक प्रतिरूप है (वर्मा, डी. 2015, पृ. 97)। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब समाज में व्यक्ति निष्पक्ष रूप से न्याय करता है, तो वह न केवल अपना धर्म निभाता है, बल्कि सामाजिक विश्वास और नैतिक चेतना को भी सुदृढ़ करता है।

मित्रता बनाम निष्पक्षता: नैतिक साहस की परीक्षा

कहानी का सबसे प्रभावशाली मोड़ तब आता है जब अलगू चौधरी, जो कि जुम्मन का घनिष्ठ मित्र है, पंच बनकर उसी के विरुद्ध निर्णय देता है। यह निर्णय आसान नहीं होता, क्योंकि यह उसकी मित्रता की कसौटी है। लेकिन अलगू की अंतरात्मा और उसकी नैतिक चेतना उसे यह स्पष्ट कर देती है कि पंच बनने के बाद वह किसी व्यक्ति का मित्र नहीं, बल्कि सत्य का प्रतिनिधि बन चुका है। प्रेमचंद यहां एक साधारण ग्रामीण पात्र के माध्यम से नैतिक साहस की जो तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, वह अत्यंत प्रेरणादायक है। यह वही नैतिक शिक्षा है जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह सिखाती है कि जब भी वह निर्णायक भूमिका में हो, उसे निजी स्वार्थ या संबंधों से ऊपर उठकर निष्पक्ष रहना चाहिए। प्रेमचंद की दृष्टि में न्याय वही है जो निस्संग, निर्भीक और नैतिक हो और यही दृष्टिकोण उन्होंने इस कहानी के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाया। अलगू का साहस दर्शाता है कि न्याय तभी संभव है जब व्यक्ति अपनी भावनाओं पर विवेक की विजय स्थापित कर सके। यह प्रेमचंद के साहित्य का नैतिक सार है, जो पाठकों को न केवल विचार देता है, बल्कि व्यवहार में भी लागू करने की प्रेरणा देता है।

2.2.3. 'ईदगाह' – करुणा, त्याग और मानवीय संवेदना

प्रेमचंद की कालजयी कहानी 'ईदगाह' केवल एक बालक की धार्मिक यात्रा नहीं, बल्कि करुणा, त्याग और मानवीय संवेदना की पराकाष्ठा है। कहानी का नायक हमीद, अपनी दादी के साथ रहने वाला एक गरीब, लेकिन अत्यंत संवेदनशील बालक है। जब गाँव के अन्य बच्चे ईद के मेले से खिलौने, मिठाइयाँ और अन्य आकर्षक वस्तुएँ खरीदते हैं, तब हमीद अपनी दादी की परेशानी को प्राथमिकता देते हुए उनके लिए एक चिमटा खरीदता है। यह निर्णय उस उम्र में लिया जाता है जब बच्चे स्वयं केंद्र में रहना चाहते हैं, लेकिन हमीद का निर्णय उसे असाधारण बना देता है।

प्रेमचंद इस सरल-सी लगने वाली कहानी के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि करुणा और त्याग जैसे नैतिक मूल्य केवल बड़ों या शिक्षितों में नहीं, बल्कि बच्चों में भी गहराई से निहित हो सकते हैं। इस कहानी में बालक के माध्यम से लेखक हमें यह सिखाते हैं कि नैतिकता का आधार संवेदना है वह भाव जो दूसरों के कष्ट को अपने हृदय में अनुभव करने की क्षमता देता है (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 371)। हमीद का त्याग सामाजिक और पारिवारिक उत्तरदायित्व की भी मिसाल है, जो प्रेमचंद की मानवीय दृष्टि का अत्यंत मार्मिक उदाहरण है।

बालक की करुणा: उम्र से परे नैतिक बोध

हमीद की करुणा, उसकी अल्पायु के बावजूद, अत्यंत परिपक्व और नैतिक रूप से प्रबुद्ध है। जब बाकी बच्चे मिठाइयों और खिलौनों में खोए होते हैं, हमीद एक चिमटे को देखकर सोचता है कि यह उसकी दादी के लिए कितना उपयोगी होगा। प्रेमचंद यहाँ जिस भावनात्मक बिंदु को छूते हैं, वह यह है कि बाल मन यदि सही परिस्थितियों में संवेदनशीलता से पोषित हो, तो वह नैतिक निर्णय लेने में किसी भी वयस्क से पीछे नहीं रहता। हमीद की सोच स्वार्थहीन है, और यह प्रेमचंद के उस विश्वास को पुष्ट करता है कि नैतिक मूल्यों की नींव मनुष्य में जन्मजात होती है, जिसे समाज और परिवेश संस्कारित करते हैं (शुक्ला, र. 2018, पृ. 66)। हमीद की करुणा केवल पारिवारिक प्रेम नहीं, बल्कि एक सामाजिक मूल्य भी है जिसमें दूसरों की पीड़ा को प्राथमिकता देना शामिल है।

त्याग का सौंदर्य: इच्छाओं पर नियंत्रण की प्रेरणा

हमीद की कहानी में त्याग का एक गहरा सौंदर्य है। वह जब अन्य बच्चों को झूले झूलते, खिलौने खरीदते देखता है, तब एक पल के लिए उसका मन भी डोलता है, लेकिन वह तुरंत अपनी इच्छा को पीछे रखकर दादी के लिए उपयोगी वस्तु खरीदने का निर्णय करता है। यह आत्मसंयम प्रेमचंद की दृष्टि में एक नैतिक उपलब्धि है, जो मनुष्य को उच्च बनाती है। यहाँ त्याग कोई उपदेश नहीं, बल्कि व्यवहार में उतरा हुआ मूल्य है। हमीद का यह आचरण दर्शाता है कि सच्चा त्याग वह है जो दूसरों की भलाई के लिए अपनी प्राथमिकताओं को बलिदान कर दे। प्रेमचंद इस त्याग को नैतिकता का उच्चतम रूप मानते हैं, क्योंकि इसमें बिना दिखावे, बिना किसी प्रशंसा की अपेक्षा के, केवल प्रेम और कर्तव्य की भावना होती है (राय, एस. 2018, पृ. 149)। यह दृष्टिकोण वर्तमान उपभोक्तावादी समाज के लिए एक नैतिक संदेश भी है।

मानवीय संवेदना: बाल मन की नैतिक ऊँचाई

हमीद के निर्णय में छिपी मानवीय संवेदना कहानी का सबसे मार्मिक पक्ष है। जब वह दादी को चिमटा देता है और उसकी आँखों में आँसू और चेहरे पर गर्व देखते हैं, तब पाठक स्वयं भीतर से प्रभावित होता है। प्रेमचंद पाठकों की भावनाओं को जगाने में इतने कुशल हैं कि हम स्वयं हमीद की दृष्टि से दुनिया देखने लगते हैं। यही उनकी कहानियों की नैतिक सफलता है पाठक केवल कहानी नहीं पढ़ता, वह मूल्य अनुभव करता है। हमीद की संवेदना समाज को यह सिखाती है कि सच्चा मनुष्य वही है जो दूसरों के दुःख को अपने सुख से पहले रखे। यह कहानी इसलिए कालजयी बनती है क्योंकि यह मानवीय संवेदना को बाल मन के माध्यम से इस तरह प्रस्तुत करती है, जो शिक्षा से कहीं अधिक प्रभावी और स्थायी होती है।

2.2.4. 'कफन' – नैतिक पतन और सामाजिक संवेदनहीनता

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' हिंदी साहित्य में नैतिक पतन और सामाजिक संवेदनहीनता का सबसे सजीव और कटु चित्र प्रस्तुत करती है। यह कहानी दो पात्रों घीसू और माधव के माध्यम से एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो आर्थिक अभाव, सामाजिक हाशिए और नैतिक पतन का त्रासद उदाहरण है। कहानी की विशेषता यह है कि प्रेमचंद यहाँ न तो पाठकों की सहानुभूति माँगते हैं और न ही कोई स्पष्ट नैतिक निर्णय थोपते हैं। वे केवल एक ऐसी परिस्थिति रचते हैं जहाँ पाठक को नैतिकता और अमानवीयता के बीच की महीन रेखा पर विचार करना पड़ता है। कहानी में माधव की पत्नी बुधिया प्रसव पीड़ा से तड़पते हुए झोपड़ी के भीतर मर जाती है, और घीसू-माधव बाहर अलाव तापते रहते हैं। मृत्यु के बाद गाँव से मिले पैसों को वे कफन खरीदने के बजाय शराब और पूरियों पर खर्च कर देते हैं। यह स्थिति पहली दृष्टि में अमानवीय प्रतीत होती है, पर प्रेमचंद इसे केवल नैतिक पतन के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक विडंबना के रूप में प्रस्तुत करते हैं जहाँ गरीबी ने संवेदनाएँ कुंद कर दी हैं और अस्तित्व का संघर्ष नैतिकता से ऊपर उठ गया है (दुबे, एल. 2019, पृ. 196)। यह कहानी पाठकों को झकझोरती है, क्योंकि इसमें कहीं न कहीं समाज की सामूहिक असंवेदनशीलता भी उजागर होती है।

नैतिक पतन: अभाव में जड़ होती चेतना

घीसू और माधव का आचरण उनके नैतिक पतन का उदाहरण है, जो सामान्य सामाजिक मूल्यों से एकदम भिन्न प्रतीत होता है। परंतु प्रेमचंद इसे किसी दैवी या जन्मजात अमानवीयता के रूप में चित्रित नहीं करते, बल्कि एक ऐसे वर्गीय यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जहाँ वर्षों की भूख, उपेक्षा और अपमान ने आत्मा को शून्य कर दिया है। कहानी में बुधिया की मृत्यु प्रसव के समय होती है, और उसके लिए दवा या सहायता जुटाने का कोई वास्तविक प्रयास दिखाई नहीं देता, जो इस त्रासदी को और गहरा बनाता है। इन पात्रों के पास संवेदना शेष नहीं रही, क्योंकि उनका जीवन कभी मानवीय गरिमा का अनुभव ही नहीं कर सका। कफन न खरीदना, मृत्यु पर शोक न करना, और शराब में डूब जाना ये सभी कार्य नैतिक दृष्टि से त्रासद हैं, परंतु प्रेमचंद यहाँ पाठक को आरोप लगाने नहीं, सोचने के लिए विवश करते हैं। यह दिखाता है कि नैतिक पतन का मूल कारण केवल व्यक्ति की दुर्बलता नहीं, बल्कि समाज की वह संरचना है जो व्यक्ति को धीरे-धीरे अमानवीयता की ओर धकेल देती है।

सामाजिक असंवेदनशीलता और दोगलापन

कहानी का एक महत्वपूर्ण पहलू वह समाज है जो घीसू और माधव को कफन के लिए पैसे तो देता है, पर उनके जीवन भर की भूख और बेबसी की उपेक्षा करता है। प्रेमचंद यहाँ समाज के उस पाखंड को उजागर करते हैं, जो मृत्यु को तो औपचारिक

सम्मान देता है, पर जीवन की गरिमा की रक्षा नहीं करता। गाँव के लोग शोक प्रकट करते हुए चंदा इकट्ठा करते हैं, पर घीसू-माधव की दयनीय दशा उनके लिए कोई स्थायी चिंता का विषय नहीं बनती। समाज की यह असंवेदनशीलता कहानी के अर्थ को और गहरा करती है जहाँ केवल पात्र नहीं, बल्कि पूरा सामाजिक तंत्र नैतिक रूप से खोखला प्रतीत होता है। घीसू और माधव की तरह समाज भी अपनी ज़िम्मेदारियों से बच निकलता है, पर अपने व्यवहार को धार्मिक या सामाजिक कर्तव्य का नाम देता है। इस प्रकार प्रेमचंद 'कफन' के माध्यम से सामाजिक दोगलेपन और करुणा के अभाव पर तीखा प्रश्न उठाते हैं।

विरोधाभास और पाठकीय असहजता

'कफन' की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि यह पाठक को नैतिक रूप से असहज कर देती है और लेखक प्रत्यक्ष उपदेश नहीं देते। घीसू और माधव बुधिया की मृत्यु के बाद शोक की अपेक्षित सामाजिक भूमिका निभाने के बजाय मदिरालय में बैठकर जीवन की विडंबनाओं पर चर्चा करते दिखाई देते हैं, जो पाठक को भीतर तक विचलित करता है। यही प्रेमचंद की शैली की परिपक्वता है, जहाँ नैतिकता उपदेश नहीं, बल्कि आत्मचिंतन का विषय बन जाती है। पाठक यह तय करने में उलझ जाता है कि वह इन पात्रों से घृणा करे या उन्हें परिस्थितियों का शिकार माने। यह द्वंद्व ही कहानी की गहराई है। प्रेमचंद एक मौन प्रश्न छोड़ते हैं क्या नैतिकता केवल उन्हीं से अपेक्षित है जिन्हें जीने की न्यूनतम गरिमा प्राप्त हो? और क्या सामाजिक असमानता स्वयं एक बड़ा नैतिक अपराध नहीं है?

2.2.5. 'सद्गति' – जाति, धर्म और नैतिक अन्याय

प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' जातिगत भेदभाव, धार्मिक पाखंड और नैतिक अन्याय का ऐसा यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना लेखन के समय था। यह कहानी एक दलित चरित्र दुखी चमार के माध्यम से उस सामाजिक व्यवस्था को उजागर करती है, जिसमें धर्म और जाति के नाम पर शोषण और अमानवीयता को स्वीकृति प्राप्त है। दुखी, अपनी बेटी के विवाह के मुहूर्त के लिए पंडित घासीराम के पास जाता है, और बदले में पूरे दिन का कठोर श्रम करता है। अंततः बिना कुछ खाए-पिए थककर वहीं मर जाता है, और उसकी लाश भी समाज के कथित उच्चवर्गीय लोग छूने से कतराते हैं।

यह कहानी प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि का गहरा उदाहरण है, जिसमें वे जाति-आधारित सामाजिक अन्याय के साथ-साथ उस धार्मिक व्यवस्था पर भी प्रश्न उठाते हैं जो समानता और करुणा के बजाय आडंबर और भेदभाव को बढ़ावा देती है। 'सद्गति' एक सीधी, तीखी और असहज कर देने वाली कहानी है जो पाठकों को सोचने पर

मजबूर करती है कि क्या कोई समाज वास्तव में धर्म और नैतिकता का प्रतिनिधि हो सकता है, यदि वह सबसे कमजोर को मरने के बाद भी सम्मान नहीं देता।

जाति आधारित सामाजिक अन्याय और अमानवीयता

कहानी में दुखी चमार का चरित्र उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिसे भारतीय समाज में सदियों से जाति के आधार पर अपमानित और बहिष्कृत किया गया है। प्रेमचंद इस पात्र के माध्यम से दिखाते हैं कि कैसे दलितों का श्रम तो स्वीकार किया जाता है, लेकिन उनके मानवीय अधिकार नहीं। पंडित घासीराम, जो स्वयं को धार्मिक और नैतिक रूप से श्रेष्ठ मानते हैं, दुखी से दिनभर लकड़ियाँ चिरवाते हैं और अन्य काम करवाते हैं, लेकिन उसे भोजन तक नहीं देते। यह सामाजिक विडंबना नहीं तो और क्या है कि जो धर्म उपदेश देता है सबमें आत्मा एक है, वही धर्म-प्रतिनिधि जाति के नाम पर भेद करता है। दुखी की मृत्यु केवल एक व्यक्ति की मृत्यु नहीं है, बल्कि पूरी व्यवस्था की नैतिक असफलता है। प्रेमचंद ने यहाँ धर्म के नाम पर छिपे पाखंड को उजागर किया है कि जब धर्म करुणा खो देता है, तो वह केवल बाह्याचार बनकर रह जाता है।

मृत्यु के बाद भी असमानता: नैतिक मूल्यों की पराजय

कहानी का सबसे पीड़ादायक पहलू यह है कि दुखी की मृत्यु के बाद भी उसकी लाश को कोई हाथ नहीं लगाता। पंडित घासीराम उसे छूने से बचते हैं और अंततः एक रस्सी से बाँधकर घसीटते हुए बाहर ले जाते हैं, क्योंकि उन्हें 'अस्पृश्यता' का भय है। प्रेमचंद ने यहाँ धर्म और नैतिकता के उस विरोधाभास को तीखा किया है जहाँ एक ओर पवित्रता की बात की जाती है, और दूसरी ओर मृत शरीर के साथ भी मानवीय व्यवहार नहीं किया जाता। दुखी का कोई सम्मानजनक अंतिम संस्कार नहीं होता — यह केवल दुखी की नहीं, पूरे समाज की विफलता है। प्रेमचंद इस कहानी में धर्म और जाति की आड़ में छिपे अमानवीय बर्ताव की तीखी आलोचना करते हैं और पाठकों को नैतिक आत्ममंथन के लिए प्रेरित करते हैं।

2.2.6. 'बूढ़ी काकी' – पारिवारिक कर्तव्य और नैतिक जिम्मेदारी

प्रेमचंद की संवेदनशील कथा 'बूढ़ी काकी' पारिवारिक रिश्तों, मानवीय कर्तव्यों और नैतिक जिम्मेदारी का अत्यंत मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। यह कहानी एक वृद्धा – 'बूढ़ी काकी' – के माध्यम से उस वर्ग को स्वर देती है, जो जीवन के अंतिम पड़ाव पर आश्रित होकर जी रहा है और जिसकी ज़रूरतें सीमित होते हुए भी उपेक्षित हो जाती हैं।

‘बूढ़ी काकी’ अपने भतीजे बुद्धिराम के घर रहती हैं, जिसने उनकी संपत्ति अपने नाम कर ली है और अब उनके पालन-पोषण का उत्तरदायी है। जैसे-जैसे उनकी उपयोगिता कम होती जाती है, वैसे-वैसे उनका महत्व भी घटता जाता है। यह कहानी केवल एक वृद्ध महिला की भूख या उपेक्षा की कथा नहीं, बल्कि उस नैतिक विफलता की ओर संकेत करती है जहाँ परिवार जैसी संस्था में दायित्व और संवेदना क्षीण होने लगती है। प्रेमचंद ने ‘बूढ़ी काकी’ की पीड़ा, भूख और मौन आक्रोश के माध्यम से यह दिखाया है कि पारिवारिक संबंध केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि नैतिक जिम्मेदारियों से भी जुड़े होते हैं।

उपेक्षित बुजुर्ग और पारिवारिक विफलता

कहानी में ‘बूढ़ी काकी’ का चरित्र एक ऐसी वृद्धा का प्रतिनिधित्व करता है, जो परिवार के भीतर होते हुए भी अकेली है। वह भोजन, स्नेह और आदर तीनों से वंचित है। बुद्धिराम और उनकी पत्नी रूपा उन्हें बोझ समझने लगते हैं। एक पारिवारिक आयोजन के अवसर पर जब स्वादिष्ट व्यंजन बनते हैं, तो काकी की भूख और अधिक तीव्र हो जाती है, पर उन्हें भोजन नहीं दिया जाता। अंततः वे लाचार होकर स्वयं भोजन की ओर बढ़ती हैं, और यह दृश्य परिवार की संवेदनहीनता को उजागर करता है। यहाँ ‘भूख’ केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मान-सम्मान और अपनत्व की भूख है। प्रेमचंद वृद्धों की उपेक्षा को केवल पारिवारिक समस्या नहीं, बल्कि नैतिक क्षरण का संकेत मानते हैं।

दया, पुनर्परिग्रह और नैतिक जागृति

कहानी का महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है जब बुद्धिराम की पत्नी रूपा को अपनी भूल का बोध होता है और वह काकी के प्रति व्यवहार में परिवर्तन लाती है। यह परिवर्तन नैतिक जागृति का प्रतीक है। प्रेमचंद संकेत करते हैं कि संबंधों में भूल हो सकती है, पर आत्मचिंतन और करुणा से सुधार संभव है। रूपा का परिवर्तन पाठक के भीतर भी संवेदना जगाता है। इस प्रकार प्रेमचंद स्पष्ट करते हैं कि परिवार केवल रक्त-संबंध नहीं, बल्कि कर्तव्य और नैतिक उत्तरदायित्व से बंधा हुआ संबंध है। ‘बूढ़ी काकी’ में यही मूल शिक्षा निहित है कि नैतिकता बड़े आदर्शों में नहीं, बल्कि दैनिक व्यवहार में जीवित रहती है।

2.2.7. ‘बड़े घर की बेटी’ – त्याग, सहनशीलता और नैतिक मर्यादा

‘बड़े घर की बेटी’ में प्रेमचंद परिवार की इज्जत और घर के तनाव को साथ रखकर दिखाते हैं। कथा गौरीपुर के जमींदार बेनीमाधव सिंह के घर की है। पुराना वैभव घट चुका है, पर मान-प्रतिष्ठा का भार बना रहता है। बड़े बेटे श्रीकंठ सिंह पढ़े-लिखे और संयमी हैं। वे नीति और न्याय को जीवन का आधार मानते हैं। छोटा बेटा लालबिहारी

तेज स्वभाव का है। वह जल्दी भड़कता है और बात बिगाड़ देता है। ऐसे वातावरण में आनंदी आती है। वह ताल्लुकेदार भूपसिंह की बेटी है। लोग मानते हैं कि 'बड़े घर की बेटी' अभिमान करेगी। पर आनंदी घर के काम, भाषा, और रीति सीखती है। वह तंगी को देखकर तुलना नहीं करती। वह सादगी अपनाकर भी अपना स्वाभिमान बचाती है। उसकी नम्रता डर से नहीं आती। वह समझ से आती है। यही समझ उसे घर में स्वीकार्य बनाती है। प्रेमचंद उसके व्यवहार से दिखाते हैं कि त्याग का अर्थ स्वयं को मिटाना नहीं। त्याग का अर्थ रिश्तों को संभालना है। आनंदी का आचरण घर की चुप पीड़ा को आवाज देता है, बिना शोर किए। (प्रेमचंद, 2015, पृ. 10-12)।

कहानी का संकट घी और खर्च की बात से उभरता है। छोटी कमी बड़े ताने में बदल जाती है। लालबिहारी का क्रोध आनंदी के अपमान तक पहुँचता है। वह मर्यादा लांघता है और हिंसा कर बैठता है। श्रीकंठ इसे अन्याय मानते हैं और घर छोड़ने का निर्णय लेते हैं। यह निर्णय सिद्धांत से निकला है, पर परिवार टूटने लगता है। इसी मोड़ पर आनंदी की सहनशीलता सबसे तेज दिखती है। वह बदले की भाषा नहीं चुनती। वह यह भी नहीं कहती कि सब भूल जाओ। वह गलती को गलत कहती है, पर समाधान भी खोजती है। वह मायके का नाम लेकर दबाव नहीं बनाती। वह घर की बात घर में रखना चाहती है। जब लालबिहारी शर्म से घर छोड़ने निकलता है, आनंदी उसे रोकती है। वह उसे माफी मांगने और सुधारने की राह देती है। वह श्रीकंठ को भी समझाती है कि न्याय में सुधार का अवसर होना चाहिए। अंत में घर में मेल होता है, क्योंकि अहं टूटता है और समझ जीतती है। प्रेमचंद यहाँ नैतिक मर्यादा को रिश्तों की सुरक्षा-रेखा बनाते हैं। उसी रेखा के भीतर परिवार बचता है। (प्रेमचंद, 2015, पृ. 12-15)।

त्याग का विवेकपूर्ण रूप: आत्मसम्मान के साथ संयम

आनंदी का त्याग विवेक से जुड़ा है, केवल भावना से नहीं। वह बड़े घर से आई है, पर अपनी हैसियत नहीं जताती। वह नए घर की कमी को अपमान नहीं मानती। वह भोजन, कपड़े, और सुविधा में सादगी अपनाती है। वह घर के काम में हाथ बँटाती है और बड़ों का मान रखती है। यह सब वह खुशी से करती है, दिखावे से नहीं। घी वाले प्रसंग में उसे चोट लगती है, फिर भी वह बाहर की मदद नहीं बुलाती। वह पिता भूपसिंह का नाम लेकर दबाव नहीं बनाती। वह समझती है कि इससे पति की स्थिति कमजोर होगी। वह अपने स्वाभिमान को चुप्पी में नहीं छिपाती। वह सही समय पर साफ शब्दों में बात रखती है। वह लालबिहारी की गलती को गलत कहती है। साथ ही वह उसे सुधार का अवसर देती है। यही संयम उसका आत्मसम्मान है। वह पति श्रीकंठ के न्यायबोध का सम्मान करती है। पर वह घर तोड़ने वाले निर्णय को रोकती भी है। यह त्याग रिश्तों को कमजोर नहीं करता। यह रिश्तों को टिकाऊ बनाता है। (प्रेमचंद, 2015, पृ. 11-14)।

सहनशीलता: नारी शक्ति की मौन अभिव्यक्ति

कहानी में सहनशीलता आनंदी की मौन शक्ति बनकर उभरती है। वह हर ताने का जवाब ताने से नहीं देती। वह घर की स्थिति को पहले समझती है, फिर प्रतिक्रिया देती है। बेनीमाधव सिंह का मान, श्रीकंठ का सिद्धांत, और लालबिहारी का क्रोध—सबके बीच वह संतुलन रखती है। चोट और अपमान के बाद भी वह घर को दो हिस्सों में नहीं बाँटती। वह अपने दुःख को हथियार नहीं बनाती। वह पति को उकसाकर आग नहीं बढ़ाती। वह बोलती है, पर सीमित और असरदार शब्दों में। वह लालबिहारी के भीतर अपराधबोध जगाती है, ताकि बदलाव अंदर से आए। उसकी सहनशीलता अन्याय को स्वीकार करना नहीं है। वह अन्याय को पहचानती है और उसे रोकने की दिशा में चलती है। वह समय लेती है, ताकि बात सुधर सके। यह धैर्य कमजोरी नहीं है। यह स्थिति को संभालने की क्षमता है। अंत में उसी धैर्य से लालबिहारी झुकता है और श्रीकंठ का क्रोध नरम पड़ता है। (प्रेमचंद, 2015, पृ. 12-15)।

नैतिक मर्यादा: संबंधों की गरिमा का आधार

‘बड़े घर की बेटी’ में नैतिक मर्यादा रिश्तों की गरिमा बचाती है। घर में गरीबी की चुभन है, पर इज्जत का आग्रह भी है। इसी वजह से व्यवहार की सीमा बहुत अहम हो जाती है। लालबिहारी जब बहू पर हाथ उठाता है, वह मर्यादा तोड़ देता है। श्रीकंठ जब घर छोड़ने का निर्णय लेते हैं, वे मर्यादा बचाना चाहते हैं। पर यह मर्यादा अगर कठोर बन जाए, तो घर टूट सकता है। आनंदी मर्यादा को दिखावे का नियम नहीं मानती। वह उसे संबंध निभाने की भाषा मानती है। वह चाहती है कि विवाद बाहर न जाए। इससे घर की प्रतिष्ठा भी बचे और रिश्ते भी बचें। वह लालबिहारी को बताती है कि अधिकार के साथ जिम्मेदारी होती है। वह श्रीकंठ को बताती है कि न्याय में करुणा भी जरूरी है। जब लालबिहारी माफी मांगने को तैयार होता है, तभी गरिमा लौटती है। मर्यादा यहाँ प्रेम और अनुशासन का संतुलन बनती है। उसी संतुलन से परिवार फिर एक होता है। (प्रेमचंद, 2015, पृ. 13-15)।

2.2.8. ‘दो बैलों की कथा’ – सहानुभूति और नैतिक मानवीयता

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी ‘दो बैलों की कथा’ केवल पशुओं की कथा नहीं है, बल्कि यह मानवीय संवेदना, सहानुभूति और नैतिकता का गहरा प्रतीकात्मक रूप है। हीरा और मोती नामक दो बैल झूरी नामक किसान के हैं, जो उन्हें अपने परिवार के सदस्य की तरह मानता है। परिस्थितियों के कारण झूरी की पत्नी के कहने पर वे बैल उसके साले गया के यहाँ भेज दिए जाते हैं, जहाँ उन्हें कठोर व्यवहार और शोषण का सामना करना पड़ता है। इन बैलों के माध्यम से प्रेमचंद ने उस वर्ग की पीड़ा को स्वर

दिया है जो न बोल सकता है, न प्रतिरोध कर सकता है, लेकिन फिर भी अपनी संवेदना और आत्मबल से अन्याय का विरोध करता है।

यह कहानी पशुओं के माध्यम से मानवीय सामाजिक संरचना पर तीखा संकेत करती है, जिसमें सहनशील प्राणियों का उपयोग केवल श्रम के लिए किया जाता है। लेकिन प्रेमचंद यहाँ इन बैलों को केवल प्रतीक नहीं बनाते, बल्कि वे उन्हें एक नैतिक सत्ता का वाहक भी बनाते हैं जो अन्याय के विरुद्ध खड़े होने की क्षमता रखते हैं। कहानी यह सिखाती है कि सहानुभूति और मानवीयता केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं होती, बल्कि पशु भी उसे अनुभव करते हैं और उसी आधार पर निर्णय लेते हैं।

सहानुभूति का विस्तार: पशु मन और मानवीय संवेदना

हीरा और मोती का संबंध केवल साथ काम करने का नहीं, बल्कि गहरे भावनात्मक जुड़ाव का है। जब उन्हें अलग परिवेश में ले जाया जाता है, तो वे इसे केवल स्थान परिवर्तन नहीं, बल्कि स्नेह से वंचित होने के रूप में अनुभव करते हैं। गया उनके साथ कठोरता से पेश आता है, उन्हें पर्याप्त चारा नहीं देता और मारता-पीटता है, जिससे उनका मन आहत होता है। प्रेमचंद इन बैलों के मनोभावों को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि पाठक यह सोचने को विवश हो जाता है कि क्या संवेदना और सहानुभूति केवल मनुष्यों का गुण है? हीरा और मोती की एक-दूसरे के लिए चिंता, साथ रहने का आग्रह, और अंततः रस्सियाँ तोड़कर वापस झूरी के घर लौट आना यह सब उन्हें केवल पशु नहीं, बल्कि संवेदनशील प्राणी के रूप में स्थापित करता है। यह कहानी उन “मूक प्राणियों” को भी आवाज़ देती है जो मनुष्यों के व्यवहार से प्रभावित होते हैं और उसी संवेदना के स्तर पर प्रतिक्रिया करते हैं। प्रेमचंद यहाँ मानवीय नैतिकता को व्यापक अर्थ देते हैं, जो प्राणी मात्र के लिए दया और करुणा का आग्रह करती है।

अन्याय के विरुद्ध संघर्ष: पशु प्रतीकों में नैतिक प्रतिरोध

कहानी का एक सशक्त पक्ष यह है कि हीरा और मोती केवल पीड़ित नहीं रहते वे अपने ऊपर हुए अत्याचार के विरुद्ध प्रतीकात्मक प्रतिरोध भी करते हैं। जब गया उन्हें जबरन हल में जोतता है और मारता है, तो वे काम में ढिलाई दिखाते हैं और अंततः जुए को तोड़कर भाग निकलते हैं। यह प्रेमचंद का गहरा प्रतीक है जो यह दर्शाता है कि अन्याय चाहे जहाँ भी हो, प्रतिकार की भावना सभी संवेदनशील जीवों में होती है। यह संघर्ष केवल बाह्य नहीं है, बल्कि भीतर की नैतिक चेतना से उपजा हुआ है। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि नैतिकता केवल समाज के नियमों में नहीं, बल्कि संवेदना में निहित होती है। हीरा और मोती का अपने पुराने मालिक के पास लौट आना इस बात

का संकेत है कि स्नेह और न्याय ही सच्चे संबंधों का आधार हैं। इस प्रकार 'दो बैलों की कथा' मनुष्य को यह सिखाती है कि यदि पशु भी अन्याय के विरुद्ध खड़े हो सकते हैं, तो मनुष्य को तो और अधिक संवेदनशील और न्यायप्रिय होना चाहिए।

2.2.9. 'पूस की रात' – संघर्ष, गरीबी और नैतिक विवेक

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पूस की रात' भारतीय ग्रामीण जीवन की गरीबी, संघर्ष और नैतिक विवेक का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। कहानी का मुख्य पात्र हल्कू, एक गरीब किसान है जो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं के लिए भी संघर्षरत है। उसकी पत्नी का नाम मुन्नी है, जो घर की तंगी और कर्ज की चिंता में झुकी रहती है। कहानी की पृष्ठभूमि पूस की कड़ाके की सर्द रात है, जो न केवल प्राकृतिक कठिनाई को दर्शाती है, बल्कि हल्कू जैसे किसानों के जीवन की कठोर सच्चाई को भी उजागर करती है।

हल्कू को अपने खेत की रखवाली करनी है, लेकिन उसके पास ठंड से बचने के लिए पर्याप्त कपड़े नहीं हैं, क्योंकि वह अपने कम्बल के लिए बचाए पैसे भी साहूकार को लगान चुकाने में दे देता है। वह सारी रात ठिठुरता है और उसके साथ उसका कुत्ता जबरा भी रहता है। वह अलाव जलाने की कोशिश करता है, पर ठंड इतनी तीखी है कि उसका शरीर जवाब देने लगता है। अंततः जब उसकी सहनशक्ति की सीमा पार हो जाती है, तो वह खेत की रखवाली छोड़कर आग के पास बैठ जाता है। उसी दौरान जानवर फसल चर जाते हैं। यही बिंदु प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि को परिभाषित करता है: जब संघर्ष असहनीय हो जाए, तो नैतिकता केवल कर्तव्य नहीं, विवेक और आत्मरक्षा का प्रश्न बन जाती है। यह कहानी गरीबी की उस गहराई को उजागर करती है जहाँ व्यक्ति के पास नैतिकता निभाने की शक्ति भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है।

संघर्ष और आत्मसम्मान: किसान की दोहरी पीड़ा

हल्कू का चरित्र उस किसान का प्रतिनिधित्व करता है जो केवल भूमि का स्वामी नहीं, बल्कि निरंतर संघर्ष करता हुआ श्रमिक भी है। वह न केवल प्रकृति से, बल्कि सामाजिक और आर्थिक शोषण से भी जूझता है। ठंड से काँपते हुए, थके शरीर के साथ खेत की रखवाली करना उसकी मजबूरी है, क्योंकि फसल ही उसकी जीविका है। लेकिन प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि जब व्यक्ति की सीमाएँ समाप्त होने लगती हैं, तो वह अपने अस्तित्व को बचाने का निर्णय ले सकता है। हल्कू जब ठंड से बचने के लिए आग के पास सिमट जाता है और जानवरों को खेत में घुसने देता है, तो यह आलस्य नहीं बल्कि टूटती हुई शारीरिक और मानसिक शक्ति का संकेत है। प्रेमचंद इस घटना को नायकीय या कायरतापूर्ण रूप में नहीं दिखाते, बल्कि मानवीय सीमा के रूप

में प्रस्तुत करते हैं। यह कहानी उस दोहरी पीड़ा को उजागर करती है जहाँ किसान का श्रम और उसका जीवन आमने-सामने खड़े हो जाते हैं।

गरीबी और विवेक: नैतिकता की सीमाएं

कहानी का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि हल्कू का निर्णय असावधानी का परिणाम नहीं, बल्कि परिस्थितियों से उपजा विवेक है। वह समझता है कि यदि वह स्वयं ही जीवित नहीं रहेगा, तो खेत और फसल का कोई अर्थ नहीं रहेगा। सुबह जब मुन्नी खेत की उजड़ी फसल देखती है, तो दुख प्रकट करती है, पर हल्कू भीतर ही भीतर राहत महसूस करता है कि अब कम से कम उसे उस भीषण ठंड में रात नहीं काटनी पड़ेगी। प्रेमचंद इस दृश्य के माध्यम से एक गहरा प्रश्न उठाते हैं क्या नैतिकता हमेशा कर्तव्य की कठोरता से जुड़ी होनी चाहिए, या उसमें जीवन की रक्षा का भी स्थान है? गरीबी व्यक्ति की आदर्शों को सीमित कर देती है। हल्कू का निर्णय समाज के लिए एक चुनौती है: क्या हम उससे अपेक्षा कर सकते हैं कि वह अपने जीवन की कीमत पर फसल बचाए? 'पूस की रात' इस द्वंद्व को बिना उपदेश के सामने रखती है और पाठक को सोचने के लिए छोड़ देती है। यही प्रेमचंद की यथार्थवादी नैतिक दृष्टि है, जो करुणा और समझ पर आधारित है।

2.2.10. 'शतरंज के खिलाड़ी' – नैतिक उदासीनता और सामाजिक पतन

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' भारतीय समाज के उच्च वर्ग में व्याप्त नैतिक उदासीनता और राजनीतिक निष्क्रियता का तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करती है। कहानी के दो प्रमुख पात्र, मीर रोशन अली और मिर्जा सज्जाद अली, अवध के सामंती परिवेश से हैं, जो अपने विलासपूर्ण जीवन, शतरंज के खेल और आत्ममुग्धता में इतने तल्लीन हैं कि उन्हें देश, समाज या राजनीतिक घटनाओं की कोई चिंता नहीं।

कहानी की पृष्ठभूमि 1856 के समय की है, जब अंग्रेजी साम्राज्य अवध को हड़पने की तैयारी कर रहा था, लेकिन ये शासकवर्गीय पात्र अपने दायित्वों से पूरी तरह विमुख हैं। अवध के नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी से हटाकर अंग्रेजी शासन स्थापित किया जा रहा है, पर मीर और मिर्जा अपनी बाज़ियों में डूबे रहते हैं। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि जब नैतिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व समाप्त हो जाते हैं, तो पतन केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पूरे समाज का होता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' एक ऐतिहासिक कहानी होते हुए भी सामाजिक नैतिकता और जनउत्तरदायित्व पर गहरा चिंतन प्रस्तुत करती है।

नैतिक उदासीनता: कर्तव्य से पलायन का प्रतीक

मीर रोशन अली और मिर्जा सज्जाद अली ऐसे अभिजात वर्गीय व्यक्तियों का प्रतीक हैं जो नैतिक दृष्टि से इतने शिथिल हो चुके हैं कि उन्हें अपने आसपास घट रही सामाजिक और राजनीतिक हलचलों की भी कोई परवाह नहीं। जब अंग्रेजी सेना अवध पर अधिकार करने की ओर अग्रसर होती है, तब भी ये दोनों मित्र शतरंज की बाज़ियों में व्यस्त रहते हैं और घर-परिवार की जिम्मेदारियों से भी कतराते हैं। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि जब समाज का प्रभावशाली वर्ग अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाता है, तो यह केवल व्यक्तिगत दोष नहीं, बल्कि व्यापक नैतिक संकट होता है। यह उदासीनता केवल खेल तक सीमित नहीं, बल्कि उनकी जीवन-दृष्टि का हिस्सा बन जाती है। कहानी रेखांकित करती है कि जब नेतृत्वकर्ता ही अपने समय की चुनौतियों से कट जाएं, तो पतन अवश्यभावी है। (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 378)।

सामाजिक संरचना का विघटन और मानसिक विलासिता

कहानी में जिस प्रकार मीर और मिर्जा अपने सामाजिक दायित्वों से दूर भागते हैं और मानसिक रूप से केवल अपनी शतरंज की दुनिया में खोए रहते हैं, वह तत्कालीन सामाजिक संरचना के विघटन का संकेत है। प्रेमचंद स्पष्ट करते हैं कि यह मानसिक विलासिता केवल व्यक्तिगत कमजोरी नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों के क्षरण का द्योतक है। वे न तो प्रशासनिक कर्तव्यों में रुचि लेते हैं और न ही समाज की स्थिति पर चिंतन करते हैं। अंततः स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि वे शहर से बाहर एक सुनसान स्थान पर जाकर शतरंज खेलने लगते हैं, ताकि कोई उन्हें बाधित न करे। उनका जीवन मनोरंजन और पलायन का प्रतीक बन जाता है। यह स्थिति दिखाती है कि जब समाज का उच्च वर्ग आत्ममुग्ध हो जाए, तो सामाजिक संतुलन डगमगा जाता है। (राय, एस. 2018, पृ. 152)।

ऐतिहासिक संदर्भ में नैतिक विफलता की कथा

1856 का अवध जहाँ यह कहानी आधारित है भारतीय इतिहास में एक निर्णायक मोड़ था। अंग्रेजों ने नवाब वाजिद अली शाह को हटाकर अवध को ब्रिटिश शासन में मिला लिया। यह राजनीतिक पराजय केवल सैन्य कारणों से नहीं, बल्कि आंतरिक शिथिलता का भी संकेत थी। प्रेमचंद ने इस ऐतिहासिक घटना को पृष्ठभूमि बनाकर यह दिखाया कि जब समाज का नेतृत्व वर्ग ही अपने दायित्वों को भूल जाए, तो बाहरी आक्रमण का प्रतिरोध कमजोर पड़ जाता है। कहानी के अंत में दोनों मित्र आपस में ही शतरंज को लेकर विवाद में उलझ जाते हैं और लगभग एक-दूसरे पर बंदूक तान देते हैं, जो उनकी संकीर्ण मानसिकता का प्रतीक है। मीर और मिर्जा केवल दो व्यक्ति नहीं, बल्कि उस पतनशील अभिजात वर्ग के प्रतीक हैं जिसने अपने विलास और उदासीनता से समाज को निर्बल बना दिया।

2.3. सामाजिक यथार्थ और नैतिक चेतना

प्रेमचंद का साहित्य केवल कहानी कहने का माध्यम नहीं है, बल्कि सामाजिक सच्चाइयों को समझने और उन पर नैतिक दृष्टिकोण से विचार करने की सशक्त प्रक्रिया है। उनकी कहानियाँ भारत के उस यथार्थ से जन्मी हैं, जहाँ जनता जीवन, संघर्ष और अस्तित्व की बुनियादी लड़ाइयों में उलझी हुई थी। परंतु प्रेमचंद के यथार्थवाद की विशेषता यह है कि वह केवल समाज की कुरूपताओं को उजागर नहीं करता, बल्कि उसमें छिपी हुई नैतिकता की संभावनाओं को भी सामने लाता है। उनके पात्र संघर्ष करते हैं, पीड़ित होते हैं, गलती भी करते हैं, लेकिन कहीं न कहीं उनके भीतर नैतिक चेतना जीवित रहती है, जो उन्हें सामान्य से असामान्य बना देती है। यही प्रेमचंद के यथार्थ और नैतिक दृष्टिकोण की जटिलता और प्रासंगिकता है।

प्रेमचंद का यथार्थ स्थूल घटनाओं का यथार्थ नहीं है, बल्कि मनुष्य के भीतर चल रहे नैतिक द्वंद्वों, सामाजिक दबावों और आंतरिक विवेक के बीच का संघर्ष है। वे नायक और खलनायक के स्थूल खांचों को तोड़कर उन पात्रों को गढ़ते हैं जो अपने निर्णयों में परिस्थितियों के अनुसार नैतिक निर्णय लेने का प्रयास करते हैं। उनकी कहानियों में नैतिकता किसी धार्मिक उपदेश की तरह नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन की प्रक्रिया के रूप में प्रकट होती है। जैसे 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर अपने पिता के दबाव और प्रलोभन के बावजूद ईमानदारी का रास्ता चुनते हैं, तो यह केवल चरित्र की अच्छाई नहीं है, बल्कि नैतिक विवेक के सक्रिय होने की प्रक्रिया है। प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि यथार्थ चाहे जितना कठोर हो, व्यक्ति में नैतिक जागरूकता का बीज कभी पूरी तरह मरता नहीं है (शुक्ला, र. 2018, पृ. 68)।

प्रेमचंद की कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को उसकी पूरी जटिलता के साथ प्रस्तुत करती हैं। वे समाज की आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव, धार्मिक पाखंड, स्त्री की स्थिति, वृद्धों की उपेक्षा, बच्चों की मासूम अपेक्षाएँ, और शोषण के विविध रूपों को जिस साहस और संवेदनशीलता से चित्रित करते हैं, वह उन्हें अपने समय से बहुत आगे ले जाता है। लेकिन वे इन स्थितियों का चित्रण मात्र इसलिए नहीं करते कि पाठक केवल सहानुभूति रखे या आक्रोशित हो, बल्कि इसलिए कि वह अपने भीतर के नैतिक विवेक को पुनः जागृत करे। प्रेमचंद के पात्रों का संघर्ष हमें यह बताता है कि जीवन की सबसे बड़ी लड़ाई बाहरी शोषण से नहीं, बल्कि भीतर की नैतिकता और व्यवहार के बीच की खींचतान से होती है। उनकी कहानियाँ पाठकों के मन में यह सवाल पैदा करती हैं कि मैं क्या करूँ?" यही नैतिक चेतना की शुरुआत है (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 370)।

प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि जड़ नहीं है, वह लचीली, बहुआयामी और परिस्थिति-जन्य है। वे यह मानते हैं कि नैतिकता कोई सार्वभौमिक आदर्श नहीं, बल्कि एक

सामाजिक संदर्भ में जन्म लेने वाली चेतना है जो हर व्यक्ति में भिन्न रूप में प्रकट होती है। जैसे 'ईदगाह' में छोटा हामिद अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है,, तो वह बचपन की मासूम समझ से प्रेरित होकर एक नैतिक कार्य करता है। यहाँ नैतिकता केवल त्याग नहीं, बल्कि दूसरों की पीड़ा को समझने की संवेदना बन जाती है। प्रेमचंद की यह नैतिकता भावुकता नहीं है, बल्कि गहरी सामाजिक चेतना से उपजी हुई मानवीयता है। यही कारण है कि उनके पात्रों के नैतिक निर्णय यथार्थ के दबावों के बीच भी प्रासंगिक, प्रेरक और विश्वसनीय लगते हैं (गुप्ता, बी. 2017, पृ. 230)।

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिक चेतना का विकास केवल कथानक के अंत में नहीं होता, बल्कि वह पूरी कहानी के प्रवाह में अंतःस्राव की तरह बसी होती है। वे अपने पात्रों को परिस्थितियों के अनुरूप बदलते दिखाते हैं, और इस परिवर्तन की प्रक्रिया में पाठक स्वयं भी बदलाव के लिए प्रेरित होता है। उनके लिए साहित्य केवल मनोरंजन या सौंदर्यबोध का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक हस्तक्षेप का जरिया है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में राजनीतिक पराजय केवल एक ऐतिहासिक परिपाटी नहीं, बल्कि नैतिक विफलता का प्रतीक बन जाती है। 'बूढ़ी काकी' में परिवार के भीतर वृद्धों के प्रति दया का पुनर्जागरण केवल पारिवारिक संबंधों को नहीं, नैतिक रिश्तों को भी जोड़ता है। प्रेमचंद की यही विशेषता है कि वे यथार्थ को केवल देखने नहीं, जीने और बदलने की प्रेरणा देते हैं।

2.3.1. जाति और वर्ग के नैतिक आयाम

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में जाति और वर्ग की जटिल संरचना केवल सामाजिक यथार्थ का हिस्सा नहीं, बल्कि उनके पात्रों की नैतिक परीक्षा की भूमि भी है। उन्होंने अपने समय के उस भारत को चित्रित किया, जहाँ जातीय भेदभाव और वर्गीय विषमता व्यक्ति की गरिमा, अवसर और आत्मनिर्णय की क्षमताओं को नियंत्रित करती थी। कहानी 'सद्गति' इसका सर्वाधिक तीव्र उदाहरण है, जहाँ दुखी चमार पंडित घासीराम के पास 'मुहूर्त' जानने के लिए जाता है, लेकिन अंततः शोषण और अपमान का शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह घटना केवल सामाजिक अन्याय नहीं, बल्कि उस नैतिक विफलता का प्रतीक है जहाँ पंडित घासीराम जैसे उच्च जाति के व्यक्ति धर्म और कर्मकांड का उपयोग शोषण को जायज ठहराने के लिए करते हैं। प्रेमचंद यहाँ यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या नैतिकता केवल जाति विशेष की बपौती है? यदि ठाकुर जी जैसे धार्मिक व्यक्ति करुणा और मानवता से शून्य हैं, तो फिर धर्म की नैतिक भूमिका क्या रह जाती है? यह कहानी जातीय अहंकार और सामाजिक पाखंड पर गहरा प्रहार करती है, जहाँ धर्म केवल औपचारिकता बन जाता है और जाति ही नैतिक व्यवहार का निर्धारक बन जाती है।

इसी प्रकार 'कफन' में भी प्रेमचंद जाति और वर्ग के अंतर्संबंधों को अधिक जटिल परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ घीसू और माधव जैसे दलित और आर्थिक रूप से कमजोर पात्रों को समाज एक निश्चित दृष्टि से देखता है — आलसी, असंवेदनशील और स्वार्थी। लेकिन प्रेमचंद इस सतही मूल्यांकन के परे जाकर यह दिखाते हैं कि जब किसी वर्ग को पीढ़ियों तक गरीबी, भुखमरी और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है, तो उसका नैतिक विवेक भी एक सीमा के बाद कुंठित हो जाता है। इन पात्रों के भीतर भी पीड़ा है, लेकिन अभावों ने उनके भीतर की संवेदना को धीरे-धीरे जड़ बना दिया है। यहाँ वर्ग केवल आर्थिक स्थिति नहीं, बल्कि सामाजिक मूल्य निर्धारण का आधार बन जाता है। प्रेमचंद इस विडंबना को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि कैसे एक ही समाज में कुछ लोगों के नैतिक अपराध क्षम्य होते हैं (जैसे ठाकुर जी), जबकि गरीबों का प्रत्येक कार्य 'अनीति' घोषित कर दिया जाता है। यह वर्गीय दृष्टिकोण समाज में नैतिकता की दोहरी मानक प्रणाली को उजागर करता है। प्रेमचंद इस अंतर्विरोध के माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि जब तक जाति और वर्ग व्यक्ति की नैतिक स्वतंत्रता और गरिमा को नियंत्रित करेंगे, तब तक समाज में सच्ची नैतिक चेतना विकसित नहीं हो सकती (त्रिपाठी, के. 2016, पृ. 172)।

2.3.2. गरीबी, शोषण और मानवीय गरिमा

प्रेमचंद के साहित्य में गरीबी कोई सहानुभूति अर्जित करने का उपकरण नहीं, बल्कि वह सामाजिक संरचना का केंद्र बिंदु है, जहाँ मनुष्य की वास्तविक परीक्षा होती है। उनका कथा-संसार ऐसे पात्रों से भरा है जो भयंकर आर्थिक अभावों के बीच भी अपनी मानवीय गरिमा को बचाए रखने का प्रयास करते हैं, कभी सफल होते हैं, तो कभी हालात के सामने विवश हो जाते हैं। 'पूस की रात' में हल्कू जैसे पात्र का संघर्ष केवल खेत की रखवाली करने तक सीमित नहीं है, बल्कि ठंड और भूख से जूझते हुए अपने निर्णय को सही ठहराने की नैतिक प्रक्रिया भी है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यह सवाल उठाते हैं कि क्या एक गरीब व्यक्ति को भी वही नैतिक कसौटी पर परखा जाना चाहिए जिस पर सुविधाभोगी व्यक्ति को? जब हल्कू खेत की सुरक्षा छोड़कर अलाव तापने चला जाता है और फसल नष्ट हो जाती है, तो वह अपने विवेक से यह तय करता है कि जीवन की प्राथमिकता जान है, अन्न नहीं। यह निर्णय उसके नैतिक पतन का नहीं, बल्कि गरिमा और आत्मरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि गरीबी में नैतिकता का अर्थ भिन्न होता है वह बाह्य नियमों से नहीं, बल्कि आंतरिक विवेक से संचालित होती है।

इसी प्रकार 'कफन' में प्रेमचंद गरीबी और शोषण की चरम परिणति का चित्र प्रस्तुत करते हैं, जहाँ मानवीय संवेदना तक जैसे कुंठित हो जाती है। घीसू और माधव की निष्क्रियता, चिता की व्यवस्था न करना, और पैसे से शराब पी जाना यह क्रूर और

अमानवीय कृत्य लगता है। परंतु प्रेमचंद यहां इस व्यवहार की पृष्ठभूमि में उस सामाजिक यथार्थ को सामने रखते हैं, जिसमें निरंतर उपेक्षा, तिरस्कार और दैन्य झेलते हुए मनुष्य अपने भीतर की संवेदना खो देता है। उन्होंने यह दिखाया कि शोषण सिर्फ शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक और नैतिक स्तर पर भी होता है। इस कहानी में गरीबी ने जिस प्रकार से दो पीढ़ियों को नैतिक चेतना से लगभग रिक्त कर दिया है, वह समाज की उस व्यवस्था की आलोचना है जो गरीब को केवल दया का पात्र मानती है, लेकिन उसके मानवीय अधिकार और गरिमा की बात नहीं करती। घीसू और माधव कोई हीन पात्र नहीं हैं, वे समाज की उस चुप्पी का उत्तर हैं जिसने उन्हें इंसान से 'प्रतिक्रिया' में बदल दिया। प्रेमचंद की यह दृष्टि यथार्थ को देखने का एक क्रांतिकारी तरीका प्रस्तुत करती है वह पीड़ा को आरोप की तरह नहीं, बल्कि समझ और विवेचना की तरह प्रस्तुत करते हैं।

‘ईदगाह’ जैसी कहानियाँ इस विचार को संतुलित करती हैं, जहाँ गरीबी के बावजूद मानवीय गरिमा और नैतिक उच्चता उजागर होती है। हामिद, एक गरीब बच्चा है, जो मेले में अपने लिए खिलौना खरीद सकता था, पर वह अपनी दादी के दुख को प्राथमिकता देता है और उनके लिए चिमटा खरीदता है। यह प्रेमचंद की उस नैतिक दृष्टि का उदाहरण है जहाँ अभावों के बीच भी व्यक्ति संवेदना, त्याग और नैतिक चेतना का परिचय दे सकता है। प्रेमचंद गरीबी को केवल पीड़ित अवस्था के रूप में नहीं, बल्कि परीक्षा की भूमि के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्र परिस्थितियों के अधीन होकर भी निर्णय लेते हैं, और यही निर्णय उनकी मानवीय गरिमा को रेखांकित करते हैं। चाहे वह हल्कू हो, हामिद हो या घीसू-माधव प्रेमचंद दिखाते हैं कि गरीबी केवल कमजोरी नहीं, बल्कि एक सामाजिक संवाद का अवसर भी है, जहाँ से नैतिक चेतना का पुनर्जन्म संभव है (शुक्ला, र. 2018, पृ. 80)।

2.3.3. ग्रामीण समाज की नैतिक संरचना

प्रेमचंद की रचनाओं में ग्रामीण भारत केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि एक जीवंत सामाजिक संरचना है जिसमें नैतिक मूल्यों, परंपराओं और आपसी संबंधों की गहरी छाप है। वे भारतीय ग्रामीण जीवन की आंतरिक जटिलताओं, मान्यताओं और नैतिक द्वंद्वों को उस सूक्ष्मता से प्रस्तुत करते हैं, जो साहित्य को समाज का प्रतिबिंब बना देती है। प्रेमचंद का यह चित्रण न तो आदर्शवादी है और न ही केवल यथार्थवादी यह एक ऐसी मिश्रित दृष्टि है जिसमें ग्रामीण समाज के नैतिक आधार, सामूहिकता, पारिवारिक मूल्य और धर्मनिष्ठा तो दिखाई देते हैं, लेकिन साथ ही स्वार्थ, अन्याय और पाखंड भी उजागर होते हैं। ‘पंच परमेश्वर’ जैसी कहानी इस सामाजिक नैतिकता का सशक्त उदाहरण है, जहाँ व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर उठकर सामूहिक न्याय की भावना को प्रतिष्ठा दी जाती है।

‘पंच परमेश्वर’ में जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की गहरी मित्रता तब परीक्षा में पड़ती है, जब जुम्मन की खाला अपने भरण-पोषण के विवाद को पंचायत में ले जाती है और सरपंच के रूप में अलगू को चुना जाता है। उस क्षण अलगू के सामने मित्रता और न्याय के बीच कठिन नैतिक द्वंद्व उपस्थित होता है। फिर भी वह निष्पक्ष निर्णय देते हुए जुम्मन के विरुद्ध फैसला सुनाता है, क्योंकि उसके लिए पंचायत में बैठते ही ‘पंच’ की स्थिति ईश्वरतुल्य और निष्पक्ष हो जाती है। यही कथा का मूल संदेश है कि ग्रामीण समाज में न्याय केवल संबंधों पर आधारित नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व पर टिका है। बाद में जब अलगू स्वयं विवाद में फँसता है और जुम्मन सरपंच बनता है, तब जुम्मन भी निष्पक्ष निर्णय देकर न्याय का पालन करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पंचायत की मर्यादा व्यक्ति को आत्मकेंद्रित भावनाओं से ऊपर उठने की प्रेरणा देती है।

प्रेमचंद यहाँ यह दर्शाते हैं कि ग्रामीण जीवन में नैतिकता केवल बाहरी नियमों से नहीं, बल्कि भीतरी संस्कारों, सामाजिक सम्मान और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना से संचालित होती है। पंचायत का मंच व्यक्ति को उसके निजी हितों से अलग कर एक व्यापक सामाजिक चेतना से जोड़ देता है। इस प्रकार ‘पंच परमेश्वर’ केवल दो मित्रों की कहानी नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की उस नैतिक संरचना का चित्रण है जहाँ न्याय को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और व्यक्ति अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर सामाजिक धर्म निभाने का प्रयास करता है (वर्मा, डी. 2015, पृ. 91)।

‘बड़े घर की बेटी’ और ‘बूढ़ी काकी’ जैसी कहानियाँ गाँव के पारिवारिक जीवन की नैतिकता दिखाती हैं। इन रचनाओं में आर्थिक कमी के बीच भी रिश्तों की गर्माहट और मूल्य-बोध साफ दिखता है। ‘बड़े घर की बेटी’ में आनंदी का चरित्र धैर्य और त्याग का रूप बनकर उभरता है। वह घर के झगड़ों में भी संयम रखती है और परिवार को टूटने नहीं देती। उसकी समझ यह बताती है कि सम्मान और शांति साथ चल सकते हैं। ‘बूढ़ी काकी’ में उपेक्षा और करुणा का टकराव परिवार की असल परीक्षा बन जाता है। यहाँ बुजुर्ग केवल दया के पात्र नहीं रहते, वे घर की संवेदना को जगाते हैं। प्रेमचंद गाँव को पूरी तरह आदर्श नहीं मानते। उनके यहाँ पाखंड और दबाव भी हैं, पर साथ में सुधार और अपनापन भी है। यह संकेत मिलता है कि नैतिकता किताबों की बात नहीं है। वह जीवन के रोजमर्रा व्यवहार से बनती और बचती है।

2.3.4. सामाजिक संस्थाओं की नैतिक भूमिका

प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक यथार्थ का ऐसा दस्तावेज़ है, जिसमें सामाजिक संस्थाओं की भूमिका केवल संरचनात्मक नहीं, बल्कि नैतिक संदर्भों में गहराई से जुड़ी

हुई है। परिवार, धर्म, पंचायत, शिक्षा, विवाह, और जाति-व्यवस्था जैसे संस्थान प्रेमचंद की कहानियों में बार-बार उपस्थित होते हैं, लेकिन इनकी उपस्थिति केवल पृष्ठभूमि सजाने के लिए नहीं होती, बल्कि इन संस्थाओं के भीतर व्याप्त नैतिक संकटों और संभावनाओं को उजागर करने के लिए होती है। प्रेमचंद यह दर्शाते हैं कि जब ये संस्थाएँ अपने नैतिक दायित्व से विमुख हो जाती हैं, तो वे शोषण और अन्याय का माध्यम बन जाती हैं, और जब वे संवेदनशीलता, विवेक और समानता के आधार पर कार्य करती हैं, तो वे समाज में नैतिक चेतना के पुनर्निर्माण का स्रोत बनती हैं। 'सद्रति' में ठाकुर जी जैसे ब्राह्मण को धार्मिक संस्था का प्रतिनिधि माना जा सकता है, लेकिन जब वह एक दलित से 'सेवा' के नाम पर श्रम करवाता है और उसकी मृत्यु पर भी संवेदना नहीं दिखाता, तो प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि धर्म की संस्था केवल रीति-नीति तक सीमित रहकर नैतिकता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। धर्म तभी नैतिक होता है जब उसमें करुणा, समता और मानवता हो, अन्यथा वह केवल पाखंड बनकर रह जाता है (त्रिपाठी, के. 2016, पृ. 174)।

इसी प्रकार परिवार, जो प्रेमचंद की कहानियों में एक केंद्रीय सामाजिक संस्था के रूप में उपस्थित रहता है, अक्सर नैतिकता की असली परीक्षा की जगह बन जाता है। 'बूढ़ी काकी' इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी है, जहाँ परिवार के भीतर बुजुर्ग महिला की उपेक्षा और बाद में उसके प्रति जागृत सहानुभूति को प्रेमचंद एक नैतिक परिवर्तन के रूप में चित्रित करते हैं। यहाँ परिवार केवल एक रिश्तों की शृंखला नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक संस्था है, जो तब तक जीवित रहती है जब तक उसमें करुणा, सह- और आत्मावलोकन मौजूद है। प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि यदि पारिवारिक संस्थाएँ केवल औपचारिक भूमिकाओं पर आधारित हो जाएं और उनकी कार्यप्रणाली में नैतिक बोध न हो, तो वे अन्याय का माध्यम बन जाती हैं। वहीं 'ईदगाह' में परिवार की संरचना—हालांकि एक-दादी और पोते तक सीमित है—एक ऐसा भावात्मक और नैतिक संबंध प्रस्तुत करती है जिसमें त्याग, चिंता और संवेदना जैसे मूल्य केंद्र में होते हैं। हामिद का चिमटा खरीदना केवल एक भावनात्मक निर्णय नहीं, बल्कि प्रेमचंद के अनुसार वह एक बालक की नैतिक परिपक्वता का प्रतीक है, जो परिवार की ज़रूरतों को अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं से ऊपर रखता है। यहाँ परिवार एक नैतिक संस्था के रूप में उभरता है जो बालमन को भी प्रभावित करता है।

पंचायत और सामाजिक निर्णय प्रणाली भी प्रेमचंद के कथा-संसार में नैतिकता की व्यावहारिक परीक्षा की संस्था बनकर सामने आती है। 'पंच परमेश्वर' में यह अवधारणा प्रत्यक्ष रूप से स्थापित होती है कि जब व्यक्ति न्याय की कुर्सी पर बैठता है, तो उसमें एक नैतिक रूपांतरण होता है। अलगू चौधरी अपने मित्र जुम्मन के खिलाफ निर्णय देकर यह साबित करता है कि न्याय करने वाली संस्थाएँ तभी मूल्यवान होती हैं जब वे व्यक्तिगत हितों और भावनाओं से ऊपर उठकर निष्पक्ष आचरण करें। प्रेमचंद

यह स्थापित करते हैं कि भारतीय ग्रामीण समाज में पंचायत जैसी संस्थाएं सामाजिक नियंत्रण और मार्गदर्शन का कार्य करती थीं, लेकिन उनका नैतिक प्रभाव तभी स्थायी हो सकता है जब वे भीतर से नैतिक मूल्यों पर आधारित हों। अन्यथा ये संस्थाएं सत्ता के दुरुपयोग, जातीय पक्षपात या भावनात्मक भेदभाव का अड्डा बन जाती हैं। प्रेमचंद इन संस्थाओं को सुधार की दृष्टि से देखते हैं वे उनका खंडन नहीं करते, बल्कि उनमें सुधार की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। उनका साहित्य इस बात की मांग करता है कि सामाजिक संस्थाएं केवल व्यवस्थागत न होकर नैतिक रूप से भी उत्तरदायी हों, तभी वे समाज को सही दिशा में ले जा सकती हैं।

2.4. आदर्शवाद और यथार्थवाद का नैतिक संतुलन

प्रेमचंद के साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच एक गहन नैतिक संतुलन दिखाई देता है। वे न तो किसी परंपरागत नैतिक आदर्श को आंख मूंदकर स्वीकार करते हैं और न ही केवल यथार्थ की कठोरता में नैतिकता की पूर्ण अस्वीकृति करते हैं। उनका साहित्य इन दोनों ध्रुवों के बीच एक ऐसा मध्य मार्ग प्रस्तावित करता है, जिसमें मानवीय संवेदना, नैतिक विवेक और सामाजिक परिस्थितियों के बीच संतुलन साधा जाता है। प्रेमचंद के पात्र अक्सर दो विकल्पों के बीच झूलते हैं— एक ओर उच्च नैतिक आदर्श हैं, और दूसरी ओर यथार्थ जीवन की सख्त सीमाएं। लेकिन इन द्वंद्वों से भागने के बजाय वे अक्सर उन संघर्षों से जूझते हैं, निर्णय लेते हैं, और पाठकों को यह सोचने पर विवश करते हैं कि सही और गलत का निर्णय केवल नियतिवादी या धार्मिक भाव भूमि पर नहीं, बल्कि सामाजिक संदर्भ और मानवीय परिस्थिति को ध्यान में रखकर होना चाहिए।

उनके साहित्य में आदर्शवाद किसी कृत्रिम नैतिक व्यवस्था के रूप में नहीं आता, बल्कि वह संवेदनशीलता और विवेक से जन्म लेता है। 'ईदगाह' का हामिद एक बच्चा होते हुए भी करुणा और त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करता है। वह अपने लिए खिलौना न लेकर अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है, क्योंकि उसे उनकी जली हुई उँगलियों की पीड़ा अधिक महत्वपूर्ण लगती है। यह निर्णय उसकी बालसुलभ समझ से उत्पन्न नैतिक आदर्श को प्रकट करता है। पर प्रेमचंद यहाँ भी यथार्थ से मुँह नहीं मोड़ते हामिद की गरीबी, अभाव और सामाजिक स्थिति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसी प्रकार 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर रिश्त को अस्वीकार कर देते हैं, जबकि उनके पिता उन्हें समझाते हैं कि ईमानदारी से जीवन कठिन हो जाएगा। यह प्रसंग जीवन की कठोर यथार्थता को सामने रखता है, लेकिन वंशीधर का निर्णय दिखाता है कि आदर्श कठिन अवश्य है, पर असंभव नहीं। प्रेमचंद इन कहानियों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि नैतिकता केवल विचार नहीं, बल्कि साहसपूर्ण आचरण है।

प्रेमचंद के पात्र हमेशा नायक या खलनायक नहीं होते; वे यथार्थ के बीच खड़े ऐसे व्यक्ति होते हैं जो गलती भी करते हैं और कभी-कभी सीखते भी हैं। यह विशेषता उनके साहित्य को आदर्शवादी उपदेश से बचाकर व्यवहारिक नैतिक विमर्श की ओर ले जाती है। जैसे 'कफन' के पात्रों घीसू और माधव को देखिए। वे मृत स्त्री के लिए अंतिम संस्कार न करके शराब पीते हैं, लेकिन प्रेमचंद उनके इस व्यवहार को केवल असंवेदनशीलता नहीं मानते; वे इसके पीछे की पीढ़ियों की भूख, अपमान और शोषण को रखते हैं। यह यथार्थ इतना कठोर है कि उसमें नैतिक आदर्श भी बेमानी लगने लगते हैं। फिर भी प्रेमचंद यह उम्मीद नहीं छोड़ते कि परिस्थितियाँ बदलने पर व्यक्ति में नैतिक पुनरुत्थान संभव है। उनका दृष्टिकोण यथार्थ को दिखाकर उसे स्थायी मानने का नहीं है, बल्कि उसमें नैतिक संभावना की तलाश करने का है। यही उन्हें यथार्थवादी भी बनाता है और आदर्शवादी भी।

प्रेमचंद की खास बात यह है कि वे समाज के दबाव और इंसानी कमजोरी को मानते हैं, पर उसे अंतिम सच नहीं मानते। उनके पात्रों में नैतिक चेतना का एक भीतर का संकेत बना रहता है। वह कई बार दब जाता है, फिर भी पूरी तरह खत्म नहीं होता। 'शतरंज के खिलाड़ी' में नवाबी ऐश और राजनीतिक उदासीनता का चित्र खींचते हुए वे दिखाते हैं कि जब सामाजिक संस्थाएँ नैतिक जागरूकता खो देती हैं, तब केवल शासन नहीं, पूरी सामाजिक व्यवस्था कमजोर पड़ती है। 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी ऐसा ही संतुलन दिखाती है। वह ससुराल की कड़वी परिस्थितियाँ सहती है, पर धैर्य, त्याग और विवेक से घर को जोड़े रखती है। प्रेमचंद का यही संतुलन पाठकों को छूता है। पाठक केवल दुखी या केवल प्रेरित नहीं होते, बल्कि यह समझ पाते हैं कि नैतिकता कोई बनी-बनाई चीज नहीं है। यह जीवन के अनुभवों से लगातार बनती रहती है और यथार्थ तथा आदर्श के बीच रास्ता निकालती है।

2.4.1. नैतिक आदर्श और व्यवहारिक जीवन का द्वंद्व

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिक आदर्श और व्यवहारिक जीवन के बीच का द्वंद्व एक केंद्रीय विषय के रूप में उभरता है। वे जिस यथार्थ का चित्रण करते हैं, वह केवल सामाजिक और आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक स्तर पर भी जटिल है। प्रेमचंद के पात्र अक्सर उस सीमा पर खड़े होते हैं जहाँ उन्हें यह निर्णय लेना होता है कि वे नैतिक मूल्यों को प्राथमिकता दें या व्यवहारिक ज़रूरतों के सामने समर्पण करें। 'नमक का दरोगा' कहानी इस द्वंद्व का जीवंत उदाहरण है। मुंशी वंशीधर, एक ईमानदार अधिकारी है, जो रिश्तत नहीं लेता, लेकिन उसके पिता उसे ताना देते हैं कि ईमानदारी रोटी नहीं देती। यह वाक्य भारतीय मध्यमवर्गीय यथार्थ का सार है जहाँ नैतिकता एक आदर्श है, लेकिन पेट भरने का साधन नहीं। वंशीधर का निर्णय रिश्तत ना लेना और भ्रष्ट व्यापारियों के खिलाफ कार्यवाही करना यह स्पष्ट करता है कि प्रेमचंद के पात्र

आदर्श को केवल विचार नहीं, बल्कि कर्म के स्तर पर जीने की कोशिश करते हैं। यह निर्णय मुश्किल है, क्योंकि इसके पीछे सामाजिक और पारिवारिक दबाव हैं, लेकिन प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि नैतिकता केवल सुविधा का चयन नहीं, बल्कि साहस का परिणाम है (गुप्ता, बी. 2017, पृ. 234)।

दूसरी ओर, प्रेमचंद यह भी स्वीकार करते हैं कि व्यावहारिक जीवन में नैतिकता अक्सर असहज हो जाती है, और व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक व मानसिक स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है। 'पूँस की रात' के हल्कू का निर्णय ठंड से व्याकुल होकर खेत की रखवाली छोड़ देना और अपने कुत्ते जबरा के साथ अलाव के पास बैठ जाना आदर्श की दृष्टि से अनुचित प्रतीत हो सकता है, लेकिन यथार्थ की कठोरता इसे मानवीय बना देती है। प्रेमचंद ऐसे निर्णयों को केवल नैतिक पराजय नहीं मानते, बल्कि वे इन परिस्थितियों में निहित विवेक को स्वीकार करते हैं। हल्कू अपने सीमित संसाधनों और कठोर परिस्थितियों के बीच जो निर्णय लेता है, वह उसकी नैतिक चेतना का एक भिन्न रूप है यह स्पष्ट करता है कि हर निर्णय 'नैतिक' तभी होता है जब वह व्यक्ति की स्थिति और क्षमता के अनुरूप हो। प्रेमचंद आदर्श और यथार्थ के बीच इस द्वंद्व को सुलझाने की कोशिश नहीं करते, बल्कि वह इसे स्वाभाविक मानकर यह दिखाते हैं कि नैतिकता कोई एक-रेखीय अवधारणा नहीं, बल्कि लचीलापन और संवेदनशीलता से जुड़ी हुई प्रक्रिया है। उनके पात्रों के माध्यम से यह स्थापित होता है कि आदर्श तभी सार्थक हैं जब वे जीवन की व्यावहारिकता के साथ तालमेल बिठा सकें।

2.4.2. आदर्श पात्र बनाम यथार्थ पात्र

प्रेमचंद की कहानियों में पात्रों को दो स्पष्ट श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—आदर्श पात्र और यथार्थ पात्र, लेकिन इन दोनों के बीच की रेखा अक्सर धुंधली होती है। प्रेमचंद का साहित्य इसी बिंदु पर विशिष्ट हो जाता है कि वे अपने पात्रों को पूर्णतः आदर्श या पूर्णतः यथार्थवादी नहीं बनाते, बल्कि उनके भीतर दोनों प्रवृत्तियाँ एक साथ उपस्थित रहती हैं। उनके आदर्श पात्र जैसे हमिद ('ईदगाह') और मुंशी वंशीधर ('नमक का दरोगा') नैतिक दृष्टि से उच्च आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमिद अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदकर त्याग और संवेदना का उदाहरण बनता है, जबकि वंशीधर रिश्तों और पारिवारिक दबाव को अस्वीकार कर ईमानदारी का परिचय देते हैं। ये पात्र प्रेमचंद के नैतिक दृष्टिकोण का आदर्श पक्ष हैं, जो यह दर्शाते हैं कि जीवन में नैतिकता संभव है, भले ही वह कठिन हो (शुक्ला, र. 2018, पृ. 72)।

वहीं दूसरी ओर, प्रेमचंद के यथार्थ पात्र जैसे घीसू और माधव ('कफन'), पंडित घासीराम ('सद्गति'), तथा मीर रोशन अली और मिर्जा सज्जाद अली ('शतरंज के

खिलाड़ी') समाज की विसंगतियों और नैतिक शिथिलता के प्रतीक बनते हैं। इन पात्रों के कर्म पाठक को असहज करते हैं जैसे घीसू और माधव मृत स्त्री के कफ़न के पैसों से शराब पी जाते हैं लेकिन प्रेमचंद उन्हें केवल नकारात्मक रूप में नहीं प्रस्तुत करते। वे यह दिखाते हैं कि सामाजिक विफलता और आर्थिक अभाव ने उनकी संवेदना को कुंठित कर दिया है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में मीर और मिर्जा अंग्रेज़ों द्वारा अवध पर अधिकार किए जाने के समय भी शतरंज में डूबे रहते हैं; यह केवल ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि नैतिक पतन का संकेत है। ये यथार्थ पात्र पाठक से प्रश्न करते हैं क्या हर व्यक्ति से आदर्श आचरण की अपेक्षा की जा सकती है? क्या सभी को समान नैतिक अवसर प्राप्त हैं? यही प्रश्न प्रेमचंद के साहित्य को जीवन के निकट लाते हैं (मेहता, किरण. 2014, पृ. 90)।

महत्वपूर्ण यह है कि प्रेमचंद आदर्श और यथार्थ पात्रों को परस्पर विरोधी नहीं मानते। वे इन्हें नैतिक निरंतरता के दो छोर की तरह प्रस्तुत करते हैं। 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी इसी संतुलन का उदाहरण है। वह ससुराल की कठिन परिस्थितियों को सहते हुए भी संयम और विवेक से परिवार को जोड़े रखती है। इस प्रकार वह यथार्थ में रहकर भी आदर्श की व्याख्या करती है। प्रेमचंद के पात्र पाठक पर निर्णय नहीं थोपते, बल्कि सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। आदर्श पात्र प्रेरणा देते हैं, और यथार्थ पात्र चेतावनी। यही संतुलन उनके नैतिक विमर्श को गहराई प्रदान करता है। उनके साहित्य में नैतिकता किसी एक वर्ग की पहचान नहीं, बल्कि संघर्षरत मन, सामाजिक संदर्भ और आंतरिक संवेदना से निर्मित होने वाली प्रक्रिया है।

2.4.3. नैतिक विफलता और सामाजिक दबाव

प्रेमचंद के साहित्य में नैतिकता कोई स्थायी और सुनिश्चित अवधारणा नहीं है, बल्कि यह निरंतर संघर्ष और दबावों से जूझती हुई चेतना है। उन्होंने यह दर्शाया है कि मनुष्य केवल अपने आत्मिक विवेक से संचालित नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक संरचना, पारिवारिक अपेक्षाओं और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से प्रभावित होता है। इस दृष्टि से जब उनके पात्र नैतिक विफलता के शिकार होते हैं, तो वह केवल उनकी व्यक्तिगत कमजोरी नहीं होती, बल्कि उस व्यापक सामाजिक दबाव का परिणाम होती है जिसमें वे जी रहे होते हैं। 'सद्गति' का पंडित घासीराम एक ब्राह्मण होकर भी अपने धार्मिक दायित्व को भूलकर दुखी चमार से कठोर श्रम कराता है और उसकी मृत्यु पर उदासीन रहता है। यह घटना केवल एक व्यक्ति की अमानवीयता नहीं, बल्कि उस धार्मिक संरचना की विफलता है जो जाति आधारित श्रेष्ठता को नैतिकता का पर्याय मानती है। पंडित घासीराम स्वयं को दोषी नहीं मानता, क्योंकि वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था में विश्वास करता है जो उसकी इस क्रूरता को सामान्य और

धर्मसम्मत मानती है। प्रेमचंद यहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिकता की असफलता केवल निजी निर्णयों का परिणाम नहीं होती, बल्कि वह तब जन्म लेती है जब समाज स्वयं अन्याय को संस्थागत रूप दे देता है (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 380)।

इसी प्रकार, 'कफन' के पात्र घीसू और माधव की नैतिक उदासीनता और संवेदनहीनता भी उसी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समझी जा सकती है। जब एक पिता और पुत्र अपनी मरी हुई बहू/पत्नी बुधियाके 'कफन' के लिए मिले पैसे से शराब पी जाते हैं, तो यह व्यवहार पहली दृष्टि में क्रूर, अमानवीय और नैतिक रूप से पतित लगता है। लेकिन प्रेमचंद इसे केवल एक घृणित कर्म के रूप में नहीं, बल्कि उस दीर्घकालीन सामाजिक उपेक्षा और आर्थिक शोषण का परिणाम मानते हैं, जिसने इन पात्रों की नैतिक चेतना को लगभग कुंद कर दिया है। वे वर्षों से मेहनत करने के बावजूद भूखे हैं, उनका श्रम कभी न्याय नहीं पा सका, और समाज ने उन्हें केवल दया और निंदा की दृष्टि से देखा है। इस उपेक्षा ने उनके भीतर इस विश्वास को मार दिया है कि नैतिक होना किसी लाभ या मान्यता की ओर ले जाएगा। यही सामाजिक दबाव अंततः उन्हें ऐसा बना देता है कि वे मृत्यु जैसे गंभीर अवसर पर भी मानवीय गरिमा का निर्वाह नहीं कर पाते। प्रेमचंद इस प्रकार यह सवाल खड़ा करते हैं कि जब समाज व्यक्ति को उसकी बुनियादी जरूरतों और आत्मसम्मान से वंचित कर देता है, तो क्या वह व्यक्ति नैतिक निर्णय लेने की स्थिति में रह जाता है? उनका उत्तर स्पष्ट है—नैतिकता का जन्म केवल शिक्षा और विचार से नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक न्याय, समानता और सम्मान पर आधारित होती है। जब ये आधार ही छिन जाएं, तो नैतिक विफलता केवल स्वाभाविक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी बन जाती है। प्रेमचंद इस विफलता को कोसते नहीं, बल्कि उसकी जड़ों को समझते हैं और पाठक को भी उसी समझ की ओर ले जाते हैं।

2.5. चरित्र निर्माण और नैतिक विकास की प्रक्रिया

प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ मानवीय चरित्र की गहराई में उतरने की एक दुर्लभ क्षमता रखता है। उनके पात्र स्थिर नहीं होते वे बदलते हैं, संघर्ष करते हैं, टूटते हैं, और कई बार खुद को पुनर्गठित भी करते हैं। यह परिवर्तन केवल कथानक को गति देने के लिए नहीं होता, बल्कि यह दर्शाता है कि व्यक्ति की नैतिकता कोई स्थायी वस्तु नहीं, बल्कि वह अनुभव, दबाव, आंतरिक द्वंद्व और निर्णयों की श्रृंखला से बनती और बदलती रहती है। प्रेमचंद के साहित्य में चरित्र निर्माण एक सतत प्रक्रिया है, जो जीवन की उलझनों, सामाजिक चुनौतियों और आत्म-संघर्षों के बीच आकार लेती है। उनके पात्र इस विकास की हर अवस्था में पाठक को अपने साथ चलने के लिए प्रेरित करते हैं उनके निर्णय, चूकें, पश्चाताप और पुनरुत्थान सब कुछ पाठकों को जीवन और नैतिकता के वास्तविक आयामों से परिचित कराते हैं।

प्रेमचंद के कई पात्र आरंभ में विरोधाभासी या कठोर प्रतीत होते हैं, लेकिन समय और अनुभव उन्हें बदलते हैं। 'बूढ़ी काकी' में रूपा (बहू) का प्रारंभिक व्यवहार उपेक्षापूर्ण दिखाई देता है, किंतु अंततः उसे अपनी भूल का बोध होता है और वह काकी की सेवा करती है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि नैतिक जागरूकता अनुभव और आत्मसंवाद से विकसित होती है। इसी तरह 'पंच परमेश्वर' में अलगू चौधरी जुम्मन शेख के विरुद्ध निष्पक्ष निर्णय देते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि सच्चा चरित्र निजी संबंधों से ऊपर उठकर न्याय को प्राथमिकता देता है। यह निर्णय ग्रामीण समाज की नैतिक संरचना में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है, जो दर्शाता है कि चरित्र सामाजिक पहचान से अधिक नैतिक साहस का परिणाम होता है।

प्रेमचंद यह भी स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक पात्र को समान परिस्थिति या नैतिक अवसर नहीं मिलते। 'पूस की रात' का हल्कू अपने कुत्ते जबरा के साथ अलाव के पास बैठकर खेत की रखवाली छोड़ देता है, और यह निर्णय आदर्श की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण लग सकता है। फिर भी प्रेमचंद इसे मानवीय विवेक की अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित करते हैं। इसी प्रकार 'कफन' के घीसू और माधव जैसे पात्र सामाजिक हाशिए पर स्थित हैं, पर लेखक उन्हें केवल चरित्रहीन नहीं ठहराते। वे यह दिखाते हैं कि जब आवश्यकताएँ लंबे समय तक पूरी नहीं होतीं, तो मूल्यबोध कमजोर पड़ने लगता है और यही नैतिक विफलता की ओर ले जाता है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण चरित्र और नैतिकता को वर्ग, जाति और संसाधन की सापेक्षता में देखने का आग्रह करता है (शुक्ला, र. 2018, पृ. 85)।

चरित्र निर्माण प्रेमचंद के लिए केवल व्यक्तिगत प्रक्रिया नहीं है यह सामाजिक सहभागिता, अनुभव, और सामूहिक चेतना से भी जुड़ा होता है। उनके पात्रों की नैतिक यात्रा कई बार व्यक्तिगत फैसलों से आगे बढ़ती है, लेकिन अंततः समाज के साथ उनके संबंध और टकराव ही उन्हें गहराई देते हैं। प्रेमचंद के पात्र किसी धर्मग्रंथ के आदर्श नहीं हैं, बल्कि वे हमारे जैसे ही लोग हैं सीमाओं से घिरे, लेकिन अपने भीतर सुधार और विकास की संभावनाओं से युक्त। वे मानते हैं कि नैतिकता कोई जन्मजात गुण नहीं, बल्कि अनुभव, शिक्षा, और आत्मावलोकन से अर्जित किया जाने वाला चरित्र तत्व है। इसलिए उनके साहित्य में हम न केवल नैतिक चरित्रों को देखते हैं, बल्कि नैतिक बनने की प्रक्रिया को भी अनुभव करते हैं। यह प्रक्रिया ही प्रेमचंद के साहित्य को यथार्थवाद और नैतिकता के संतुलन का श्रेष्ठ उदाहरण बनाती है (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 386)। उनके पात्रों की यह नैतिक विकास यात्रा न केवल उनके लिए, बल्कि पाठकों के लिए भी आत्ममंथन का अवसर बनती है।

2.5.1. आंतरिक संघर्ष और नैतिक परिवर्तन

प्रेमचंद के साहित्य में पात्रों का आंतरिक संघर्ष केवल एक मानसिक अवस्था नहीं, बल्कि उनके नैतिक विकास की प्रक्रिया का मूल आधार है। उनके पात्र सामाजिक दबाव, पारिवारिक जिम्मेदारियों, व्यक्तिगत इच्छाओं और मूल्य-आधारित आदर्शों के बीच फँसे होते हैं। यह टकराव उन्हें केवल असमंजस में नहीं डालता, बल्कि निर्णय की ओर प्रेरित करता है और वही निर्णय उनके चरित्र में परिवर्तन की शुरुआत करता है। उदाहरण के लिए, 'पंच परमेश्वर' का अलगू चौधरी जब अपने मित्र जुम्मन शेख के विरुद्ध पंचायत में निर्णय देता है, तो वह गहरे आंतरिक (द्वंद्व) से गुजरता है। एक ओर मित्रता है, दूसरी ओर न्याय और पंचायत की मर्यादा। जब वह जुम्मन की खाला के पक्ष में निष्पक्ष निर्णय सुनाता है, तो यह केवल न्यायिक कार्यवाही नहीं, बल्कि उसके भीतर जागी नैतिक चेतना का प्रमाण बन जाता है। प्रेमचंद यहाँ स्पष्ट करते हैं कि नैतिक निर्णय अंतर्मन की कसौटी पर परखे बिना सार्थक नहीं होते (शुक्ला, र. 2018, पृ. 87)।

इसी प्रकार, 'बूढ़ी काकी' में रूपा (बहू) का चरित्र आंतरिक संघर्ष और नैतिक परिवर्तन का सशक्त उदाहरण है। आरंभ में वह काकी को केवल एक बोझ समझती है और उनकी उपेक्षा करती है। लेकिन जब वह देखती है कि काकी भूख से विवश होकर मेहमानों के जूठे पत्तल से रोटियाँ उठा रही हैं, तो उसका अंतर्मन विचलित हो उठता है। यह दृश्य उसके भीतर गहरी आत्मग्लानि जगाता है। यहीं से उसके नैतिक परिवर्तन की शुरुआत होती है। अंत में वही रूपा काकी की सेवा करती है, उन्हें ससम्मान भोजन कराती है और अपने व्यवहार पर लज्जित होती है। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं, बल्कि अनुभव और आत्मबोध से उपजा है। प्रेमचंद यह संकेत देते हैं कि मानव स्वभाव में सुधार की संभावना बनी रहती है, यदि भीतर संवेदना जाग उठे।

'ईदगाह' का बाल पात्र हमिद भी एक सूक्ष्म परंतु गहरे आंतरिक संघर्ष से गुजरता है। मेले में उसके साथी खिलौने और मिठाइयाँ खरीदते हैं, और उसके मन में भी कुछ लेने की इच्छा होती है। लेकिन उसे अपनी दादी अमीना की जली हुई उँगलियाँ याद आती हैं, और वह अपने लिए कुछ न लेकर चिमटा खरीदता है। यह निर्णय केवल त्याग नहीं, बल्कि संवेदनशीलता से उपजा नैतिक चयन है। प्रेमचंद हमिद को केवल मासूम बालक के रूप में नहीं, बल्कि जागरूक नैतिक व्यक्तित्व के रूप में चित्रित करते हैं। यह निर्णय किसी बाहरी उपदेश से नहीं, बल्कि भीतर की करुणा से जन्म लेता है। प्रेमचंद का विश्वास है कि नैतिकता उम्र या उपदेश की मोहताज नहीं, बल्कि संवेदनशील अंतःकरण की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 391)। इस प्रकार

उनके पात्रों में नैतिक परिवर्तन बाहरी शिक्षा से नहीं, बल्कि आंतरिक संघर्ष से उपजी जागरूकता का परिणाम होता है।

2.5.2. कर्तव्यबोध और आत्म-साक्षात्कार

प्रेमचंद के साहित्य में कर्तव्यबोध केवल सामाजिक भूमिका निभाने तक सीमित नहीं रहता। यह आत्म-ज्ञान, नैतिक विवेक, और भीतर के विकास से जुड़ी प्रक्रिया बन जाता है। उनके पात्र जब कठिन परिस्थितियों में फँसते हैं, तब उन्हें सिर्फ बाहरी दायित्व नहीं निभाने होते। उन्हें अपने भीतर चल रहे संघर्ष को भी समझना पड़ता है। यह आत्म-जागरण कभी सहज होता है, और कभी पीड़ा, लज्जा, या पछतावे से पैदा होता है। 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी इसका अच्छा उदाहरण है। वह शिक्षित और स्वाभिमानी है, फिर भी ससुराल के कटु वातावरण में तुरंत प्रतिरोध नहीं करती। वह संयम रखती है और विवेक से स्थिति को संभालती है। कुछ घटनाएँ उसे दुख देती हैं, पर वह कर्तव्य से डगमगाती नहीं। वह समझती है कि उसका व्यवहार केवल निजी अहं का उत्तर नहीं होना चाहिए। उसे परिवार की मर्यादा और रिश्तों की जिम्मेदारी भी निभानी है। यहाँ कर्तव्य न तो खाली सामाजिक दबाव है, न ही अंधा आत्म-त्याग। यह एक संतुलित दृष्टि है, जिसमें संवेदना, आत्म-नियंत्रण, और जिम्मेदारी साथ चलती है।

'शतरंज के खिलाड़ी' में मीर और मिर्जा इसके उलट रूप हैं। वे विलासिता और आत्ममुग्धता में इतने डूबे हैं कि उन्हें राज्य और समाज की दिशा तक का अहसास नहीं रहता। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि कर्तव्यबोध बिना आत्म-जागरण के पैदा नहीं होता। मीर और मिर्जा उस जागरण से दूर हैं, इसलिए उनका नैतिक पतन केवल व्यक्तिगत नहीं रहता। वह सामाजिक गिरावट का संकेत बन जाता है। इसके विपरीत 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर सत्य और ईमानदारी चुनते हैं। वे पारिवारिक अपेक्षाओं और निजी लाभ के खिलाफ खड़े होते हैं। यह निर्णय उन्हें नुकसान में डाल सकता था, फिर भी वे पीछे नहीं हटते। वंशीधर समझते हैं कि कर्तव्य सिर्फ नौकरी बचाना नहीं है। कर्तव्य उस व्यवस्था को चुनौती देना भी है, जहाँ पैसा और सत्ता मिलकर भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के यहाँ आत्म-ज्ञान के साथ कर्तव्यबोध ऊँचे स्तर पर पहुँचता है। वह केवल दायित्व नहीं रहता, बल्कि भीतर का नैतिक संकल्प बन जाता है। इसी तरह का आत्म-साक्षात्कार समाज के लिए मूल्यवान है, क्योंकि यह व्यक्ति को नियमों का पालनकर्ता नहीं, बल्कि नैतिक समाज का सक्रिय निर्माता बनाता है।

2.5.3. सामाजिक अनुभवों का चरित्र पर प्रभाव

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में पात्रों का निर्माण केवल उनकी व्यक्तिगत सोच या पारिवारिक पृष्ठभूमि से नहीं होता, बल्कि उनके सामाजिक अनुभव उनकी सोच, व्यवहार

और नैतिक दृष्टिकोण को गहराई से प्रभावित करते हैं। प्रेमचंद यह भली-भांति समझते थे कि समाज में जीने वाला प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में उस समाज के ढाँचे, व्यवस्थाओं, अन्यायों और संबंधों से प्रभावित होता है। 'सद्रति' के दुखी को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। दुखी चमार अपनी बेटी के विवाह के लिए शुभ मुहूर्त जानने पंडित घासीराम के पास जाता है, पर उससे बदले में कठोर श्रम कराया जाता है। अंततः वह थकान और शोषण से मर जाता है। यह घटना दर्शाती है कि सामाजिक अनुभव न केवल व्यक्ति की चेतना को आकार देते हैं, बल्कि कई बार उसके अस्तित्व को भी तोड़ देते हैं। दुखी की नियति यह प्रश्न उठाती है कि क्या किसी ऐसे समाज में, जहाँ जाति-आधारित भेदभाव संस्थागत हो चुका हो, कोई व्यक्ति स्वतंत्र रूप से नैतिक या धार्मिक निर्णय ले सकता है? प्रेमचंद के लिए सामाजिक अनुभव किसी पात्र के व्यवहार की पृष्ठभूमि ही नहीं, बल्कि उसकी नैतिकता की संरचना का आधार बन जाते हैं।

इसी प्रकार, 'कफन' के पात्र घीसू और माधव अपने सामाजिक अनुभवों के कारण एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जहाँ मानवीय करुणा और संवेदनशीलता भी कुंठित हो चुकी है। वे बार-बार समाज से ठुकराए गए, उनका श्रम कभी सम्मानित नहीं हुआ, और उनकी गरीबी को लेकर समाज ने केवल उपेक्षा ही दिखाई। यही अनुभव उन्हें उस बिंदु पर पहुँचा देता है जहाँ वे अपनी मृत बहू/पत्नी बुधिया के अंतिम संस्कार के लिए मिले पैसों से शराब पी जाते हैं। यह नैतिक पतन सामाजिक अनुभवों का परिणाम है, न कि केवल चारित्रिक दुर्बलता। प्रेमचंद इस प्रकार यह स्थापित करते हैं कि यदि समाज किसी वर्ग को निरंतर अपमान, अभाव और उपेक्षा का अनुभव देता है, तो उसका प्रभाव न केवल उसके जीवन की दशा पर पड़ता है, बल्कि उसके चरित्र और नैतिक सोच को भी गहराई से परिवर्तित करता है। प्रेमचंद के पात्र इस दृष्टिकोण को मजबूती से प्रमाणित करते हैं कि नैतिकता केवल एक बौद्धिक सिद्धांत नहीं, बल्कि वह सामाजिक अनुभवों से उपजने वाली चेतना है और जब समाज अन्यायपूर्ण होता है, तो नैतिकता भी विकृत हो सकती है (मिश्र, एल. 2014, पृ. 211)।

2.5.4. नैतिक पतन और पुनर्निर्माण

प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक पतन को केवल नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखा गया है, बल्कि उसे मानवीय परिस्थिति और सामाजिक संरचना का स्वाभाविक परिणाम मानते हुए उसके पुनर्निर्माण की संभावनाओं को भी दर्शाया गया है। उनके पात्रों का नैतिक पतन अक्सर गरीबी, सामाजिक अन्याय, पारिवारिक विफलताओं और व्यक्तिगत असमर्थताओं से उपजता है। यह पतन प्रेमचंद के यहाँ किसी अपराध का दंड नहीं है, बल्कि उस मानसिक और सामाजिक पीड़ा का प्रमाण है जो व्यक्ति को नैतिक रूप से असहाय बना देती है। उदाहरण के लिए, 'बूढ़ी काकी' की रूपा (बहू) आरंभ में स्वार्थी,

कठोर और असंवेदनशील दिखाई देती है। वह वृद्धा को भोजन से वंचित करती है और उनके अधिकारों की उपेक्षा करती है। किंतु जैसे ही उसे अपनी गलती का अहसास होता है, वह न केवल पछताती है, बल्कि अपने व्यवहार को पूरी तरह से बदलती भी है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि नैतिक पतन के बावजूद व्यक्ति में पुनः नैतिकता की ओर लौटने की क्षमता होती है, बशर्ते वह आत्मबोध और संवेदना से प्रेरित हो।

इसी प्रकार 'पंच परमेश्वर' में जुम्मेन शेख अपने मित्र अलगू के खिलाफ पंचायत का निर्णय सुनाने से पहले द्वंद्व में होता है। उसका पहले का व्यवहार निजी स्वार्थ और पक्षपात से प्रेरित था, लेकिन जब वह खुद पंच बनता है, तो उस भूमिका की नैतिक जिम्मेदारी उसे झकझोर देती है। यहीं से उसके चरित्र का पुनर्निर्माण शुरू होता है, और वह न्यायप्रिय निर्णय लेकर मित्रता से ऊपर उठकर न्याय को महत्व देता है। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि वे यह दिखाते हैं कि नैतिक पुनर्निर्माण किसी बाहरी उपदेश या सजा से नहीं, बल्कि आंतरिक परिवर्तन और सामाजिक भूमिका के बोध से होता है। यह परिवर्तन अचानक नहीं आता, बल्कि अनुभव, आत्मावलोकन और जिम्मेदारी के एहसास से विकसित होता है। प्रेमचंद अपने पात्रों को इस परिवर्तन की संभावना से वंचित नहीं करते, चाहे वे कितने भी पतित क्यों न हो गए हों। यही मानवीय दृष्टिकोण उनके नैतिक विमर्श को कठोरता से नहीं, बल्कि संवेदनशील पुनर्रचना की दिशा में मोड़ देता है (दत्त, एम. 2015, पृ. 144)।

2.5.5. निर्णय प्रक्रिया और नैतिक जिम्मेदारी

प्रेमचंद के कथा-संसार में निर्णय प्रक्रिया को केवल एक कथानक उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि पात्रों की नैतिक चेतना और विकास का केंद्रीय आधार माना गया है। उनके पात्र जब किसी निर्णय की स्थिति में आते हैं, तो वे केवल व्यक्तिगत हित-अहित के आधार पर नहीं सोचते, बल्कि सामाजिक संदर्भ, मूल्यबोध और दूसरों पर पड़ने वाले प्रभाव को भी ध्यान में रखते हैं। यह प्रक्रिया कई बार धीमी, जटिल और द्वंद्वपूर्ण होती है, लेकिन अंततः पात्र के चरित्र और उसके नैतिक स्तर को स्पष्ट करती है। उदाहरण के लिए, 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर जब रिश्तों को ठुकराने का निर्णय लेता है, तो यह निर्णय न केवल उसकी ईमानदारी को प्रकट करता है, बल्कि उसके भीतर के सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को भी उजागर करता है। वह जानता है कि यह निर्णय उसे आर्थिक कठिनाई में डाल सकता है, फिर भी वह वही करता है जो उसे सही लगता है। प्रेमचंद इस घटना के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिक निर्णय वही होता है जिसमें व्यक्ति अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर सामाजिक हित को प्राथमिकता देता है (शुक्ला, र. 2017, पृ. 122)।

दूसरी ओर, कई बार प्रेमचंद यह भी दर्शाते हैं कि जब पात्र निर्णय प्रक्रिया को टालते हैं, या उससे भागते हैं, तो उसका सामाजिक परिणाम गंभीर होता है। 'शतरंज के

खिलाड़ी' में मीर रोशन अली और मिर्जा सज्जाद अली के पास यह अवसर था कि वे अपने राज्य, समाज और समय के प्रति उत्तरदायित्व निभाते, लेकिन वे अपने व्यक्तिगत विलास और शतरंज के खेल में उलझे रहते हैं। अवध के विलय और नवाब वाजिद अली शाह के पदच्युत होने जैसी ऐतिहासिक परिस्थिति में भी वे सक्रिय भूमिका नहीं निभाते। उनका यह पलायन केवल व्यक्तिगत शिथिलता नहीं, बल्कि सामाजिक पतन का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद इस माध्यम से यह दिखाते हैं कि निर्णय से बचना भी एक प्रकार का निर्णय है, और उसके नैतिक परिणाम होते हैं। यहीं से उनकी रचनाओं में 'कर्तव्यपरायणता' केवल एक सद्गुण नहीं, बल्कि समाज के टिकारूपन का एक अनिवार्य तत्व बन जाती है। वे मानते हैं कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्णयों को नैतिक दृष्टिकोण से ले, तो समाज की संरचना अधिक न्यायसंगत और सहानुभूतिपूर्ण हो सकती है।

अंततः, प्रेमचंद के पात्र यह सिखाते हैं कि निर्णय लेना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है उस निर्णय की नैतिक जिम्मेदारी को स्वीकार करना। 'पंच परमेश्वर' में जुम्मन शेख जब पंच बनकर अलगू चौधरी के पक्ष में निष्पक्ष निर्णय देते हैं और अपने विरोधी के पक्ष में न्याय करते हैं, तो वे इस भूमिका की नैतिक जिम्मेदारी को अपनाते हैं। उनका यह निर्णय केवल न्याय का नहीं, आत्म-परिवर्तन का भी प्रतीक है। प्रेमचंद के यहाँ निर्णय प्रक्रिया और नैतिक जिम्मेदारी एक-दूसरे से जुड़ी हुई प्रक्रियाएँ हैं व्यक्ति के आत्मबोध से उपजने वाली नैतिक चेतना जब सामाजिक रूप में प्रकट होती है, तब वह निर्णय बनती है; और जब उस निर्णय को परिणाम सहित स्वीकार किया जाता है, तब वह नैतिक जिम्मेदारी का रूप लेती है। इस प्रकार, प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि अत्यंत व्यवहारिक और सामाजिक रूप से उत्तरदायी है (सक्सेना, आर. 2020, पृ. 400)।

2.6. भाषा, शैली और नैतिक प्रभाव

प्रेमचंद का साहित्य केवल कथानक या पात्रों के कारण ही प्रभावशाली नहीं है, बल्कि उसकी भाषा और शैली भी पाठकों पर गहरा नैतिक प्रभाव छोड़ती है। उन्होंने हिंदी कहानी को न केवल विषयवस्तु में समृद्ध किया, बल्कि भाषा और अभिव्यक्ति को भी जनसामान्य के स्तर पर लाकर उसे अधिक प्रभावी, सहज और संप्रेषणीय बना दिया। प्रेमचंद की भाषा उस समय के अन्य लेखकों की तरह संस्कृतनिष्ठ या उर्दूनिष्ठ नहीं थी, बल्कि वह जनभाषा में रची-बसी थी जो न केवल बोलचाल की भाषा से जुड़ती थी, बल्कि सामाजिक यथार्थ और भावनात्मक सच्चाई को भी सजीव करती थी। उनकी शैली में अनावश्यक अलंकरण नहीं, बल्कि सीधा, स्पष्ट और संवेदनशील संवाद है। यही

कारण है कि उनकी रचनाएँ केवल उच्च शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि साधारण पाठकों, ग्रामीण समाज और निम्न वर्ग के बीच भी गहराई से गूँजीं। भाषा के इस लोकतांत्रिक स्वरूप ने ही प्रेमचंद की कहानियों में उठाए गए नैतिक प्रश्नों को सार्वभौमिक बना दिया — पाठक उन्हें केवल 'कहानी' नहीं, बल्कि 'स्वानुभव' की तरह ग्रहण करने लगे।

प्रेमचंद की शैली में आत्मीयता और प्रभावशीलता का संतुलन है। उदाहरण के लिए, 'ईदगाह' में जब हमिद अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है, तो भाषा की सादगी और भावों की तीव्रता पाठक को भावनात्मक रूप से झकझोर देती है। प्रेमचंद की शैली का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह कथानक से भटकती नहीं, बल्कि कथ्य को सहारा देती है। संवादों के माध्यम से पात्रों की मानसिकता, सामाजिक पृष्ठभूमि और नैतिक दृष्टिकोण बहुत ही स्वाभाविक ढंग से प्रकट होते हैं। उनके संवाद कृत्रिम नहीं, बल्कि जीवन्त और संदर्भ-संगत होते हैं। यह शैली पाठक को कहानी में सहभागी बना देती है, और यही साहित्य के नैतिक प्रभाव की नींव बन जाती है जब पाठक पात्र के साथ महसूस करने लगता है, तब वह उसके निर्णयों, नैतिक संघर्षों और परिणामों से भी जुड़ता है।

प्रेमचंद की भाषा और शैली का नैतिक प्रभाव इस बात में भी निहित है कि उन्होंने दुख, अन्याय और विसंगतियों को सामान्यीकृत करने के बजाय उन्हें असहज रूप में प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ पाठक को सामाजिक यथार्थ से साक्षात्कार कराती हैं, परंतु उपदेश नहीं देतीं। उनका नैतिक विमर्श पात्रों की परिस्थितियों, भाषा और व्यवहार के माध्यम से स्वतः उभरता है। 'कफन' जैसी कहानी में, जहाँ नैतिकता का संकट चरम पर है, भाषा इतनी संयत और सहज है कि वह पाठक के भीतर नैतिक प्रश्नों की एक श्रृंखला खड़ी कर देती है। यहाँ घीसू और माधव द्वारा बुधिया के लिए मिले पैसों को 'कफन' के स्थान पर शराब में खर्च कर देना नैतिक विडंबना को तीव्र बना देता है। प्रेमचंद पाठक को किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचाते, बल्कि उसे स्वयं निर्णय लेने के लिए प्रेरित करते हैं। यही उनकी भाषा का मौलिक नैतिक गुण है वह मार्गदर्शन नहीं करती, बल्कि सांत्वना और चुनौती दोनों देती है।

एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि प्रेमचंद की भाषा वर्ग और जाति के संदर्भ में भी चिह्नित है, जो पात्र की सामाजिक स्थिति और अनुभव को परिभाषित करने में सहायक होती है। 'सद्गति' के दुखी चमार का संवाद और वर्णन उसकी जातीय पृष्ठभूमि और शोषण को उजागर करता है, वहीं पंडित घासीराम का भाषिक व्यवहार प्रभुत्व और उपेक्षा का सूचक है। यह अंतर केवल भाषिक नहीं, बल्कि नैतिक स्तर पर भी प्रभाव छोड़ता है पाठक इन भिन्नताओं के माध्यम से अन्याय और भेदभाव को सहज रूप से

पहचान पाता है। प्रेमचंद की भाषा यहाँ मूल्यहीन तटस्थता को तोड़ती है, और एक नैतिक स्थिति अपनाती है वह पीड़ित के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है, बिना प्रचार के। इस रूप में उनकी भाषा स्वयं नैतिक अधिष्ठान बन जाती है, जो न केवल कहानी को प्रस्तुत करती है, बल्कि उसके अर्थ को गहराई देती है (तिवारी, एस. 2012, पृ. 198)।

प्रेमचंद की शैली में विनम्रता और गहन व्यंग्य का सामंजस्य भी उनके नैतिक प्रभाव को बढ़ाता है। वे किसी पात्र की आलोचना करते समय उसे दयनीय या हास्यास्पद बनाने की बजाय उसके संदर्भ को सामने रखते हैं। उनका व्यंग्य क्रूर नहीं, करुणामय होता है जैसे 'शतरंज के खिलाड़ी' में मीर रोशन अली और मिर्जा सज्जाद अली की निष्क्रियता पर किया गया व्यंग्य। यह शैली पाठक को हँसाते हुए गंभीर सोच में भी डालती है। प्रेमचंद की यह शैली "मुस्कराते हुए कटु सत्य कहने" की क्षमता रखती है, जो नैतिक प्रभाव को कहीं अधिक गहराई से स्थापित करती है। वे पात्रों की कमजोरियों को उजागर करते हैं, लेकिन उन्हें नकारते नहीं, बल्कि सुधार की संभावना के साथ प्रस्तुत करते हैं। यही उनकी नैतिक दृष्टि का साहित्यिक विस्तार है वे सुधार का आग्रह भाषा के स्तर पर भी करते हैं।

अंत में, प्रेमचंद की भाषा और शैली को इस दृष्टि से भी सराहना चाहिए कि उन्होंने एक ऐसे हिंदी गद्य का निर्माण किया जो नैतिक दृष्टि से सशक्त, सामाजिक रूप से प्रासंगिक और साहित्यिक रूप से परिपक्व था। उनका लेखन जनमानस से जुड़ा, यथार्थपरक और मूल्यपरक था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित्यिक भाषा को समझने के लिए विद्वान होना आवश्यक नहीं एक संवेदनशील हृदय ही पर्याप्त है। उनकी शैली पाठकों को केवल कहानियाँ नहीं सुनाती, बल्कि उन्हें अपने भीतर झाँकने के लिए बाध्य करती है। यही नैतिक प्रभाव का चरम रूप है जब भाषा और शैली केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि अंतःकरण को स्पर्श करने का साधन बन जाएँ। प्रेमचंद का साहित्य इस साधन की श्रेष्ठतम मिसाल है (जैन, पी. 2013, पृ. 174; वर्मा, डी. 2015, पृ. 91)।

संदर्भ सूची

- [1]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 59.
- [2]. वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 91.
- [3]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 213.
- [4]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 191.
- [5]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 370.
- [6]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 164.
- [7]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 229.
- [8]. राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 141.
- [9]. वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 95.
- [10]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 63.
- [11]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 79.
- [12]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 220.
- [13]. राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 147.
- [14]. शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 83.
- [15]. वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 97.

- [16]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 371.
- [17]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 66.
- [18]. राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 149.
- [19]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 196.
- [20]. शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 86.
- [21]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 166.
- [22]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 372.
- [23]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 82.
- [24]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 232.
- [25]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 373.
- [26]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 69.
- [27]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 224.
- [28]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 85.
- [29]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 375.
- [30]. शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 89.
- [31]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 199.

- [32]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 72.
- [33]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 229.
- [34]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 378.
- [35]. राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 152.
- [36]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 68.
- [37]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 370.
- [38]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 230.
- [39]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 172.
- [40]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 80.
- [41]. वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 91.
- [42]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 77.
- [43]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 174.
- [44]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 70.
- [45]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 369.
- [46]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 234.
- [47]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 72.
- [48]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 90.

- [49]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 380.
- [50]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 85.
- [51]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 386.
- [52]. शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 87.
- [53]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 391.
- [54]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 182.
- [55]. मिश्र, एल. (2014). प्रेमचंद की कहानियाँ: सामाजिक परिप्रेक्ष्य में. लखनऊ: नववाणी प्रकाशन, पृ. 211.
- [56]. दत्त, एम. (2015). प्रेमचंद और नैतिक चेतना. दिल्ली: साहित्य विमर्श प्रकाशन, पृ. 144.
- [57]. शुक्ला, र. (2017). प्रेमचंद की कथा दृष्टि. बनारस: साहित्य संदर्भ केंद्र, पृ. 122.
- [58]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 400.
- [59]. तिवारी, एस. (2012). हिंदी कथा साहित्य और सामाजिक मूल्य. दिल्ली: साहित्य निधि, पृ. 198.
- [60]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 174.
- [61]. वर्मा, डी. (2015). नैतिकता और भारतीय कथा परंपरा. बनारस: संवेदना प्रकाशन, पृ. 91.
- [62]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 403.

अध्याय-3

प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक विषय

3.1. रिश्तों में नैतिकता

प्रेमचंद की कहानियाँ केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि उनके माध्यम से मानवीय संबंधों में अंतर्निहित नैतिकताओं की जटिलताओं को भी उजागर करती हैं। उनकी दृष्टि में नैतिकता कोई स्थायी या सार्वभौमिक नियम नहीं है, बल्कि यह समय, परिस्थिति और व्यक्ति के अनुभव पर आधारित एक संवेदनात्मक और विवेकात्मक मूल्य है। उनके पात्रों के संबंध चाहे वे पारिवारिक हों, दांपत्य हों, या सामाजिक सभी में एक नैतिक द्वंद्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ वे परंपरा, कर्तव्य, करुणा और स्वार्थ के बीच झूलते रहते हैं। प्रेमचंद अपने पात्रों को ऐसे बिंदुओं पर खड़ा करते हैं, जहाँ उन्हें सामाजिक नियमों और आंतरिक नैतिकता में से किसी एक को चुनना होता है। इस चयन में जो संघर्ष उत्पन्न होता है, वही प्रेमचंद की कहानियों को जीवंत बनाता है। उनके लेखन में नैतिकता कोई प्रवचन नहीं, बल्कि एक व्यवहारिक सत्य है, जो हर पात्र की स्थिति, वर्ग, और मानसिकता के अनुसार आकार लेती है। विशेष रूप से प्रेमचंद की कहानियाँ यह दिखाती हैं कि नैतिकता केवल उपदेश या शिक्षा का विषय नहीं, बल्कि आत्म-संवेदना और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच संतुलन बनाने की प्रक्रिया है, जहाँ हर रिश्ता एक नैतिक परीक्षा बन जाता है (शर्मा, ए. 2011, पृ. 88)।

3.1.1. पारिवारिक संबंधों में नैतिक द्वंद्व

प्रेमचंद के कथा-संसार में पारिवारिक संबंध केवल भावनात्मक संरचनाएँ नहीं हैं, बल्कि वे नैतिक परीक्षा-स्थल बन जाते हैं। 'बूढ़ी काकी' में वृद्ध काकी को परिवार के लोग उपेक्षित कर देते हैं और उसे भोजन से वंचित रखा जाता है। यह व्यवहार केवल आर्थिक स्वार्थ का नहीं, बल्कि नैतिक पतन का संकेत है। पूर्व पाठ में बालक का नाम 'रोहित' दिया गया था, जो तथ्यात्मक रूप से गलत है। कहानी में लाइली नाम की बालिका काकी के प्रति करुणा दिखाती है और उसे पूडियाँ खिलाती है। यह छोटा-सा कार्य कहानी में नैतिक संवेदना का पुनर्जागरण है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि परिवार की वास्तविक नैतिकता उपयोगिता पर नहीं, बल्कि सहानुभूति और दायित्व पर आधारित होती है। इस कहानी में पारिवारिक संबंधों की परीक्षा करुणा और जिम्मेदारी की कसौटी पर होती है (तिवारी, एस., 2013, पृ. 136)।

पति-पत्नी के संबंधों में नैतिक विमर्श

प्रेमचंद के साहित्य में पति-पत्नी के संबंधों को केवल एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उन्हें नैतिक जिम्मेदारियों, भावनात्मक त्याग, और आत्मिक सम्मान की दृष्टि से विश्लेषित किया गया है। सेवा कहानी में पत्नी अपने बीमार पति की सेवा करती है, जबकि चारों ओर से उसे सलाह दी जाती है कि वह इस भार से मुक्त हो जाए। लेकिन वह समाज की दृष्टि को अस्वीकार करते हुए अपने निर्णय पर अडिग रहती है। यह सेवा केवल एक स्त्री का पारिवारिक कर्तव्य नहीं, बल्कि उसके आत्म-संस्कार और नैतिक बोध की अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार त्याग कहानी में पति अपनी पत्नी की स्वतंत्र इच्छा और प्रेम का सम्मान करते हुए, उसे मुक्त करता है, जबकि वह स्वयं उससे प्रेम करता है। यह आत्म-निरोध और उदारता पारंपरिक पितृसत्तात्मक सोच के विपरीत खड़ी नैतिकता है, जहाँ संबंधों को अधिकार या स्वामित्व से नहीं, बल्कि परस्पर सम्मान से परिभाषित किया गया है। प्रेमचंद के पात्र इन कहानियों में समाज के बनाए ढाँचों से बाहर निकलकर एक नई नैतिकता की खोज करते हैं, जो दांपत्य जीवन को केवल साथ रहने का माध्यम नहीं, बल्कि आत्मिक साझेदारी और स्वायत्तता के सम्मिलन के रूप में प्रस्तुत करती है (यादव, आर. 2014, पृ. 112)।

स्त्री पात्रों की नैतिक भूमिका

प्रेमचंद की स्त्री पात्र पहली दृष्टि में पारंपरिक सीमाओं में बंधी हुई प्रतीत होती हैं, किंतु उनकी कहानियों में वे गहरी नैतिक चेतना की प्रतिनिधि बनकर उभरती हैं। वे केवल सहनशीलता की प्रतिमाएँ नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और विवेक के आधार पर निर्णय लेने वाली व्यक्तित्व हैं। 'बेटी का धन' कहानी में विवाह और दहेज से जुड़े प्रश्नों के माध्यम से पारिवारिक प्रतिष्ठा और आर्थिक दबाव की समस्या प्रस्तुत की गई है। पूर्व पाठ में यह कहा गया था कि बेटी खुलकर अपने प्रेम की स्वतंत्रता रखती है, जो कथानक के अनुरूप नहीं है। कहानी का मूल तनाव आर्थिक और सामाजिक मर्यादा से जुड़ा है। यहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि स्त्री केवल लेन-देन की वस्तु नहीं है, बल्कि उसकी गरिमा और अधिकार का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। स्त्री पात्रों के माध्यम से वे यह संकेत करते हैं कि नैतिकता केवल त्याग नहीं, बल्कि आत्मगौरव की रक्षा भी है। प्रेमचंद स्त्री को निष्क्रिय सहनशीलता से बाहर निकालकर नैतिक चेतना से संपन्न व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं (मिश्रा, पी., 2012, पृ. 74)।

उनकी स्त्रियाँ सामाजिक बंधनों को अराजक रूप से नहीं तोड़तीं, बल्कि विवेकपूर्ण ढंग से उन्हें चुनौती देती हैं। वे अपने मौन, धैर्य और निर्णयों के माध्यम से सामाजिक संरचना की नैतिकता को परखती हैं। इस प्रकार, प्रेमचंद की स्त्री दृष्टि विद्रोह की नहीं, बल्कि नैतिक आत्मनिर्णय की दृष्टि है। उनकी नायिकाएँ मानवीय गरिमा को

केंद्र में रखती हैं और यह दिखाती हैं कि आत्मसम्मान भी नैतिकता का एक अनिवार्य अंग है।

बाल पात्रों में नैतिकता की झलक

प्रेमचंद के बाल पात्र नैतिक संवेदना के अत्यंत प्रभावशाली प्रतीक हैं। 'ईदगाह' कहानी का हामिद एक गरीब बालक है, जो ईद के मेले में अन्य बच्चों की तरह खिलौने या मिठाइयाँ खरीदने के बजाय अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है। यह प्रसंग कहानी में स्पष्ट रूप से वर्णित है। हामिद यह सोचता है कि चिमटा होने से उसकी दादी रोटियाँ बनाते समय हाथ नहीं जलाएँगी। यह निर्णय उसकी करुणा और जिम्मेदारी का प्रमाण है। यह क्रिया केवल भावुकता नहीं, बल्कि गहरे नैतिक विवेक की अभिव्यक्ति है। प्रेमचंद यहाँ यह स्थापित करते हैं कि नैतिकता उम्र, शिक्षा या सामाजिक प्रतिष्ठा पर निर्भर नहीं करती; वह संवेदना और निस्वार्थ भाव से उत्पन्न होती है। हामिद का निर्णय उसके आत्मत्याग और पारिवारिक प्रेम का प्रतीक है। बाल मन की यह नैतिक स्पष्टता समाज के तथाकथित परिपक्व वयस्कों के स्वार्थ के विपरीत खड़ी दिखाई देती है। इस प्रकार, प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि वास्तविक नैतिकता बाहरी प्रदर्शन में नहीं, बल्कि आंतरिक करुणा में निहित होती है। हामिद का चरित्र इस सत्य को उजागर करता है कि जब समाज लोभ और दिखावे में उलझ जाए, तब एक बालक भी नैतिक आदर्श प्रस्तुत कर सकता है (सिन्हा, आर., 2010, पृ. 119)।

नैतिकता और सामाजिक दबाव

प्रेमचंद की कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि समाज अक्सर नैतिकता के नाम पर व्यक्ति पर ऐसे दबाव डालता है, जो कई बार अन्यायपूर्ण और स्वार्थपरक होते हैं। नमक का दारोगा कहानी में यह द्वंद्व स्पष्ट रूप से सामने आता है। वंशीधर भारी रिश्तत को अस्वीकार करते हैं और अवैध नमक व्यापार करने वाले प्रभावशाली व्यापारी को गिरफ्तार करते हैं। यह निर्णय उनके नैतिक सिद्धांतों पर आधारित है। परंतु इसके परिणामस्वरूप उन्हें पद से हटा दिया जाता है और प्रशासनिक प्रतिकूलता का सामना करना पड़ता है। समाज का एक वर्ग उनकी ईमानदारी को अव्यावहारिक मानता है। यह प्रसंग दर्शाता है कि सामाजिक स्वीकृति पर आधारित नैतिकता कितनी सतही हो सकती है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि समाज अक्सर सुविधाजनक नैतिक मानदंडों को स्वीकार करता है, जबकि वास्तविक न्याय से समझौता कर लेता है। कहानी के अंत में वही व्यापारी, जिसे वंशीधर ने गिरफ्तार किया था, उनकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उन्हें अपने प्रतिष्ठान में सम्मानजनक पद की पेशकश करता है। यह मोड़ इस तथ्य की पुष्टि करता है कि व्यक्तिगत आत्मबल और आंतरिक विवेक ही सच्ची नैतिकता के स्रोत हैं। वंशीधर का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि उस व्यापक सामाजिक मानसिकता के विरुद्ध है, जो बहुमत की सुविधा को नैतिकता का रूप दे देती

है। प्रेमचंद यहाँ यह स्थापित करते हैं कि नैतिकता बहुमत की राय नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण साहस का परिणाम है (वर्मा, डी., 2015, पृ. 91)।

प्रेमचंद के साहित्य में पारिवारिक संबंधों की व्याख्या मात्र भावनात्मक सहारे या सामाजिक व्यवस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत नैतिक संरचना के रूप में की गई है। वे परिवार को न तो आदर्शवादी दृष्टि से देखते हैं और न ही उसे पूर्णतः दोषमुक्त मानते हैं, बल्कि उसे एक ऐसी संस्था के रूप में चित्रित करते हैं जहाँ प्रत्येक सदस्य की भूमिका, स्थिति और निर्णय नैतिक कसौटी पर परखे जाते हैं। उनकी कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि परिवार के भीतर सत्ता-संबंध, भूमिका-विन्यास और आपसी अपेक्षाएँ किस प्रकार नैतिक जटिलताओं को जन्म देती हैं। विशेषतः जब पीढ़ियों, वर्गों और लिंगों के बीच अधिकारों और कर्तव्यों का संतुलन बिगड़ता है, तब नैतिक टकराव अनिवार्य हो जाते हैं (शर्मा, ए., 2011, पृ. 88)।

भारतीय पारंपरिक समाज में परिवार को जीवन का केंद्र माना गया है, किंतु प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि उसी केंद्र में जब बुजुर्गों की उपेक्षा होने लगे, स्त्रियों से केवल त्याग की अपेक्षा की जाए, या बच्चों को अपरिपक्व समझकर उनके नैतिक विवेक को नकार दिया जाए, तब यह संरचना भीतर से दरकने लगती है। उनके लेखन में परिवार कोई स्थिर इकाई नहीं, बल्कि एक गतिशील सत्ता-ढांचा है, जो आर्थिक दबावों, सामाजिक मान्यताओं और मानसिक प्रवृत्तियों के प्रभाव में निरंतर परिवर्तित होता रहता है। इस संदर्भ में 'बूढ़ी काकी', 'पंच परमेश्वर' और 'बड़े घर की बेटी' जैसी कहानियाँ इन नैतिक जटिलताओं का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं (तिवारी, एस., 2013, पृ. 136)।

'बूढ़ी काकी' में वृद्धा की भूख केवल शारीरिक आवश्यकता नहीं, बल्कि सम्मान और आत्मीयता की आकांक्षा है। उसे परिवार के कोने में उपेक्षित कर दिया जाता है, मानो वह संबंध नहीं, बोझ हो। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि जब परिवार में अनुभव और वृद्धावस्था को अनुपयोगी समझा जाने लगे, तब नैतिक संकट जन्म लेता है। यह संकट केवल संसाधनों की कमी का नहीं, बल्कि संवेदना के ह्रास का परिणाम है (मिश्रा, पी., 2012, पृ. 74)।

'पंच परमेश्वर' में नैतिक दुविधा एक अलग रूप में सामने आती है। जब जुम्मन शेख और अलगू चौधरी मित्रता से ऊपर उठकर न्याय की भूमिका में आते हैं, तब उनके सामने संबंध और कर्तव्य के बीच चयन की स्थिति बनती है। पंचायत की कुर्सी पर बैठते ही व्यक्तिगत पक्षपात त्यागना आवश्यक हो जाता है। प्रेमचंद यह दर्शाते हैं कि न्याय केवल सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि आत्मा की आवाज़ है। मित्रता और

न्याय के बीच यह संघर्ष परिवार और समाज दोनों के नैतिक ढाँचे को प्रश्नांकित करता है (सिन्हा, आर., 2010, पृ. 119)।

इसी प्रकार 'बड़े घर की बेटी' में स्त्री-चरित्र पारिवारिक मर्यादा और संबंधों की रक्षा के प्रश्न से जुड़ता है। कहानी की नायिका आनंदी है, जो पति के परिवार में उत्पन्न विवाद के बावजूद धैर्य और संयम का परिचय देती है। उसका व्यवहार केवल सहनशीलता नहीं, बल्कि नैतिक संतुलन की स्थापना है। वह संबंधों को टूटने नहीं देती, बल्कि विवेकपूर्ण आचरण से उन्हें पुनः जोड़ती है। प्रेमचंद यहाँ स्त्री को केवल त्यागमयी नहीं, बल्कि नैतिक नेतृत्व करने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं (यादव, आर., 2014, पृ. 112)।

प्रेमचंद की पारिवारिक कहानियों में जो प्रमुख नैतिक कठिनाइयाँ उभरती हैं, वे निम्न प्रकार की हैं:

- ❖ बुजुर्गों की उपेक्षा और उनके प्रति कर्तव्य का क्षरण
- ❖ स्त्रियों से एकतरफा त्याग और धैर्य की अपेक्षा
- ❖ मित्रता और न्याय के बीच निर्णय का द्वंद्व
- ❖ आर्थिक अभाव के कारण संबंधों में उत्पन्न नैतिक असंतुलन
- ❖ परंपरा और सत्ता के नाम पर अनुचित अधिकारों का प्रयोग

इन सभी पहलुओं को प्रेमचंद केवल सामाजिक आलोचना के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उन्हें नैतिक विमर्श का आधार बनाते हैं। वे यह संकेत करते हैं कि नैतिकता कोई स्थिर नियम नहीं, बल्कि संदर्भानुसार बदलने वाली संवेदनात्मक और विवेकात्मक प्रक्रिया है। परिवार, जो समाज की मूल इकाई है, वही इस नैतिक परीक्षण का सबसे निकट और तीव्र क्षेत्र बन जाता है (वर्मा, डी., 2015, पृ. 91)।

इस प्रकार प्रेमचंद की दृष्टि में परिवार आदर्श का मंच नहीं, बल्कि संघर्ष और आत्मपरीक्षण का क्षेत्र है। यहाँ कोई पात्र पूर्णतः निर्दोष या पूर्णतः दोषी नहीं होता; प्रत्येक निर्णय परिस्थिति, मानसिकता और मूल्यबोध के आधार पर परखा जाता है। आगे की उप-श्रेणियों में इन कहानियों के विश्लेषण के माध्यम से हम देखेंगे कि किस प्रकार पारिवारिक संरचना नैतिक चेतना के निर्माण और विघटन दोनों का आधार बनती है।

3.1.1.1. 'बूढ़ी काकी' में उपेक्षा और कर्तव्य

'बूढ़ी काकी' की स्थिति घर के अदृश्य सदस्य जैसी बन जाती है। वे घर में मौजूद हैं, पर उनकी बात को महत्व नहीं मिलता। उम्र और बीमारी ने उन्हें निर्भर बना दिया है, इसलिए उनकी इच्छा और जरूरतें भी झंझट मानी जाती हैं। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि उपेक्षा केवल गाली या डाँट से नहीं होती। उपेक्षा तब भी होती है, जब किसी की तकलीफ को आदत कहकर टाल दिया जाए। काकी का रोना भूख से जुड़ा है, पर उससे बड़ा कारण अस्वीकार और अपमान है। घर का माहौल उन्हें व्यक्ति नहीं, बोझ मानने लगता है। उनके हिस्से में सिर्फ प्रतीक्षा आती है—कभी बुलावा आएगा, कभी खाना मिलेगा, कभी कोई पूछेगा। इस प्रतीक्षा में उनका आत्मसम्मान धीरे-धीरे टूटता जाता है। वे बार-बार याद दिलाती हैं कि वे भी घर की हैं, पर उनका वाक्य भी लोगों को चुभता है। इस तरह कहानी की शुरुआत ही कर्तव्य के संकट से होती है, जहाँ परिवार का नैतिक आधार कमजोर पड़ता दिखता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 24-25)।

कथानक का निर्णायक क्षण तिलक वाले आयोजन के दिन आता है। घर में पकवान बनते हैं, भीड़ बढ़ती है, और हर व्यक्ति बाहरी व्यवस्था में उलझ जाता है। बहू रूपा का दबाव बढ़ता है, क्योंकि उसी पर रसोई, मेहमान, और घर का प्रबंध है। ऐसे में काकी की भूख और बेचैनी काम में बाधा लगती है। भोजन की खुशबू काकी को रसोई तक खींच लाती है, और वे कड़ाह के पास पहुँच जाती हैं। यह दृश्य बताता है कि भूख शरीर पर कैसे अधिकार कर लेती है। पर घर का कर्तव्य उल्टी दिशा में चलता है। पहले मेहमान की परंपरा को इतना बड़ा बना दिया जाता है कि घर की वृद्धा की जरूरत छोटी लगने लगती है। काकी को रोकना, झिड़कना, और घसीटना सिर्फ अनुशासन नहीं, मानवीय असंवेदना है। उस क्षण परिवार का धर्म टूटता दिखता है, क्योंकि रिवाज को इंसान से ऊपर रख दिया गया है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 25-27)।

कहानी में कर्तव्य का अर्थ केवल खाना देना नहीं है। कर्तव्य का अर्थ है कमजोर की गरिमा बचाना और उसे अपनेपन का अनुभव कराना। पर इस घर में कर्तव्य रिवाज बनकर रह जाता है। घर वाले मान लेते हैं कि काकी सिर्फ खाने के लिए रोती हैं, इसलिए उनका रोना मजाक या झुंझलाहट का कारण बनता है। इस सोच से काकी का दुख छोटा कर दिया जाता है। जब संवेदना कम होती है, तब कठोरता सामान्य लगने लगती है। यही कारण है कि सब लोग खाकर भी काकी को याद नहीं करते। उपेक्षा यहाँ सामूहिक बन जाती है, क्योंकि कोई भी जिम्मेदारी अपने हिस्से नहीं लेता। पिता

और बहू दोनों यह मान लेते हैं कि काकी को सबक सिखाना जरूरी है। कर्तव्य तब दंड जैसा बन जाता है। प्रेमचंद यहाँ एक गहरी बात कहते हैं—जब परिवार में न्याय करुणा से अलग हो जाता है, तब वह न्याय नहीं रह जाता। वह केवल शक्ति का प्रदर्शन बन जाता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 27-28)।

अंत में रूपा का पश्चाताप कहानी को नैतिक दिशा देता है। काकी का झूठी पत्तलों को टटोलना रूपा को भीतर तक हिला देता है। यह दृश्य भूख का नहीं, अपमान का चरम दृश्य है। क्रोध का स्थान शोक ले लेता है, और रूपा समझती है कि उसने दिखावे के लिए बहुत किया, पर घर की वृद्धा के लिए नहीं। यही बोध कर्तव्य की असली परिभाषा सामने रखता है। कर्तव्य वह नहीं, जो समाज देखे और तारीफ करे। कर्तव्य वह है, जिसे अंतरात्मा सही माने। रूपा का दीपक जलाकर भोजन लेकर जाना प्रतीक बन जाता है—अंधेरे में भी मनुष्यत्व की लौ जल सकती है। कहानी यह भी दिखाती है कि कर्तव्य देर से जाग सकता है, पर उसका मूल्य भारी होता है, क्योंकि देर से जागा कर्तव्य कई चोटें पहले दे चुका होता है। फिर भी यह जागृति बताती है कि सुधार की संभावना बची रहती है। यही संभावना प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि का केंद्र है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 29-30)।

वृद्ध उपेक्षा और नैतिक दायित्व

काकी का बुढ़ापा सिर्फ उम्र नहीं, निर्भरता का दूसरा नाम है। उनकी आँखें कमजोर हैं, शरीर काँपता है, और कदम लड़खड़ाते हैं। आवाज भी वैसी नहीं रही कि घर वाले उसे गंभीरता से लें। इसी कारण उनकी जरूरतें हंगामा समझ ली जाती हैं। वे जब रोती हैं, तो लोग कह देते हैं कि यह उनकी आदत है। इस एक लेबल से उनकी पीड़ा का अर्थ ही बदल जाता है। दर्द को नाटक मान लेने पर संवेदना मरने लगती है। प्रेमचंद यहाँ साफ संकेत देते हैं कि वृद्ध व्यक्ति के साथ सबसे बड़ा अन्याय यही है कि उसकी तकलीफ को मामूली बताया जाए। नैतिक दायित्व का पहला नियम यह है कि कमजोर की बात को ध्यान से सुना जाए। परिवार अगर यही नहीं कर पाता, तो वह संबंध निभा तो रहा है, पर मनुष्यता खो रहा है। काकी के आँसू केवल भूख के नहीं हैं। वे अस्वीकार और अकेलेपन के आँसू भी हैं। घर के भीतर रहते हुए भी जब किसी को अकेला महसूस हो, तब उपेक्षा सबसे तीखी बन जाती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 24-25)।

नैतिक दायित्व का दूसरा पक्ष अधिकार और कृतज्ञता से जुड़ता है। काकी केवल आश्रित नहीं हैं, उनकी संपत्ति से घर को आय मिलती है। यह तथ्य कहानी में उस समय उभरता है, जब रूपा का मन बदलता है और उसे अपने व्यवहार का बोध होता

है। काकी के धन से घर चलता है, पर काकी को भरपेट भोजन तक नहीं मिलता। यह विरोध नैतिक विफलता को उजागर करता है। लाभ लेना और सम्मान न देना, दोनों साथ चलें, तो संबंध स्वार्थ बन जाते हैं। प्रेमचंद यहाँ दया की नहीं, "न्याय की बात करते हैं। वृद्ध की देखभाल उपकार नहीं है। वह घर की जिम्मेदारी है। जो व्यक्ति जीवन भर कुछ देकर गया हो, उसे अंतिम वर्षों में अपमान देना दोहरा अन्याय है। काकी का दुख इसलिए भी बड़ा है, क्योंकि उनका अधिकार होते हुए भी उन्हें हक की तरह नहीं देखा जाता। उन्हें दिया गया भोजन भी कृपा जैसा लगता है, जबकि वह उनका नैतिक अधिकार है। इसी बिंदु पर कहानी समाज को आईना दिखाती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 30)।

वृद्ध उपेक्षा का सबसे कठोर रूप अदृश्यता है। काकी घर में हैं, फिर भी घर के कामों की सूची में वे नहीं हैं। आयोजन में मेहमानों का ध्यान है, सेवकों का ध्यान है, भाट और नाई तक का ध्यान है, पर काकी का नहीं। यह दृश्य बताता है कि सामाजिक संवेदना भी चुनिंदा होती है। हम बाहरी लोगों के सामने उदार दिखना चाहते हैं, इसलिए उन्हें पहले खिलाते हैं। पर घर के कमजोर सदस्य के लिए वही उदारता गायब हो जाती है। नैतिक दायित्व घर की चौखट से शुरू होता है। अगर वही टूट जाए, तो बाहर की भलाई खोखली लगती है। काकी को न पूछना केवल भूल नहीं है। यह उनके अस्तित्व को नकारने जैसा है। जब एक वृद्ध को काम का नहीं मानकर किनारे कर दिया जाता है, तब परिवार अपनी जड़ों से कटने लगता है। प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि उपेक्षा धीरे-धीरे आदत बनती है, और फिर किसी को गलत भी नहीं लगती। यही सबसे बड़ा खतरा है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 27-28)।

कहानी यह भी सिखाती है कि नैतिक दायित्व किताबों से नहीं, व्यवहार से बनता है। लाडली का आचरण इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। वह बच्ची होकर भी सही और गलत को सहज समझती है। उसे तर्क नहीं चाहिए, उसे करुणा दिखती है। वह अपने हिस्से की पूड़ियाँ छुपाकर काकी को खिलाती है। यह छोटा सा काम घर के बड़े-बड़े दिखावों से बड़ा बन जाता है। दूसरी तरफ बड़े लोग तर्क गढ़ते हैं—घहले मेहमान, "सबक जरूरी, "वह खाने के लिए ही रोती है। ऐसे तर्क नैतिकता को कमजोर करते हैं, क्योंकि वे इंसान को नहीं, व्यवस्था को केंद्र बनाते हैं। प्रेमचंद संकेत देते हैं कि समाज तब सुधरता है, जब घर का नैतिक ढांचा सुधरता है। रूपा की जागृति और लाडली की दया मिलकर दिखाती है कि परिवार में सुधार संभव है। पर सुधार का पहला कदम यह है कि वृद्ध को बोझ नहीं, संबंध की जड़ माना जाए। काकी का सम्मान लौटाना केवल

एक व्यक्ति को भोजन देना नहीं है। यह परिवार की आत्मा को बचाना है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 28-30)।

करुणा बनाम स्वार्थ

कहानी में स्वार्थ कई परतों में दिखता है। पहला स्वार्थ सुविधा का स्वार्थ है, जहाँ बुद्धिराम और रूपा चाहते हैं कि 'बूढ़ी काकी' शांत रहें और मांग न करें। उनके रों को जरूरत नहीं, "आदत मान लिया जाता है, ताकि जिम्मेदारी से बचा जा सके। दूसरा स्वार्थ प्रतिष्ठा का स्वार्थ है, जिसमें तिलक के दिन घर की छवि सबसे बड़ा लक्ष्य बन जाती है। मेहमानों के सामने कोई कमी न दिखे, यह चिंता सब पर भारी पड़ती है। इसी चिंता में घर का कमजोर सदस्य सबसे पहले भूल जाता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि जब प्रतिष्ठा केंद्र बनती है, तब करुणा किनारे चली जाती है। घर का व्यवहार व्यक्ति-केंद्रित न रहकर व्यवस्था-केंद्रित हो जाता है। काकी की भूख को समय पर समझना आसान था, पर उसे प्राथमिकता देना कठिन लगने लगता है। यह कठिनाई असल में करुणा की कमी नहीं, स्वार्थ की बढ़त है। कहानी का तनाव यहीं से बनता है—जहाँ घर का धर्म कर्मकांड में बदलता है और मानवता पीछे छूट जाती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 25-26)।

रूपा का चरित्र इस संघर्ष का मुख्य केंद्र है। वह पूरी तरह बुरी नहीं है, पर वह परिस्थितियों में कठोर बन जाती है। तिलक के दिन उस पर काम, भीड़, और आदेशों का दबाव है। ऐसे में वह काकी की जरूरत को बाधा मानने लगती है। जब काकी कड़ाह के पास आती हैं, रूपा का ध्यान काम पर रहता है, "इंसान पर नहीं। यहाँ स्वार्थ व्यक्तिगत लाभ का नहीं, नियंत्रण का है। वह चाहती है कि रसोई और आयोजन का क्रम बिगड़े नहीं। पर करुणा वही है, जो क्रम के बीच भी व्यक्ति को जगह दे। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि काम की व्यस्तता बहाना बन सकती है, पर नैतिकता का विकल्प नहीं। रूपा के शब्द और व्यवहार बताते हैं कि स्वार्थ कई बार थकान और झुंझलाहट से भी पैदा होता है। लेकिन उसके परिणाम फिर भी उतने ही कठोर होते हैं। कहानी हमें यह भी सिखाती है कि जब घर का प्रबंध केवल काम पूरा करने तक सीमित हो जाता है, तब संबंधों की गरिमा टूटने लगती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 26-27)।

लाडली करुणा की सबसे साफ तस्वीर है। वह अपने हिस्से की पूडियाँ नहीं खाती और उन्हें गुड़िया की पिटारी में छुपा देती है। रात में डरते-डरते वह काकी के पास जाती है और उन्हें खिला देती है। उसका डर यह दिखाता है कि घर में करुणा को भी सजा का डर है। फिर भी वह रुकती नहीं। यह करुणा स्वार्थ पर जीत है, क्योंकि लाडली को बदले में कुछ नहीं चाहिए। उसे सिर्फ काकी की खुशी और राहत चाहिए। प्रेमचंद इस बच्ची के जरिए यह बताते हैं कि करुणा उम्र, ताकत, या अधिकार से नहीं

आती। वह मन की संवेदना से आती है। लाडली का कदम यह भी बताता है कि नैतिक साहस बड़े निर्णयों में नहीं, छोटे कामों में भी होता है। उसके व्यवहार से घर के बड़ों की बेरुखी और ज्यादा तीखी दिखने लगती है। करुणा यहाँ भाव नहीं, “कर्म बनकर आती है। यही वजह है कि लाडली का छोटा प्रयास कहानी का नैतिक आधार मजबूत करता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 28-29)।

स्वार्थ की पराकाष्ठा उस दृश्य में दिखती है, जब काकी झूठी पतलें टटोलती हैं। यह दृश्य केवल भूख का नहीं, अपमान का चरम है। घर का सच समाज के सामने नहीं, घर के सामने खुल जाता है। उसी क्षण रूपा के भीतर करुणा जागती है। उसका दिल पसीजता है और वह प्रायश्चित्त करती है। यहाँ करुणा भावुकता नहीं रहती, “जिम्मेदारी बन जाती है। वह भंडार खोलती है, थाली सजाती है, और काकी के पास भोजन लेकर जाती है। स्वार्थ की दीवार तब टूटती है, जब इंसान खुद को दोषी मान ले। प्रेमचंद इस बदलाव को उपदेश की तरह नहीं रखते। वे उसे अनुभव की चोट से पैदा हुई समझ की तरह रखते हैं। रूपा का बदलना यह भी बताता है कि करुणा दब सकती है, मरती नहीं। जब दृश्य बहुत कठोर हो जाए, तब मनुष्य की अंतरात्मा जाग सकती है। कहानी का नैतिक निष्कर्ष यही है कि स्वार्थ परिवार को चलाता नहीं, तोड़ता है। करुणा परिवार को जोड़ती है और उसे मनुष्यता देती है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 30)।

भूख और मानवीय गरिमा

कहानी में भूख केवल पेट की जरूरत नहीं है। भूख सम्मान की परीक्षा भी है। ‘बूढ़ी काकी’ की भूख स्वाद से शुरू होकर जीने तक पहुँचती है। पकवानों की गंध उनके भीतर कल्पना जगाती है, और उसी कल्पना से पीड़ा भी बढ़ती है। वे सोचती हैं कि आज तो उन्हें भी मिलेगा, क्योंकि घर में इतना कुछ बन रहा है। पर इंतजार लंबा होता जाता है। यह इंतजार भूख को और तीखा बना देता है। जब वे रेंगकर कड़ाह तक जाती हैं, तब यह सिर्फ भोजन की चाह नहीं रहती। यह उस आखिरी उम्मीद का प्रयास बन जाता है, जिसमें इंसान अपनी गरिमा बचाए रखना चाहता है, पर शरीर हार रहा होता है। यह दृश्य बताता है कि भूख इंसान से नियंत्रण छीन सकती है। फिर भी बुद्धिराम और रूपा का व्यवहार भूख को लालच समझ लेता है। प्रेमचंद इस नजरिए को चुनौती देते हैं। वे बताते हैं कि भूख मनुष्य की प्राकृतिक मजबूरी है, और इसे लालच कहकर अपमानित करना क्रूरता है। काकी का मन और शरीर दोनों उस दबाव में टूटते हैं, पर वे फिर भी हक की उम्मीद नहीं छोड़तीं। यही कहानी की सबसे मानवीय और सबसे दर्दनाक परत है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 26)।

गरिमा का दूसरा पक्ष सार्वजनिक अपमान है। काकी को सबके सामने डाँटना, हटाना, और घसीटना उनकी गरिमा तोड़ देता है। वे खुद भी समझती हैं कि उनसे

गलती हो गई, इसलिए वे चुपचाप कोठरी में लौट जाती हैं और बुलावे की प्रतीक्षा करती हैं। यह आत्म-संयम बताता है कि काकी केवल खाने के लिए रोने वाली नहीं हैं। उनमें लाज है, समझ है, और संबंधों की मर्यादा का भाव भी है। वे जानती हैं कि मेहमानों के बीच उनका रोना अच्छा नहीं माना जाएगा। इसलिए वे अपने दर्द को दबाकर पीछे हट जाती हैं। समस्या यह है कि बुद्धिराम और रूपा उनकी इस अंदरूनी संवेदना को नहीं समझ पाते। वे उन्हें एक ही पहचान में बाँध देते हैं—भूखी और परेशान करने वाली बूढ़ी। यही एकांगी दृष्टि मनुष्य की गरिमा को चोट पहुँचाती है। गरिमा सिर्फ भोजन मिलने से नहीं बचती। गरिमा तब बचती है, जब व्यक्ति को सम्मान से देखा जाए। काकी को यह सम्मान नहीं मिलता, इसलिए भोजन की कमी के साथ-साथ उनका आत्मसम्मान भी टूटता जाता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटा' और अन्य कहानियाँ' पृ. 27)।

भूख का सबसे दर्दनाक रूप तब आता है, जब सब लोग खा चुके होते हैं। घर में तिलक का समारोह समाप्त हो जाता है, लेकिन काकी को कोई याद नहीं करता। यह भूल नहीं है, यह प्राथमिकता का निर्णय है। लाडली की पूड़ियाँ उन्हें पलभर राहत देती हैं, पर भूख फिर जागती है। प्रेमचंद यहाँ मनोवैज्ञानिक सच दिखाते हैं। थोड़ी राहत कभी-कभी पीड़ा बढ़ा देती है, क्योंकि इच्छा फिर तेज हो जाती है। काकी का बार-बार होठ चाटना, टुकड़ों को ढूँढना, और आँखों में चमक का आना—यह सब उस भीतर की लड़ाई को दिखाता है, जहाँ भूख और संकोच दोनों साथ चल रहे हैं। वे खाना चाहती हैं, पर माँग नहीं पातीं। वे रोती हैं, पर बोल नहीं पातीं। यह द्वंद्व मानव गरिमा का केंद्र है। मनुष्य को खाना भी चाहिए और सम्मान भी चाहिए। जब दोनों में से एक भी छिन जाए, तो व्यक्ति टूटने लगता है। प्रेमचंद पाठक को जानबूझकर असहज करते हैं, ताकि गरिमा का प्रश्न तेज हो। वे दिखाते हैं कि भूख केवल दया का विषय नहीं है। भूख नैतिकता की परीक्षा है—कि घर किसे पहले याद करता है और किसे बाद में। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटा' और अन्य कहानियाँ' पृ. 29)।

झूठी पत्तलें टटोलना भूख और गरिमा के टूटने का चरम दृश्य है। काकी अब सीधे भोजन नहीं माँगतीं। वे जूठे में अपना हिस्सा खोजती हैं। यह दृश्य बताता है कि भूख इंसान को कितनी नीचे धकेल सकती है, जब समाज उसे ऊपर उठाने के बजाय दबा दे। प्रेमचंद इसे तीखे रूपक की तरह रखते हैं। यह रूपक कहता है कि जब एक वृद्ध अपमानित होता है, तो केवल एक व्यक्ति नहीं गिरता, पूरा परिवार गिरता है। रूपा को उसी क्षण अपनी स्वार्थपरता दिखती है। उसे लगता है कि यह अधर्म है। वह डरती भी है और पिघलती भी है। इसी डर में नैतिक चेतना जागती है। वह समझती है कि समाज के सामने किया गया आयोजन व्यर्थ है, यदि घर में मनुष्यता नहीं रही। कहानी का संदेश स्पष्ट है—भूख के साथ गरिमा बचाना परिवार का पहला धर्म है। भोजन देना

जरूरी है, पर उससे भी जरूरी है सम्मान देना। क्योंकि भोजन शरीर बचाता है, और सम्मान आत्मा बचाता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 30)।

पारिवारिक कर्तव्य और सामाजिक संवेदना

परिवार को हम सुरक्षा, अपनापन, और सहारे का स्थान मानते हैं। पर 'बूढ़ी काकी' में यही परिवार असुरक्षा का कारण बन जाता है। यहाँ कर्तव्य रिश्ते से नहीं, सुविधा से तय होने लगता है। 'बूढ़ी काकी' घर की होते हुए भी धीरे-धीरे घर से बाहर कर दी जाती हैं। वे कमरे में हैं, पर घर की प्राथमिकताओं में नहीं। उनकी जरूरतें सबसे पहले टलती हैं। उनका रोना सबसे पहले चुप कराया जाता है। घर का नैतिक आधार इसलिए कमजोर दिखता है, क्योंकि रिश्ते भावना से नहीं, नियंत्रण से चलने लगते हैं। प्रेमचंद परिवार को आदर्श संस्था की तरह नहीं दिखाते। वे उसे एक वास्तविक ढाँचे की तरह दिखाते हैं, जहाँ सत्ता, थकान, और स्वार्थ भी काम करते हैं। बुद्धिराम का अधिकार है, रूपा का दबाव है, और काकी की निर्भरता है। इसी असंतुलन में कर्तव्य नियम बन जाता है और संवेदना विकल्प। काकी का दुख इसलिए बड़ा है, क्योंकि वह अपने ही घर में परायी हो जाती हैं। यह परायापन सामाजिक पतन का पहला संकेत बनता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 24-25)।

सामाजिक संवेदना का एक चेहरा आयोजन में दिखता है। तिलक के दिन घर में मेहमानों, सेवकों, और बाहर के लोगों के लिए भरपूर भोजन है। यह बाहरी संवेदना है, जो प्रतिष्ठा से जुड़ी है। घर चाहता है कि लोग उसकी उदारता देखें। इसलिए व्यवस्था, सेवा, और मेहमाननवाजी पर पूरा जोर है। पर उसी समय 'बूढ़ी काकी', जिनकी संपत्ति से घर चलता है, स्वयं भूखी हैं। यह अंतर बताता है कि समाज में करुणा कई बार प्रदर्शन बन जाती है। हम समाज के सामने अच्छे दिखना चाहते हैं, इसलिए बाहर वालों का ध्यान रखते हैं। पर घर के भीतर वही नैतिकता कमजोर पड़ जाती है। प्रेमचंद इस विरोध से पाठक को सोचने पर मजबूर करते हैं कि संवेदना का मूल्य तभी है, जब वह घर के भीतर भी उतनी ही मजबूत हो। अगर करुणा केवल दिखाई जाए और जिया न जाए, तो वह खोखली बन जाती है। कहानी यह भी दिखाती है कि सामाजिक रीति कई बार परिवार को मानवता से दूर कर देती है। पहले मेहमान का नियम तब अधर्म बन जाता है, जब वह अपने ही घर के कमजोर को भूखा छोड़ दे। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 27-28)।

पारिवारिक कर्तव्य का सच्चा रूप लाडली के व्यवहार में उभरता है। वह परिवार का सबसे छोटा सदस्य है, फिर भी सबसे बड़ा नैतिक काम करती है। वह जोखिम उठाती है, डर सहती है, फिर भी काकी को खाना देती है। उसका डर यह बताता है कि घर में करुणा को भी अनुशासन की डाँट का डर है। फिर भी वह पीछे नहीं हटती। यह संकेत है कि नैतिकता उम्र, अधिकार, या शिक्षा से नहीं आती। वह संवेदना से आती है।

लाडली का काकी से प्रेम स्वार्थ नहीं, अपनापन है। वह काकी को बोझ नहीं मानती। वह उन्हें परिवार का हिस्सा मानती है। इसी अपनापन से परिवार का असली अर्थ बनता है। प्रेमचंद बताते हैं कि घर का भविष्य उसी संवेदना पर टिकता है, जो बच्चों के मन में बची रहती है। लाडली का व्यवहार यह भी दिखाता है कि नैतिक मूल्य उपदेश से नहीं, अनुभव से बनते हैं। उसने काकी के आँसू देखे हैं, इसलिए उसने अपना भोजन बाँटा। इस बाँटने में परिवार का सबसे शुद्ध कर्तव्य छिपा है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 28-29)।

अंत में रूपा की जागृति सामाजिक संवेदना की वापसी है। वह खुद को दोषी मानती है, क्योंकि उसे काकी की हालत सच की तरह दिख जाती है। काकी का झूठी पत्तलें टटोलना रूपा को भीतर तक हिला देता है। उस क्षण उसे समझ आता है कि समाज के लिए आयोजन बड़ा था, पर काकी के लिए भोजन बड़ा था। यही समझ संवेदना को वास्तविक बनाती है। रूपा का बदलना बताता है कि घर में कर्तव्य केवल परंपरा नहीं होना चाहिए। कर्तव्य सतत ध्यान, सम्मान, और जिम्मेदारी का अभ्यास होना चाहिए। कहानी का संदेश साफ है—जो घर अपने बुजुर्ग को सम्मान नहीं देता, वह अपने नैतिक आधार को खो देता है। रूपा का कदम संकेत देता है कि सुधार संभव है, पर देर नुकसान बढ़ाती है। प्रेमचंद यहाँ पाठक को चेताते हैं कि समाज की संवेदना घर से शुरू होती है। अगर घर का सबसे कमजोर सदस्य सुरक्षित नहीं, तो बाहर की सारी भलाई केवल दिखावा रह जाती है। इसलिए पारिवारिक कर्तव्य और सामाजिक संवेदना एक ही नैतिक धारा के दो किनारे हैं। दोनों कमजोर हों, तो मनुष्यत्व सूखने लगता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 30)।

3.1.1.2. 'पंच परमेश्वर' में मित्रता और न्याय का द्वंद्व

प्रेमचंद की कालजयी कहानी 'पंच परमेश्वर' भारतीय ग्रामीण न्याय-व्यवस्था, सामाजिक संरचना और मानवीय संबंधों के बीच नैतिक द्वंद्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। इस कहानी का मूल केंद्र है मित्रता और न्याय के बीच का टकराव। जब जुम्मन शेख को पंच के रूप में नियुक्त किया जाता है, तो वह न्याय को अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और संबंधों के अधीन कर देता है, लेकिन कहानी का नैतिक उत्कर्ष तब सामने आता है जब स्वयं जुम्मन को एक ऐसे मुकदमे में पंच की भूमिका निभानी पड़ती है, जहाँ उसे अपने मित्र अलगू चौधरी के विरुद्ध निर्णय देना होता है। यही वह मोड़ है, जहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि पंच की कुर्सी पर बैठते ही व्यक्ति का विवेक, मित्रता, पूर्वाग्रह और निजी भावना के ऊपर उठकर एक नई नैतिक ऊँचाई प्राप्त करता है। यह परिवर्तन केवल व्यक्ति के भीतर का नहीं, बल्कि समाज के लिए भी एक आदर्श है कि न्याय का कार्य करते समय संबंधों की दीवारें नहीं, सत्य और निष्पक्षता की दृष्टि होनी चाहिए (अग्रवाल, एम. 2018, पृ. 54)।

कहानी इस नैतिक द्वंद्व को केवल आदर्शवाद में नहीं समेटती, बल्कि जुम्मन के भीतर घटित होने वाले मानसिक संघर्ष को बहुत ही यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रित करती है। प्रारंभ में जुम्मन अपने मित्र अलगू के खिलाफ फैसला देना चाहता ही नहीं, लेकिन पंच की जिम्मेदारी स्वीकार करते ही वह स्वयं के भीतर झाँकने लगता है। प्रेमचंद यह प्रक्रिया बहुत सूक्ष्मता से दिखाते हैं पंच की कुर्सी को वह 'परमेश्वर' की जगह कहते हैं, यानी जहां बैठते ही इंसान को स्वयं को भूलकर न्याय के मार्ग पर चलना होता है। यह सोच न केवल भारतीय ग्राम्य संस्कृति में पंचायत की नैतिक वैधता को स्थापित करती है, बल्कि यह भी दिखाती है कि व्यक्ति के भीतर नैतिक जागरूकता की संभावना सदैव रहती है, बशर्ते वह अपने अहं और संबंधों से ऊपर उठ सके। यही वह नैतिक क्षण है जो प्रेमचंद की कहानी को साधारण कथा से एक गहन समाजशास्त्रीय और दार्शनिक विमर्श में परिवर्तित कर देता है (सिंह, आर. 2016, पृ. 97)।

'पंच परमेश्वर' एक ऐसी कथा बन जाती है जो यह सिखाती है कि समाज में स्थायी शांति और विश्वास की स्थापना केवल तभी संभव है, जब न्याय निःस्वार्थ और निर्भीक हो। प्रेमचंद ने जिस प्रकार से पंच की भूमिका को ईश्वरतुल्य बताया है, वह यह दर्शाता है कि भारतीय ग्रामीण जीवन में नैतिकता का स्थान कितना ऊँचा रहा है और यही कारण है कि जब जुम्मन निष्पक्ष फैसला देता है, तो अलगू न केवल निर्णय को स्वीकार करता है, बल्कि अपने मित्र की न्यायप्रियता को भी सम्मान देता है। इस संवाद और परिपक्वता की संस्कृति को प्रेमचंद ने केवल मनोरंजन की दृष्टि से नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षा के एक सशक्त उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया है। मित्रता और न्याय के इस द्वंद्व में अंततः न्याय की विजय होती है और यही वह संदेश है जो आज के समय में भी उतना ही प्रासंगिक है, जहाँ न्याय को बार-बार निजी हितों, संबंधों और स्वार्थ की दीवारों में कैद करने की कोशिश की जाती है। 'पंच परमेश्वर' न केवल प्रेमचंद की श्रेष्ठतम कहानियों में गिनी जाती है, बल्कि यह उस नैतिक संभावना की मिसाल है, जो हर सामान्य व्यक्ति के भीतर सोई होती है, और जिसे सही अवसर मिलने पर वह जगा सकता है (द्विवेदी, क. 2019, पृ. 112)।

मित्रता बनाम न्याय

प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' में मित्रता और न्याय के बीच का टकराव केवल कथानक का आधार नहीं, बल्कि एक गहरा नैतिक विमर्श है, जो सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर न्याय की अवधारणा को परखता है। प्रारंभिक घटनाओं में जब जुम्मन शेख की मौसी अपने भरण-पोषण के अधिकार को लेकर पंचायत में जाती है, और अलगू चौधरी को पंच नियुक्त किया जाता है, तो यह निर्णय जुम्मन के लिए अप्रत्याशित और आक्रोशजनक होता है, क्योंकि वह अलगू को अपना परम मित्र मानता है। उसे यह विश्वास है कि मित्र होने के नाते, अलगू उसके पक्ष में फैसला देगा। लेकिन

जब अलगू निष्पक्ष होकर न्यायसंगत निर्णय देता है, तो यही निर्णय जुम्मन की आँखें खोल देता है, परंतु तत्काल प्रतिक्रिया में वह अपने मित्र को अपना शत्रु मान लेता है। प्रेमचंद इस मनोवैज्ञानिक उलझन को बहुत ही सहजता से चित्रित करते हैं यह दिखाते हुए कि जब रिश्ते न्याय के रास्ते में आ खड़े होते हैं, तब व्यक्ति का नैतिक साहस ही उसकी पहचान बनता है। अलगू चौधरी उस क्षण में अपनी मित्रता को दरकिनार करके एक सच्चे 'पंच' की भूमिका निभाते हैं, और यहीं से कहानी उस बिंदु की ओर मुड़ती है जहाँ न्याय व्यक्तिगत रिश्तों से ऊँचा हो जाता है (मिश्रा, डी. 2017, पृ. 121)।

दूसरे चरण में यही स्थिति जुम्मन के साथ घटित होती है। जब वह स्वयं पंच की गद्दी पर बैठता है और निर्णय उसे अपने पूर्व मित्र अलगू के पक्ष या विपक्ष में देना होता है, तो वह उसी नैतिक संघर्ष से गुजरता है जिससे पहले अलगू गुजरा था। जुम्मन की अंतरात्मा इस बात को स्वीकारने लगती है कि पंच बनते ही व्यक्ति किसी मित्र, परिवार या जाति का नहीं रह जाता, बल्कि वह सत्य और न्याय का प्रतिनिधि बन जाता है। प्रेमचंद जिस रूप में जुम्मन के इस आंतरिक परिवर्तन को चित्रित करते हैं, वह यह दर्शाता है कि व्यक्ति परिस्थितियों से ऊपर उठकर नैतिक उत्कर्ष प्राप्त कर सकता है। जुम्मन अंततः न्यायपूर्ण निर्णय देता है, और यहीं कहानी की नैतिक पूर्णता सिद्ध होती है। वह निर्णय उसके भीतर की नैतिक चेतना का परिणाम है, जो मित्रता की अपेक्षा न्याय को प्राथमिकता देती है। यही वह क्षण है जहाँ प्रेमचंद 'पंच' की अवधारणा को 'परमेश्वर' के समकक्ष स्थापित करते हैं जहाँ बैठते ही व्यक्ति अपने भीतर के पूर्वग्रहों को त्याग कर न्याय के मार्ग पर चलता है। यह कथा इस गहरे संदेश के साथ समाप्त होती है कि रिश्ते, चाहे जितने भी घनिष्ठ क्यों न हों, अगर न्याय के आड़े आते हैं, तो उन्हें त्यागना ही सच्ची नैतिकता है (जोशी, एन. 2020, पृ. 89)।

नैतिक साहस और निष्पक्षता

प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' कहानी में नैतिक साहस का केंद्रीय स्थान है, विशेषतः उस समय जब कोई पात्र व्यक्तिगत भावनाओं, संबंधों और पूर्वाग्रहों के दबाव के बावजूद निष्पक्ष निर्णय लेने की हिम्मत करता है। अलगू चौधरी जब अपने मित्र जुम्मन शेख के पारिवारिक विवाद में पंच बनाए जाते हैं, तब उनके सामने कठिन चुनाव होता है या तो वे अपनी मित्रता निभाएँ, या फिर सच्चे न्याय के लिए अपने मित्र के विरुद्ध निर्णय दें। प्रेमचंद इस द्वंद्व को केवल वैचारिक स्तर पर नहीं, बल्कि मानवीय अनुभवों की गहराई से चित्रित करते हैं। अलगू का निर्णय, जो जुम्मन की मौसी के पक्ष में होता है, न केवल उसका नैतिक साहस दिखाता है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि न्याय की कुर्सी पर बैठते ही व्यक्ति को अपने निजी रिश्तों से ऊपर उठना पड़ता है। यही निर्णय नायकीय बन जाता है क्योंकि इसमें व्यक्तिगत हानि की आशंका के बावजूद सच्चाई का

साथ देने का साहस है, जो आज के संदर्भ में भी आदर्श बन सकता है (सरीन, ए. 2018, पृ. 93)।

यह नैतिक साहस केवल अलगू तक सीमित नहीं रहता; कहानी का दूसरा भाग जुम्मन के भीतर चल रहे संघर्ष को सामने लाता है, जहाँ वह स्वयं पंच बनने पर अपने मित्र अलगू के खिलाफ या पक्ष में फैसला देने की स्थिति में होता है। प्रारंभिक द्वेष, कटुता और बदले की भावना के बावजूद जुम्मन जब न्याय की गद्दी पर बैठता है, तो उसकी चेतना में परिवर्तन आता है। प्रेमचंद यह सूक्ष्म परिवर्तन अत्यंत प्रभावशाली तरीके से दिखाते हैं जुम्मन को यह अनुभव होता है कि पंच बनते ही उसके कंधों पर नैतिक जिम्मेदारी आ जाती है, और यह पद उसे अपने निजी हितों से ऊपर सोचने के लिए बाध्य करता है। यह क्षण केवल जुम्मन के लिए नहीं, बल्कि हर पाठक के लिए एक नैतिक शिक्षा है कि निष्पक्षता का निर्णय भीतर से उपजता है, और उसे निभाने के लिए अपार साहस चाहिए। प्रेमचंद यहां यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिक साहस केवल बाहरी बाधाओं से लड़ने का नाम नहीं, बल्कि अपने भीतर के स्वार्थ, मोह और संबंधों से भी ऊपर उठने की शक्ति है (यादव, वी. 2017, पृ. 76)।

जुम्मन द्वारा अलगू के पक्ष में दिया गया निर्णय न केवल व्यक्तिगत परिपक्वता का उदाहरण है, बल्कि यह भारतीय पंचायत व्यवस्था में न्याय के आदर्श को भी प्रतिष्ठित करता है। प्रेमचंद इस निर्णय को केवल एक 'फैसला' नहीं मानते, बल्कि इसे समाज के लिए एक नैतिक संदेश के रूप में प्रस्तुत करते हैं कि जब भी न्याय की बात हो, तो हर व्यक्ति के भीतर एक 'पंच परमेश्वर' जागना चाहिए। निष्पक्षता, जो आज के समाज में अक्सर समझौतों और प्रभावों की बलि चढ़ जाती है, इस कहानी में एक पुनर्स्थापित मूल्य बनकर उभरती है। प्रेमचंद हमें यह सिखाते हैं कि किसी भी निर्णय को निष्पक्ष बनाना केवल प्रक्रिया का विषय नहीं, बल्कि आंतरिक नैतिक बोध और साहस का प्रश्न है। यही कारण है कि 'पंच परमेश्वर' केवल एक कथा नहीं, बल्कि एक नैतिक प्रेरणा है, जो यह सिखाती है कि न्याय केवल कानून से नहीं, बल्कि विवेक और नैतिक शक्ति से जन्म लेता है (रस्तोगी, के. 2021, पृ. 105)।

सामाजिक दायित्व और व्यक्तिगत संबंध

प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' में सामाजिक दायित्व और व्यक्तिगत संबंधों के बीच का तनाव उस समय गहराता है जब व्यक्ति को किसी सार्वजनिक भूमिका में न्याय का निर्णय लेना होता है, जबकि निजी जीवन में वही फैसला किसी घनिष्ठ संबंध को तोड़ सकता है। यह कहानी समाज के उस आदर्श को सामने लाती है जहाँ व्यक्ति का दायित्व केवल अपने निकट संबंधों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह पूरे समुदाय के प्रति जवाबदेह होता है। अलगू चौधरी और जुम्मन शेख जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि कैसे व्यक्ति का नैतिक स्तर तब परखा जाता है जब उसे

सार्वजनिक न्याय और निजी संबंधों में से किसी एक को चुनना हो। जब अलगू अपने परम मित्र जुम्मन के खिलाफ उसकी मौसी के पक्ष में निर्णय देता है, तब वह यह सिद्ध करता है कि सामाजिक दायित्व की प्राथमिकता निजी संबंधों से अधिक है। यही निर्णय उसे एक सामान्य व्यक्ति से एक उत्तरदायी नागरिक में परिवर्तित करता है। प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि सामाजिक संरचना में निष्पक्षता बनाए रखना केवल कानूनी औपचारिकता नहीं, बल्कि नैतिक आचरण की कसौटी है, और जो इस पर खरा उतरता है वही समाज में विश्वास का आधार बनता है (शुक्ला, ए. 2019, पृ. 91)।

जब वही स्थिति जुम्मन के सामने आती है और उसे अलगू के खिलाफ फैसला सुनाना होता है, तब वह भी अपने भीतर चल रहे भावनात्मक द्वंद्व से उबरकर वही मार्ग चुनता है जो पहले अलगू ने अपनाया था। यह कहानी स्पष्ट रूप से यह संकेत देती है कि सामाजिक दायित्वों को निभाना केवल एक औपचारिक भूमिका नहीं, बल्कि व्यक्तिगत चेतना और आत्म-मंथन का परिणाम है। जुम्मन पहले अलगू से नाराज़ होता है, लेकिन जब वह स्वयं पंच बनता है और निष्पक्ष निर्णय देता है, तब उसे अपने पूर्व निर्णयों की सच्चाई का एहसास होता है। यह आत्मबोध न केवल उसकी सोच को परिवर्तित करता है, बल्कि दोनों मित्रों के संबंधों में भी एक नई समझ और परिपक्वता लाता है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण आधुनिक समाज के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ अक्सर व्यक्ति निजी लाभ या संबंधों की रक्षा में सामाजिक दायित्वों से मुँह मोड़ लेता है। 'पंच परमेश्वर' यह सिखाती है कि समाज की स्थिरता और विश्वास की नींव केवल तब मजबूत हो सकती है जब हर नागरिक, चाहे वह कितनी ही निकटता से किसी से जुड़ा हो, सार्वजनिक निर्णयों में सत्य, न्याय और निष्पक्षता को प्राथमिकता दे (दत्त, एन. 2020, पृ. 134)।

न्याय की नैतिक वैधता

प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' केवल एक कथानक नहीं, बल्कि भारतीय ग्राम्य जीवन में न्याय की नैतिक वैधता को परिभाषित करने वाला एक आदर्श उदाहरण है। इस कहानी में न्याय की जो व्याख्या मिलती है, वह न केवल कानूनी सिद्धांतों से अलग है, बल्कि उससे कहीं अधिक नैतिक और आत्मिक आधार पर टिकी हुई है। जब कोई व्यक्ति 'पंच' बनता है, तो वह सामाजिक दृष्टि से एक ऐसा पद प्राप्त करता है, जो उसे ईश्वर तुल्य बना देता है यही कारण है कि प्रेमचंद 'पंच परमेश्वर' शब्द का प्रयोग करते हैं। यह दार्शनिक स्थापना इस सोच से उपजती है कि न्याय तभी वैध माना जा सकता है जब उसे निष्पक्षता, विवेक और सत्यनिष्ठा के साथ निभाया जाए। कहानी में अलगू और जुम्मन दोनों जब-जब पंच बनते हैं, तब-तब वे अपने निजी जीवन और भावनात्मक लगाव से ऊपर उठकर निर्णय लेते हैं, और यही प्रक्रिया उन्हें नैतिक बल देती है। न्याय केवल एक निर्णय देने की क्रिया नहीं रह जाती, बल्कि वह व्यक्ति के

आत्म-परिष्कार और सामाजिक उत्तरदायित्व की अभिव्यक्ति बन जाता है (कुलश्रेष्ठ, एस. 2016, पृ. 67)।

इस कहानी का नैतिक बल इस बात में निहित है कि न्याय को केवल कानून या परंपरा के तहत नहीं, बल्कि अंतरात्मा की आवाज़ पर आधारित रूप में देखा गया है। पंच बनने के बाद दोनों पात्रों के व्यवहार में जो परिवर्तन आता है, वह इस बात का प्रमाण है कि समाज ने उस पद को एक विशेष नैतिक मर्यादा से जोड़ा है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि समाज के हाशिए पर बैठे लोग भी यदि न्याय का निर्णय लेते हैं, तो वे भी एक ऊँचे नैतिक स्थान पर पहुँच सकते हैं बशर्ते वे निष्पक्ष रहें। यही वह दृष्टिकोण है जो न्याय की वैधता को बाह्य मानकों से हटाकर आंतरिक सत्यनिष्ठा पर आधारित करता है। यह वैधता किसी संस्था द्वारा प्रदत्त नहीं होती, बल्कि व्यक्ति के भीतर के विवेक द्वारा अर्जित होती है। जब जुम्मन अपने पूर्व शत्रु के पक्ष में न्याय करता है, तो वह केवल 'न्यायिक' नहीं होता वह 'नैतिक' हो जाता है। प्रेमचंद यह अंतर स्पष्ट करते हैं कि न्याय तब तक अधूरा है जब तक उसमें मानवीय गरिमा और आत्मबल की झलक न हो (शिवहरे, आर. 2018, पृ. 82)।

‘पंच परमेश्वर’ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह न्याय को केवल सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का उपकरण नहीं मानती, बल्कि उसे एक जीवंत नैतिक परंपरा के रूप में प्रस्तुत करती है। कहानी यह दिखाती है कि व्यक्ति चाहे जितना भी साधारण क्यों न हो, यदि वह न्याय के साथ खड़ा हो तो वह समाज में एक असाधारण भूमिका निभा सकता है। पंच की कुर्सी पर बैठा व्यक्ति केवल दूसरों के विवाद नहीं सुलझाता, वह अपनी आत्मा की परीक्षा भी देता है। यही आत्मपरीक्षा न्याय को नैतिक वैधता प्रदान करती है। प्रेमचंद का यह संदेश आज के संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ न्याय अक्सर अधिकार, प्रभाव और शक्ति के अधीन हो जाता है। लेखक यह स्थापित करते हैं कि न्याय तभी सार्थक है जब वह अंतःकरण की निष्पक्षता और सार्वजनिक विश्वास दोनों को संतुलित कर सके (दास, जे. 2021, पृ. 108)।

3.1.1.3. ‘बड़े घर की बेटी’ में त्याग और पारिवारिक मर्यादा

प्रेमचंद की कहानी ‘बड़े घर की बेटी’ में आनंदी का चरित्र त्याग और पारिवारिक मर्यादा का मजबूत आधार बनता है। वह ताल्लुकेदार भूपसिंह की बेटी है, इसलिए लोग मानते हैं कि वह अपने बड़प्पन का रौब दिखाएगी। लेकिन विवाह के बाद जब वह बेनीमाधव सिंह के घर आती है, तो उसका व्यवहार ठीक उलटा दिखता है। इस घर में पुराने वैभव की जगह तंगी और खिंचाव है, फिर भी मान-प्रतिष्ठा की चिंता बहुत गहरी है। बड़े बेटे श्रीकंठ सिंह शांत, शिक्षित और न्यायप्रिय हैं, जबकि छोटा बेटा लालबिहारी उग्र स्वभाव का है और जल्दी भड़क उठता है। ऐसे वातावरण में आनंदी किसी को

नीचा नहीं दिखाती, न ही अपने मायके की शान का प्रदर्शन करती है। वह खर्च, भाषा और व्यवहार में संयम रखती है, ताकि घर का संतुलन बना रहे। वह घर के नियमों को समझती है और धीरे-धीरे खुद को उस जीवन में ढालती है। उसका त्याग कमजोरी नहीं बनता, क्योंकि वह आत्मसम्मान के साथ किया गया त्याग है। वह सबकी बात सुनती है, पर जब सीमा टूटती दिखती है, तब गलत को गलत कहना भी जानती है। मर्यादा उसके लिए केवल रस्म नहीं है, बल्कि रिश्तों को बचाने की एक जिम्मेदारी है। इसी जिम्मेदारी के कारण वह छोटी बातों को बड़ा विवाद बनने से रोकती है और घर में शांति बनाए रखने की कोशिश करती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 10-12)।

कहानी का संकट घी के प्रसंग से उभरता है, जहाँ तंगी, क्रोध और अहंकार मिलकर घर के भीतर छिपी असुरक्षा को सतह पर ले आते हैं। लालबिहारी का व्यवहार आनंदी को अपमानित करता है और परिवार की मर्यादा पर चोट करता है। यह केवल एक घरेलू झगड़ा नहीं रह जाता, बल्कि यह प्रश्न बन जाता है कि घर के भीतर सम्मान और न्याय कैसे बचेगा। श्रीकंठ सिंह इस घटना को अन्याय मानते हैं और घर छोड़ने तक का निर्णय ले लेते हैं, जिससे परिवार टूटने की स्थिति में पहुँच जाता है। ऐसे कठिन मोड़ पर आनंदी का त्याग और मर्यादा निर्णायक भूमिका निभाते हैं। वह बदले की भाषा नहीं चुनती, लेकिन चुप रहकर अन्याय को सामान्य भी नहीं मानती। वह घर की बात घर में रखने की कोशिश करती है, ताकि प्रतिष्ठा और संबंध दोनों सुरक्षित रहें। वह लालबिहारी की गलती को स्पष्ट देखती है, फिर भी उसे हमेशा का अपराधी नहीं मानती, बल्कि उसे सुधार का अवसर देती है। साथ ही वह श्रीकंठ को भी कठोर अलगाव से रोकती है, क्योंकि उसे परिवार की एकता का मूल्य समझ आता है। आनंदी के लिए मर्यादा का अर्थ केवल दंड देना नहीं है, बल्कि गलती को पहचानकर सुधार की ओर बढ़ना भी है। इसी संतुलन के कारण घर में माफी, आत्मग्लानि और मेल की संभावना बनती है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि सच्ची पारिवारिक मर्यादा वही है, जो रिश्तों को बचाते हुए न्याय और आत्मसम्मान की रक्षा करे। आनंदी का चरित्र इसी मर्यादा का जीवंत उदाहरण बनकर सामने आता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 12-16)।

त्याग और पारिवारिक सम्मान

आनंदी के त्याग का पहला रूप उसके रोजमर्रा के व्यवहार में दिखता है। वह बड़े घर से आई है, पर छोटे घर को कभी छोटा नहीं कहती। घर में तंगी है, फिर भी वह असंतोष नहीं फैलाती। वह दिखावे का आग्रह नहीं करती और अपने मायके की शान को हथियार नहीं बनाती। वह घर के कामों में हाथ बँटाती है, बड़ों का मान रखती है, और घर के खर्च का ध्यान रखती है। उसका त्याग इसलिए अलग है, क्योंकि वह

आत्मसम्मान के साथ किया गया त्याग है। वह किसी के सामने खुद को कमजोर नहीं बनाती, न ही अपने संस्कार छोड़ती है। वह घर की गरिमा को अपना मानती है, इसलिए उसके लिए यह घर पराया नहीं रहता। घर के लोग कभी उसे जाँचते हैं, कभी उसके व्यवहार पर टिप्पणी करते हैं, पर आनंदी जवाब शब्दों से नहीं देती। वह अपना उत्तर धैर्य, संयम, और संतुलित आचरण से देती है। इसी कारण धीरे-धीरे घर में उसकी साख बनती है। प्रेमचंद यह भी संकेत देते हैं कि पारिवारिक सम्मान केवल बाहर की प्रतिष्ठा नहीं है। वह घर के भीतर के व्यवहार से बनता है—कैसे लोग एक-दूसरे से बोलते हैं, कैसे छोटे-बड़े का ध्यान रखते हैं, और कैसे संकट से पहले ही रिश्तों को संभालते हैं। आनंदी हर व्यक्ति को उसकी जगह के साथ देखती है, इसलिए वह किसी को नीचा दिखाकर ऊपर नहीं उठती। उसकी यह दृष्टि घर में सम्मान की जड़ें मजबूत करती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 10-12)।

त्याग का दूसरा रूप संकट के समय सामने आता है, जब सम्मान टूटने की कगार पर होता है। घी का प्रसंग केवल भोजन का विवाद नहीं रह जाता। वह घर की तंगी, अहंकार, और शक्ति-प्रदर्शन का टकराव बन जाता है। लालबिहारी का उग्र व्यवहार आनंदी की देह और आत्मसम्मान दोनों पर चोट करता है, इसलिए यह क्षण पारिवारिक सम्मान की असली परीक्षा बन जाता है। श्रीकंठ सिंह का घर छोड़ने का निर्णय सम्मान बचाने का प्रयास है, पर यह प्रयास घर को तोड़ भी सकता है। इस मोड़ पर आनंदी दो तरह के सम्मान को एक साथ थामती है। एक, पति का सम्मान और उसका न्यायबोध। दूसरा, परिवार की प्रतिष्ठा और उसकी एकता। वह पति की बात का मूल्य समझती है, इसलिए अन्याय को सही नहीं ठहराती। पर वह परिवार की टूटन भी नहीं चाहती, इसलिए कटुता नहीं बढ़ाती। वह अपने पिता की ताकत का सहारा नहीं लेती, जबकि वह चाहती तो एक झटके में सबको दबा सकती थी। लेकिन वह जानती है कि डर से मिला सम्मान टिकता नहीं। वह घर को भीतर से संभालना चाहती है, ताकि संबंध भी बचें और न्याय भी रहे। उसका त्याग यहाँ चुप रहना नहीं है। उसका त्याग यह है कि वह अपने अपमान को परिवार के विनाश में नहीं बदलने देती। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए भी समाधान की राह खोजती है। इसी संतुलन से वह दिखाती है कि पारिवारिक सम्मान का अर्थ केवल बदला लेना नहीं है। पारिवारिक सम्मान का अर्थ है, ऐसा निर्णय लेना जिससे रिश्ते और मर्यादा दोनों सुरक्षित रहें। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 12-15)।

त्याग का तीसरा रूप मेल और सुधार की प्रक्रिया में दिखता है, जहाँ आनंदी परिवार को टूटने से बचाती है। जब लालबिहारी शर्म से घर छोड़ने चल पड़ता है, आनंदी उसे रोकती है और उसे माफी की दिशा में ले जाती है, ताकि सम्मान लौट सके। माफी यहाँ केवल शब्द नहीं रहती, बल्कि नैतिक स्वीकृति बन जाती है कि गलती हुई है। आनंदी लालबिहारी को हमेशा का अपराधी नहीं बनाती। वह उसे बदलने योग्य

व्यक्ति मानती है। यही दृष्टि परिवार को जोड़ती है, क्योंकि परिवार केवल सजा से नहीं चलता, वह सुधार से भी चलता है। वह श्रीकंठ को भी समझाती है कि न्याय का अर्थ दूरी नहीं है। न्याय का अर्थ सुधार का अवसर भी है। इसी समझ से घर में कठोरता की जगह संवेदना आती है, और झगड़े की जगह संवाद की संभावना बनती है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि पारिवारिक सम्मान कठोर नियमों से नहीं टिकता। वह संवेदना, जिम्मेदारी, और आत्म-नियंत्रण से टिकता है। आनंदी का त्याग इसलिए बड़ा बनता है, क्योंकि वह सम्मान बचाते हुए सुधार कराती है। वह दिखाती है कि स्त्री की भूमिका केवल सहने की नहीं होती। वह घर की नैतिक दिशा तय करने वाली शक्ति भी हो सकती है। अंत में, जब घर के लोग अपनी गलती समझते हैं, तब आनंदी की मर्यादा और त्याग का मूल्य स्पष्ट हो जाता है। वह किसी को हराकर जीतती नहीं। वह घर को जोड़कर जीतती है। यही उसका पारिवारिक सम्मान है, और यही उसके त्याग की सबसे बड़ी उपलब्धि है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 15-16)।

स्त्री की गरिमा और नैतिक शक्ति

आनंदी की गरिमा उसकी चुप्पी में नहीं, उसके संतुलित निर्णय और आत्मसंयम में है। वह ससुराल में कदम रखते ही खुद को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश नहीं करती। वह पहले घर के संबंधों की प्रकृति समझती है और लोगों के स्वभाव को पढ़ती है। वह देखती है कि तंगी ने घर के माहौल को चिड़चिड़ा बना दिया है, और छोटी बातों पर भी तनाव बढ़ जाता है। वह यह भी समझती है कि क्रोध के पीछे कई बार असुरक्षा और अपमान का डर छिपा होता है। इसी समझ से वह अपनी भाषा नियंत्रित रखती है, ताकि बात बिगड़े नहीं। लेकिन यह नियंत्रण डर से नहीं आता। यह स्वाभिमान से आता है। वह झुकती जरूर है, पर टूटती नहीं। उसका स्वाभिमान उसे भीतर से मजबूत रखता है। उसकी नैतिक शक्ति तब स्पष्ट होती है जब उसे अपमान का सामना करना पड़ता है। उस समय वह न बदले की आग चुनती है, न अपमान को सामान्य मान लेती है। वह साफ समझती है कि परिवार में कौन सी सीमा लांघी गई है। वह रिश्तों को बचाने के लिए शांत रहती है, लेकिन अन्याय को ठीक भी नहीं कहती। वह घर के भीतर नैतिक सीमा तय करती है—कि सम्मान के बिना कोई संबंध टिक नहीं सकता। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि स्त्री की गरिमा केवल सहन करने में नहीं है। गरिमा सही समय पर सही बात कहने और अपने मूल्यों पर टिके रहने में है। आनंदी का संयम उसी गरिमा की रक्षा करता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 11-14)।

कहानी में पुरुष पात्रों के निर्णय तेज और कठोर हैं, इसलिए घर का संतुलन आसानी से बिखर सकता था। श्रीकंठ सिंह न्यायप्रिय हैं, पर उनका न्याय कभी-कभी कठोर बन जाता है, क्योंकि वे अपमान को सहन नहीं करते। दूसरी ओर लालबिहारी का क्रोध उग्र है, और वह शक्ति दिखाकर बात मनवाना चाहता है। इन दोनों प्रवृत्तियों के

बीच आनंदी की नैतिक शक्ति दिशा देने का काम करती है। वह लालबिहारी के भीतर पश्चाताप जगाती है, ताकि उसका क्रोध टूटे और उसे अपनी गलती का बोध हो। वह श्रीकंठ को भी समझाती है, ताकि न्याय के साथ करुणा और धैर्य आ सके। आनंदी किसी को नीचा दिखाकर जीत नहीं चाहती। वह परिवार को जोड़कर समाधान चाहती है। उसका यह व्यवहार घर के बड़े-बुजुर्गों को भी सोचने पर मजबूर कर देता है, क्योंकि वे देखते हैं कि एक बहू होकर भी वह रिश्तों की मर्यादा को उनसे अधिक गहराई से समझती है। यह शक्ति सामाजिक दबाव से नहीं आती। यह अंतरात्मा, संस्कार, और नैतिक दृष्टि से आती है। प्रेमचंद आनंदी को केवल सहनशील नारी नहीं बनाते। वे उसे नैतिक नेतृत्व की भूमिका देते हैं, जो घर में सही दिशा तय करती है। वह शांति को खरीदती नहीं। वह शांति का आधार बनाती है, ताकि घर में सम्मान, न्याय, और संवेदना साथ चलें। इसी कारण आनंदी का चरित्र स्त्री गरिमा और नैतिक शक्ति की मजबूत मिसाल बनकर सामने आता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 14-16)।

संघर्ष, सहनशीलता और कर्तव्य

कहानी का संघर्ष घरेलू है, लेकिन उसका अर्थ बहुत व्यापक है। बेनीमाधव सिंह के घर में तंगी है, इसलिए छोटी जरूरतें भी बहस का कारण बन जाती हैं। साथ ही दोनों भाइयों का स्वभाव अलग है। श्रीकंठ सिंह न्यायप्रिय हैं, पर उनका स्वाभिमान तीखा है। लालबिहारी उग्र है और जल्दी भड़कता है। इस पर इज्जत और प्रतिष्ठा का दबाव भी जुड़ जाता है, जिससे हर बात अधिक संवेदनशील बन जाती है। ऐसे वातावरण में आनंदी इस तनाव को अपने कर्तव्य की ढाल से संभालती है। वह रोज के छोटे संघर्षों में धैर्य रखती है और कटु शब्दों से विवाद नहीं बढ़ाती। उसकी सहनशीलता मजबूरी नहीं है। यह उसके लक्ष्य की स्पष्टता है। वह चाहती है कि घर बचे और संबंध टिकें, इसलिए वह अपने व्यवहार में संयम रखती है। पर कर्तव्य निभाते हुए भी वह अपनी गरिमा नहीं छोड़ती। अपमान के बाद वह टूटती नहीं, बल्कि अपने भीतर संतुलन बनाए रखती है। वह हालात को समझकर कदम उठाती है और स्थिति को बिगड़ने से रोकती है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि संघर्ष केवल दूसरों से नहीं होता। संघर्ष भीतर भी होता है—अपमान का जवाब कैसे दिया जाए, कब बोलना चाहिए, और कब स्थिति को शांत रखना चाहिए। आनंदी इसी भीतरी संघर्ष में मजबूत बनती है, क्योंकि वह भावनाओं की आग में नहीं बहती, बल्कि विवेक से निर्णय लेती है। यही उसकी सहनशीलता को नैतिक शक्ति बनाता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 12-14)।

जब संघर्ष चरम पर पहुँचता है, कर्तव्य की दिशा बदल सकती थी और परिवार टूट सकता था। श्रीकंठ सिंह अलगाव चुन सकते थे, क्योंकि उनके लिए न्याय सबसे बड़ा मूल्य है। आनंदी चाहती तो मायके का सहारा ले सकती थी, क्योंकि वह बड़े घर

की बेटा है और उसके पास शक्ति है। लालबिहारी अहंकार चुन सकता था और अपनी गलती मानने से इंकार कर सकता था। पर इन संभावित रास्तों के बीच आनंदी सहनशीलता के साथ कर्तव्य निभाती है। वह लालबिहारी को माफी की ओर मोड़ती है, ताकि उसकी ऊर्जा सुधार में लगे और वह स्वयं को बदल सके। वह श्रीकंठ को भी परिवार के प्रति जिम्मेदारी याद दिलाती है, ताकि न्याय के साथ करुणा और धैर्य भी जुड़े। इस तरह वह संघर्ष को टूटन में नहीं जाने देती। प्रेमचंद यहाँ यह संदेश देते हैं कि सहनशीलता तभी मूल्यवान है, जब वह अन्याय को रोकने के साथ चले। आनंदी का कर्तव्य आँख मूँदकर सहना नहीं है। उसका कर्तव्य नैतिक समाधान तक पहुँचना है—ऐसा समाधान जिसमें अपमान की सीमा भी स्पष्ट हो और परिवार की एकता भी बचे। इसी कारण घर में पुनः संतुलन बनता है और संबंध फिर से संभलते हैं। आनंदी का चरित्र यह दिखाता है कि कर्तव्य का अर्थ केवल जिम्मेदारी निभाना नहीं, बल्कि कठिन समय में सही दिशा तय करना भी है। यही कर्तव्य परिवार को बचाता है और संघर्ष को सीख में बदल देता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटा' और अन्य कहानियाँ' पृ. 14-16)।

परंपरा और व्यक्तिगत मूल्य

कहानी में परंपरा का दबाव हर पात्र पर साफ दिखता है। बेनीमाधव सिंह के घर में इज्जत सबसे बड़ा मूल्य है, इसलिए हर बात को इसी कसौटी पर तौला जाता है। घर का ढाँचा भी परंपरा से चलता है बड़े बेटे का सम्मान अलग है, छोटे बेटे का अधिकार अलग है, और बहू की सीमा अलग तय है। यही व्यवस्था बाहर से अनुशासन जैसी लगती है, पर भीतर कई बार अहंकार और कठोरता का बहाना बन जाती है। जब इज्जत सच में नैतिकता से जुड़ी हो, तब वह परिवार को जोड़ती है। लेकिन जब वही इज्जत गलत को ढँकने लगे, तब वह खोखली हो जाती है। प्रेमचंद इसी बिंदु पर परंपरा की परीक्षा लेते हैं। घी के प्रसंग में विवाद भोजन का नहीं रहता, वह शक्ति और अधिकार का टकराव बन जाता है। परंपरा के नाम पर आवाजें तेज होती हैं, और रिश्तों की गरिमा खतरे में पड़ जाती है। ऐसे माहौल में आनंदी का चरित्र परंपरा और व्यक्तिगत मूल्य के बीच संतुलन बनाता है। वह परंपरा का सम्मान करती है, इसलिए घर की बात घर में रखने की कोशिश करती है और परिवार की प्रतिष्ठा को बाहर से चोट नहीं लगने देती। लेकिन वह अपने नैतिक मूल्यों से पीछे भी नहीं हटती। वह अपमान को सही नहीं ठहराती और अन्याय को घर की बात कहकर दबाने नहीं देती। यही उसकी विशेषता है कि वह विद्रोह नहीं करती, पर गलत के सामने झुकती भी नहीं। वह दिखाती है कि व्यक्तिगत मूल्य किसी को तोड़ने के लिए नहीं होते, वे सुधारने के लिए होते हैं। उसके लिए मर्यादा का अर्थ चुप रहना नहीं, सही सीमा बनाना है। वह पति के न्यायबोध को भी समझती है और परिवार की एकता को भी बचाना चाहती है, इसलिए उसके निर्णय भावुक नहीं होते, जिम्मेदार होते हैं। आनंदी की दृष्टि से परंपरा

कठोर नियम नहीं रहती, बल्कि सम्मान और जिम्मेदारी का अभ्यास बन जाती है। प्रेमचंद इस कहानी के जरिए बताते हैं कि परंपरा तभी टिकती है, जब उसमें मनुष्यता रहे। अगर उसमें करुणा, न्याय, और आत्मसम्मान नहीं होंगे, तो परंपरा सिर्फ डर और दबाव बनकर रह जाएगी। आनंदी इसी डर को तोड़ती है, पर घर को तोड़े बिना। इसी कारण उसके व्यक्तिगत मूल्य परंपरा से टकराते नहीं, बल्कि उसे स्वच्छ और नैतिक बनाते हैं। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 10-16)।

3.1.1.4. पारिवारिक सत्ता संरचना और नैतिक असमानता

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में परिवार केवल भावनात्मक या सामाजिक इकाई नहीं रहता, बल्कि एक ऐसी सत्ता-संरचना बनता है जहाँ अधिकार, भूमिकाएँ और अपेक्षाएँ एक पदानुक्रम में बँटी होती हैं। यह व्यवस्था उस समय और समाज का प्रतिबिंब है, जहाँ निर्णय लेने का अधिकार अक्सर कुछ विशेष सदस्यों—मुख्यतः पुरुषों या वरिष्ठ जनों—तक सीमित रहता है, जबकि स्त्रियाँ, बच्चे और आर्थिक रूप से निर्भर पात्र प्रायः पालन करने की भूमिका में रखे जाते हैं। प्रेमचंद इस सत्ता-विन्यास को यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं और उसकी नैतिक जटिलताओं को भी उजागर करते हैं। 'बूढ़ी काकी' में वृद्धा की उपेक्षा, 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी का संयम और आत्म-नियंत्रण, तथा 'पंच परमेश्वर' में निर्णय-शक्ति के साथ जुड़ा नैतिक दबाव ये सभी संकेत देते हैं कि पारिवारिक संरचना में सत्ता और नैतिकता का संतुलन कई बार बिगड़ जाता है, जिससे असमानता जन्म लेती है (मलिक, आर. 2017, पृ. 109)।

इन कहानियों में सत्ता का केंद्रीकरण केवल फैसलों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि घर के नियम, मूल्य और अपेक्षाएँ तय करने तक फैल जाता है। जब किसी बुजुर्ग की बात को यह कहकर टाल दिया जाता है कि अब उनकी सुनने की ज़रूरत नहीं, तब यह केवल एक संवाद नहीं रहता, बल्कि उस मानसिकता का संकेत बनता है जहाँ अनुभव के बजाय नियंत्रण और उपयोगिता को अधिक महत्व दिया जाता है। इसी प्रकार, स्त्री पात्रों को 'मर्यादा' के नाम पर चुप रहना सिखाया जाता है कई बार तब भी जब उनके साथ अनुचित व्यवहार हो रहा हो। नैतिक असमानता तब और स्पष्ट हो जाती है जब त्याग की अपेक्षा कमजोर वर्गों—विशेषकर स्त्रियों और बुजुर्गों—से की जाती है, जबकि सत्ता रखने वाले लोग स्वार्थ या चुप्पी के पीछे छिप जाते हैं। प्रेमचंद इस अंतर को सहज ढंग से उभारते हैं, ताकि पाठक स्वयं समझ सके कि नैतिकता तब तक समरस नहीं हो सकती, जब तक वह समान रूप से सभी पर लागू न हो (रॉय, पी. 2019, पृ. 124)।

प्रेमचंद का लेखन यह भी स्पष्ट करता है कि पारिवारिक सत्ता-संरचना केवल बाहरी अनुशासन बनाए रखने का माध्यम नहीं, बल्कि व्यक्ति के आत्म-सम्मान,

निर्णय-क्षमता और गरिमा को भी प्रभावित करती है। जब परिवार के भीतर कुछ लोगों के विचार को ही 'ठीक' मान लिया जाता है और बाकी सदस्यों को सहमति तक सीमित कर दिया जाता है, तब परिवार बाहर से संगठित दिख सकता है, पर भीतर से नैतिक रूप से कमजोर हो जाता है। यही स्थिति प्रेमचंद की कहानियों में बार-बार उभरती है—जहाँ सत्ता के पास बैठे लोग नैतिक चूक करते हैं, और जिन्हें वे 'कमज़ोर' समझते हैं, वही नैतिक दृष्टि से अधिक जागरूक सिद्ध होते हैं। यह उलटाव प्रेमचंद की कथा-दृष्टि की खास पहचान है, क्योंकि वे सामाजिक संरचनाओं पर सीधे हमला नहीं करते, बल्कि उनके भीतर से नैतिक असंतुलन को उजागर कर देते हैं (कुमार, जे. 2021, पृ. 88)।

इन कहानियों में यह भी दिखता है कि सत्ता-संरचना के भीतर परिवर्तन कैसे आता है। जब कोई पात्र, जैसे जुम्मन, अपने निर्णय और भूमिका को नैतिक दृष्टि से देखना शुरू करता है, तब सत्ता का चरित्र भी बदलने लगता है। 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी का संयम भी यह दिखाता है कि विवेक और संवेदना से परिवार की दिशा बदली जा सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि सत्ता स्थिर नहीं होती; यदि उसे विवेक, करुणा और आत्मबोध से संचालित किया जाए, तो वह परिवार के भीतर न्याय और समानता का माध्यम बन सकती है। प्रेमचंद यह संकेत देते हैं कि सत्ता का नैतिक उपयोग ही परिवार को टिकाए रखता है, अन्यथा वही सत्ता असमानता, अपमान और विघटन की ओर ले जाती है। इसलिए उनका साहित्य केवल सामाजिक चित्रण नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्विचार की प्रेरणा भी है—जो यह सिखाता है कि सत्ता को केवल अधिकार नहीं, कर्तव्य और संवेदना के साथ जोड़ना होगा (गोस्वामी, के. 2022, पृ. 96)।

3.1.2. उनकी कहानियों में प्यार और धोखा

प्रेमचंद की कहानियाँ केवल सामाजिक यथार्थ और नैतिक मूल्यों तक सीमित नहीं रहतीं। वे इंसान के भीतर चल रहे संघर्ष, रिश्तों की उलझन, और भावनाओं की टूटन भी दिखाती हैं। उनके कथा-साहित्य में प्रेम और धोखा बार-बार उभरते हैं। यह प्रेम केवल रोमांस नहीं है। यह भरोसा, सम्मान, अपनापन, और रिश्ते निभाने की क्षमता से जुड़ा है। जब रिश्तों में शक, स्वार्थ, अहंकार, या समाज का दबाव घुस जाता है, तब प्रेम का सहज रूप कमजोर पड़ने लगता है। प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि धोखा हमेशा किसी एक व्यक्ति की चाल नहीं होता। कई बार सामाजिक ढाँचे ही ऐसा माहौल बनाते हैं, जहाँ संवाद दब जाता है और सच बोलना कठिन हो जाता है। विवाह, स्त्री-पुरुष संबंध, परिवार की अपेक्षाएँ, और वर्ग-भेद—ये सब रिश्तों पर असर डालते हैं। इसी कारण प्रेमचंद के पात्र अक्सर ऐसे मोड़ पर खड़े दिखते हैं, जहाँ उन्हें अपने मन, अपने डर, और समाज की नजर—तीनों से एक साथ लड़ना पड़ता है। उनकी कहानियाँ पाठक को यह सोचने पर मजबूर करती हैं कि रिश्तों का सच केवल भावनाओं से नहीं चलता।

रिश्तों को टिकाने के लिए बराबरी, सम्मान, और खुला संवाद चाहिए। जब ये चीजें कम हो जाती हैं, तब प्रेम धीरे-धीरे बोझ बन सकता है और भरोसा टूट सकता है।

‘कफन’ और ‘बड़े घर की बेटी’ इस सच्चाई को अलग-अलग हालात में दिखाती हैं। ‘कफन’ में घीसू और उसका बेटा माधव अत्यंत गरीबी और बेबसी में जीते हैं। माधव की पत्नी बुधिया प्रसव पीड़ा में तड़पती रहती है, और घर के हालात करुण बन जाते हैं। कहानी दिखाती है कि लगातार अभाव इंसान की संवेदना को कैसे कुंद कर देता है। यहाँ प्रेम का संकट केवल पति-पत्नी तक सीमित नहीं रहता। वह पूरे परिवार और पूरे समाज की विफलता से जुड़ जाता है। दूसरी ओर ‘बड़े घर की बेटी’ में नायिका आनंदी है। वह ‘बड़े घर की बेटी’ है, पर विवाह के बाद उसे नई जगह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसके पति श्रीकंठ सिंह हैं, और कहानी की शुरुआत में भूपसिंह (आनंदी के पिता) का संदर्भ भी आता है। आनंदी का संघर्ष यह नहीं कि वह प्रेम चाहती है और उसे मिलता नहीं। उसका संघर्ष यह है कि रिश्तों में सम्मान कैसे बचाया जाए, और अपमान के बीच भी घर कैसे बचाया जाए। वह कटु स्थितियाँ सहती है, पर जवाब में उग्रता नहीं चुनती। वह धैर्य, विवेक, और आत्म-नियंत्रण से स्थिति संभालती है। इस तरह प्रेमचंद दिखाते हैं कि प्रेम का असली रूप केवल कहने में नहीं, बल्कि निभाने में है। ‘कफन’ में अभाव रिश्तों को कठोर करता है, और ‘बड़े घर की बेटी’ में सामाजिक अपेक्षाएँ और घर का दबाव रिश्तों को जकड़ देता है। दोनों कहानियाँ यह संकेत देती हैं कि जब आदमी के पास स्वतंत्रता, सम्मान, और बोलने की जगह कम हो जाती है, तब प्रेम और भरोसा भी कमजोर पड़ने लगता है।

इन दोनों कहानियों से प्रेमचंद का बड़ा सामाजिक संदेश सामने आता है। प्रेम और विश्वास सिर्फ भीतर की भावना नहीं हैं। वे सामाजिक व्यवहार से बनते हैं। जब समाज बराबरी नहीं देता, जब घर में संवाद नहीं रहता, और जब किसी एक पक्ष से ही त्याग की माँग होती है, तब रिश्तों में असंतुलन बढ़ता है। ‘कफन’ में टूटन का रूप अलग है। वहाँ गरीबी और असहायता रिश्तों की गर्मी छीन लेती है। ‘बड़े घर की बेटी’ में टूटन का खतरा घर के भीतर के तानों, मान-सम्मान की राजनीति, और अपेक्षाओं से पैदा होता है। फिर भी आनंदी जैसे पात्र यह दिखाते हैं कि इंसान चाहें तो विवेक से चीजें संभाल सकता है। वह यह भी बताती है कि स्त्री का त्याग कमजोर होना नहीं है। कई बार वह परिवार को जोड़ने की रणनीति भी बनता है। पर प्रेमचंद यह भी साफ रखते हैं कि त्याग की कीमत एकतरफा नहीं होनी चाहिए। अगर सम्मान नहीं है, तो त्याग भी चोट बन सकता है। इसलिए उनकी कहानियाँ नैतिक उपदेश नहीं लगतीं। वे जीवन का सच रख देती हैं। पाठक खुद समझता है कि रिश्ते तभी टिकते हैं, जब दोनों पक्षों को समान मान मिले, बोलने की जगह मिले, और एक-दूसरे की गरिमा मानी

जाए। यही स्थितियाँ हों तो प्रेम स्वाभाविक रूप से खिलता है। यही न हों, तो प्रेम कई बार पीड़ा में बदल जाता है और धोखे जैसी अनुभूति जन्म लेती है।

3.1.2.1. “घासवाली में प्रेम और सामाजिक स्वार्थ

‘घासवाली’ में प्रेम किसी उच्च वर्गीय आकर्षण का प्रसंग नहीं है, बल्कि श्रमजीवी जीवन के भीतर विकसित होने वाला संवेदनशील दांपत्य संबंध है। कहानी में वर्गभेद का उल्लेख व्यापक सामाजिक पृष्ठभूमि के रूप में अवश्य मिलता है, परंतु कथा का केंद्र घास बेचने वाली स्त्री मुलिया और उसके पति महावीर का जीवन-संघर्ष है। यहाँ प्रेम आकर्षण से नहीं, बल्कि साझा अभावों, श्रम और जिम्मेदारी से निर्मित होता है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि आर्थिक स्थिति और सामाजिक परिस्थितियाँ संबंधों को प्रभावित अवश्य करती हैं, पर वे किसी बाहरी रोमांटिक संबंध का निर्माण नहीं करतीं। प्रेम का भाव व्यक्तिगत होते हुए भी जीवन की कठोर वास्तविकताओं से बँधा हुआ है। इसी कारण संबंधों में तनाव उत्पन्न होता है, पर वह वर्गीय असमानता से नहीं, बल्कि गरीबी और अभाव से जन्म लेता है। यहाँ नैतिक संकट सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण नहीं, बल्कि जीवन-स्थितियों की कठोरता से उत्पन्न होता है (शर्मा, 2012, पृ. 84)।

कहानी में आकर्षण और स्वार्थ का प्रश्न भी अलग रूप में उपस्थित है। पुरुष पात्र का व्यवहार सामाजिक वर्चस्व से नहीं, बल्कि आर्थिक दबाव और असुरक्षा से प्रभावित दिखाई देता है। महावीर कई बार कठोर प्रतीत होता है, पर उसकी कठोरता सामाजिक प्रतिष्ठा बचाने की नहीं, बल्कि संघर्षमय जीवन की प्रतिक्रिया है। मुलिया की सरलता और आत्मसम्मान कहानी की नैतिक धुरी हैं। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि जब जीवन अभावों से घिरा हो, तब संबंधों की परीक्षा होती है। यहाँ स्वार्थ व्यक्तिगत वासना या वर्गीय श्रेष्ठता का नहीं, बल्कि जीविका की चिंता का है। स्त्री का विश्वास और संयम सच्चा है, जबकि पुरुष का व्यवहार परिस्थितियों से संचालित है। यह असंतुलन संबंध को कमजोर अवश्य करता है, पर उसका कारण सामाजिक भय नहीं, बल्कि जीवन की कठिनाइयाँ हैं। इस प्रकार प्रेम सामाजिक दबाव के आगे नहीं, बल्कि आर्थिक यथार्थ के बीच अपनी जगह बनाने का प्रयास करता है (मिश्र, 2014, पृ. 57; वर्मा, 2016, पृ. 102)।

विश्वास और मर्यादा का द्वंद्व कहानी का केंद्रीय नैतिक बिंदु अवश्य है, पर वह किसी सार्वजनिक प्रेम प्रसंग से जुड़ा नहीं है। मुलिया अपने आत्मसम्मान और स्त्री-गरिमा को बनाए रखती है। वह अभावों के बीच भी स्वयं को वस्तु नहीं बनने देती। महावीर सामाजिक दृष्टि से नहीं, बल्कि आंतरिक असंतोष और असुरक्षा से बँधा हुआ दिखाई देता है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि प्रेम केवल भावनात्मक साहस से नहीं, बल्कि धैर्य और उत्तरदायित्व से भी जुड़ा होता है। जब व्यक्ति आर्थिक संघर्षों से घिरा हो, तब उसके निर्णय कठोर हो सकते हैं, पर वही निर्णय संबंधों की दिशा तय करते हैं।

‘घासवाली’ का नैतिक संकट वर्गीय प्रेम का नहीं, बल्कि दांपत्य जीवन की परीक्षा का है। अंततः कहानी यह संदेश देती है कि प्रेम समानता, विश्वास और नैतिक संयम पर आधारित होना चाहिए। यदि अभावों के बीच भी आत्मसम्मान बचा रहे, तो संबंध टूटते नहीं, बल्कि परिपक्व होते हैं। प्रेमचंद की दृष्टि में सच्चा प्रेम सामाजिक दिखावे से नहीं, बल्कि साझा संघर्ष और मानवीय गरिमा से निर्मित होता है (गुप्ता, 2018, पृ. 91; शुक्ल, 2010, पृ. 120)।

प्रेम और वर्गभेद

‘घासवाली’ में प्रेम किसी उच्च और निम्न वर्ग के रोमांटिक संबंध के रूप में विकसित नहीं होता, बल्कि श्रमजीवी जीवन की पृष्ठभूमि में आकार लेता है। कहानी का सामाजिक ढाँचा अवश्य वर्गीय असमानताओं से निर्मित है, पर कथा का केंद्र मुलिया और महावीर जैसे निम्न आर्थिक वर्ग के पात्र हैं। यहाँ वर्गभेद बाहरी प्रेम-संघर्ष का आधार नहीं बनता, बल्कि जीवन-स्थितियों की कठोरता को स्पष्ट करता है। आर्थिक अभाव, श्रम और सामाजिक उपेक्षा पात्रों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि जब समाज आर्थिक स्तरों में विभाजित हो, तब जीवन की कठिनाइयाँ संबंधों को भी प्रभावित करती हैं। पर यह प्रभाव किसी बाहरी आकर्षण से नहीं, बल्कि भीतर के तनाव से उत्पन्न होता है। संबंध समानता पर ही टिक सकते हैं, और यह समानता आर्थिक स्थिति से नहीं, बल्कि पारस्परिक सम्मान से आती है (शर्मा, 2012, पृ. 84)।

कहानी में वर्गीय यथार्थ पात्रों के स्वभाव में परिलक्षित होता है। महावीर का व्यवहार कभी-कभी कठोर दिखाई देता है, पर वह सामाजिक श्रेष्ठता के भाव से नहीं, बल्कि जीवन-संघर्ष की थकान और असुरक्षा से प्रेरित है। दूसरी ओर, मुलिया का चरित्र संयम, श्रम और आत्मसम्मान से निर्मित है। वह संबंध को मानवीय स्तर पर देखती है और परिस्थितियों के बावजूद अपने आचरण की मर्यादा बनाए रखती है। यहाँ वर्ग का अर्थ सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं, बल्कि आर्थिक अभाव है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि असमान संसाधन और संघर्षपूर्ण जीवन परिस्थितियाँ संबंधों में तनाव ला सकती हैं। यदि विश्वास और सम्मान का संतुलन बना रहे, तो संबंध टूटते नहीं; पर यदि असंतोष बढ़े, तो दूरी उत्पन्न होती है (मिश्र, 2014, पृ. 57)।

वर्गीय दूरी यहाँ भावनात्मक दूरी में परिवर्तित नहीं होती, बल्कि व्यवहारिक कठिनाई के रूप में सामने आती है। कहानी यह स्थापित नहीं करती कि उच्च वर्ग निम्न वर्ग को स्वीकार नहीं करता; बल्कि यह दिखाती है कि गरीबी स्वयं एक ऐसी दीवार है जो मनुष्य को कठोर बना देती है। मुलिया और महावीर के बीच का द्वंद्व

सामाजिक आलोचना से नहीं, बल्कि जीवन की थकान से उत्पन्न है। प्रेमचंद इस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तनाव को प्रस्तुत करते हैं। वर्गीय यथार्थ प्रेम का प्रत्यक्ष शत्रु नहीं है, बल्कि उसकी परीक्षा लेने वाली परिस्थिति है। यही इस कहानी का सामाजिक संकेत है (वर्मा, 2016, पृ. 102)।

अंततः 'घासवाली' यह स्पष्ट करती है कि प्रेम और वर्ग का संबंध रोमांटिक विरोध का नहीं, बल्कि यथार्थवादी संघर्ष का है। प्रेम तभी टिक सकता है जब उसमें सम्मान और धैर्य हो। आर्थिक असमानता जीवन को कठिन बना सकती है, पर संबंध की मजबूती का निर्धारण चरित्र से होता है। प्रेमचंद प्रेम को सामाजिक दिखावे से नहीं, बल्कि श्रम और नैतिक संतुलन से जोड़ते हैं। इस प्रकार कहानी वर्गभेद को प्रेम की बाधा नहीं, बल्कि जीवन की कठोर पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत करती है (गुप्ता, 2018, पृ. 91; शुक्ल, 2010, पृ. 120)।

आकर्षण और स्वार्थ

'घासवाली' में आकर्षण किसी बाहरी रोमांटिक प्रसंग का केंद्र नहीं है। यहाँ संबंध का आधार दांपत्य जीवन और साझा संघर्ष है। यदि कहीं स्वार्थ दिखाई देता है, तो वह व्यक्तिगत वासना या सामाजिक प्रतिष्ठा से नहीं, बल्कि जीविका और अस्तित्व की चिंता से जुड़ा है। महावीर का व्यवहार कई बार कठोर और असंतुलित प्रतीत होता है, पर उसका कारण सामाजिक श्रेष्ठता नहीं, बल्कि आर्थिक दबाव है। प्रेमचंद यहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि अभाव मनुष्य के व्यवहार को प्रभावित करता है। आकर्षण और प्रेम का अंतर इस कथा में त्याग और जिम्मेदारी के माध्यम से सामने आता है। प्रेम स्थायी है, पर उसकी अभिव्यक्ति परिस्थितियों से सीमित है (शर्मा, 2012, पृ. 88)।

स्वार्थ यहाँ सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा का नहीं, बल्कि अस्तित्व-संघर्ष का रूप लेता है। पुरुष पात्र अपनी परिस्थितियों से जूझता हुआ दिखाई देता है। उसका निर्णय सामाजिक छवि बचाने के लिए नहीं, बल्कि आर्थिक विवशता के कारण होता है। दूसरी ओर, मुलिया का विश्वास और धैर्य अधिक स्थिर है। वह संबंध को भावनात्मक आधार पर देखती है और अपने आत्मसम्मान को बनाए रखती है। यह असंतुलन प्रेम को नष्ट नहीं करता, बल्कि उसकी परीक्षा लेता है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि जब जीवन कठिन हो, तब संबंधों में तनाव आना स्वाभाविक है। यह तनाव स्वार्थ का नहीं, बल्कि परिस्थितियों का परिणाम है (मिश्र, 2014, पृ. 61; वर्मा, 2016, पृ. 105)।

अंततः कहानी यह स्थापित करती है कि स्थायी संबंध केवल आकर्षण से नहीं टिकते। उन्हें धैर्य, श्रम और नैतिक दृढ़ता की आवश्यकता होती है। 'घासवाली' में प्रेम

किसी वर्गीय स्वार्थ का शिकार नहीं होता, बल्कि अभावों के बीच अपनी गरिमा बचाने का प्रयास करता है। प्रेमचंद आकर्षण की क्षणभंगुरता की तुलना में जिम्मेदारी के मूल्य को अधिक महत्व देते हैं। जहाँ त्याग और संयम है, वहीं संबंध स्थिर हो सकते हैं। इस प्रकार कहानी प्रेम और स्वार्थ के बीच की रेखा को आर्थिक यथार्थ के संदर्भ में समझाती है, न कि वर्गीय रोमांस के रूप में (गुप्ता, 2018, पृ. 94; शुक्ल, 2010, पृ. 122)।

विश्वास और सामाजिक मर्यादा

‘घासवाली’ में विश्वास और सामाजिक मर्यादा का संबंध किसी बाहरी प्रेम प्रसंग से नहीं, बल्कि दांपत्य जीवन की आंतरिक जटिलताओं से जुड़ा है। कहानी का मूल संकट यह नहीं कि व्यक्तिगत प्रेम सामाजिक प्रतिष्ठा से टकराता है, बल्कि यह कि आर्थिक अभाव और जीवन-संघर्ष संबंधों के विश्वास को परखते हैं। मुलिया का विश्वास सरल, श्रमशील और निष्कपट है। वह अपने दांपत्य को भावनात्मक आधार पर देखती है और परिस्थितियों के बावजूद अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटती। उसके लिए विश्वास केवल शब्द नहीं, बल्कि व्यवहार में प्रकट होने वाली निष्ठा है। दूसरी ओर, महावीर का स्वभाव परिस्थितियों से प्रभावित है। वह सामाजिक प्रतिष्ठा के भय से नहीं, बल्कि आर्थिक असुरक्षा और असंतोष से विचलित होता है। प्रेमचंद इस स्थिति के माध्यम से यह दिखाते हैं कि जब जीवन कठिन हो, तब संबंधों का विश्वास डगमगा सकता है, पर उसका कारण समाज की दृष्टि नहीं, बल्कि आंतरिक तनाव होता है (शर्मा, 2012, पृ. 90)।

सामाजिक मर्यादा कहानी में बाहरी लोकलाज के रूप में नहीं, बल्कि पारिवारिक मर्यादा के रूप में उपस्थित है। मुलिया अपने व्यवहार में संयम और आत्मसम्मान बनाए रखती है। वह किसी भी परिस्थिति में अपने चरित्र की गरिमा को नहीं गिरने देती। यहाँ मर्यादा वर्गीय प्रतिष्ठा से निर्मित नहीं, बल्कि स्त्री की आंतरिक नैतिक चेतना से निर्मित है। महावीर का व्यवहार कई बार कठोर अवश्य है, पर वह समाज की आलोचना से भयभीत होकर निर्णय नहीं लेता। उसका संकट जीविका और अभाव से जुड़ा है। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि जब आर्थिक दबाव बढ़ता है, तब व्यक्ति का धैर्य कमजोर पड़ सकता है। ऐसे समय में विश्वास की परीक्षा होती है। यदि धैर्य बना रहे, तो संबंध सुरक्षित रहता है; यदि नहीं, तो दूरी उत्पन्न होती है (मिश्र, 2014, पृ. 63)।

विश्वास की समस्या यहाँ वर्गीय दूरी से नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक असंतुलन से जुड़ी है। मुलिया आत्मसम्मान से परिपूर्ण है, पर उसकी स्थिति उसे संवेदनशील बनाती

है। वह अपमान सह सकती है, पर अपनी गरिमा का त्याग नहीं करती। प्रेमचंद इस सूक्ष्म मनोस्थिति को अत्यंत यथार्थ ढंग से प्रस्तुत करते हैं। विश्वास केवल भावुकता से नहीं, बल्कि निरंतर आचरण से निर्मित होता है। जब पति-पत्नी के बीच संवाद और समझ कम होती है, तब अविश्वास जन्म ले सकता है। पर कहानी यह नहीं दिखाती कि सामाजिक भय प्रेम को रोकता है; बल्कि यह दिखाती है कि आर्थिक अभाव विश्वास की जड़ को हिला सकते हैं (वर्मा, 2016, पृ. 109)।

अंततः 'घासवाली' यह संकेत देती है कि विश्वास और मर्यादा का आधार आंतरिक नैतिक दृढ़ता है। यदि व्यक्ति अपने कर्तव्य और आत्मसम्मान के प्रति सजग रहे, तो कठिन परिस्थितियाँ भी संबंध को पूरी तरह नहीं तोड़ पातीं। प्रेमचंद की दृष्टि में सच्चा विश्वास समानता, श्रम और पारस्परिक सम्मान से बनता है। सामाजिक नियम यहाँ प्रेम के शत्रु नहीं हैं; बल्कि जीवन की कठिन परिस्थितियाँ ही असली परीक्षा हैं। कहानी यह स्थापित करती है कि विश्वास का निर्माण बाहरी प्रतिष्ठा से नहीं, बल्कि भीतर के धैर्य और नैतिकता से होता है (गुप्ता, 2018, पृ. 97; शुक्ल, 2010, पृ. 125)।

त्याग और नैतिक निर्णय

'घासवाली' में त्याग का स्वर अत्यंत सूक्ष्म और यथार्थवादी है। यह त्याग किसी रोमांटिक संबंध को छोड़ देने का नहीं, बल्कि कठिन जीवन-स्थितियों में संबंध को बनाए रखने का है। मुलिया अपने श्रम और संयम से परिवार को संभालती है। वह अभावों के बावजूद शिकायत को जीवन का केंद्र नहीं बनाती। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि त्याग केवल भावुक निर्णय नहीं, बल्कि निरंतर आचरण का परिणाम है। मुलिया अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए संबंध निभाती है। वह परिस्थितियों से टूटती नहीं, बल्कि संयम से उनका सामना करती है। यही उसका नैतिक बल है (शर्मा, 2012, पृ. 93)।

नैतिक निर्णय का संकट कहानी में तब उत्पन्न होता है जब जीवन की कठोरता व्यक्ति को असंतुलित बना देती है। महावीर कई बार कठोर या असंवेदनशील दिखाई देता है, पर उसका व्यवहार सामाजिक प्रतिष्ठा बचाने का नहीं, बल्कि निराशा और असुरक्षा का परिणाम है। इसके विपरीत, मुलिया धैर्य और आत्मनियंत्रण का परिचय देती है। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि नैतिक साहस बाहरी शक्ति से नहीं, बल्कि आंतरिक मूल्य-बोध से आता है। त्याग यहाँ एकतरफा प्रतीत हो सकता है, पर वह संबंध को टूटने से बचाने का माध्यम बन जाता है। यह त्याग कमजोरी नहीं, बल्कि धैर्य की शक्ति है (मिश्र, 2014, पृ. 68; वर्मा, 2016, पृ. 112)।

कहानी यह नहीं कहती कि प्रेम केवल आकर्षण पर आधारित है। बल्कि यह दिखाती है कि प्रेम का स्थायित्व जिम्मेदारी से आता है। यदि धैर्य और सम्मान हो, तो

अभावों के बीच भी संबंध बच सकते हैं। प्रेमचंद त्याग को नैतिक ऊँचाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मुलिया का संयम और श्रम यह सिद्ध करता है कि चरित्र ही संबंध की असली नींव है। आर्थिक कठिनाई व्यक्ति को कठोर बना सकती है, पर नैतिक दृढ़ता उसे गिरने नहीं देती (गुप्ता, 2018, पृ. 101; शुक्ल, 2010, पृ. 128)।

अंततः 'घासवाली' यह स्थापित करती है कि त्याग और नैतिक चयन ही संबंधों को अर्थ देते हैं। यहाँ त्याग सामाजिक भय से नहीं, बल्कि आत्मसम्मान की रक्षा से जुड़ा है। प्रेमचंद का संदेश स्पष्ट है—प्रेम तभी टिकता है जब उसमें श्रम, धैर्य और गरिमा हो। जहाँ स्वार्थ नहीं, बल्कि जिम्मेदारी प्रधान हो, वहीं संबंधों की सच्ची मजबूती दिखाई देती है।

3.1.2.2. "नशा में आकर्षण और भ्रम

ईश्वरी और कथावाचक का रिश्ता शुरू से बराबरी पर नहीं टिकता। ईश्वरी ज़मींदार का बेटा है, उसके पास धन, नाम और लोगों पर असर है। कथावाचक गरीब क्लर्क का बेटा है, इसलिए उसकी दुनिया मेहनत, कमी और डर से बनी है। दोनों पढ़े-लिखे हैं, पर सोच का धरातल अलग है। जब ज़मींदारी पर बहस होती है, कथावाचक इसे शोषण मानकर तर्क देता है, पर ईश्वरी मुस्कुरा कर बात को हल्का कर देता है। यह मुस्कान कई अर्थ रखती है—कभी दोस्ती, कभी श्रेष्ठता, और कभी विषय बदलने की चाल। कथावाचक को यह शांत व्यवहार आकर्षक लगता है, क्योंकि उसे लगता है कि ईश्वरी उदार और समझदार है। पर उसी समय वह देखता है कि नौकरों के प्रति ईश्वरी का स्वर बदल जाता है। वहाँ नरमी नहीं, हुकम और तुनकमिज़ाजी है। यह विरोध साफ है, फिर भी कथावाचक उसे नजरअंदाज कर देता है। दोस्ती का मोह, और बड़े घर की चमक, उसे सच बोलने से रोकती है। यहीं से भ्रम की जड़ पड़ती है—कथावाचक ईश्वरी को जैसा समझना चाहता है, वैसा ही मान लेता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 49)

छुट्टियों में घर न जाने का फैसला कथावाचक गरीबी और पढ़ाई की मजबूरी से करता है। वह चाहता है कि खर्च बचे, और पढ़ाई भी छूटे नहीं। पर ईश्वरी का घर चलने का न्योता उसके मन को तुरंत खींच लेता है, क्योंकि यह सिर्फ यात्रा नहीं, एक नए अनुभव का दरवाजा है। ईश्वरी पहले ही कह देता है कि उसके घर पर ज़मींदारी की निंदा मत करना। यह एक सख्त सीमा है, जो दिखाती है कि वहाँ सच बोलना सुरक्षित नहीं। फिर भी कथावाचक तैयार हो जाता है, क्योंकि अब आकर्षण साथ और सुविधा का है। सेकंड क्लास यात्रा में भी उसे फर्क महसूस होता है—स्टेशन पर खानसामों की निगाहें, उनका झुकना, और ईश्वरी की तरफ आदर से भागना। यह सब कथावाचक को एक नया स्वाद देता है, जैसे उसे भी किसी ऊँचे वर्ग का हिस्सा मान लिया गया हो।

अंदर से उसे असहजता होती है, क्योंकि वह जानता है कि यह सम्मान उसके अपने दम पर नहीं है। फिर भी वह चुप रहता है, क्योंकि वह इस भूमिका को खोना नहीं चाहता। वह सीखने लगता है कि कैसे कम बोलना है, कैसे बैठना है, और कैसे अपना नहीं होकर भी अपना दिखना है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 49-50)

गाँव पहुँचते ही ईश्वरी इस भूमिका को और मजबूत कर देता है। वह कथावाचक को गांधी का भक्त और राजा जैसा बताकर लोगों की आँखों में उसे बड़ा बना देता है। यह झूठ धीरे-धीरे सच जैसा लगने लगता है, क्योंकि लोग बिना जाँच के मान लेते हैं। सम्मान मिलने लगता है, और सम्मान के साथ नशा भी चढ़ता है। कथावाचक को पैर दबवाए जाते हैं, पानी से पैर धुलते हैं, समय पर बिस्तर लगता है, और हर जरूरत पर आदमी खड़ा रहता है। पहले जिन बातों को वह अमीरों का ढोंग मानता था, अब वही उसे अच्छा लगने लगता है। यही बदलाव कहानी की असली चोट है। वह अपने सिद्धांतों से दूर होने लगता है, पर उसे लगता है कि यह सब सामान्य है, क्योंकि आसपास सब यही कर रहे हैं। झूठी प्रतिष्ठा उसे अपने मूल सत्य से काट देती है। वह भूलने लगता है कि वह कौन है, और किस तरफ खड़ा था। इसीलिए प्रेमचंद इसे नशा कहते हैं—एक ऐसा नशा जो शराब से नहीं, झूठे सम्मान से बनता है, और इंसान को भीतर से बदल देता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 51-52)

आकर्षण और असत्य छवि

असत्य छवि का आधार दिखावा है, और यह दिखावा गाँव की सोच पर टिकता है। ईश्वरी कथावाचक को ऊँचा दिखाकर खुद भी जीतता है, क्योंकि बड़ा दोस्त होने से उसका रुतबा बढ़ता है। गाँव में लोग पद और पहनावे से आदमी की हैसियत तय करते हैं। इसलिए पुलिस कांस्टेबल भी उन्हें अफसर लगता है, और रियासत या राजा जैसी बात तुरंत सच मान ली जाती है। ईश्वरी इसी कमजोरी को पकड़कर कथावाचक की नई पहचान गढ़ देता है। कथावाचक देखता है कि लोग अब उसे सामान्य व्यक्ति की तरह नहीं देखते। उनकी नजर में वह किसी खास वर्ग का आदमी बन जाता है। यह बदली हुई निगाह उसके भीतर मीठा भ्रम भर देती है। अब उसे अपने कपड़े, चाल और बोलने का तरीका छोटा लगने लगता है। वह सोचने लगता है कि शायद वह सच में कुछ बन चुका है। असत्य छवि उसे सुरक्षा भी देती है, क्योंकि अब कोई उसे गरीब नहीं समझता। इसलिए वह इस छवि को पकड़कर रखना चाहता है। इस तरह आकर्षण सच का नहीं, उस नकली पहचान का हो जाता है, जो उसे सम्मान दिला रही है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 51)

असत्य छवि का दूसरा हिस्सा सेवा है, जो रोज-रोज उस छवि को मजबूत करती है। नौकर हर समय मौजूद रहते हैं—नहाने का पानी, खाने की तैयारी, सोने का बिस्तर, सब कुछ बिना कहे मिल जाता है। यह सुविधा धीरे-धीरे कथावाचक को बदलने लगती है। वह खुद को नाज़ुक दिमाग मानने लगता है और सोचता है कि छोटे काम करना अब उसके स्तर के खिलाफ है। यह सोच एक दिन में नहीं बनती। यह हर दिन के व्यवहार से बनती है, जैसे रोज एक बूंद नशा बढ़ता जाए। जब बिस्तर देर से लगता है, तो वह नौकर को डाँटता है, और ईश्वरी उसे सही ठहराकर मानो अनुमति दे देता है। यही सबसे खतरनाक बात है। अब असत्य छवि को सिर्फ व्यक्ति नहीं, घर और व्यवस्था भी सहारा देने लगती है। नौकर डरते हैं, लोग झुकते हैं, और कथावाचक खुद को हकदार समझने लगता है। इस समर्थन से उसका भ्रम गहरा होता है, और उसका विवेक कमजोर पड़ता जाता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 52-53)

असत्य छवि का तीसरा हिस्सा बोलने का नशा है, जहाँ शब्द भी दिखावा बन जाते हैं। कथावाचक एक ठाकुर से कहता है कि स्वराज्य आया तो ज़मींदारी की जरूरत नहीं रहेगी, जमीन छीनी जाएगी, और वह खुशी से दे देगा। ये बातें उसके अधिकार में नहीं हैं, फिर भी वह पूरे भरोसे और शान से बोलता है। इस बोलने में सत्य नहीं, रुतबे का अभिनय है। ठाकुर उसके पैर दबाने लगता है, यानी झूठी छवि अब दूसरे के व्यवहार को भी बदल देती है। कथावाचक आगे बढ़कर मोटर-ड्राइवरी और नौकरी का सपना भी बाँट देता है, जैसे वह सब कुछ दिला सकता हो। यह संवाद दिखाता है कि झूठी छवि केवल सुनने वाले को नहीं, बोलने वाले को भी बहका देती है। वह अपने ही शब्दों से खुद को बड़ा मानने लगता है। यही नशा है—जब व्यक्ति अपनी सीमाएँ भूलकर खुद को सत्ता और सम्मान का मालिक समझने लगे। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 53)

प्रेम और भ्रम

यह कहानी प्रेम को रोमांस की तरह नहीं, दोस्ती और मान की चाह की तरह दिखाती है। कथावाचक ईश्वरी के साथ रहकर अपनापन चाहता है, क्योंकि उसका जीवन अभाव और अकेलेपन से भरा है। वह सोचता है कि साथ पढ़ाई होगी, नौकरी की तैयारी होगी, और दिन कटेंगे। यह प्रेम जरूरत से जन्म लेता है, इसलिए इसमें बराबरी की माँग कमजोर पड़ जाती है। ईश्वरी का व्यवहार उसे प्रिय लगता है, इसलिए वह उसके संकेतों और शर्तों को भी टाल देता है। जब ईश्वरी कहता है कि उसके घर पर ज़मींदारी की निंदा मत करना, तब भी कथावाचक विरोध नहीं करता। उसे लगता है कि दोस्ती बची रहे, यही ज्यादा जरूरी है। इसी कारण वह ईश्वरी के झूठे परिचय पर भी चुप

रहता है, जब उसे गांधी भक्त बनाकर पेश किया जाता है। प्रेम यहाँ विवेक को धीमा कर देता है, और मन को समझौते का आदी बना देता है। यह एक तरह का भावनात्मक नशा है, जिसमें व्यक्ति सच दिखते हुए भी अनदेखा कर देता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 49-51)

भ्रम तब बढ़ता है जब कथावाचक खुद को उसी नई भूमिका में ढालने लगता है। उसे खानसामों का व्यवहार और नौकरों की दशा गलत लगती है, पर वह व्यवस्था बदलने की हिम्मत नहीं कर पाता। वह भीतर से कटता है, लेकिन बाहर से मालिक जैसा भाव सीखता जाता है। यह प्रेम का भ्रम है, क्योंकि वह ईश्वरी के साथ अपने रिश्ते को बराबरी का मानता है, पर समाज उसे पिछलग्गू ही समझता है। स्टेशन और यात्रा में यह बात कई बार सामने आती है। एक मुसाफिर उसे सेवक समझकर तिरस्कार से देखता है, तो कथावाचक को चुभन होती है। यह चोट बताती है कि उसका सपना कमजोर है, और उसकी पहचान अब दो हिस्सों में बँट रही है। एक हिस्सा वह है जो बराबरी और न्याय की बात करता था। दूसरा हिस्सा वह है जो सम्मान पाने के लिए चुप रहने लगा है। फिर भी वह उसी दोस्ती के नशे में बना रहता है, क्योंकि उसे लगता है कि यह अपमान अस्थायी है, पर नया सम्मान स्थायी बन सकता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 50)

प्रेम का भ्रम अंत में क्रोध बनकर फूटता है, और यही कहानी का सबसे कठोर मोड़ है। तीसरे दर्जे की भीड़ में एक गरीब आदमी की गठरी उसे असह्य लगती है। वह उसे धक्के देता है, तमाचे मारता है, जैसे वह कोई छोटा अपराधी हो। यह वही कथावाचक है जो पहले शोषण और बराबरी की बात करता था। अब वह अमीरी की भाषा बोल रहा है, और अमीरी का गुस्सा दिखा रहा है। उसके लिए गरीब आदमी इंसान नहीं, "रुकावट बन जाता है। यही बताता है कि भ्रम ने उसके सोचने का तरीका बदल दिया। भीड़ उसे आईना दिखाती है—क्या अमीर बनते ही इंसानियत मर जाती है? यह सवाल केवल उसके व्यवहार पर नहीं, उसके पूरे बदलाव पर है। इसी क्षण नशा उतरने लगता है, पर तब तक नुकसान हो चुका होता है। प्रेम, जो कभी अपनापन था, अब अहंकार का सहारा बन चुका है। और भ्रम, जो कभी मीठा लगता था, अब हिंसा की शक्ल ले चुका है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 54)

सामाजिक प्रतिष्ठा और धोखा

कथावाचक को जो सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है, वह उसके ज्ञान, चरित्र या परिश्रम से नहीं आती। वह प्रतिष्ठा एक झूठे परिचय से जन्म लेती है, जिसे ईश्वरी बहुत सहजता से गढ़ देता है। गाँव में पहुँचते ही वह उसे गांधी का भक्त और राजा जैसा

बताता है, और लोग तुरंत झुक जाते हैं। इस झुकने में सच्चा सम्मान नहीं, डर और आदत है। लोग सत्ता के सामने सिर झुकाने के अभ्यस्त हैं, इसलिए वे सच जाँचे बिना मान लेते हैं। कथावाचक भी यह सब समझता है, फिर भी विरोध नहीं करता, क्योंकि यह सम्मान उसे पहली बार मिल रहा है। गरीब जीवन में उसने हमेशा कमी और उपेक्षा झेली थी, इसलिए यह नई प्रतिष्ठा उसे मीठी लगती है। यह मिठास धीरे-धीरे नशे में बदलती है, जहाँ सम्मान व्यक्ति को अपनी सीमाएँ भूलने पर मजबूर कर देता है। अब वह खुद को वही मानने लगता है, जो लोग उसे समझ रहे हैं। यही प्रतिष्ठा का खतरा है—यह झूठ पर खड़ी होकर भी सच जैसी लगने लगती है, और व्यक्ति के विवेक पर परदा डाल देती है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 51-52)

धोखा केवल बोलचाल में नहीं रहता, वह रोजमर्रा के छोटे व्यवहार में उतर आता है। कथावाचक अब अपनी धोती छाँटने जैसे छोटे काम करने में शर्म महसूस करता है। यह शर्म बताती है कि उसका मन अपने पुराने सच से कट रहा है। वह चाहता है कि लोग उसे कुँवर मेहमान मानें, इसलिए वह अपने हाथों से काम करना कमतर समझने लगता है। यही सोच धोखे की जड़ है, क्योंकि वह खुद अपनी पहचान छिपा रहा है। सम्मान पाने की चाह उसे अपने ही वर्ग से दूर कर देती है। रियासत अली के साथ उसका व्यवहार इस बदलाव को और तेज दिखाता है। जब रियासत अली काँपते हाथों से लैम्प जलाता है, तो कथावाचक उसे डाँट देता है। पहले वही व्यक्ति नौकरों की बेइज्जती पर चुपचाप दुखी होता था, अब वही बेइज्जती उसके भीतर से निकल रही है। यहाँ प्रतिष्ठा का नशा उसे कठोर बनाता है। नशा उसे यह यकीन दिला देता है कि डाँटना उसका अधिकार है। इस तरह झूठी प्रतिष्ठा धीरे-धीरे हिंसा और अपमान का औजार बन जाती है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 52-53)

समाज भी इस धोखे का भागीदार है, क्योंकि वह दिखावे को सच मानने की आदत पाल चुका है। गाँव के लोग कथावाचक के चेहरे, कपड़े और ईश्वरी की बातों से निष्कर्ष निकालते हैं, पर तथ्य नहीं देखते। वे मान लेते हैं कि जो व्यक्ति बड़े के साथ है, वह भी बड़ा होगा। यही सामूहिक मनोवृत्ति झूठ को ताकत देती है। लोग उसके पैर दबाते हैं, उसके लिए बिस्तर लगाते हैं, और उसके सामने विनम्र बनते हैं, क्योंकि वे रुतबे से प्रभावित हैं। वे भक्ति और सादगी को भी प्रतिष्ठा का रूप दे देते हैं, जैसे गांधी का नाम लेना अपने आप में ऊँचाई की मुहर हो। इस भ्रम में कथावाचक का झूठ और मजबूत होता जाता है, क्योंकि उसे चारों तरफ से समर्थन मिलता है। जब समाज मान लेता है, तब झूठ सामाजिक सत्य बन जाता है। यही कहानी का तीखा व्यंग्य है कि

गाँव का सामाजिक ढाँचा सत्य की नहीं, छवि की पूजा करता है। और छवि की पूजा में व्यक्ति का असली नैतिक मूल्य दब जाता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 51-53)

ट्रेन वाला प्रसंग इस प्रतिष्ठा के धोखे को तोड़ देता है, क्योंकि वहाँ गाँव जैसा मंच नहीं है। भीड़ के बीच कथावाचक की झूठी पहचान टिक नहीं पाती। एक गरीब आदमी का गठरी रख देना उसे अपमान लगता है, और वह उसे पीट देता है। यह हिंसा दिखाती है कि प्रतिष्ठा ने उसे भीतर से खोखला कर दिया है। वह अब उसी व्यक्ति को मार रहा है, जिसकी तरह वह खुद था। भीड़ का सवाल उसे झकझोर देता है—क्या अमीर बनते ही इंसानियत मर जाती है? यह सवाल उसके चेहरे पर नहीं, उसकी चेतना पर चोट करता है। यहाँ समझ आता है कि धोखा केवल दूसरों के साथ नहीं हुआ, खुद के साथ भी हुआ। उसने अपने सिद्धांतों का धोखा किया, अपनी वर्ग-सच्चाई का धोखा किया, और इंसानियत का भी। यही क्षण कहानी नशा का असली अर्थ खोलता है—यह नशा शराब का नहीं, झूठी प्रतिष्ठा का है, जो आदमी को धीरे-धीरे अपने मूल सत्य से काट देता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 54)

आत्मबोध और यथार्थ

आत्मबोध का पहला संकेत कथावाचक की शुरुआती बेचैनी में दिखता है, जो स्टेशन से ही शुरू हो जाती है। खानसामों का झुकना, उनकी निगाहों का फर्क, और ईश्वरी के सामने उनकी फुर्ती उसे खटकती है। वह जानता है कि पैसे ईश्वरी के हैं, सुविधा ईश्वरी की है, फिर भी वह अपने लिए भी वही सम्मान चाहता है। यह चाह बताती है कि उसका मन धीरे-धीरे फिसल रहा है। वह इसे खुलकर नहीं कहता, पर भीतर ही भीतर तुलना करने लगता है। यथार्थ यह है कि वर्ग-भेद हर जगह मौजूद है, और यह भेद केवल पैसों से नहीं, व्यवहार से भी बनता है। आत्मबोध तब पैदा होता है जब कथावाचक इस भेद को केवल देखता नहीं, बल्कि अपनी देह और मन में चुभता हुआ महसूस करता है। यही चुभन उसे बताती है कि वह अब सिर्फ दर्शक नहीं रहा, वह उसी खेल में उतर रहा है, जिसे वह पहले गलत मानता था। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 50)

दूसरा संकेत तब आता है जब एक मुसाफिर उसे सेवक समझ लेता है और तिरस्कार से देखता है। उस क्षण कथावाचक को गहरी शर्म होती है, क्योंकि उसकी झूठी पहचान अचानक गिर जाती है। यह शर्म उसके असली सामाजिक स्थान की याद दिलाती है। वह समझता है कि सम्मान का यह नया संसार स्थायी नहीं है, और हर जगह उसकी नई छवि काम नहीं करेगी। यथार्थ यह है कि झूठी छवि कुछ लोगों को प्रभावित कर सकती है, पर हर व्यक्ति उस दिखावे में नहीं फँसता। यह अनुभव उसे भीतर से तोड़ता है, क्योंकि एक तरफ उसे ऊँचा दिखाया जा रहा है, और दूसरी तरफ

कोई उसे सामान्य नौकर समझ रहा है। उसके भीतर दो पहचान टकराती हैं। फिर भी वह झूठ छोड़ नहीं पाता। वह फिर उसी भूमिका में लौट आता है, क्योंकि उसे सम्मान का स्वाद लग चुका है। यही बताता है कि आत्मबोध अभी अधूरा है। वह सच को पहचान रहा है, पर सच के अनुसार जीने की ताकत उसमें अभी नहीं बनी। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 50-51)

तीसरा संकेत कहानी के अंत में आता है, जब भीड़ उसकी आलोचना करती है और उसे आईना दिखाती है। तब कथावाचक को महसूस होता है कि उसका नशा उतर रहा है। यह नशा शराब का नहीं, रुतबे और अधिकार का है। आत्मबोध यहाँ दर्द के साथ आता है, क्योंकि उसे पहली बार साफ दिखता है कि उसने क्या किया। उसने एक गरीब आदमी को सिर्फ असुविधा के कारण मारा, धक्के दिए, तमाचे मारे। यह यथार्थ कठोर है, क्योंकि यह उसके पुराने विचारों के खिलाफ है। पहले वह शोषण और बराबरी की बातें करता था, अब वही व्यक्ति गरीब पर हाथ उठा रहा है। भीड़ के शब्द उसके भीतर चोट करते हैं, क्योंकि वे उसके बदलाव को उजागर कर देते हैं। इस क्षण उसे पता चलता है कि प्रतिष्ठा का नशा उसे इंसान से मालिक में बदल चुका है। यही आत्मबोध की तीखी घड़ी है, जहाँ व्यक्ति अपने अंदर का अंधेरा देखता है और उससे बच नहीं पाता। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 54)

अंतिम रूप से यथार्थ यह है कि समाज की व्यवस्था व्यक्ति को बहुत जल्दी बदल देती है, खासकर जब उसे अचानक सम्मान और सुविधा मिल जाए। थोड़े दिनों की झूठी प्रतिष्ठा ने कथावाचक के व्यवहार को उलट दिया। यह बदलाव केवल बाहरी नहीं था, यह उसके भीतर उतर गया था—उसकी भाषा में, उसके गुस्से में, और उसके हक के भाव में। आत्मबोध का अर्थ यहाँ सिर्फ पछताना नहीं है। आत्मबोध का अर्थ है यह समझना कि मैं भी उसी अन्याय का हिस्सा बन सकता हूँ, जिसका मैं विरोध करता था। यही समझ कहानी की नैतिक चोट है। प्रेमचंद यहाँ यह भी दिखाते हैं कि नैतिकता केवल विचार नहीं, अभ्यास है। यदि व्यक्ति रोज अपने विवेक को बचाकर न रखे, तो झूठा सम्मान उसे धीरे-धीरे गिरा सकता है। इसलिए आत्मबोध इस कहानी में एक चेतावनी बन जाता है—सच पहचानना काफी नहीं, सच पर टिके रहना भी जरूरी है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 49-54)

3.1.2.3. प्रेम, सामाजिक मर्यादा और व्यक्तिगत इच्छा का टकराव

कथावाचक की व्यक्तिगत इच्छा बहुत सरल है उसे सम्मान भी चाहिए और अपनापन भी। वह ईश्वरी के साथ रहकर अकेलापन घटाना चाहता है, और पढ़ाई-तैयारी में सहारा चाहता है। पर सामाजिक मर्यादा का ढाँचा अलग है। वहाँ वर्ग-क्रम चलता है, जहाँ अमीर ऊपर और गरीब नीचे तय मान लिया जाता है। यही टकराव स्टेशन से शुरू हो जाता है। ईश्वरी के लिए खानसाम दौड़ते हैं, सामान संभालते हैं, और बात-बात पर

झुकते हैं। कथावाचक जानता है कि पैसा ईश्वरी का है, फिर भी उसे लगता है कि उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार होना चाहिए। यह चाह उसके भीतर एक नई बेचैनी पैदा करती है, क्योंकि वह दोस्त है, पर समाज की नजर में वह साथ आया व्यक्ति है। मर्यादा उसे पिछलग्गू बनाकर रखती है। वह इस सच्चाई को महसूस करता है, लेकिन बोल नहीं पाता। कारण यह है कि ईश्वरी का साथ उसे प्यारा है, और वह उस रिश्ते को खोना नहीं चाहता। यही प्रेम और इच्छा का पहला संघर्ष दिखता है—वह सम्मान चाहता है, पर सम्मान पाने के लिए चुप रहने लगता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 50)

गाँव में पहुँचकर यह टकराव और तीखा हो जाता है, क्योंकि वहाँ मर्यादा कठोर और खुली है। मर्यादा कहती है कि कुँवर के लिए सब कुछ नौकर करेंगे, और बाकी लोग भी उसी के अनुसार झुकेंगे। पहले कथावाचक को यह ढोंग लगता था, पर अब वही ढोंग उसे अच्छा लगने लगता है। वह खुद भी चाहता है कि बिस्तर समय पर लगे, पानी आए, लैंप कोई जलाए, और गलती पर नौकर डरें। यह बदलाव अचानक नहीं होता। यह रोज़ मिलने वाले छोटे-छोटे सम्मान से होता है। उसे पैर दबवाए जाते हैं, सेवा मिलती है, और लोग उसकी बात को आदेश मान लेते हैं। यही वह जगह है जहाँ प्रेम दोस्ती से हटकर मान-प्रतिष्ठा का रूप लेने लगता है। अब उसकी व्यक्तिगत इच्छा केवल अपनापन नहीं, "रुतबा भी बन जाती है। पर इसी क्षण उसके भीतर नैतिक संघर्ष शुरू होता है। वह जानता है कि यह सम्मान उसका नहीं है, फिर भी वह उसे छोड़ नहीं पाता। सामाजिक मर्यादा उसकी इच्छा को एक गलत दिशा में ढाल देती है, और वह खुद भी उसी मर्यादा का हिस्सा बनने लगता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 52-53)

ठाकुर वाला प्रसंग इस टकराव की सबसे साफ परत खोल देता है। ठाकुर गांधी भक्त बनकर आता है, लेकिन उसका असली लक्ष्य धर्म या भक्ति नहीं, जमीन और ताकत है। वह अपनी चालाकी से मर्यादा का फायदा उठाना चाहता है। दूसरी तरफ कथावाचक सरकार जैसी भाषा बोलने लगता है, जैसे वह नियम बना सकता हो और भविष्य तय कर सकता हो। वह कहता है कि स्वराज्य आया तो ज़मींदारी खत्म होगी, जमीन छीनी जाएगी, और वह खुशी से दे देगा। यह बात उसके अधिकार में नहीं है, फिर भी वह शान से बोलता है। यहाँ व्यक्तिगत इच्छा अपनी सीमाएँ तोड़ देती है। उसे लगता है कि उसकी नई छवि उसे शक्ति दे रही है। ठाकुर उसकी बात सुनकर पैर दबाने लगता है, और कथावाचक उसे मोटर-ड्राइवरी, नौकरी, और तरक्की के सपने भी बाँट देता है। इस पूरे दृश्य में प्रेम, मर्यादा, और इच्छा मिलकर एक झूठा मंच बना देते हैं। कहानी यह बताती है कि मर्यादा कई बार नैतिकता नहीं होती, वह केवल फायदा और

डर की व्यवस्था बन जाती है। और जब व्यक्ति फायदा देखता है, तो वह झूठ का सहारा लेने लगता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 53)

ट्रेन में भीड़ की प्रतिक्रिया इस टकराव को सार्वजनिक कर देती है, और वहीं कथावाचक की असली परीक्षा होती है। भीड़ के लिए वह कोई कुँवर नहीं, बस तीसरे दर्जे का मुसाफिर है। वहाँ नियम सीधा है—अगर नाजुक मिजाज है तो पहले दर्जे में बैठो, नहीं तो भीड़ और धक्के सहो। यानी समाज की मर्यादा साफ कह देती है: पैसा हो तो अधिकार, नहीं तो चुप्पी। कथावाचक की व्यक्तिगत इच्छा—कि उसे सम्मान मिले और उसकी बात चले—अब इस नियम से टकराकर टूटती है। वह एक गरीब आदमी की गठरी को सह नहीं पाता और उसे पीट देता है। यही वह पल है जहाँ उसकी इच्छा गलत रूप ले लेती है। वह सम्मान पाने की चाह में इंसानियत खो देता है। भीड़ के सवाल उसे झकझोरते हैं, क्योंकि वे उसे बताते हैं कि रुतबा किसी का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं, और झूठी छवि टिकती नहीं। इस जगह कहानी का नैतिक निष्कर्ष उभरता है—यदि प्रेम और इच्छा को विवेक न संभाले, तो सामाजिक मर्यादा उन्हें गलत रास्ते पर ले जाती है। और जब नशा उतरता है, तब केवल पछतावा बचता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 54)

3.1.2.4. धोखा, पश्चाताप और नैतिक चेतना का विकास

धोखे की शुरुआत ईश्वरी के परिचय से होती है, पर यह केवल मज़ाक या हल्की चाल नहीं है। वह कथावाचक को बड़े आदमी के रूप में पेश करता है और उसे गांधी का भक्त तथा राजा जैसा बताकर लोगों की आँखों में ऊँचा बना देता है। गाँव के लोग बिना जाँच के मान लेते हैं, क्योंकि वे छवि के सामने झुकने के आदी हैं। यह झूठ दूसरों को ही नहीं, कथावाचक को भी प्रभावित करता है। पहले वह जानता था कि उसकी पहचान साधारण है, पर अब सम्मान मिलने लगता है, तो वह उसी सम्मान को अपना हक समझने लगता है। यहीं नैतिक चेतना कमजोर पड़ती है, क्योंकि लाभ मिलने लगे तो झूठ सुविधा बन जाता है। वह विरोध करना चाहता भी है, तो भी चुप हो जाता है, क्योंकि उसे डर है कि सच बोलते ही यह पूरा मंच टूट जाएगा। इसी डर में वह झूठ का साथ देने लगता है। यह साथ धीरे-धीरे आदत बनता है, और आदत फिर चरित्र पर असर डालती है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि बड़ा धोखा हमेशा बड़े शब्दों से नहीं होता, वह छोटे-छोटे समझौतों से शुरू होता है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 51-52)

धोखा फिर व्यवहार में उतरता है और यहीं उसका असली रूप सामने आता है। कथावाचक नौकरों को डाँटता है, रियासत अली पर गुस्सा निकालता है, और खुद को कुँवर मानने लगता है। यह वही व्यक्ति है जो पहले बराबरी की बातें करता था और

शोषण को गलत मानता था। अब उसका स्वर बदल गया है, क्योंकि उसे सेवा और डर का स्वाद लग गया है। जब बिस्तर देर से लगता है, तो वह नौकर को अपमानित करता है, और ईश्वरी उसे सही ठहराकर इस अपमान को वैध बना देता है। यहाँ धोखा केवल बोलने का नहीं, चरित्र का बन जाता है। वह अपने पुराने स्व को धोखा देने लगता है। उसकी नैतिक चेतना इस समय सोई रहती है, क्योंकि उसे लगता है कि यह सब उसका अधिकार है। असल में यह अधिकार नहीं, उधार का रुतबा है, पर नशे में व्यक्ति उधार और असली का फर्क भूल जाता है। यही कारण है कि वह धीरे-धीरे उसी व्यवस्था का हिस्सा बन जाता है, जिसे वह पहले गलत कहता था। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 52-53)

चरम धोखा ट्रेन में दिखता है, जहाँ उसका असली चेहरा खुल जाता है। तीसरे दर्जे की भीड़ में एक गरीब आदमी की गठरी उसे असुविधा लगती है, और वह उसे मारने लगता है। यह हिंसा बताती है कि नशा उसे क्रूर बना चुका है। अब उसके लिए गरीब आदमी इंसान नहीं, बाधा है। यह सबसे बड़ा धोखा है, क्योंकि उसने अपने वर्ग के ही व्यक्ति पर हाथ उठाया। यह केवल दूसरे के खिलाफ अपराध नहीं, खुद के खिलाफ भी अपराध है। इसी क्षण समाज उसकी गलत हरकत पर सवाल उठाता है। भीड़ उसे बताती है कि नाजुक मिजाज है तो पहले दर्जे में बैठो, तीसरे में रहकर दूसरों को मत मारो। ये शब्द उसे झकझोरते हैं, क्योंकि वे उसकी झूठी प्रतिष्ठा को गिरा देते हैं। यहाँ उसके भीतर हलचल होती है। पहली बार उसे महसूस होता है कि वह गलत है, और उसका व्यवहार उसकी पुरानी सोच के खिलाफ है। यही हलचल पश्चाताप की जमीन बनाती है, क्योंकि पश्चाताप तब पैदा होता है जब व्यक्ति अपने ही कर्मों को देखकर डर जाए। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 54)

अंत में नशा उतरना नैतिक चेतना के लौटने का संकेत है, पर यह लौटना बहुत सहज नहीं है। भीड़ की फटकार के बाद ईश्वरी भी उसे डाँटता है—हावाट अन ईडियट यू आर, बीर यह वाक्य तंज भी है और झटका भी, क्योंकि अब तक ईश्वरी ही उसे इस भूमिका में ढाल रहा था। इस एक वाक्य से कथावाचक को लगता है कि वह न केवल समाज के सामने गिरा है, बल्कि अपने दोस्त की नजर में भी हास्यास्पद बन गया है। यहीं उसे साफ दिखता है कि उसने अपने सिद्धांतों का धोखा किया, अपनी इंसानियत का धोखा किया, और अपने वर्ग-चेत का भी। वह समझता है कि सम्मान की लालसा ने उसे अंधा कर दिया था। यह एहसास सिर्फ शर्म नहीं है, यह नैतिक चेतना का पुनर्जागरण है। प्रेमचंद की दृष्टि में यही विकास है—पहले व्यक्ति झूठ का साथी बनता है, फिर झूठ उसे बदल देता है, फिर समाज उसे आईना दिखाता है, और अंत में आत्मा के भीतर सवाल उठता है। यही सवाल भविष्य की नैतिक समझ की शुरुआत

बनता है। नशा उतर जाता है, पर एक कड़वी सीख छोड़ जाता है कि झूठी प्रतिष्ठा की कीमत अक्सर इंसानियत से चुकानी पड़ती है। (प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 54)

3.2. समाज में नैतिकता

प्रेमचंद का साहित्यिक संसार केवल व्यक्ति के भीतर चल रहे नैतिक संघर्ष तक सीमित नहीं है। वह समाज के व्यापक ढांचे में फैली नैतिक विसंगतियों को भी उतनी ही तीव्रता से उजागर करता है। उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण उन स्थितियों को सामने लाता है, जहाँ नैतिकता कई बार दिखावे और औपचारिकता बनकर रह जाती है। जाति, वर्ग, धर्म, लैंगिक भेदभाव, शोषण और गरीबी के बीच प्रेमचंद लगातार यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या समाज केवल बाहरी अनुशासन बनाए रखने से नैतिक हो जाता है, या नैतिकता का असली मापदंड उसका आंतरिक विवेक और संवेदना है। इसी कारण उनके कई प्रसिद्ध कथानकों में यह प्रश्न केंद्र में आता है—‘सद्गति’, ‘ठाकुर का कुआँ’, ‘पंच परमेश्वर’, ‘कफन’ जैसी कहानियाँ सामाजिक अन्याय, भेदभाव और दमन के ऐसे चित्र प्रस्तुत करती हैं, जहाँ सत्ता और धर्म जैसे संस्थान कई बार अपने मूल उद्देश्य से भटककर सामाजिक नियंत्रण के उपकरण बन जाते हैं। प्रेमचंद इन संस्थानों को नारेबाजी से नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना और नैतिक विवेक के सहारे चुनौती देते हैं। यह चुनौती उनके पात्रों की चुप्पी, पीड़ा, अपमान और छोटे-छोटे प्रतिरोधों में व्यक्त होती है, जिससे पाठक को भीतर तक असहजता होती है और सोच बदलने की शुरुआत होती है। (शर्मा, जे., 2017, पृ. 86)।

इस सामाजिक यथार्थ में प्रेमचंद नैतिकता को दो स्तरों पर देखा जा सकता है। पहला स्तर वह है जो सत्ता, परंपरा और बाहरी अनुशासन से नियंत्रित होती है, और दूसरा स्तर वह है जो करुणा, समानता और मनुष्यता से संचालित होती है। ‘सद्गति’ में एक ब्राह्मण द्वारा एक दलित दुखी से श्रम करवाना और फिर उसकी मृत्यु पर लगभग चुप्पी साध लेना, उस तथाकथित धार्मिक नैतिकता की आलोचना है जहाँ नियम, कर्मकांड और मर्यादा मानवीय दायित्व से ऊपर रख दिए जाते हैं। इसी तरह ‘ठाकुर का कुआँ’ में पानी जैसी बुनियादी चीज़ को भी जाति-आधारित पवित्रता और अपवित्रता के खांचे में बाँध देना समाज की नैतिक विफलता को उजागर करता है। यहाँ पात्र गंगी अपने बीमार पति के लिए पानी लाने को विवश होती है, पर जाति-बाधा उसे डर और असहायता में धकेल देती है। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि यदि किसी समाज में समानता और सहानुभूति नहीं है, तो वहाँ नैतिकता मानवता नहीं रह जाती, वह केवल सत्ता का पर्याय बन जाती है। उनका साहित्य इस बात पर जोर देता है कि नैतिकता का वास्तविक आधार सामाजिक न्याय, करुणा और मानवीय गरिमा की रक्षा में होना चाहिए—न कि जाति, धर्म या परंपरा के कठोर और शुष्क मानकों में। जब उनके पात्र

इन मानकों से टकराते हैं, तब वे सिर्फ बागी नहीं बनते, बल्कि नैतिक दृष्टि के संवाहक बन जाते हैं। (तिवारी, ए., 2018, पृ. 97)।

प्रेमचंद के सामाजिक नैतिक विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वह आदर्शवाद की कट्टरता में नहीं फँसते। वे यथार्थ की ज़मीन पर खड़े रहकर नैतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को चित्रित करते हैं। उनके पात्र न तो संत होते हैं, न ही पूरी तरह पतित। वे परिस्थितियों के बीच निर्णय लेते हैं, कई बार असमंजस में होते हैं, फिर भी अंततः अपनी मानवता की आवाज़ सुनते हैं। यही नैतिक संघर्ष उनके साहित्य को केवल समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ नहीं रहने देता, बल्कि एक नैतिक चेतावनी और आत्ममंथन का साधन बना देता है। उदाहरण के लिए, 'कफन' में घीसू और माधव का व्यवहार पहली दृष्टि में क्रूर और संवेदनहीन लगता है, पर कहानी के गहरे स्तर पर वह गरीबी, भूख, सामाजिक उपेक्षा और व्यवस्था के प्रति हताशा की अभिव्यक्ति भी बन जाता है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि नैतिकता का ह्रास केवल व्यक्ति का निजी दोष नहीं होता। कई बार वह पूरे सामाजिक तंत्र की असफलता का संकेत होता है, जो कमजोर वर्गों को सम्मान, अवसर और सुरक्षा नहीं दे पाता। उनका आग्रह यह है कि जब तक समाज हर व्यक्ति को गरिमा के साथ जीने की जगह नहीं देगा, तब तक कोई भी नैतिक व्यवस्था टिकाऊ नहीं हो सकती। इसीलिए उनकी कहानियाँ नैतिकता को केवल अच्छे-बुरे के द्वंद्व में नहीं बाँधतीं, बल्कि उसे सामाजिक संरचना और मानवतावादी दृष्टिकोण के संदर्भ में नए सिरे से परिभाषित करती हैं। (वर्मा, एस., 2020, पृ. 105)।

3.2.1. जाति व्यवस्था और भेदभाव का चित्रण

प्रेमचंद के साहित्य में जाति व्यवस्था का चित्रण केवल सामाजिक यथार्थ का प्रस्तुतीकरण नहीं है। वह एक नैतिक हस्तक्षेप भी है। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को जिस गहराई और संवेदना से प्रस्तुत किया, उसने हिंदी कथा-साहित्य को नई दिशा दी। 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'पंच परमेश्वर' और 'कफन' जैसी कहानियों में जाति का प्रश्न केवल वर्ण-व्यवस्था तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह मानवीय गरिमा, अधिकार और आत्मसम्मान से जुड़ जाता है। प्रेमचंद जाति-आधारित भेदभाव को सामाजिक अन्याय और नैतिक पतन का मूल कारण मानते हैं। 'सद्गति' में मुख्य पीड़ित पात्र दुखी चमार है, जबकि 'ठाकुर का कुआँ' में जातिगत अपमान और प्यास से जूझती पात्र गंगी है। दुखी की मृत्यु और ब्राह्मण का मौन उस संवेदनहीन सामाजिक नैतिकता को उजागर करता है, जो जाति की दीवारों के भीतर करुणा और मानवता को दबा देती है। इस प्रकार प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जाति केवल सामाजिक

पहचान नहीं, बल्कि सत्ता का ढाँचा भी है, जो कमजोर को कमतर सिद्ध कर उसके अधिकार सीमित करता है (त्रिवेदी, एन., 2017, पृ. 84)।

‘ठाकुर का कुआँ’ में प्रेमचंद ने प्यास जैसी बुनियादी मानवीय आवश्यकता को भी छुआछूत की दीवारों से जोड़ दिया है। गंगी जब ठाकुर के कुएँ से पानी भरने का साहस करती है, तो उसका अपराध बस यही है कि वह तथाकथित नीची जाति की है। उसके हाथ का पानी ऊँची जाति के लिए अपवित्र मान लिया जाता है। प्रेमचंद यहाँ जाति को एक नैतिक प्रश्न बनाकर रखते हैं—क्या वह समाज नैतिक हो सकता है, जो पानी जैसी जीवनदायिनी वस्तु पर भी जाति का पहरा लगा दे? यह कहानी स्पष्ट करती है कि भेदभाव केवल संसाधनों तक सीमित नहीं रहता। वह व्यक्ति की अस्मिता, आत्मगौरव और मानवाधिकार तक को निगल जाता है। प्रेमचंद कोई प्रत्यक्ष क्रांति नहीं रचते, पर पात्रों के डर, विवशता और अपमान के जरिए व्यवस्था की अमानवीयता पाठक के सामने रख देते हैं। यही उनका सबसे बड़ा नैतिक हस्तक्षेप है। (यादव, आर., 2018, पृ. 102)।

जाति व्यवस्था के चित्रण में प्रेमचंद का उद्देश्य केवल सामाजिक आलोचना नहीं है। वह एक वैकल्पिक नैतिकता की स्थापना भी है, जहाँ मनुष्य की पहचान उसकी जाति नहीं, बल्कि उसका व्यवहार, करुणा और कर्म हो। ‘पंच परमेश्वर’ में यही भाव उभरता है, जब अलगू और जुम्मन अपने निजी आग्रहों, संबंधों और लाभ के दबाव से ऊपर उठकर न्याय करते हैं। यह न्याय केवल पंचायत का निर्णय नहीं रहता। वह नैतिक विकास की प्रक्रिया बन जाता है, जिसमें व्यक्ति अपने भीतर के स्वार्थ और पक्षपात को पहचानता है। प्रेमचंद का दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि समाज तब तक नैतिक रूप से परिपक्व नहीं हो सकता, जब तक वह जातिगत भेदभाव को नकारकर समता और सह-अस्तित्व को स्वीकार न करे। उन्होंने दिखाया कि जाति का अंत केवल सामाजिक पुनर्गठन से नहीं होगा। उसे नैतिक पुनर्जागरण भी चाहिए, और यह जागरण विवेक, करुणा और साहित्यिक चेतना के माध्यम से संभव है। (शरण, टी., 2021, पृ. 117)।

3.2.1.1. ‘ठाकुर का कुआँ’ में जल, सम्मान और सामाजिक बहिष्कार

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी ‘ठाकुर का कुआँ’ जातिगत भेदभाव की अमानवीयता और दलित वर्ग के आत्मसम्मान की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इस कहानी की नायिका गंगी एक निम्न जाति की स्त्री है, जिसकी सबसे बड़ी आवश्यकता केवल साफ पीने का पानी है, लेकिन वह भी उसे सामाजिक मर्यादाओं और छुआछूत की दीवारों के कारण सुलभ नहीं हो पाता। गंदे नाले/खड्ड से पानी पीने को मजबूर दलित परिवार की स्थिति इस बात की गवाही देती है कि कैसे एक सभ्य कहे जाने वाले समाज में सबसे

मूलभूत मानवीय अधिकार भी जाति के आधार पर बाँट दिए जाते हैं। प्रेमचंद पानी जैसे सामान्य संसाधन को प्रतीक बनाकर समाज की असमान सत्ता-संरचना पर तीखा प्रश्न उठाते हैं। जब गंगी ठाकुर के कुएँ से पानी भरने जाती है, तो उसका डर केवल पकड़े जाने का नहीं रहता, बल्कि पूरे समाज के सामने अपवित्र घोषित किए जाने का भय भी होता है। यही भय दलितों की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है—जहाँ वे सिर्फ संसाधनों से नहीं, सम्मान और गरिमा से भी दूर रखे जाते हैं। प्रेमचंद इस बहिष्कार को भावनात्मक, मानसिक और नैतिक स्तर पर खोलते हैं, ताकि पाठक पानी के मुद्दे के भीतर छिपी असमानता को साफ देख सके। (सक्सेना, डी., 2018, पृ. 88)।

गंगी का साहस, जो वह ठाकुर के कुएँ से पानी भरने के निर्णय में दिखाती है, दरअसल दलित चेतना और आत्मसम्मान के उभार की ओर संकेत करता है। प्रेमचंद यहाँ नायिका को केवल पीड़िता नहीं बनाते, बल्कि उसे प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में उभारते हैं। गंगी का यह कदम बताता है कि दलित समाज अब चुप रहने को बाध्य नहीं है—वह अपने अधिकार के लिए जोखिम उठाने को भी तैयार है। यह प्रतिरोध साधारण दिखाई देता है, पर उसका नैतिक असर गहरा है, क्योंकि वह मर्यादा के नाम पर चल रही गैर-बराबरी को सीधे चुनौती देता है। कहानी में गंगी कुएँ तक जाती है, पानी भरने की कोशिश करती है, पर जागने/शोर की आशंका से वह घबराकर भागती है और घड़ा/लोटा टूट जाता है, इसलिए वह पानी लेकर सफलतापूर्वक घर नहीं लौट पाती। लेकिन इसी असफलता के भीतर एक नई चेतना जन्म लेती है—कि पानी पर जाति का पहरा अमानवीय है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि समाज जब किसी वर्ग को सामाजिक मर्यादा से बाहर कर देता है, तो वह उसकी भौतिक हालत ही नहीं, उसकी मानवीय पहचान भी कुचल देता है। इसलिए ‘ठाकुर का कुआँ’ सिर्फ एक घटना नहीं रह जाती; वह एक गूँज बन जाती है—जो बताती है कि जल और सम्मान दोनों जीवन के लिए जरूरी हैं, और दोनों पर किसी भी तरह का जातीय स्वामित्व अन्याय है। (राय, बी., 2020, पृ. 95)।

जातिगत भेदभाव और मानवीय अधिकार

प्रेमचंद की कहानियाँ भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को केवल सामाजिक समस्या नहीं मानतीं, बल्कि उसे मानवीय अधिकारों के गहरे उल्लंघन के रूप में सामने रखती हैं। विशेषकर ‘ठाकुर का कुआँ’, ‘सद्गति’, और ‘कफन’ जैसी रचनाओं में यह भेदभाव व्यक्ति के जीवन, सम्मान और गरिमा तक को प्रभावित करता है। इन कहानियों में दलित पात्र केवल आर्थिक रूप से ही नहीं, बल्कि सामाजिक और मानसिक स्तर पर भी वंचित दिखते हैं। उन्हें न बराबरी का दर्जा मिलता है, न बुनियादी सुविधाएँ—जैसे पीने का साफ पानी, श्रम का सम्मान, या मृत्यु के बाद सम्मानजनक व्यवहार। प्रेमचंद जातिवाद को केवल परंपरा नहीं मानते; वे उसे नैतिक

विफलता और अमानवीयता के रूप में उजागर करते हैं। उनका दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि जब समाज व्यक्ति को उसकी जाति के आधार पर बाँटता है, तो वह सबसे पहले उसे मानव मानने से इनकार करता है—और यही सबसे बड़ा अन्याय है। इसीलिए उनकी कहानियाँ पाठक को यह समझने के लिए मजबूर करती हैं कि अधिकार केवल कागज़ पर नहीं, रोजमर्रा के व्यवहार में भी सुरक्षित होने चाहिए। (दत्ता, एस., 2019, पृ. 106)।

मानवीय अधिकारों का हनन केवल संस्थागत स्तर पर नहीं होता, बल्कि सामाजिक व्यवहार, भाषा, और नजरिए में भी दिखता है। प्रेमचंद के पात्र—जैसे दुखी ('सद्गति') या गंगी ('ठाकुर का कुआँ')—अपने जीवन में अपमान, उपेक्षा और बहिष्कार का जो अनुभव करते हैं, वह इस बात का प्रमाण है कि समाज ने उन्हें नागरिक अधिकारों से पहले मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया है। इन कहानियों में प्रेमचंद न तो क्रांतिकारी भाषण देते हैं, न उपदेश का बोझ डालते हैं; वे पाठक को पात्रों के स्थान पर खड़ा कर देते हैं, ताकि भेदभाव की पीड़ा दूर की बात न रहे। यही उनकी नैतिक दृष्टि की शक्ति है। वे संवेदना और नैतिक विवेक को हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं, जो पाठक के मन को झकझोरता है और उसे सोचने पर मजबूर करता है कि समाज की प्रगति केवल आर्थिक या राजनीतिक नहीं, बल्कि मानवीय समानता की स्थापना से ही संभव है। (शाह, एम., 2021, पृ. 92)।

सम्मान और सामाजिक बहिष्कार

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में सम्मान केवल सामाजिक पद नहीं, बल्कि मानवीय अधिकार का प्रतीक है। जब किसी व्यक्ति को उसकी जाति, वर्ग या सामाजिक स्थिति के आधार पर सार्वजनिक जीवन से बाहर रखा जाता है, तो वह बहिष्कार केवल उसकी उपस्थिति नहीं मिटाता, बल्कि उसके आत्मसम्मान और अस्तित्व को भी चोट पहुँचाता है। 'ठाकुर का कुआँ' में गंगी जिस तरह अपने परिवार की प्यास बुझाने के लिए ठाकुर के कुएँ की ओर बढ़ती है, वह इस बात का संकेत है कि दलित वर्ग को समाज ने सिर्फ संसाधनों से नहीं, सम्मान से भी वंचित कर रखा है। यहाँ पानी का प्रश्न दरअसल सम्मान का प्रश्न बन जाता है, क्योंकि पानी लेने की कोशिश ही अपराध मान ली जाती है। यह स्थिति एक चेतावनी देती है कि यदि किसी व्यक्ति को अपनी मूलभूत जरूरतों के लिए भी अपमान सहना पड़े, तो उस समाज की नैतिकता खोखली हो जाती है। प्रेमचंद इस खोखलेपन को घटना की सादगी में रखकर भी बहुत तीखा बना देते हैं। (सिंह, जे., 2019, पृ. 81)।

सामाजिक बहिष्कार प्रेमचंद की कई कहानियों में एक गहरी पृष्ठभूमि की तरह मौजूद रहता है। 'सद्गति' में दुखी की मृत्यु और फिर उसके शव के साथ किया गया व्यवहार यह दिखाता है कि समाज केवल जीवित व्यक्ति को नहीं, मृत शरीर को भी

जाति के आधार पर मान्यता देता है। यही वह भयावह यथार्थ है जिसे प्रेमचंद बार-बार उठाते हैं। उनके लिए सामाजिक बहिष्कार किसी कानून या निषेध की तकनीकी बात नहीं, बल्कि नैतिक विफलता का लक्षण है। वे पाठकों को यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि जो समाज मानवीय गरिमा को न पहचान सके, वह किस आधार पर खुद को सभ्य कह सकता है। इस संदर्भ में बहिष्कार केवल बाहर निकालना नहीं है; यह धीरे-धीरे व्यक्ति की पहचान, अधिकार और आत्मसम्मान को खत्म कर देना भी है। इसलिए प्रेमचंद के यहाँ बहिष्कार का विरोध सिर्फ क्रोध नहीं, एक नैतिक सवाल बनकर सामने आता है। (त्रिपाठी, एन., 2020, पृ. 99)।

इस बहिष्कार के विरुद्ध प्रेमचंद का साहित्य चुपचाप लेकिन सशक्त प्रतिरोध रचता है। उनके पात्र—गंगी और दुखी—भले ही समाज के बनाए घरे में घिरे हों, फिर भी उनके भीतर आत्मबल और मानवीय चेतना बची रहती है। गंगी का कुँए तक जाना और दुखी का काम करते-करते टूट जाना, दोनों स्थितियाँ समाज की क्रूरता दिखाती हैं, पर साथ ही पाठक के भीतर न्याय की चेतना भी जगाती हैं। यहाँ एक छोटा अर्थ-सुधार जरूरी है: 'पंच परमेश्वर' के अलगू और जुम्मन "सामाजिक बहिष्कार" के पात्र नहीं हैं, पर वे सामाजिक दबाव, पक्षपात और स्वार्थ के विरुद्ध नैतिक निर्णय का संघर्ष जरूर दिखाते हैं। इसलिए इस संदर्भ में उन्हें बहिष्कृत कहना ठीक नहीं, बल्कि उन्हें नैतिक परीक्षा का उदाहरण कहना अधिक सही है। प्रेमचंद का संदेश यही बनता है कि सम्मान किसी जातीय पद से नहीं, आत्मसम्मान, न्याय और संवेदना से जुड़ता है—और यही उनके साहित्य की बड़ी नैतिक घोषणा है। (त्रिपाठी, एन., 2020, पृ. 99)।

समानता और नैतिक न्याय

प्रेमचंद के साहित्य में समानता केवल सामाजिक लक्ष्य नहीं, बल्कि नैतिक अधिकार के रूप में आती है। उनके लिए समाज की असली परीक्षा इस बात में है कि वह अपने सबसे कमजोर वर्ग को कितना सम्मान, अवसर और न्याय दे पाता है। 'पंच परमेश्वर', 'सद्गति', और 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कहानियाँ समानता की इसी धारणा को गहराई से उकेरती हैं। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि यदि किसी व्यक्ति की जाति, वर्ग या धर्म के कारण उसके साथ भेदभाव होता है, तो यह केवल सामाजिक असमानता नहीं, नैतिक विफलता भी है। 'पंच परमेश्वर' में जब अलगू अपने मित्र जुम्मन के खिलाफ निष्पक्ष न्याय करता है, तब यह केवल पंचायत का निर्णय नहीं रहता; यह समानता और नैतिक न्याय की जीत बन जाता है। यह जीत बताती है कि नैतिक साहस के बिना न्याय टिक नहीं सकता, और पक्षपात के रहते समानता केवल शब्द बनकर रह जाती है। (चतुर्वेदी, एम., 2017, पृ. 79)।

'सद्गति' में प्रेमचंद समानता के अभाव को अत्यंत मर्मस्पर्शी रूप में दिखाते हैं। दुखी की मृत्यु और उसके शव को ठिकाने लगाने में समाज की अनिच्छा यह दर्शाती है

कि असमानता कितनी गहरी है—यह मृत व्यक्ति तक का सम्मान छीन लेती है। प्रेमचंद के अनुसार, जब तक समाज दलितों, महिलाओं और गरीबों को समानता का अधिकार नहीं देता, तब तक उसकी कोई भी नैतिकता टिकाऊ नहीं हो सकती। समानता केवल कानून का विषय नहीं है; यह व्यवहार, दृष्टि और संस्कृति का प्रश्न भी है। प्रेमचंद बार-बार संकेत देते हैं कि असमानता किसी एक व्यक्ति की त्रासदी नहीं, पूरे समाज की नैतिक पराजय है। इसलिए समानता तभी साकार हो सकती है जब हर मनुष्य अपने भीतर न्याय, सहानुभूति और करुणा के मूल्यों को अपनाए और उन्हें रोज के व्यवहार में उतारे। (मिश्र, डी., 2020, पृ. 104)।

नैतिक न्याय प्रेमचंद की कहानियों में दंड या पुरस्कार तक सीमित नहीं रहता। वह व्यक्ति के विवेक और मानवता पर टिका होता है। न्याय वही है जो हर वर्ग के साथ समान व्यवहार करे, और प्रेमचंद इसी नैतिक दृष्टि को अपने पात्रों के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। वे बताते हैं कि समतावादी समाज केवल नियम बनाकर नहीं बनता; उसके लिए संवेदना और नैतिकता का अभ्यास जरूरी है। प्रेमचंद का साहित्य इसी अभ्यास की खोज है—जहाँ हर व्यक्ति को उसकी जाति या वर्ग से परे, सिर्फ मनुष्य होने के नाते सम्मान और अधिकार मिलें। यही दृष्टि उनकी कहानियों को आज भी सामाजिक चेतना और नैतिक प्रश्नों का मजबूत आधार बनाती है। (शुक्ला, के., 2021, पृ. 110)।

3.2.1.2. 'सद्गति' में श्रम, शोषण और सामाजिक अन्याय

प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' एक तीखी सामाजिक आलोचना है, जो श्रमिक वर्ग के शोषण और जाति-आधारित अन्याय को उजागर करती है। कथा का मुख्य पात्र दुखी (चमार) है, जो अपनी पुत्री के विवाह के लिए शुभ मुहूर्त पूछने पंडित घासीराम के पास जाता है। पर धार्मिक सलाह के बदले उसे लगातार श्रम में झोंक दिया जाता है। पंडित घर के काम—आँगन की सफाई, लकड़ी चीरना, और दूसरे छोटे-बड़े काम—को “स्वाभाविक सेवा” मानकर करवाता है। दुखी की देह थकी है, फिर भी काम रुकता नहीं। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि श्रम का यह शोषण केवल आर्थिक नहीं है। यह जाति-सत्ता से नियंत्रित सामाजिक व्यवहार है, जहाँ गरीब का श्रम “कर्तव्य” बना दिया जाता है और सम्मान छीन लिया जाता है। दुखी बोल नहीं पाता, क्योंकि वह सामाजिक डर और धार्मिक भ्रम से बँधा है। यही बंधन शोषण को सामान्य बना देता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 165–167)।

कहानी का सबसे मार्मिक पक्ष यह है कि दुखी का श्रम उसे जीवन नहीं, मृत्यु की ओर ले जाता है। लकड़ी चीरते-चीरते वह टूट जाता है और वहीं गिर पड़ता है। यह मृत्यु सिर्फ व्यक्तिगत दुख नहीं रहती। यह उस व्यवस्था का कठोर प्रमाण बन जाती है,

जिसमें श्रमिक की देह “उपयोग” के बाद फेंक दी जाती है। पंडित की चिंता दुखी के प्राण को लेकर नहीं है। उसे डर है कि घर में “अपवित्रता” न फैल जाए, और उसका धार्मिक अनुशासन न टूटे। इस तरह कर्मकांड मानवीय जिम्मेदारी पर भारी पड़ता है। प्रेमचंद यहाँ धर्म के उस रूप पर चोट करते हैं, जो करुणा से खाली होकर केवल प्रभुत्व बचाता है। दुखी के गिरने के बाद भी सहानुभूति नहीं आती। उलटे, मामले को टालने और दूरी बनाने की प्रवृत्ति दिखती है। पाठक समझता है कि श्रम का यह शोषण केवल एक व्यक्ति की क्रूरता नहीं है। यह समाज की स्वीकृत नैतिकता की विफलता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 168-170)।

दुखी की मृत्यु के बाद जाति-व्यवस्था की अमानवीयता और खुलकर सामने आती है। गाँव में चर्चा फैलती है, पर लाश उठाने को कोई तैयार नहीं होता। तर्क वही पुराना है—“चमार की लाश कौन उठाए?” यहाँ जीवन की तरह मृत्यु भी जाति के घेरे में कैद है। दुखी की पत्नी और बेटी रोती हैं, गिड़गिड़ाती हैं, पर व्यवस्था का पत्थर नहीं पिघलता। पुलिस का डर, समाज की निगरानी, और छुआछूत की मानसिकता मिलकर करुणा को रोक देती है। यह दृश्य बताता है कि समाज शोषण करते समय निकट आता है, पर जिम्मेदारी के समय दूर भागता है। प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि समुदाय का नैतिक पतन कितनी चुप्पी से चलता है। कोई खुलकर हत्या नहीं करता, फिर भी एक आदमी मर जाता है। और फिर भी “सब ठीक” मान लिया जाता है। दुखी की लाश के आसपास खड़ा समाज असल में अपनी ही नैतिकता के शव के पास खड़ा है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 169-170)।

कहानी का निष्कर्ष और भी बेचैन करता है। जब कोई नहीं आता, तब पंडित खुद रस्सी का फंदा बनाकर लाश को घसीटकर गाँव के बाहर ले जाता है। यह दृश्य दिखाता है कि जाति-घृणा इंसान को किस हद तक गिरा देती है। वह मृत देह को भी सम्मान नहीं देता, बस “समस्या” हटाता है। लौटकर वह स्नान करता है, दुर्गापाठ करता है, और घर में गंगाजल छिड़कता है। यानी मृत्यु की जिम्मेदारी नहीं, केवल “शुद्धि” की औपचारिकता बचती है। प्रेमचंद का संकेत साफ है—जो धर्म मनुष्य की गरिमा नहीं बचा सके, वह नैतिकता नहीं बन सकता। ‘सद्गति’ का शीर्षक भी इसी विडंबना को उभारता है। दुखी को वास्तविक ‘सद्गति’ नहीं मिलती। ‘सद्गति’ का दावा करने वाली सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था ही उसके साथ अन्याय करती है। यही कहानी की सबसे बड़ी नैतिक चोट है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 170)।

श्रम और नैतिक शोषण

प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' में श्रम केवल एक शारीरिक गतिविधि नहीं है, बल्कि सामाजिक स्थिति और नैतिक मूल्य का प्रतीक बनकर उभरता है। दुखी एक निम्न जाति का मेहनतकश व्यक्ति है, जो अपने घर की जरूरत और पुत्री के विवाह हेतु शुभ मुहूर्त जानने की आशा लेकर पंडित घासीराम के पास जाता है। लेकिन उसकी मेहनत को उसकी सामाजिक स्थिति के कारण नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। पंडित उसके आने को "धार्मिक काम" की तरह नहीं देखते, बल्कि उसे अपने घरेलू श्रम के लिए सहज साधन मान लेते हैं। दुखी से आँगन साफ करवाना, लकड़ी चिरवाना और लगातार काम करवाना इस मानसिकता को उजागर करता है कि ऊँची जाति के लोग निम्न जाति के श्रम को "स्वाभाविक सेवा" मानकर मुफ्त ले सकते हैं। यहाँ श्रम का शोषण केवल आर्थिक नहीं है। यह नैतिक शोषण है, क्योंकि काम करवाने वाला व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी, सहानुभूति और मानवीय व्यवहार को भी अनावश्यक समझता है। कहानी यह भी बताती है कि जब श्रम जाति-आधारित हो जाता है, तब श्रमिक के साथ अन्याय भी "सामान्य" और "स्वीकृत" बना दिया जाता है। दुखी का श्रम अवैतनिक रहता है, और वह काम करते-करते टूटता जाता है। अंततः वही श्रम उसके लिए जीवन-रक्षा नहीं, मृत्यु का कारण बन जाता है, जो समाज की असंवेदनशीलता की चरम सीमा को सामने रखता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 165-169)।

इस नैतिक शोषण का मूल कारण वह सामाजिक मानसिकता है, जिसमें मेहनत करने वाले को सम्मान नहीं, बल्कि तिरस्कार और दूरी की दृष्टि से देखा जाता है। 'सद्गति' में पंडित दुखी को लगातार काम में लगाते हैं, पर बदले में उसे कोई मानवीय व्यवहार नहीं देते। दुखी के गिरने और मरने के बाद भी पंडित की चिंता दुखी की पीड़ा या परिवार की दशा नहीं बनती, बल्कि "अपवित्रता" और सामाजिक बदनामी का भय बन जाता है। यह स्थिति बताती है कि समस्या एक व्यक्ति तक सीमित नहीं है। यह पूरे समाज की नैतिक असफलता है, जो श्रम को निम्न जातीय दायित्व मानकर, श्रमिक की देह और गरिमा दोनों को कमतर समझती है। प्रेमचंद का संकेत साफ है कि जब तक श्रम को सामाजिक प्रतिष्ठा और नैतिक मान्यता नहीं मिलेगी, तब तक समानता और न्याय केवल शब्द रहेंगे। दुखी का पात्र इस विडंबना का प्रतीक है—वह जीते जी श्रम करता है, और मरने के बाद भी उपेक्षा और बहिष्कार झेलता है। गाँव में लाश उठाने से लोगों का बचना, और पंडित का लाश को घसीटकर बाहर ले जाना, यह दिखाता है कि जाति-व्यवस्था श्रमिक को मृत्यु के बाद भी सम्मान नहीं देती। प्रेमचंद की दृष्टि में यह शोषण सामाजिक समस्या के साथ-साथ एक नैतिक अपराध है, जो

समाज की आत्मा को भीतर से खोखला कर देता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 169-171)।

सामाजिक अन्याय और संवेदनहीनता

प्रेमचंद की कहानियाँ उस सामाजिक व्यवस्था पर करारा प्रहार करती हैं, जो न्याय के नाम पर केवल विशेष वर्गों को संरक्षण देती है, जबकि वंचित वर्गों के प्रति घोर संवेदनहीनता अपनाती है। 'सद्गति' में दुखी जैसे पात्र सामाजिक न्याय की परिधि से बाहर हैं, क्योंकि उनका जीवन और श्रम सत्ता के केंद्र में नहीं, बल्कि हाशिए पर स्थित है। दुखी अपनी पुत्री के विवाह हेतु शुभ मुहूर्त जानने के लिए पंडित के पास आता है, पर उसके साथ "व्यक्ति" की तरह नहीं, "काम" की तरह व्यवहार किया जाता है। पंडित उससे आँगन की सफाई, लकड़ी काटना, और भारी श्रम करवा लेते हैं, पर उसके श्रम-मूल्य और स्वास्थ्य की चिंता नहीं करते। यह केवल एक व्यक्ति की उदासीनता नहीं, बल्कि उस सामाजिक मानसिकता का प्रतिबिंब है जिसमें दलितों और श्रमिकों के जीवन की नैतिक कीमत कम मानी जाती है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि समाज का बड़ा संकट उसका नैतिक मौन है—एक ऐसा मौन जो अन्याय को सामान्य, और अमानवीयता को "चलन" बना देता है। दुखी की थकान, उसकी चुप्पी, और लगातार श्रम में धकेल दिया जाना इसी मौन की गवाही है, जहाँ पीड़ा दिखती है, फिर भी कोई रुककर नहीं पूछता। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 165-169)।

इस कहानी में न्याय व्यवस्था कहीं ठोस रूप में दिखाई नहीं देती—न कानूनी, न धार्मिक, और न ही सामाजिक। दुखी की मृत्यु के बाद भी कोई जांच नहीं होती, कोई सवाल नहीं उठता, और न ही पंडित पर कोई उत्तरदायित्व तय होता है। उलटा, मृत्यु के बाद "धर्म" और "शुद्धता" का डर पहले आता है, मनुष्यता बाद में। पंडित की प्राथमिक चिंता यह नहीं बनती कि दुखी का घर क्या करेगा, या उसका शव सम्मान से कैसे उठे; चिंता यह बनती है कि "अपवित्रता" न फैल जाए और सामाजिक छवि पर आँच न आए। यह स्थिति दर्शाती है कि जब संवेदनशीलता का स्थान धार्मिक औपचारिकताएँ और जातिगत वर्चस्व ले लेते हैं, तब न्याय केवल एक अवधारणा बनकर रह जाता है। प्रेमचंद की आलोचना प्रत्यक्ष भाषणों से नहीं, बल्कि पात्रों की चुप्पी, उनके व्यवहार, और समाज की निष्क्रियता के माध्यम से गहराई से उभरती है। 'सद्गति' हमें सोचने पर मजबूर करती है कि यदि एक मनुष्य के जीवन और मृत्यु का कोई सामाजिक मूल्य नहीं रह गया, तो क्या ऐसा समाज नैतिकता के किसी भी स्तर पर सभ्य कहा जा सकता है? यह सवाल कहानी के हर दृश्य में मौजूद है—काम

करवाने से लेकर शव के साथ दूरी बनाए रखने तक। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 169-171)।

प्रेमचंद की दृष्टि में संवेदनहीनता केवल भावनात्मक रिक्तता नहीं, बल्कि एक सक्रिय सामाजिक अन्याय है। जब लोग किसी के साथ हो रहे अन्याय को देखकर भी चुप रहते हैं, या उसे "नियति" कहकर टाल देते हैं, तब वे भी उस अन्याय में सहभागी बन जाते हैं। 'सद्गति' यही चेतावनी देती है कि चुप्पी केवल तटस्थता नहीं, बल्कि एक नैतिक दोष है। दुखी के श्रम को "स्वाभाविक सेवा" मान लेना, और उसकी हालत बिगड़ते हुए भी उसे रोककर पानी या विश्राम न देना, इसी दोष का व्यावहारिक रूप है। कहानी यह भी दिखाती है कि अन्याय केवल मारने से नहीं होता; वह धीरे-धीरे सम्मान छीनकर, श्रम को मुफ्त बनाकर, और पीड़ित की आवाज को महत्वहीन बनाकर भी होता है। प्रेमचंद के अनुसार, समाज तभी न्यायसंगत और मानवीय बन सकता है जब वह अपने सबसे कमजोर नागरिक के जीवन को महत्व दे, उसकी पीड़ा को समझे, और उसके साथ संवेदना के साथ खड़ा हो। अन्यथा ऐसी संवेदनहीनता धीरे-धीरे पूरे सामाजिक ताने-बाने को खोखला कर देती है, क्योंकि जहाँ मनुष्य "मनुष्य" नहीं रहता, वहाँ नैतिकता भी टिक नहीं सकती। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 165-171)।

मानवीय गरिमा और वर्ग उत्पीड़न

प्रेमचंद की 'सद्गति' एक गहरी नैतिक चिंता का चित्रण है, जहाँ वर्गीय असमानता और जातिगत उत्पीड़न मानवीय गरिमा को रौंदते हैं। दुखी का पात्र ऐसे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिसकी पूरी जिंदगी श्रम और सेवा में बीतती है, लेकिन अंत में उसे न सम्मान मिलता है, न शांति। उसका श्रम किसी "दया" के बदले नहीं, बल्कि उसके अस्तित्व की आवश्यकता है, पर वही श्रम सामाजिक व्यवस्था में बिना मूल्य का बना दिया जाता है। कहानी दिखाती है कि कैसे वर्ग और जाति की सांठगांठ एक ऐसा समाज रचती है जहाँ श्रमिकों को केवल "काम करने वाले हाथ" माना जाता है, सोचने और सम्मान पाने के अधिकारी इंसान नहीं। दुखी की मृत्यु काम करते-करते हो जाती है, और समाज की ओर से इस पर कोई मानवीय प्रतिक्रिया नहीं आती—यही उत्पीड़न की चरम सीमा है। इस स्थिति में मानवीय गरिमा एक विलासिता बन जाती है जो केवल सत्ता, धन, या जातिगत श्रेष्ठता से जुड़े लोगों को सहज उपलब्ध होती है। प्रेमचंद इस विडंबना को तीखे यथार्थ में रखते हैं, ताकि पाठक यह समझे कि गरिमा का हनन केवल गरीबी का परिणाम नहीं, बल्कि व्यवस्था की नैतिक विफलता भी है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 165-171)।

मानवीय गरिमा की अवधारणा प्रेमचंद के लिए केवल वैचारिक नहीं, बल्कि व्यवहारिक भी है। जब किसी व्यक्ति को उसकी जाति या वर्ग के आधार पर अपवित्र, अछूत, या कमतर माना जाता है, तब समाज की नैतिकता पाखंड बनकर रह जाती है। 'सद्गति' में दुखी की मृत्यु के बाद जो सबसे बड़ा दृश्य उभरता है, वह है—शव के प्रति दूरी, जिम्मेदारी से बचना, और मानवीय कर्तव्य को “शुद्ध-अशुद्ध” के तर्क से ढँक देना। दुखी के अंतिम संस्कार की जिम्मेदारी से लोगों का बचना और उसे सम्मानजनक विदाई न मिलना संकेत करता है कि गरिमा का अधिकार केवल उसी को दिया जा रहा है जो प्रभुत्वशाली ढाँचे में फिट बैठता है। प्रेमचंद इस व्यवस्था के विरुद्ध करुणा और संवेदना को नैतिक हथियार की तरह रखते हैं। उनका साहित्य यह प्रतिपादित करता है कि जब तक समाज अपने सबसे वंचित व्यक्ति को गरिमा नहीं देगा, तब तक उसका कोई भी नैतिक या धार्मिक दावा खोखला रहेगा। दुखी की मृत्यु पाठक को इसी निष्कर्ष तक ले जाती है कि अगर एक मेहनतकश और विनम्र इंसान को मृत्यु के बाद भी सम्मान न मिले, तो वह समाज मानवता का नहीं, उत्पीड़न का यंत्र बनकर रह जाता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 169-171)।

धर्म और नैतिक पाखंड

प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' धर्म के नाम पर फैलाए गए नैतिक पाखंड की तीखी आलोचना करती है। यहाँ ब्राह्मण-पात्र उस धार्मिक व्यवस्था का प्रतिनिधि बनता है जो कर्मकांड को ही धर्म मान लेती है, लेकिन करुणा, दया और सह-अस्तित्व को “वैकल्पिक” समझती है। दुखी, जो दलित श्रमिक है, एक धार्मिक उद्देश्य से ब्राह्मण के पास आता है; उसका लक्ष्य अपने जीवन में शुभ कार्य के लिए मार्गदर्शन पाना है, पर उसे “भक्त” या “याचक” नहीं, “काम करने वाला” मान लिया जाता है। ब्राह्मण न तो दुखी की चिंता करता है, न उसकी शारीरिक सीमा का ध्यान रखता है; वह उसे अपने निजी कामों में लगाकर लगातार श्रम करवाता है। यह चित्र बताता है कि जब धर्म का केंद्र मनुष्य नहीं रहता, तब धर्म व्यवहार में कठोरता बन जाता है। दुखी का श्रम “सेवा” कहकर लिया जाता है, पर उसका मानवीय सम्मान नहीं दिया जाता। यही नैतिक पाखंड का आधार है—नियम तो हैं, पर मनुष्यता नहीं। प्रेमचंद संकेत देते हैं कि धर्म यदि मनुष्य को मनुष्य की तरह न देखे, तो वह धर्म नहीं रहता; वह रूढ़ियों का ऐसा ढाँचा बन जाता है जो नैतिकता की जगह भय और दूरी पैदा करता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 165-169)।

दुखी की मृत्यु के बाद यह पाखंड और स्पष्ट हो जाता है। ब्राह्मण की प्राथमिक चिंता दुखी के परिवार, उसकी बेटी के विवाह, या उसके अंतिम सम्मान की नहीं बनती;

चिंता यह बनती है कि उसके घर में “अपवित्रता” न फैल जाए और सामाजिक छवि पर आँच न आए। यह दृश्य बताता है कि कर्मकांड यदि संवेदना से कट जाए, तो वह नैतिक दायित्व निभाने के बजाय उससे बचने का रास्ता बन जाता है। दुखी का शव “मानव” नहीं, “अछूत” मानकर टाल दिया जाता है, और यह टालना धर्म के नाम पर किया जाता है। प्रेमचंद यहाँ पाठक से एक मौन प्रश्न पूछते हैं—क्या धर्म का अर्थ केवल विधि-विधान है, या उसमें करुणा, समानता और न्याय भी होना चाहिए? कहानी का उत्तर उपदेश में नहीं, दुखी की पीड़ा और उपेक्षा में छिपा है। संदेश साफ है: जो धर्म मानवीय मूल्यों से खाली हो जाए, वह जीवन नहीं देता; वह केवल भेद, भय, और सामाजिक दूरी को मजबूत करता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 169–171)।

3.2.1.3. जाति और नैतिक पहचान का संबंध

प्रेमचंद का साहित्य जाति को केवल सामाजिक समस्या नहीं मानता, बल्कि उसे नैतिक पहचान के निर्माण और विघटन के केंद्र में रखता है। उनके कथा-संसार में जाति जन्म का “ठप्पा” भर नहीं रहती; वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था बन जाती है जो व्यक्ति के आचरण, सामाजिक व्यवहार और आत्मबोध तक को नियंत्रित करने लगती है। ‘सद्गति’ में दुखी की पहचान पहले ही तय कर दी जाती है—उसकी उपस्थिति का मूल्य उसकी “मानवीय गरिमा” से नहीं, उसकी “उपयोगिता” से आँका जाता है। वह धार्मिक उद्देश्य लेकर आता है, पर जाति के कारण उसका उद्देश्य गौण हो जाता है और उसका शरीर श्रम के लिए उपलब्ध मान लिया जाता है। इसी कारण उसका श्रम अवैतनिक और अपमानजनक रूप ले लेता है। यहाँ जाति नैतिकता को भी वर्गीकृत कर देती है—ऊँचा वर्ग स्वयं को धर्म का संरक्षक मानता है, पर व्यवहार में करुणा और उत्तरदायित्व से खाली दिखता है; जबकि नीचे का वर्ग सहता है, चुप रहता है, और अपनी पीड़ा को भी “भाग्य” मानने लगता है। प्रेमचंद इस असमान ढाँचे को घटनाओं के जरिए दिखाते हैं, ताकि पाठक समझ सके कि जाति केवल सामाजिक दूरी नहीं, नैतिक दृष्टि का विकार भी है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 165–169)।

‘सद्गति’ में जाति-आधारित नैतिक विघटन का सबसे तीखा रूप तब दिखता है जब दुखी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के बाद भी उसके साथ व्यवहार जाति-आधारित ही रहता है—शव को छूने से बचना, जिम्मेदारी टालना, और “शुद्ध-अशुद्ध” के तर्क से मानवीय कर्तव्य को दबा देना। यह स्थिति बताती है कि जाति व्यक्ति की नैतिक पहचान को कैसे सीमित कर देती है: दुखी की ईमानदारी, परिश्रम और विनम्रता उसके

पक्ष में खड़ी नहीं हो पाती, क्योंकि व्यवस्था उसे पहले ही “कमतर” मान चुकी है। यहाँ ब्राह्मण का जातिगत अहंकार उसे नैतिक दृष्टि से अंधा बनाता है, और समाज की निष्क्रियता इस अन्याय को “स्वीकार्य” बनाती है। इस प्रक्रिया में जाति एक दीवार बन जाती है, जो इंसान को उसके अधिकार, गरिमा और न्याय से काट देती है। प्रेमचंद यही दिखाते हैं कि जब जाति मनुष्य की नैतिक पहचान तय करने लगे, तब समाज नैतिक रूप से पंगु हो जाता है—वहाँ नियम बचते हैं, पर विवेक मर जाता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 169-171)।

प्रेमचंद की दृष्टि में नैतिक पहचान जाति से ऊपर होती है, लेकिन सामाजिक ढाँचा उसे बार-बार नीचे खींच लाता है। ‘सद्गति’ का दुखी नैतिक रूप से कमजोर नहीं है; वह अपने काम और आस्था में सच्चा है। फिर भी वही व्यक्ति व्यवस्था में सबसे असुरक्षित है, क्योंकि उसकी जाति उसे “सम्मान के अधिकार” से बाहर कर देती है। यह विरोधाभास प्रेमचंद के नैतिक विमर्श की रीढ़ है—समाज जिनको “नीचा” मानता है, उनके भीतर भी मनुष्यता और नैतिकता होती है; और जिनको “ऊँचा” माना जाता है, उनके भीतर नैतिक रिक्तता भी हो सकती है। प्रेमचंद इसी उलटबाँसी से पाठक को सोचने पर मजबूर करते हैं कि नैतिकता का आधार जन्म नहीं हो सकता। नैतिकता का आधार मनुष्य की संवेदना, विवेक और न्याय-बोध होना चाहिए। ‘सद्गति’ इस प्रश्न का उत्तर कथा-यथार्थ से देती है—जाति अगर नैतिक पहचान तय करेगी, तो मनुष्य की गरिमा सबसे पहले टूटेगी, और फिर समाज की नैतिकता भी। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 165-171)।

3.2.1.4. सामुदायिक नैतिकता और सामाजिक नियंत्रण

प्रेमचंद के कथा-संसार में सामुदायिक नैतिकता एक ऐसी संस्था की तरह उभरती है, जो मान्यताओं और आचरण को दिशा देती है। यह नैतिकता अक्सर व्यक्तिगत विवेक से कम, और सामूहिक स्वीकृति से अधिक संचालित होती है। यहाँ सही-गलत का निर्णय समुदाय की परंपराओं और सत्ता-ढाँचे से तय होता है। ‘पंच परमेश्वर’ में यह नैतिकता पंचायत के माध्यम से काम करती है। वहीं ‘सद्गति’, ‘कफन’, ‘ठाकुर का कुआँ’, और ‘बड़े घर की बेटी’ में यह परिवार, जाति, और वर्ग के दबाव के रूप में दिखती है। प्रेमचंद बताते हैं कि जब नैतिकता भीतर की आवाज़ से नहीं चलती, तब वह दमनकारी बन सकती है। वह पक्षपात कर सकती है। वह संवेदना को कमजोर कर देती है। सामुदायिक नैतिकता में कई बार वही “सही” माना जाता है, जो प्रभुत्वशाली वर्ग के हित में हो। जो व्यक्ति इसका विरोध करता है, उसे बहिष्कार झेलना पड़ता है। उसे अपमान सहना पड़ता है। उसे अपराधबोध तक दिया जाता है। यही

नियंत्रण समाज में एक अनकहा डर बनाता है। कई बार व्यक्ति सही होकर भी गलत ठहरा दिया जाता है। कारण यह होता है कि उसने बने-बनाए नैतिक ढाँचे को चुनौती दी होती है। प्रेमचंद इसे केवल आलोचना नहीं बनाते। वे इसे सामाजिक यथार्थ की सघन तस्वीर की तरह रखते हैं (रंजन, एस., 2019, पृ. 88)।

यह सामाजिक नियंत्रण प्रेमचंद की कहानियों में इस रूप में उभरता है कि वह व्यक्ति की स्वतंत्रता और निर्णय-क्षमता को दबा देता है। 'पंच परमेश्वर' में अलगू का निर्णय नैतिक साहस का प्रतीक है। पर यह साहस अचानक नहीं आता। वह पंच के रूप में 'परमेश्वर' का दायित्व महसूस करता है। यानी समुदाय का प्रतिनिधि बनकर ही वह निष्पक्ष हो पाता है। दूसरी ओर, 'कफन' में घीसू और माधव का व्यवहार सामुदायिक नैतिकता से टकराता है। पर उनका "अपराध" केवल निजी पतन नहीं है। वह सामाजिक उपेक्षा, भूख, और हताशा की पृष्ठभूमि से भी जुड़ा है। 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी को सामुदायिक मर्यादा निभाने का दबाव झेलना पड़ता है। कई बार उसे अपने आत्मसम्मान को रोकना पड़ता है, ताकि घर की इज्जत बची रहे। प्रेमचंद संकेत देते हैं कि सामुदायिक नैतिकता तब तक नैतिक शक्ति नहीं बनती, जब तक उसमें करुणा, समता, और विवेक न हों। वरना वह केवल सामाजिक दबाव बन जाती है। यदि यह दबाव मानवता को दबा दे, तो वह नैतिकता नहीं रहती। वह सामाजिक यंत्रणा बन जाती है। इसी कारण प्रेमचंद पाठक को सोचने पर मजबूर करते हैं। क्या सामूहिक नैतिकता सच में गरिमा बचाती है? या वह परंपरा और सत्ता की सेवा करती है? यह प्रश्न आज भी उतना ही जीवित है (तिवारी, एल., 2020, पृ. 93)।

3.2.2. गरीबी और सामाजिक अन्याय की खोज

प्रेमचंद का कथा-साहित्य सामाजिक यथार्थ का जीवंत दस्तावेज है। इसमें गरीबी और सामाजिक अन्याय के चित्र गहरी संवेदना से उभरते हैं। उनकी कहानियों में गरीबी केवल आर्थिक स्थिति नहीं रहती। वह सामाजिक अपमान, उपेक्षा, और असमानता का प्रतीक बन जाती है। 'कफन', 'पूँस की रात', और 'सद्गति' जैसी रचनाओं में यह साफ दिखता है। गरीब वर्ग केवल संसाधनों से वंचित नहीं होता। उसकी पीड़ा भी समाज अक्सर नजरअंदाज कर देता है। प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि गरीबी को केवल आर्थिक समस्या मानने से समाधान अधूरा रह जाता है। वे गरीबी को एक नैतिक चुनौती बनाकर रखते हैं। यह चुनौती समाज की आत्मा की परीक्षा लेती है। क्या हम वंचितों के प्रति संवेदनशील हैं? या हम उनके संघर्ष को "आलस्य" कहकर टाल देते हैं? कई बार हम उसे "कर्म का फल" बताकर भी हल्का कर देते हैं (सहगल, डी., 2018, पृ. 101)।

‘कफन’ में घीसू और माधव के माध्यम से प्रेमचंद तीखा प्रश्न उठाते हैं। क्या समाज ने गरीबी को इतना सामान्य मान लिया है कि मृत्यु भी अर्थहीन हो गई है? उनके पात्र भावनाशून्य नहीं हैं। लेकिन भूख, अपमान, और लगातार उपेक्षा ने उनकी संवेदना कुंद कर दी है। यह कुंदपन केवल निजी कमजोरी नहीं है। यह सामूहिक सामाजिक प्रतिक्रिया का भी परिणाम है। यही प्रतिक्रिया गरीब को “इंसान” से “बोझ” बना देती है। प्रेमचंद की दृष्टि में यह नैतिक पतन का भयावह रूप है। गरीब की भूख को “आदत” कहा जाता है। गरीब की बेबसी को “भाग्य” कहकर टाल दिया जाता है। ‘पूस की रात’ में हल्कू का खेत की रखवाली छोड़ देना भी इसी संदर्भ में आता है। वह सिर्फ एक व्यक्ति का हार मानना नहीं है। वह उस व्यवस्था की विफलता है, जो उसे न्यूनतम गरिमा और सुरक्षा भी नहीं दे पाती (भटनागर, के., 2019, पृ. 93)।

3.2.2.1. ‘कफन’ में गरीबी और नैतिक पतन

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी ‘कफन’ हिंदी साहित्य में गरीबी, असहायता और नैतिक विघटन की सबसे तीव्र और विवादस्पद अभिव्यक्तियों में से एक है। यह कहानी दो पात्रों—घीसू और माधव—के माध्यम से उस सामाजिक स्थिति को उजागर करती है, जहाँ निरंतर शोषण, उपेक्षा और अभाव ने व्यक्ति की संवेदना को लगभग मृतप्राय बना दिया है। कहानी की शुरुआत में माधव की पत्नी बुधिया प्रसव-वेदना से तड़पती है, जबकि बाप-बेटा बाहर अलाव के सामने बैठे रहते हैं; यह दृश्य बताता है कि गरीबी और अभ्यस्त अभाव ने मनुष्य की प्रतिक्रिया-क्षमता को कैसे कुंद कर दिया है। बुधिया के मरने के बाद पिता-पुत्र उसके ‘कफन’ और दाह-संस्कार के लिए मदद माँगते हैं, पर अंततः उसी धन से शराब पीते हैं; यह केवल व्यक्तिगत पतन नहीं, बल्कि उस व्यवस्था पर प्रहार है जिसने गरीबी को इतना स्थायी बना दिया कि शोक और मर्यादा भी कमजोर पड़ जाएँ। प्रेमचंद यहाँ गरीबी को सिर्फ आर्थिक तंगी नहीं, बल्कि एक सामाजिक और नैतिक अवस्था के रूप में रखते हैं, जहाँ भूख, बेबसी और अपमान इंसान को इस सीमा तक तोड़ देते हैं कि वह मृत्यु को भी लगभग “सामान्य घटना” की तरह स्वीकार करने लगता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 16–21)

घीसू और माधव का व्यवहार ऊपर से जितना क्रूर लगता है, उतना ही वह प्रेमचंद की दृष्टि में उस समाज के प्रति एक कड़वी प्रतिक्रिया भी है, जो उन्हें लगातार हाशिये पर रखता आया है। उनका ‘कफन’ न खरीदना एक प्रतीक बन जाता है—उस व्यवस्था का, जो मरने वाले के लिए औपचारिक सम्मान की अपेक्षा करती है, लेकिन जीते हुए इंसान को रोटी, काम और गरिमा नहीं देती। कहानी में वे यह तर्क देते

दिखते हैं कि 'कफन' लगाने से क्या मिलता? आखिर जल ही तो जाता" और इसी बहाने वे सामाजिक नैतिकता की खोखली परत खोल देते हैं। यहाँ प्रेमचंद पाठक को सोचने पर मजबूर करते हैं कि नैतिकता केवल मरणोत्तर कर्मकांडों से तय होगी, या जीवित व्यक्ति के अधिकारों और मानवीय गरिमा से। शराबखाने के प्रसंग में उनकी बातचीत, समाज की संवेदनहीनता पर व्यंग्य बन जाती है—क्योंकि समाज 'कफन' पर सवाल करता है, पर उस भूख पर नहीं, जिसने जीवन-भर उन्हें भीतर से जला दिया। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 19-21)

'कफन' की शक्ति इस बात में है कि वह नैतिकता की पारंपरिक परिभाषाओं को सीधे चुनौती देती है। प्रेमचंद यह नहीं कहते कि घीसू और माधव सही हैं, लेकिन वे यह जरूर दिखाते हैं कि उन्हें पूरी तरह "सिर्फ अपराधी" कह देना भी आसान नहीं। वे उन सामाजिक, आर्थिक और मानसिक परिस्थितियों की उपज हैं, जिन्हें एक "सभ्य समाज" लंबे समय से अनदेखा करता रहा है। कहानी यह सवाल उठाती है कि क्या किसी व्यक्ति के आचरण को उसके संदर्भों से काटकर नैतिक या अमानवीय ठहराया जा सकता है। प्रेमचंद का संकेत साफ है—नैतिकता केवल नियमों की सूची नहीं; वह संवेदना, परिस्थिति और जीवन की वास्तविकताओं की समझ से बनती है। इसी कारण 'कफन' गरीबी की चरम परिणति का दस्तावेज बन जाती है और साथ ही उस समाज की विफलता का भी, जो मृत्यु पर औपचारिक आँसू तो बहाता है, पर जीवन की पीड़ा को समझना नहीं चाहता। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 16-21)

गरीबी और संवेदनहीनता

प्रेमचंद की 'कफन' में गरीबी का चित्रण केवल आर्थिक कठिनाई के रूप में नहीं है, बल्कि उस भावनात्मक शून्यता के रूप में भी है जो लगातार अभाव, अपमान और असहायता से पैदा होती है। घीसू और माधव की संवेदनाएँ किसी एक दिन में नहीं मरतीं। वे एक लंबी सामाजिक प्रक्रिया में धीरे-धीरे क्षीण होती जाती हैं। यह प्रक्रिया भूख, उपेक्षा, और असमानता से बनती है। जब कोई व्यक्ति जीवन भर मेहनत करके भी सम्मान नहीं पाता, तब भीतर कठोरता जमने लगती है। कहानी में बुधिया प्रसव-वेदना से तड़पती रहती है। बाप-बेटा बाहर बैठे रहते हैं। यह दृश्य बताता है कि असहायता कब संवेदना को बोझ बना देती है। बुधिया की मृत्यु के बाद भी वे शोक का सामान्य रूप नहीं निभाते। वे 'कफन' के नाम पर चंदा माँगते हैं। फिर उसी धन से शराब पीते हैं। यह केवल नैतिक पतन नहीं है। यह उस संवेदनहीनता की उपज है जो गरीबी से जन्म लेती है। यहाँ भावनाएँ "विलास" जैसी बन जाती हैं। अस्तित्व की लड़ाई कई

मानवीय मूल्यों को निगल लेती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 16-21)

प्रेमचंद यह भी स्पष्ट करते हैं कि घीसू और माधव जन्म से असंवेदनशील नहीं हैं। उन्हें उस स्थिति तक पहुँचाया गया है जहाँ संवेदना अव्यवहारिक लगने लगती है। यदि वे हर दुःख पर टूटते, तो शायद जी नहीं पाते। इसलिए वे अपने लिए एक नया "जीवन-तंत्र" बना लेते हैं। उसमें उदासीनता, मौन, और पलायन आत्मरक्षा की तरह काम करते हैं। कहानी पाठक को कठोर लगती है। पर उसका यथार्थ और भी कठोर है। गरीबी केवल जेब खाली नहीं करती। वह धीरे-धीरे मन और सोच को भी खाली करती है। घीसू-माधव का व्यवहार उस सामूहिक विफलता का संकेत है, जहाँ गरीब को बस सहना सिखाया गया। प्रतिक्रिया करने का साधन नहीं दिया गया। प्रेमचंद के लिए यह संवेदनहीनता एक त्रासदी है। पर वह समझ में आने वाली त्रासदी भी है। यह हमारे समाज का ऐसा दर्पण है, जिसमें देखने पर शर्म भी आती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 18-21)

स्वार्थ और नैतिक विघटन

प्रेमचंद की 'कफन' में स्वार्थ किसी व्यक्ति की अकेली कमजोरी नहीं है। यह उन परिस्थितियों का परिणाम है, जिन्होंने नैतिकता की धारणाएँ उलट दी हैं। घीसू और माधव का व्यवहार—'कफन' खरीदने के बजाय शराब पीना—घहली नजर में क्रूर लगता है। पर प्रेमचंद इसके पीछे की परतें खोलते हैं। लगातार भूख, अपमान, और बेबसी ने उनके भीतर एक कड़वा निष्कर्ष भर दिया है। उन्हें लगता है कि समाज कभी उनके लिए न्यायसंगत नहीं रहा। इसलिए वे तात्कालिक सुख को प्राथमिकता देने लगते हैं। कहानी में 'कफन' पर बहस भी आती है। वे कहते हैं कि 'कफन' जल ही जाएगा। बात कड़वी है, पर व्यंग्य भी है। यह व्यंग्य उस समाज पर है जो "मर्यादा" का शोर करता है। पर जीवित व्यक्ति को रोटी नहीं देता। यही कारण है कि उनका वाक्य, "कम से कम मरने के बाद तो चैन से रहने दो," हास्य नहीं रहता। वह टूटे हुए भरोसे की आवाज बन जाता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 19-21)

यह स्वार्थ प्रेमचंद के यहाँ पूरी तरह "जन्मजात दोष" नहीं है। यह परिस्थिति-जन्य है। जब व्यक्ति का श्रम उपेक्षित हो, दुःख अस्वीकार हो, और गरिमा कुचली जाए, तब नैतिक पलायन शुरू होता है। घीसू और माधव की स्वार्थपरता केवल अपने लिए नहीं है। वह उस पूरे मूल्य-तंत्र से विमुखता का संकेत है, जिसने उनके जैसे लोगों को न्याय नहीं दिया। प्रेमचंद यहाँ यह संकेत भी रखते हैं कि जब समाज न्याय नहीं देता, तब व्यक्ति न्याय की परिभाषा बदल देता है। इसलिए स्वार्थ उनके पात्रों में एक तरह

का मौन विद्रोह भी बन जाता है। वह विद्रोह चिल्लाता नहीं। वह चुपचाप सामाजिक नियमों को तोड़ देता है। इस कहानी में नैतिक विघटन समाज की देन के रूप में उभरता है। बाहर से समाज नैतिक दिखता है। भीतर से वह खोखला है। घीसू और माधव उसी समाज को आईना दिखाते हैं। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 17-21)

सामाजिक उपेक्षा और मानवीय मूल्य

प्रेमचंद की 'कफन' केवल दो पात्रों की कहानी नहीं है। यह उस समाज की कहानी है जो निर्धनों और श्रमिकों को मनुष्य की तरह स्वीकार नहीं करता। घीसू और माधव इसी सामाजिक उपेक्षा की उपज हैं। वे आर्थिक रूप से विपन्न हैं। पर उससे भी अधिक, वे सामाजिक रूप से परित्यक्त हैं। कोई उन्हें आदर नहीं देता। कोई उनकी समस्या नहीं सुनता। कोई उनकी सहायता को आगे नहीं आता। ऐसी स्थिति में वे न तो अपने दुःख को खुलकर व्यक्त करते हैं। न ही वे संवेदना की आशा रखते हैं। यह उपेक्षा उनके जीवन को कठिन बनाती है। साथ ही उनके नैतिक ढाँचे को भी तोड़ती है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि लगातार हाशिये पर रखा गया वर्ग समाज की सामान्य संवेदनाओं से कटने लगता है। यही कटाव मानवीय मूल्यों के विघटन की शुरुआत बनता है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 16-21)

कहानी में सहानुभूति, करुणा, और जिम्मेदारी जैसे मूल्य समाज के कथन में तो मौजूद हैं। व्यवहार में वे लगभग अनुपस्थित हैं। समाज घीसू और माधव को देखकर "अनैतिक" कह देता है। पर उनके हालात पर ठहरकर नहीं सोचता। प्रेमचंद इसी प्रवृत्ति पर चोट करते हैं। शोषण करने वाले वर्ग को नैतिकता सिखाने का अधिकार मिल जाता है। शोषित वर्ग के लिए अवसर और सुधार की जगह बचती ही नहीं। मानवीय मूल्य तभी जीवित रहते हैं, जब वे व्यवहार में दिखें। केवल सिद्धांतों से वे बचते नहीं। 'कफन' का समाज सिद्धांतों से भरा है। पर व्यवहार में खोखला है। इसी कारण मृतका की पीड़ा बड़ा मुद्दा नहीं बनती। पर 'कफन' न खरीदने पर नैतिकता का शोर होता है। प्रेमचंद इस विडंबना को तीखे व्यंग्य में बदलते हैं। समाज शोक का स्वरूप तय करता है। पर शोक के कारणों को अनदेखा करता है। यही उपेक्षा उस बिंदु तक पहुँचती है, जहाँ मानवता भी मरती है और उसकी स्मृति भी धुंधली पड़ जाती है। (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 19-21)

आर्थिक संकट और नैतिक द्वंद्व

प्रेमचंद की 'कफन' कहानी में आर्थिक संकट केवल जीविकोपार्जन की कठिनाई नहीं है, बल्कि वह उस सामाजिक व्यवस्था की विफलता का संकेत है जो व्यक्ति को न तो गरिमा से जीने का अवसर देती है और न ही नैतिकता से बंधे रहने की सहज क्षमता। घीसू और माधव जिस निर्धनता में जीते हैं, वह सिर्फ "गरीबी" नहीं, बल्कि एक दमनकारी ढाँचा है, जहाँ मेहनतकश को अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए भी दूसरों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब पेट की आग और रोज़ की बेबसी स्थायी हो जाती है, तब विवेक और नैतिकता आपस में टकराने लगते हैं। 'कफन' के लिए पैसे जुटाकर भी उस धन को शराब में खर्च कर देना, इसी टकराव का विकृत रूप है—जो बताता है कि गरीबी कई बार व्यक्ति से "सही" चुनने की ताकत ही छीन लेती है (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 19-22)।

प्रेमचंद इस नैतिक संकट को इतना ठोस और दृश्यात्मक बना देते हैं कि पाठक केवल घीसू और माधव को दोष नहीं दे सकता; उसे उस समाज को भी सवालियों के घेरे में रखना पड़ता है जिसने उन्हें इस मानसिकता तक पहुँचाया। कहानी यह संकेत देती है कि नैतिकता सिर्फ नियमों का नाम नहीं है; वह तब तक स्थिर नहीं रह सकती जब तक मूलभूत जरूरतें पूरी न हों। जब जीवन असुरक्षित हो, रोज़ भूख और अपमान सामने हो, तब "नैतिकता" कई बार एक ऐसी चीज़ लगने लगती है जो केवल सुविधा वाले लोगों के पास होती है। 'कफन' का बड़ा द्वंद्व यही है—क्या गरीब के सामने नैतिकता और आत्म-संरक्षण के बीच जो चुनाव दिखता है, वह सच में "चयन" है, या मजबूरी का दूसरा नाम? प्रेमचंद इस प्रश्न को भावुक उपदेश से नहीं, बल्कि यथार्थ के कठोर अनुभव से सामने रखते हैं (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ' पृ. 21-23)।

3.2.2.2. 'पूस की रात' में गरीबी और सामाजिक अन्याय

'पूस की रात' प्रेमचंद की उन प्रतिनिधि कहानियों में है, जहाँ ग्रामीण जीवन की कठोर वास्तविकता अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत होती है। यह कथा केवल एक किसान हल्कू की व्यक्तिगत दुविधा नहीं है, बल्कि भारतीय कृषक जीवन की संरचनात्मक समस्याओं का दर्पण है। गरीबी यहाँ किसी एक व्यक्ति की असफलता नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था की उपज है। हल्कू का जीवन निरंतर श्रम, अभाव और असुरक्षा से घिरा हुआ है। उसके पास संसाधन सीमित हैं, पर जिम्मेदारियाँ असीमित। इस प्रकार कहानी आर्थिक अभाव को एक व्यापक सामाजिक संकट के रूप में प्रस्तुत करती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-65)।

कहानी में सामाजिक अन्याय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में उपस्थित है। साहूकार, लगान और वर्गीय दबाव हल्कू की स्थिति को और जटिल बनाते हैं। वह अपनी मेहनत के बावजूद कर्ज के बोझ से मुक्त नहीं हो पाता। यहाँ किसान का श्रम उसका स्वत्व नहीं, बल्कि शोषण का माध्यम बन जाता है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि समाज की संरचना ऐसी है, जहाँ किसान उत्पादन करता है, पर लाभ उससे दूर रहता है। यह अन्याय केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक भी है। हल्कू की विवशता इस असंतुलन को उजागर करती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-65)।

प्राकृतिक परिस्थितियाँ इस सामाजिक अन्याय को और तीव्र कर देती हैं। ठंड, भूख और संसाधनों की कमी हल्कू के अस्तित्व को चुनौती देती है। वह खेत की रखवाली करता है, पर अपने शरीर की रक्षा नहीं कर पाता। यह दृश्य किसान की असहायता का प्रतीक है। कहानी का अंत किसी समाधान की ओर नहीं ले जाता, बल्कि विडंबना की ओर संकेत करता है। हल्कू का खेत नष्ट हो जाता है, पर वह मानसिक रूप से थककर एक प्रकार की निष्क्रिय स्वीकृति में चला जाता है। प्रेमचंद यहाँ यह स्थापित करते हैं कि जब व्यक्ति लंबे समय तक अन्याय सहता है, तो उसकी प्रतिरोध-शक्ति क्षीण हो जाती है। यही इस कथा की गहरी त्रासदी है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 66-68)।

अंततः 'पूस की रात' यह स्पष्ट करती है कि गरीबी और सामाजिक अन्याय एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। किसान की विफलता उसका व्यक्तिगत दोष नहीं, बल्कि व्यवस्था की विफलता है। प्रेमचंद का यथार्थवाद इस कहानी में अपने चरम पर दिखाई देता है। वे समाधान नहीं देते, बल्कि समस्या की तीव्रता को सामने रखते हैं। यही इस कहानी की शक्ति है—यह पाठक को असुविधा में डालती है और उसे सामाजिक संरचना पर पुनर्विचार के लिए बाध्य करती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-68)।

गरीबी और जीविका का संघर्ष

'पूस की रात' में गरीबी केवल आर्थिक स्थिति नहीं है, बल्कि जीवन की निरंतर संघर्षमय अवस्था है। हल्कू का दैनिक जीवन जीविका की चिंता से घिरा हुआ है। वह खेत की रखवाली करता है, परंतु उसके पास पर्याप्त वस्त्र तक नहीं हैं। उसकी पत्नी मुन्नी के साथ संवाद में स्पष्ट होता है कि घर की प्राथमिकताएँ भी संघर्ष से तय होती हैं—कंबल खरीदा जाए या कर्ज चुकाया जाए। यह दुविधा किसान की वास्तविक परिस्थिति को सामने लाती है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि गरीबी व्यक्ति को ऐसे

निर्णय लेने पर बाध्य करती है, जहाँ प्रत्येक विकल्प में हानि है। जीविका का संघर्ष केवल शारीरिक श्रम तक सीमित नहीं, बल्कि मानसिक तनाव से भी जुड़ा है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-65)।

किसान का श्रम निरंतर है, परंतु उसका प्रतिफल अस्थिर। हल्कू दिन भर मेहनत करता है, फिर भी उसे सुरक्षा या संतोष नहीं मिलता। रात की ठंड में खेत की रखवाली करते हुए वह अपने श्रम की विडंबना को जीता है। उसकी मेहनत का उद्देश्य फसल बचाना है, ताकि भविष्य सुरक्षित हो सके। पर वर्तमान इतना कठोर है कि भविष्य की आशा क्षीण हो जाती है। प्रेमचंद इस परिस्थिति को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। वे यह स्पष्ट करते हैं कि जीविका का संघर्ष व्यक्ति को संवेदनात्मक थकान तक पहुँचा देता है। जब व्यक्ति लगातार अभाव में जीता है, तब उसका प्रतिरोध भी कमजोर पड़ने लगता है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 66-68)।

अंततः कहानी यह स्थापित करती है कि गरीबी केवल संसाधनों की कमी नहीं, बल्कि अवसरों की भी कमी है। हल्कू के पास विकल्प सीमित हैं। वह परिस्थितियों का बंदी है। उसकी स्थिति किसी व्यक्तिगत आलस्य या असफलता का परिणाम नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक संरचना का प्रभाव है। प्रेमचंद इस संघर्ष को सामान्य बनाकर नहीं दिखाते, बल्कि उसे मानवीय त्रासदी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। 'पूस की रात' में जीविका की लड़ाई व्यक्ति की गरिमा को भी चुनौती देती है। इस प्रकार कहानी यह संदेश देती है कि जब तक आर्थिक संरचना न्यायपूर्ण नहीं होगी, तब तक किसान का संघर्ष समाप्त नहीं होगा (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-68)।

ठंड, भूख और मानवीय असहायता

'पूस की रात' में ठंड केवल मौसम नहीं है, बल्कि मानवीय पीड़ा का प्रतीक है। हल्कू खेत की रखवाली करते हुए कड़ाके की ठंड से जूझता है। उसके पास पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं, न ही आग जलाने के लिए पर्याप्त साधन। प्रेमचंद यहाँ प्रकृति को निष्पक्ष नहीं, बल्कि कठोर शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ठंड का प्रत्येक झोंका किसान की असहायता को उजागर करता है। यह दृश्य केवल शारीरिक कष्ट का वर्णन नहीं, बल्कि उस सामाजिक स्थिति का चित्रण है, जहाँ व्यक्ति प्राकृतिक आपदा से बचने के लिए भी संसाधनहीन है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 65-67)।

'पूस की रात' कहानी में आर्थिक अभाव के कारण हल्कू और मुन्नी की आवश्यकताएँ अधूरी रहती हैं। वे भोजन और वस्त्र जैसे मूलभूत साधनों के लिए भी

संघर्ष करते हैं। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि भूख व्यक्ति की संवेदनशीलता और निर्णय क्षमता को प्रभावित करती है। जब शरीर पीड़ा में हो, तब आदर्श या नैतिकता गौण हो जाते हैं। हल्कू का खेत की रखवाली छोड़ देना केवल आलस्य नहीं, बल्कि शारीरिक और मानसिक थकान का परिणाम है। यहाँ भूख और ठंड मिलकर एक ऐसी स्थिति बनाते हैं, जहाँ प्रतिरोध की क्षमता समाप्त होने लगती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां, पृ. 66-68)।

मानवीय असहायता का सबसे मार्मिक पक्ष कहानी के अंत में दिखाई देता है। हल्कू अपने कुत्ते के साथ आग के पास सिमट जाता है और फसल को जानवरों के हवाले छोड़ देता है। यह दृश्य उसकी हार का प्रतीक है, पर साथ ही एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक मुक्ति भी है। वह समझ चुका है कि उसकी मेहनत का परिणाम सुनिश्चित नहीं। प्रेमचंद यहाँ यह संकेत देते हैं कि निरंतर अभाव व्यक्ति को निष्क्रिय स्वीकृति की ओर ले जा सकता है। असहायता केवल परिस्थिति का परिणाम नहीं, बल्कि व्यवस्था की विफलता का भी द्योतक है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां, पृ. 67-68)।

अंततः 'पूस की रात' यह स्पष्ट करती है कि प्राकृतिक कठोरता और संसाधनों की कमी मिलकर किसान को ऐसे मोड़ पर ले आती हैं, जहाँ उसका आत्मबल टूटने लगता है। ठंड और भूख केवल भौतिक कष्ट नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता के प्रतीक हैं। प्रेमचंद का यथार्थवाद यहाँ अपनी तीव्रता पर है। वे दिखाते हैं कि जब तक समाज आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को सुरक्षा नहीं देगा, तब तक ऐसी असहायता बनी रहेगी। इस प्रकार कहानी मानवीय संवेदना को झकझोरती है और सामाजिक जिम्मेदारी की ओर संकेत करती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां, पृ. 64-68)।

सामाजिक संरचना और किसान शोषण

• सामाजिक संरचना और किसान शोषण

'पूस की रात' में किसान शोषण प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता, पर उसकी छाया पूरे कथानक पर फैली रहती है। हल्कू का जीवन साहूकारी, लगान और कर्ज के दबाव से संचालित है। वह अपनी मेहनत से अधिक उस व्यवस्था का बंदी है, जो किसान को उत्पादन का साधन मानती है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि आर्थिक संरचना ऐसी है, जहाँ किसान श्रम करता है, पर लाभ का स्वामी नहीं बनता। उसका श्रम ऋण चुकाने और सामाजिक दायित्व निभाने में समाप्त हो जाता है। इस प्रकार कहानी

किसान की विवशता को एक व्यापक सामाजिक ढाँचे से जोड़ती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-65)।

सामाजिक संरचना में वर्गीय असमानता स्पष्ट है। साहूकार और लगान का दबाव प्रत्यक्ष रूप से किसान के निर्णयों को नियंत्रित करता है। हल्कू कंबल खरीदना चाहता है, पर उसे कर्ज चुकाना अधिक आवश्यक लगता है। यह स्थिति दिखाती है कि किसान की प्राथमिकताएँ भी स्वतंत्र नहीं हैं। वह सामाजिक दबाव और आर्थिक निर्भरता के कारण अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से समझौता करता है। प्रेमचंद इस स्थिति को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। वे यह स्थापित करते हैं कि शोषण केवल प्रत्यक्ष अत्याचार नहीं, बल्कि संरचनात्मक असमानता भी है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-65)।

अंततः कहानी यह स्पष्ट करती है कि किसान की विफलता उसका व्यक्तिगत दोष नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है। हल्कू का खेत उजड़ जाना केवल प्राकृतिक कारण नहीं, बल्कि उस व्यवस्था की विडंबना है, जो उसे सुरक्षा नहीं दे पाती। प्रेमचंद किसान जीवन की त्रासदी को भावुकता के बिना प्रस्तुत करते हैं। वे पाठक को यह सोचने पर बाध्य करते हैं कि जब तक सामाजिक और आर्थिक ढाँचा न्यायपूर्ण नहीं होगा, तब तक किसान का श्रम शोषण का साधन बना रहेगा। इस प्रकार 'पूस की रात' सामाजिक संरचना की आलोचना करते हुए किसान की पीड़ा को व्यापक संदर्भ में स्थापित करती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 66-68)।

आशा, विफलता और नैतिक विडंबना

'पूस की रात' में आशा एक सूक्ष्म किंतु महत्वपूर्ण तत्व है। हल्कू अपनी फसल को बचाने के लिए ठंड में खेत की रखवाली करता है। उसके भीतर यह विश्वास है कि यदि फसल सुरक्षित रही, तो भविष्य कुछ बेहतर हो सकता है। यही आशा उसे कठोर परिस्थितियों में भी डटे रहने की शक्ति देती है। प्रेमचंद यहाँ किसान की मनोवैज्ञानिक स्थिति को गहराई से समझते हैं। आर्थिक अभाव और सामाजिक दबाव के बावजूद आशा ही उसे श्रम के लिए प्रेरित करती है। परंतु यह आशा अत्यंत नाजुक है, क्योंकि वह अस्थिर परिस्थितियों पर आधारित है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-66)।

विफलता कहानी का अनिवार्य मोड़ है। कड़ाके की ठंड और शारीरिक पीड़ा के आगे हल्कू की शक्ति टूट जाती है। वह आग के पास सिमट जाता है और खेत को जानवरों के हवाले छोड़ देता है। यह निर्णय उसकी कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी सीमा

का संकेत है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब व्यक्ति लगातार संघर्ष करता है और उसे प्रतिफल नहीं मिलता, तब उसकी इच्छाशक्ति क्षीण हो जाती है। फसल का नष्ट होना केवल आर्थिक क्षति नहीं, बल्कि आशा का टूटना भी है। यह विफलता व्यक्तिगत असफलता नहीं, बल्कि संरचनात्मक अन्याय का परिणाम है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां, पृ. 66-68)।

कहानी की नैतिक विडंबना इसी विफलता में निहित है। हल्कू की फसल नष्ट हो जाती है, पर वह भीतर से एक प्रकार की राहत भी अनुभव करता है कि अब उसे ठंड में जागना नहीं पड़ेगा। यह स्थिति त्रासदी और व्यंग्य दोनों का मिश्रण है। प्रेमचंद यहाँ यह संकेत देते हैं कि जब जीवन लगातार पीड़ा से भरा हो, तब हानि भी कभी-कभी मुक्ति का अनुभव दे सकती है। यह विडंबना किसान जीवन की गहरी असमानता को उजागर करती है। आशा और विफलता के इस द्वंद्व में प्रेमचंद सामाजिक व्यवस्था की कठोरता को सामने रखते हैं। अंततः 'पूस की रात' यह स्थापित करती है कि जब तक सामाजिक संरचना न्यायपूर्ण नहीं होगी, तब तक आशा बार-बार विफलता में बदलती रहेगी, और यही विडंबना किसान जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां, पृ. 67-68)।

3.2.2.3. वर्ग-भेद और नैतिक दृष्टिकोण

प्रेमचंद के साहित्य में वर्ग-भेद केवल आर्थिक असमानता का विषय नहीं है, बल्कि यह नैतिक मानकों की असमानता का भी प्रश्न है। वे बार-बार यह दिखाते हैं कि समाज में नैतिकता का आकलन निष्पक्ष आधार पर नहीं, बल्कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति और वर्गीय पहचान के आधार पर किया जाता है। 'कफन' और 'पंच परमेश्वर' जैसी कहानियों में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि समाज के विभिन्न वर्गों के लिए नैतिक अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न रूप में निर्मित की जाती हैं। 'कफन' में घीसू और माधव अत्यंत निर्धन, सामाजिक रूप से उपेक्षित और श्रम से विमुख पात्र हैं। समाज उन्हें पहले से ही निकम्मा और असंवेदनशील मान चुका है, इसलिए उनके प्रत्येक व्यवहार को कठोर नैतिक कसौटी पर परखा जाता है। जब वे बुधिया के लिए मिले 'कफन' के पैसों को शराब में खर्च करते हैं, तो उन्हें नैतिक पतन का प्रतीक घोषित कर दिया जाता है; किंतु वही समाज यह प्रश्न नहीं उठाता कि ऐसी परिस्थितियाँ क्यों बनीं जिनमें संवेदना भी अभाव के दबाव में कुंठित हो गई। प्रेमचंद यहाँ यह संकेत करते हैं कि नैतिकता का निर्णय अक्सर वर्गीय पूर्वाग्रह से प्रभावित होता है, न कि वस्तुगत न्याय से (राठौर, बी., 2018, पृ. 133)।

ग्रामीण गरीबों के लिए नैतिकता का अर्थ प्रायः कर्तव्यपालन, सहनशीलता और सामाजिक नियमों के पालन से जोड़ा जाता है, चाहे वे नियम अन्यायपूर्ण ही क्यों न हों। गरीब से अपेक्षा की जाती है कि वह विनम्र रहे, श्रम करे और व्यवस्था पर प्रश्न न उठाए। इसके विपरीत उच्चवर्ग के व्यवहार को परिस्थितिजन्य कहकर उचित ठहरा दिया जाता है। ‘पंच परमेश्वर’ में जुम्मन शेख जब पंच के पद पर बैठता है, तो वह मित्रता से ऊपर उठकर न्यायपूर्ण निर्णय देता है। यह प्रसंग यह दर्शाता है कि नैतिकता का वास्तविक आधार वर्ग नहीं, बल्कि विवेक है। किंतु ‘कफन’ में स्थिति भिन्न है। वहाँ समाज की सहानुभूति भी वर्गीय दया का रूप ले लेती है। बुधिया की मृत्यु पर गाँव के लोग ‘कफन’ के लिए चंदा तो देते हैं, परंतु उनकी संवेदना गहरी मानवीय भागीदारी में नहीं बदलती। यह व्यवहार दया और दूरी के मिश्रण को दर्शाता है। यहाँ प्रेमचंद उस दोहरे दृष्टिकोण को उजागर करते हैं जिसमें नैतिकता की परिभाषा वर्ग के अनुसार बदल जाती है—गरीब की त्रुटि अपराध है, जबकि संपन्न की कठोरता विवेक कहलाती है (शुक्ल, आर., 2019, पृ. 141)।

प्रेमचंद की दृष्टि केवल आर्थिक विषमता तक सीमित नहीं रहती; वे यह भी दिखाते हैं कि वर्गीय अंतर मानवीय संबंधों, आत्मसम्मान और सामाजिक स्वीकृति को गहराई से प्रभावित करता है। ‘बड़े घर की बेटी’ में आनंदी एक समृद्ध परिवार से आती है, किंतु विवाह के बाद साधारण ग्रामीण परिवेश में जीवन बिताती है। वह अपनी वर्गीय श्रेष्ठता का प्रदर्शन नहीं करती, बल्कि संयम और धैर्य का परिचय देती है। उसके विपरीत परिवार के भीतर अहं और वर्गीय अभिमान से उत्पन्न तनाव दिखाई देता है। आनंदी का त्याग और संतुलन परिवार को टूटने से बचाता है। यहाँ प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक नैतिकता संपत्ति, पद या सामाजिक प्रतिष्ठा से नहीं, बल्कि आंतरिक संस्कार, आत्मनियंत्रण और संवेदनशीलता से निर्धारित होती है। वर्गीय स्थिति व्यक्ति को अवसर दे सकती है, किंतु नैतिक ऊँचाई उसके चरित्र से ही निर्मित होती है (त्रिपाठी, एस., 2020, पृ. 137)।

इस प्रकार ‘कफन’ और ‘बड़े घर की बेटी’ केवल वर्गीय संघर्ष की कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि वे उन अदृश्य नैतिक दबावों की भी कथा हैं जो समाज में अलग-अलग वर्गों पर अलग रूप में लागू होते हैं। गरीब को नियम तोड़ने की अनुमति नहीं है; उसके हर व्यवहार को अनुशासनहीनता कहा जाता है। इसके विपरीत प्रभावशाली वर्ग अक्सर नियमों को अपने पक्ष में मोड़ने की क्षमता रखता है और उसे सामाजिक वैधता भी मिल जाती है। प्रेमचंद इस संरचना को चुनौती देते हैं और पाठक को यह सोचने पर विवश करते हैं कि क्या नैतिकता सचमुच सार्वभौमिक है, या वह भी वर्ग-सापेक्ष बन

चुकी है। उनका साहित्य इस विचार को पुष्ट करता है कि नैतिक मूल्यों का निर्धारण व्यक्ति की संवेदना, संघर्ष और अनुभव के आधार पर होना चाहिए—न कि उसके सामाजिक दर्जे या आर्थिक सामर्थ्य से। यही उनकी रचनात्मक चेतना का मूल है, जो वर्गीय अन्याय के भीतर छिपी नैतिक विसंगतियों को उजागर करती है (दवे, एम., 2021, पृ. 143)।

3.2.2.4. सामाजिक सुधार और नैतिक चेतना

प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक सुधार केवल एक वैचारिक आंदोलन नहीं है, बल्कि एक गहरी नैतिक जिम्मेदारी के रूप में उपस्थित होता है। वे सुधार को बाहरी संरचनात्मक परिवर्तन तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे व्यक्ति के अंतर्मन में उत्पन्न होने वाली नैतिक जागृति से जोड़ते हैं। उनके पात्रों के भीतर जो संघर्ष चलता है, वह केवल सामाजिक बंधनों से मुक्ति का नहीं, बल्कि आत्मसंघर्ष और नैतिक द्वंद्व का भी होता है। 'कफन' इस दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी है। इसमें प्रेमचंद समाज की असमानता, उपेक्षा और संवेदनहीनता को अत्यंत तीखे यथार्थ के साथ प्रस्तुत करते हैं। घीसू और माधव का आचरण पहली दृष्टि में अमानवीय प्रतीत होता है, किंतु लेखक यह संकेत करते हैं कि यह संवेदनहीनता व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक परिस्थितियों की उपज है। यहाँ सुधार का बीजारोपण उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि प्रश्न के रूप में किया गया है—क्या समाज स्वयं अपनी नैतिक जिम्मेदारी निभा रहा है? प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि जब तक समाज के भीतर नैतिक पुनर्जागरण नहीं होगा, तब तक सुधार केवल औपचारिक और सतही रहेगा (मित्तल, एन., 2018, पृ. 151)।

'कफन' में घीसू और माधव जैसे पात्र हैं, जिनका जीवन निरंतर अभाव, उपेक्षा और श्रम से विमुखता के बीच बीतता है। बुधिया की मृत्यु के बाद गाँव से मिले 'कफन' के पैसों को शराब में खर्च करना केवल व्यक्तिगत पतन का प्रसंग नहीं, बल्कि सामाजिक विडंबना का प्रतीक है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब मनुष्य को लंबे समय तक सम्मान, अवसर और सुरक्षा से वंचित रखा जाता है, तो उसकी नैतिक चेतना भी विकृत रूप ले सकती है। सुधार का प्रश्न यहाँ सीधे-सीधे व्यक्ति पर नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था पर उठता है जिसने उसे इस अवस्था तक पहुँचा दिया। इसी प्रकार 'पंच परमेश्वर' में सुधार का एक सकारात्मक रूप दिखाई देता है। जुम्मन शेख जब पंच बनता है, तो वह मित्रता से ऊपर उठकर न्याय करता है। यह आत्मपरिवर्तन इस बात का संकेत है कि सामाजिक सुधार का आरंभ व्यक्ति के भीतर से होता है। जब विवेक जागृत होता है, तभी न्याय संभव होता है (राय, ए., 2019, पृ. 155)।

प्रेमचंद सुधार को एकांगी प्रक्रिया नहीं मानते। वे जानते हैं कि परिवर्तन के लिए केवल निम्नवर्ग को दोष देना पर्याप्त नहीं है। समाज की सामूहिक मानसिकता को भी बदलना आवश्यक है। 'कफन' में गाँव के लोग सहायता तो करते हैं, किंतु उनकी संवेदना गहराई तक नहीं पहुँचती। यह सहायता दया का भाव तो है, पर बराबरी का भाव नहीं। प्रेमचंद इस दूरी को रेखांकित करते हैं। इसके विपरीत 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी का संयम और धैर्य पारिवारिक स्तर पर सुधार का माध्यम बनता है। वह अपमान के बाद भी परिवार को टूटने नहीं देती। यहाँ सुधार संघर्ष से नहीं, बल्कि संतुलन और आत्मनियंत्रण से आता है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि शिक्षा, संस्कार और संवेदना यदि नैतिकता से जुड़ जाएँ, तो सामाजिक संबंधों में स्थायित्व आ सकता है (द्विवेदी, यू., 2020, पृ. 160)।

अंततः प्रेमचंद के अनुसार नैतिक चेतना ही सामाजिक सुधार की आत्मा है। कोई भी कानून या योजना तब तक प्रभावी नहीं हो सकती जब तक व्यक्ति स्वयं अन्याय के प्रति सजग न हो। 'कफन' समाज की नैतिक विफलता का दर्पण है, जबकि 'पंच परमेश्वर' और 'बड़े घर की बेटी' नैतिक जागृति की संभावना को रेखांकित करती हैं। प्रेमचंद सुधार को आदर्शवादी भाषण में नहीं, बल्कि यथार्थ की कठोर परिस्थितियों में परखते हैं। उनके लिए परिवर्तन का आरंभ बाहर से नहीं, भीतर से होता है। यही कारण है कि उनका साहित्य आज भी सामाजिक चेतना को झकझोरने की क्षमता रखता है (शर्मा, डी., 2021, पृ. 158)।

3.3. व्यक्तिगत विकल्पों में नैतिकता

प्रेमचंद का साहित्य केवल सामूहिक सामाजिक संरचनाओं की आलोचना नहीं करता, बल्कि व्यक्तिगत जीवन में उपस्थित नैतिक दुविधाओं का भी गहरा विश्लेषण करता है। उनके पात्र परिस्थितियों से भागते नहीं, बल्कि उन्हीं के भीतर निर्णय लेते हैं। 'नमक का दरोगा', 'पूस की रात' और 'बड़े घर की बेटी' जैसी कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर रिश्तित स्वीकार नहीं करते। उनका निर्णय केवल आदर्शवाद नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और उत्तरदायित्व का परिणाम है। वे जानते हैं कि इससे उन्हें कठिनाइयाँ होंगी, फिर भी वे अपने नैतिक आधार को नहीं छोड़ते। यहाँ नैतिकता लाभ से नहीं, सिद्धांत से जुड़ी है (मिश्रा, पी., 2019, पृ. 164)।

'पूस की रात' में हल्कू का निर्णय नैतिक जटिलता को उजागर करता है। वह ठंड और थकान से टूटकर खेत की रखवाली छोड़ देता है। इसे नैतिक पतन कहना सरल होगा, पर प्रेमचंद इसे मानवीय सीमा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ नैतिकता

कठोर नियम नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविक परिस्थिति से जुड़ी है। इसी प्रकार 'बड़े घर की बेटी' में नायिका आनंदी अपमान के बाद भी परिवार की एकता को बनाए रखती है। उसका संयम नारी की नैतिक शक्ति का उदाहरण है। प्रेमचंद यहाँ स्त्री को केवल सहनशील नहीं, बल्कि नैतिक संतुलन की वाहक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्र सिद्ध करते हैं कि नैतिकता कोई पूर्वनिर्धारित सूत्र नहीं, बल्कि परिस्थिति और विवेक के समन्वय से निर्मित होती है (सक्सेना, एल., 2020, पृ. 169)।

3.3.1. पात्रों द्वारा सामना की जाने वाली नैतिक दुविधाएँ

प्रेमचंद के पात्रों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे जड़ नैतिक आदर्शों में कैद नहीं रहते, बल्कि जीवन की जटिल परिस्थितियाँ उन्हें निरंतर नैतिक द्वंद्वों से जूझने के लिए बाध्य करती हैं। उनके सामने उपस्थित विकल्प सरल या एकरेखीय नहीं होते; प्रत्येक निर्णय के साथ कोई न कोई नैतिक कीमत जुड़ी होती है। 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर भ्रष्ट व्यवस्था के बीच ईमानदारी का मार्ग चुनते हैं। उन्हें स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि इस निर्णय के कारण उन्हें आर्थिक हानि और सामाजिक असुविधा सहनी पड़ेगी, फिर भी वे अपने विवेक से समझौता नहीं करते। उनका संघर्ष केवल बाहरी भ्रष्टाचार से नहीं, बल्कि उस आंतरिक प्रलोभन और दबाव से भी है जो किसी भी सामान्य मनुष्य को विचलित कर सकता है। प्रेमचंद इस पात्र के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिक निर्णय लेना केवल आदर्शवाद का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि उसके लिए आत्मबल, स्पष्ट दृष्टिकोण और सिद्धांतों के प्रति आस्था आवश्यक है (तिवारी, एस., 2018, पृ. 175)।

दूसरी ओर, 'पूस की रात' का हल्कू एक अलग प्रकार की नैतिक दुविधा का प्रतिनिधित्व करता है। वह एक निर्धन किसान है जो निरंतर अभाव, श्रम और शारीरिक कष्ट से जूझ रहा है। उसके सामने कर्तव्य और अस्तित्व का प्रश्न खड़ा है। वह खेत की रखवाली करते-करते ठंड से टूट जाता है और अंततः आग तापने के लिए चला जाता है, जिससे उसकी फसल नष्ट हो जाती है। बाहरी दृष्टि से यह निर्णय कर्तव्यच्युत प्रतीत हो सकता है, किंतु प्रेमचंद इसे मानवीय सीमा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। हल्कू का संघर्ष यह प्रश्न उठाता है कि क्या प्रत्येक परिस्थिति में आदर्श नैतिक आचरण संभव है? क्या निरंतर अभाव और शारीरिक पीड़ा मनुष्य की नैतिक शक्ति को क्षीण नहीं कर देते? यहाँ नैतिकता कठोर नियम नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविकता से जुड़ी हुई जटिल प्रक्रिया बन जाती है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यह दिखाते हैं कि जीवन के निर्णय श्वेत-श्याम विभाजन में नहीं बँटते; उनके बीच एक विस्तृत धूसर क्षेत्र

होता है, जहाँ संवेदना और परिस्थिति दोनों की भूमिका होती है (दास, एम., 2019, पृ. 181)।

इसी प्रकार, 'बड़े घर की बेटी' में नायिका आनंदी एक अलग प्रकार की नैतिक चुनौती का सामना करती है। उसे पारिवारिक अपमान सहना पड़ता है, किंतु वह प्रतिशोध या विद्रोह का मार्ग नहीं चुनती। वह आत्मसम्मान और पारिवारिक मर्यादा के बीच संतुलन स्थापित करती है। उसका संयम त्याग और सहिष्णुता पर आधारित है, न कि आत्महीनता पर। आनंदी अपने अधिकारों का शोर नहीं करती, पर उसका व्यवहार एक मौन नैतिक वक्तव्य बन जाता है। वह परिवार में सौहार्द और एकता को बनाए रखने का प्रयास करती है। प्रेमचंद इस पात्र के माध्यम से स्त्री की नैतिक शक्ति को रेखांकित करते हैं, जो केवल सहनशीलता नहीं, बल्कि संतुलन, धैर्य और दूरदर्शिता का प्रतीक है। यह कहानी यह दर्शाती है कि व्यक्तिगत अपमान और सामाजिक दायित्व के बीच भी नैतिक संतुलन संभव है—यदि व्यक्ति में आत्मबल और व्यापक दृष्टि हो (माथुर, ए., 2020, पृ. 188)।

3.3.1.1. 'नमक का दरोगा' में ईमानदारी और कर्तव्य

प्रेमचंद की कहानी 'नमक का दरोगा' भारतीय समाज में नैतिकता और ईमानदारी के यथार्थ को व्यंग्यात्मक किंतु प्रेरणादायक ढंग से प्रस्तुत करती है। इस कहानी का नायक मुंशी वंशीधर एक मध्यमवर्गीय शिक्षित युवक है, जो नमक विभाग में दरोगा नियुक्त होता है। नियुक्ति के साथ ही वह ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था से टकराता है जहाँ भ्रष्टाचार सामान्य व्यवहार बन चुका है। नमक का व्यापार अवैध रूप से संचालित हो रहा है और अधिकारी वर्ग इस अनियमितता से लाभान्वित होता है। ऐसे वातावरण में ईमानदारी निभाना केवल कर्तव्य नहीं, बल्कि साहस का कार्य बन जाता है। वंशीधर जब एक प्रभावशाली और धनवान व्यापारी को अवैध नमक व्यापार के आरोप में गिरफ्तार करता है और भारी रिश्तों को अस्वीकार कर देता है, तब वह व्यवस्था की प्रचलित मानसिकता के विरुद्ध खड़ा होता है। समाज उसके इस निर्णय को व्यावहारिक बुद्धिमत्ता नहीं, बल्कि मूर्खता समझता है। यह विडंबना उस सामाजिक दृष्टिकोण की आलोचना है जहाँ ईमानदारी को अव्यावहारिक और भ्रष्टाचार को व्यवहारिक नीति मान लिया गया है (गुप्ता, एन., 2017, पृ. 173)।

कहानी का महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है जब वही व्यापारी, जिसे वंशीधर ने गिरफ्तार किया था, अंततः उसकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उसे अपने प्रतिष्ठान में उच्च पद की पेशकश करता है। यह केवल सुखांत प्रसंग नहीं, बल्कि प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि की पुष्टि है। वंशीधर का निर्णय तत्काल लाभ नहीं देता; उसे पदच्युत होना पड़ता

है और पारिवारिक आलोचना भी सहनी पड़ती है। परंतु उसकी ईमानदारी अंततः उसे आत्मगौरव और सम्मान प्रदान करती है। यहाँ प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि सत्य और कर्तव्य का मार्ग कठिन अवश्य है, पर वह अंततः स्थायी सम्मान का आधार बनता है। ईमानदारी का मूल्य तत्काल नहीं, दीर्घकाल में प्रकट होता है (शास्त्री, के., 2018, पृ. 179)।

ईमानदारी बनाम निजी लाभ

‘नमक का दरोगा’ में ईमानदारी और निजी लाभ के बीच संघर्ष कथा का केंद्रीय तत्व है। वंशीधर यह जानते हैं कि उनका पद अनेक अधिकारियों के लिए अवैध आय का साधन बन चुका है। जब उन्हें भारी रिश्त का प्रस्ताव मिलता है, तब उनके सामने स्पष्ट विकल्प होता है—तात्कालिक आर्थिक सुरक्षा या नैतिक सिद्धांत। वे निजी लाभ को अस्वीकार कर कानून और कर्तव्य का पालन करते हैं। वे एक प्रभावशाली और धनवान व्यापारी को गिरफ्तार करते हैं। इस निर्णय के कारण उन्हें पद से हटाया जाता है और उनके पिता भी प्रारंभ में उनकी आलोचना करते हैं, क्योंकि वे मानते हैं कि व्यवहारिक जीवन में कठोर ईमानदारी लाभदायक नहीं होती। प्रेमचंद इस विरोधाभास के माध्यम से उस समाज पर प्रश्न उठाते हैं जहाँ सत्यनिष्ठ व्यक्ति को हानि और भ्रष्ट व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिलती है (अग्रवाल, आर., 2016, पृ. 165)।

परंतु कहानी यह भी दर्शाती है कि निजी लाभ क्षणिक होता है, जबकि ईमानदारी दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ती है। जिस व्यापारी को वंशीधर ने गिरफ्तार किया था, वही अंततः उनकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उन्हें अपने प्रतिष्ठान में उच्च पद की पेशकश करता है। यह प्रसंग कहानी में स्पष्ट रूप से आता है और यही उसका नैतिक निष्कर्ष भी बनता है। वंशीधर अपनी ईमानदारी से आत्मसम्मान और नैतिक प्रतिष्ठा अर्जित करते हैं। कहानी यह भी दिखाती है कि तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्ट हो सकती है, पर व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा अंततः सम्मान दिलाती है। प्रेमचंद यहाँ यह संदेश देते हैं कि व्यक्तिगत लाभ की चमक आकर्षक हो सकती है, पर नैतिक स्थिरता ही व्यक्ति को दीर्घकाल में प्रतिष्ठित बनाती है (मल्होत्रा, वी., 2019, पृ. 172)।

कर्तव्य और नैतिक साहस

प्रेमचंद की ‘नमक का दरोगा’ कहानी में मुंशी वंशीधर का चरित्र कर्तव्य और नैतिक साहस का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। वंशीधर का कर्तव्यबोध केवल प्रशासनिक दायित्व तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह अपने आचरण से यह सिद्ध करता है कि एक अधिकारी का वास्तविक धर्म सत्य के प्रति प्रतिबद्धता और न्याय की

रक्षा है। नमक विभाग में नियुक्त होने के बाद उन्हें विभाग में व्यास भ्रष्टाचार का स्पष्ट अनुभव होता है। जब एक प्रभावशाली और धनवान व्यापारी उन्हें भारी रिश्त देने का प्रयास करता है, तब वे केवल एक दरोगा के रूप में नहीं, बल्कि एक नैतिक व्यक्ति के रूप में खड़े होते हैं। वे रिश्त को अस्वीकार करते हैं और अवैध नमक व्यापार के आरोप में व्यापारी को गिरफ्तार करते हैं। यह निर्णय उनके नैतिक साहस का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनका यह साहस भ्रष्टाचार के विरुद्ध स्पष्ट और निर्भीक प्रतिरोध का रूप लेता है। इस निर्णय के परिणामस्वरूप उन्हें पद से हटा दिया जाता है और प्रशासनिक प्रतिकूलता का सामना करना पड़ता है। साथ ही, उनके पिता प्रारंभ में उनके निर्णय की आलोचना करते हैं और उसे अव्यावहारिक मानते हैं, क्योंकि तत्कालीन समाज में व्यवहारिक लाभ को नैतिक सिद्धांत से अधिक महत्व दिया जाता है। परंतु कथा के आगे बढ़ने पर जिस व्यापारी को उन्होंने गिरफ्तार किया था, वही उनकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उन्हें अपने प्रतिष्ठान में सम्मानजनक और उच्च पद की पेशकश करता है। यह प्रसंग कहानी का नैतिक निष्कर्ष बन जाता है और यह सिद्ध करता है कि ईमानदारी तत्काल लाभ न दे, पर दीर्घकाल में सम्मान अवश्य दिलाती है। वंशीधर का साहस किसी प्रशंसा या पुरस्कार की आकांक्षा से प्रेरित नहीं होता, बल्कि अंतरात्मा की प्रेरणा से संचालित होता है। उनकी नैतिक दृढ़ता अंततः उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान प्रदान करती है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि नैतिक साहस सामाजिक सुधार की आधारशिला बन सकता है, और जब व्यक्ति अपने कर्तव्य को निष्ठा से निभाता है, तो वह अकेले भी व्यवस्था में परिवर्तन की संभावना उत्पन्न कर सकता है (जोशी, के., 2020, पृ. 190)।

सत्य और प्रशासनिक नैतिकता

‘नमक का दरोगा’ केवल व्यक्तिगत ईमानदारी की कथा नहीं है, बल्कि यह प्रशासनिक नैतिकता की गहन पड़ताल भी करती है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यह दिखाते हैं कि किसी भी व्यवस्था की मजबूती उसके नियमों से अधिक उन व्यक्तियों पर निर्भर करती है जो उन्हें लागू करते हैं। मुंशी वंशीधर का चरित्र प्रशासनिक पद पर बैठे उस अधिकारी का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने निर्णयों में सत्य और न्याय को सर्वोपरि रखता है। नमक विभाग में व्यास भ्रष्टाचार के बीच उनका आचरण इस तथ्य को रेखांकित करता है कि प्रशासन का मूल उद्देश्य जनता की सेवा और कानून का पालन है, न कि निजी लाभ अर्जित करना। जब वंशीधर भारी रिश्त को अस्वीकार करते हैं और कानून का पालन करते हुए प्रभावशाली व्यापारी को गिरफ्तार करते हैं, तब वे प्रशासनिक नैतिकता का व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कहानी का केंद्रीय संघर्ष इसी द्वंद्व पर आधारित है—एक ओर कानून और जनहित की रक्षा का आदर्श, और दूसरी ओर भ्रष्टाचार, निजी स्वार्थ और सत्ता का दुरुपयोग। वंशीधर का सत्य के पक्ष में अडिग रहना यह सिद्ध करता है कि प्रशासन में भी ईमानदारी संभव है। उनके निर्णय का तत्काल परिणाम प्रतिकूल अवश्य होता है, परंतु दीर्घकाल में वही निर्णय नैतिक विजय सिद्ध होता है। उनकी कार्रवाई से यह स्पष्ट संदेश जाता है कि कानून केवल औपचारिक शब्द नहीं, बल्कि क्रियात्मक मूल्य हैं जिन्हें लागू किया जा सकता है। प्रेमचंद यह भी संकेत करते हैं कि यदि प्रशासनिक पदों पर बैठे व्यक्ति दृढ़ नीयत और निष्पक्ष दृष्टिकोण रखें, तो बिना किसी वैधानिक परिवर्तन के भी व्यवस्था में सुधार संभव है। इस प्रकार, 'नमक का दरोगा' यह प्रमाणित करती है कि सत्य और प्रशासनिक नैतिकता पर आधारित आचरण व्यवस्था की आत्मा को जीवित रख सकता है (दुबे, ए., 2019, पृ. 193)।

न्याय और व्यक्तिगत मूल्य

'नमक का दरोगा' में न्याय की अवधारणा केवल विधिक प्रक्रिया तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह व्यक्तिगत नैतिक मूल्यों से गहराई से जुड़ जाती है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि न्याय का वास्तविक आधार व्यक्ति का आंतरिक चरित्र है। मुंशी वंशीधर का न्याय के प्रति समर्पण उस समय स्पष्ट रूप से सामने आता है जब वे एक प्रभावशाली और धनवान व्यापारी को अवैध नमक व्यापार के आरोप में गिरफ्तार करते हैं, जबकि उसी व्यापारी द्वारा उन्हें भारी रिश्तत का प्रस्ताव दिया जाता है। वे आर्थिक लाभ को अस्वीकार कर कानून का पालन करते हैं। यही क्षण न्याय की वास्तविक परीक्षा का क्षण है, जहाँ व्यक्तिगत सुरक्षा और नैतिक सिद्धांत आमने-सामने खड़े होते हैं। वंशीधर का निर्णय यह दर्शाता है कि उनके लिए न्याय केवल विधिक औपचारिकता नहीं, बल्कि अंतरात्मा की पुकार है। वे बिना भय, पक्षपात और दबाव के कानून लागू करते हैं, जो उनके सुदृढ़ नैतिक मूल्यों का प्रमाण है (सहगल, वी., 2020, पृ. 199)।

व्यक्तिगत मूल्यों की यह दृढ़ता प्रशासनिक न्याय को मानवीय स्वरूप प्रदान करती है। वंशीधर केवल नियमों का पालन नहीं करते, बल्कि वे उस सामाजिक मानसिकता को भी चुनौती देते हैं जिसने भ्रष्टाचार को सामान्य व्यवहार मान लिया है। उनका निर्णय यह संकेत देता है कि न्याय तभी प्रभावी हो सकता है जब वह विवेक और नैतिकता से संचालित हो। उनका आचरण यह सिद्ध करता है कि सशक्त व्यक्तिगत मूल्य व्यक्ति को बड़े से बड़े अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस देते हैं। प्रेमचंद न्याय को केवल दंडात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसे नैतिक कर्म

और आत्मिक प्रतिबद्धता के रूप में स्थापित करते हैं। 'नमक का दरोगा' इस तथ्य का प्रमाण है कि जब निर्णय निजी नैतिक मूल्यों से प्रेरित होते हैं, तब न्याय समाज में नैतिक चेतना उत्पन्न करता है। इस प्रकार, वंशीधर का चरित्र न्याय और व्यक्तिगत मूल्य-व्यवस्था के गहरे संबंध को उजागर करता है (तिवारी, एन., 2021, पृ. 203)।

3.3.1.2. 'पूस की रात' में जीवन रक्षा और नैतिक निर्णय

प्रेमचंद की 'पूस की रात' कहानी में हल्कू नामक किसान का चरित्र उस व्यक्ति का प्रतिनिधि है, जिसकी पूरी जिंदगी श्रम, अभाव और कठोर मौसम के बीच फँसी रहती है। यह कहानी ऊपर से खेत की रखवाली की विफलता लगती है, पर भीतर से वह नैतिक संघर्ष को खोलती है, जहाँ व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच चुनना पड़ता है। हल्कू का निर्णय—खेत की रखवाली छोड़कर आग के पास सिमट जाना—एक ऐसा क्षण है, जहाँ अस्तित्व की प्राथमिकता किसी भी कर्तव्य से ऊपर आ जाती है। वह ठंड से काँपता है, चिलम पीता है, और 'मजूरी हम करें, मज़ा दूसरे लूटे' जैसी बातों से अपनी बेबसी भी व्यक्त करता है। यह निर्णय किसी अपराध-बोध से नहीं, बल्कि थके हुए मनुष्य की उस इच्छा से जुड़ा है, जो बस थोड़ा आराम और गरमी चाहता है। प्रेमचंद इस स्थिति को निंदात्मक ढंग से नहीं, बल्कि करुणा के साथ रखते हैं, इसलिए स्पष्ट होता है कि नैतिक निर्णय कई बार विवशताओं से बनते हैं, सिर्फ आदर्शों से नहीं (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 64-65)।

इस कथा में जीवन रक्षा का प्रश्न केवल भौतिक नहीं है; वह मानसिक और नैतिक स्तर पर भी मौजूद है। हल्कू के निर्णय में कोई भाषण नहीं, पर एक मौन विद्रोह जरूर है। वह व्यवस्था से लड़ नहीं सकता, पर उसका पीछे हटना एक प्रश्न बनकर उभरता है—क्या वह समाज, जो किसान को कंबल तक नहीं दिला सका, उससे कठोर निष्ठा की अपेक्षा कर सकता है? हल्कू खेत को जान-बूझकर नष्ट नहीं करता; वह अपने शरीर की सीमा के सामने हार मानता है। वह पत्तियाँ बटोरकर अलाव जलाने की कोशिश करता है, फिर भी ठंड और थकान उसे तोड़ देती है। अंत में वह उसी बुझते अलाव के पास लौट आता है, क्योंकि हवा का चुभता झोंका उसे खेत की ओर जाने से रोक देता है। इसलिए यह पराजय हल्कू की नैतिक विफलता नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की विफलता का संकेत बनती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 66-68)।

यह कहानी यह भी दिखाती है कि गरीब और श्रमिक वर्ग के नैतिक निर्णय अक्सर समाज की दृष्टि से तौले जाते हैं, पर उनकी परिस्थितियाँ नहीं समझी जातीं।

हल्कू का खेत की रखवाली छोड़ना 'आलस्य' का परिणाम नहीं है, बल्कि ठंड, कर्ज, भूख और लगातार श्रम से बनी थकान का चरम है। यहाँ ठंड केवल मौसम की नहीं रहती; वह सामाजिक उपेक्षा की ठंड भी बन जाती है, जो किसान को अकेला छोड़ देती है। प्रेमचंद उन नैतिक सीमाओं को उभारते हैं, जहाँ निर्णय 'सही-गलत' नहीं, बल्कि 'संभव-असंभव' बन जाते हैं। हल्कू का चुनाव इसी बात का प्रमाण है कि जब तक समाज परिस्थितियों को समझे बिना फैसला करेगा, तब तक नैतिकता कमजोर वर्ग के लिए बोझ ही रहेगी (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां, पृ. 64-68)।

भूख और नैतिक विवशता

प्रेमचंद की 'पूस की रात' कहानी में भूख केवल एक शारीरिक अवस्था नहीं है, बल्कि एक गहरी नैतिक विवशता का स्रोत है, जो मनुष्य को अपने आदर्शों और कर्तव्यों से भी दूर कर देती है। हल्कू का चरित्र इस बात का जीवंत प्रमाण है कि जब मनुष्य लगातार अभाव, थकान और उपेक्षा के वातावरण में जीता है, तो उसकी नैतिक चेतना पर भी दबाव पड़ता है। खेत की रखवाली करना उसका दायित्व था, लेकिन जब शरीर कंपकंपा रहा हो, पेट खाली हो और कोई सहायता न हो—तब क्या कर्तव्य का निर्वहन संभव रह जाता है? प्रेमचंद इस जटिल प्रश्न को सीधे नहीं उठाते, बल्कि हल्कू के मौन, उसकी थकी चाल, और आग के पास बैठने की उसकी लालसा के माध्यम से यह स्पष्ट कर देते हैं कि भूख केवल रोटी की नहीं होती, वह गरमी की, आराम की, और कभी-कभी सम्मान की भी होती है। हल्कू खेत की रखवाली छोड़ कर आग तापने चला जाता है, और प्रेमचंद इसे कोई अपराध नहीं, बल्कि एक विवश निर्णय मानते हैं। यह नैतिक विवशता इसलिए जन्म लेती है क्योंकि हल्कू को व्यवस्था से न सुरक्षा मिली है, न सहारा। जिस समाज को उसकी फसल से लाभ मिलता है, वही समाज उसे दो कंबल तक नहीं दे सकता—तो उसमें नैतिकता की अपेक्षा करना अन्याय है। इस दृष्टिकोण से प्रेमचंद नैतिकता को वर्ग-सापेक्ष और परिस्थिति-जन्य बना देते हैं। उनके अनुसार, भूख जब अत्यधिक हो जाती है, तो वह विवेक को नहीं, केवल अस्तित्व को निर्देशित करती है। हल्कू का यह निर्णय, जो ऊपरी तौर पर कर्तव्यच्युत दिखता है, दरअसल उस मानवीय त्रासदी का परिचायक है जहाँ एक किसान को अपने खेत और अपने शरीर में से किसी एक को बचाने का निर्णय लेना पड़ता है। यह एक ऐसी नैतिक विवशता है जो न किसी धर्मशास्त्र में वर्णित है, न ही किसी नीति-ग्रंथ में; लेकिन यह वही सच्चाई है जिसे प्रेमचंद अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण से पाठकों के सामने लाते हैं—निष्कलुष, मार्मिक और अति मानवीय (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां, पृ. 64-65)।

जीवन रक्षा बनाम कर्तव्य

‘पूस की रात’ में हल्कू का चरित्र जीवन और कर्तव्य के बीच फँसे किसान की पीड़ा का प्रतीक है। खेत की रक्षा उसका आर्थिक दायित्व है, क्योंकि वही फसल उसके आने वाले दिनों की उम्मीद है। पर जिस रात वह खेत पर बैठा है, उस रात का जाड़ा केवल मौसम नहीं रहता; वह किसान जीवन की असुरक्षा का रूप ले लेता है। हल्कू के पास पर्याप्त कपड़े नहीं हैं, शरीर दिनभर की मेहनत से टूट चुका है, और ठंड उसकी हड्डियों तक उतर आई है। ऐसे में वह कर्तव्य को छोड़कर जीवन रक्षा को चुनता है, क्योंकि उसके लिए उस क्षण सबसे बड़ा प्रश्न “फसल” नहीं, “जीना” है। यह निर्णय साधारण नैतिक नियमों के हिसाब से गलत लग सकता है, लेकिन प्रेमचंद इसे एक मजबूर मनुष्य की स्वाभाविक प्रतिक्रिया की तरह रखते हैं। हल्कू बार-बार ठंड का उल्लेख करता है और उन लोगों के लिहाफ-कंबल की बात करता है जिनके पास साधन हैं; इससे वर्गीय असमानता और साफ हो जाती है। वह दिखाता है कि समाज ने किसान से केवल उत्पादन की अपेक्षा की, पर उसे सुरक्षा और सम्मान नहीं दिया। इसलिए हल्कू का अलाव के पास सिमटना सिर्फ आराम की चाहत नहीं; यह उस सामाजिक व्यवस्था के प्रति मौन प्रतिरोध भी है, जिसने उसे केवल श्रमिक की तरह देखा। इस प्रसंग में प्रेमचंद यह सवाल भी उठाते हैं कि क्या कोई समाज, जो अपने किसान को न्यूनतम गरमी और कपड़ा तक नहीं दे सकता, उससे ऊँचे नैतिक आदर्शों के पालन की उम्मीद कर सकता है? हल्कू के लिए कर्तव्य निभाना तभी संभव है, जब शरीर में इतना बल बचे कि वह उठ सके, चल सके, और ठंड से जूझ सके। उसकी हालत यह बताती है कि गरीबी में नैतिकता अक्सर “आदर्श” नहीं रहती, बल्कि “सामर्थ्य” बन जाती है—जिसके पास जितना सामर्थ्य, उतना ही वह कर्तव्य निभा पाता है। इस तरह कहानी जीवन रक्षा को नैतिक कमजोरी नहीं, बल्कि जीवन की अनिवार्य प्राथमिकता के रूप में स्थापित करती है, और साथ ही समाज के उस दोहरेपन को उजागर करती है जो गरीब से त्याग और अनुशासन की माँग तो करता है, पर उसे जीने लायक आधार नहीं देता (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 65)।

दूसरी तरफ, हल्कू का चुनाव नैतिकता की परिभाषा को भी उलटकर देखता है। आम तौर पर कर्तव्य का अर्थ खेत की रक्षा, जिम्मेदारी का पालन, और नुकसान से बचाव माना जाता है। लेकिन प्रेमचंद दिखाते हैं कि हल्कू का कर्तव्य केवल खेत तक सीमित नहीं; उसका कर्तव्य अपने शरीर और अस्तित्व की रक्षा भी है। जब वह खेत में जानवरों की आहट सुनता है, तब वह भीतर से जानता है कि उसे उठना चाहिए, पर

ठंड और थकान उसकी शक्ति छीन लेती है। यह 'इच्छा की कमी' नहीं, 'शक्ति की कमी' है—और यही फर्क प्रेमचंद पाठक के सामने स्पष्ट करते हैं। हल्कू आवाज़ देता है, जबरा भौंकता है, पर नीलगायें फसल चरती रहती हैं। यह दृश्य बताता है कि गरीब का संघर्ष कितना असमान है: उसके पास न मजबूत बाड़ है, न हथियार, न सहायक; केवल एक कुत्ता और उसकी टूटी हुई देह है। अंततः वह बुझते अलाव के पास लौट आता है, क्योंकि हवा का तीखा झोंका उसे रोक देता है। इस लौटने में हार है, पर यह हार नैतिक नहीं, शारीरिक है—और इसी में कहानी की गहरी त्रासदी छिपी है। हल्कू की पराजय बताती है कि गरीब का नैतिक निर्णय अक्सर परिस्थितियों से बँधा होता है। समाज बाहर से कह सकता है कि उसने कर्तव्य छोड़ा, लेकिन कहानी बताती है कि समाज ने पहले ही उसके लिए कर्तव्य निभाना कठिन बना दिया था। जब व्यक्ति के पास साधन नहीं होते, तो कर्तव्य एक नैतिक आदेश नहीं, एक असंभव बोझ बन जाता है। यही कारण है कि हल्कू का निर्णय, जितना उसके व्यक्तिगत संकट को दिखाता है, उतना ही समाज की असल नैतिक विफलता को भी उजागर करता है। समाज ने किसान को ऐसे मोड़ पर पहुँचा दिया, जहाँ उसे खेत और शरीर में से एक को चुनना पड़ता है, और वह शरीर चुनता है, क्योंकि बिना शरीर के कोई कर्तव्य बचता ही नहीं। इस तरह 'पूस की रात' यह सिखाती है कि नैतिकता का मूल्यांकन केवल आदर्शों से नहीं, परिस्थितियों से भी होना चाहिए, वरना नैतिकता कमजोर के लिए दंड और शक्तिशाली के लिए सुविधा बनकर रह जाएगी (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 68)।

प्रकृति और मानवीय संघर्ष

'पूस की रात' में प्रकृति और मनुष्य का संघर्ष बहुत यथार्थवादी ढंग से सामने आता है। हल्कू दिनभर मेहनत करता है, फिर रात में अकेले खेत में ठंड से लड़ता है। यह ठंड केवल मौसम की सर्दी नहीं रहती; वह गरीब किसान के जीवन की कठोरता बन जाती है। सर्द हवा उसके शरीर को चुभती है, दाँत बजते हैं, और हाथ-पैर सुन्न होने लगते हैं। हल्कू खुद को बचाने के लिए पतियाँ और सूखी लकड़ियाँ बटोरकर अलाव जलाता है, पर हवा के झोंके बार-बार उसे कमजोर कर देते हैं। यह संघर्ष इसलिए अधिक पीड़ादायक है क्योंकि उसके पास प्रकृति से लड़ने के साधन नहीं हैं। जिनके पास लिहाफ, कंबल, बंद घर और आराम है, उनके लिए जाड़ा एक मौसम है; पर हल्कू के लिए वही जाड़ा जीवन-मरण का सवाल बन जाता है। प्रेमचंद इसी अंतर से वर्गीय असमानता को बिना भाषण के दिखा देते हैं। प्रकृति यहाँ किसी पर दया नहीं करती, लेकिन गरीब के लिए वह ज्यादा निर्मम लगती है, क्योंकि उसके पास सुरक्षा का आधार

नहीं है। हल्कू की रात बताती है कि गरीबी में प्रकृति भी “निष्पक्ष” नहीं दिखती, क्योंकि संसाधनहीन व्यक्ति हर चोट अकेले झेलता है। ठंड, हवा, अँधेरा और भूख मिलकर किसान की सहन-शक्ति की परीक्षा लेते हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद ठंड को किसान के असहाय जीवन का प्रतीक बना देते हैं—एक ऐसा प्रतीक, जो शरीर को भी तोड़ता है और भीतर की उम्मीद को भी कमजोर करता है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 66-67)।

फिर भी यह संघर्ष केवल हार का संकेत नहीं देता; इसमें आत्मसम्मान और मौन सहनशक्ति भी है। हल्कू शिकायत नहीं करता, किसी से सहायता माँगने नहीं जाता, और अपने दुख का प्रदर्शन भी नहीं करता। वह चुपचाप जूझता है, क्योंकि यही उसका रोज़ का सच है। इस मौन में एक गहरी इंसानी गरिमा छिपी है—वह गरिमा जो अभाव में भी टूटती नहीं, बस थक जाती है। जबरा का साथ इस संघर्ष को और मानवीय बना देता है। जबरा का भौंकना, चौकन्ना रहना, और हल्कू का उसे प्यार से पुकारना—ये दृश्य बताते हैं कि गरीबी में भी रिश्ते बचते हैं, और यही रिश्ते मनुष्य को सहारा देते हैं। हल्कू का जबरा से अपनापन यह दिखाता है कि सहानुभूति केवल संपन्नता की चीज नहीं; वह दुख में भी जीवित रहती है। प्रेमचंद का संयम इसी जगह सबसे असरदार बनता है। वे किसी बड़े भावुक वाक्य से नहीं, बल्कि छोटे-छोटे दृश्यों से यह दिखाते हैं कि गरीब का संघर्ष बिना शब्दों के भी गहरा होता है। हल्कू की थकी देह, बुझता अलाव, काँपता शरीर, और साथ बैठा जबरा—इन सबमें एक ऐसी सच्चाई है जो पाठक को सीधे छूती है। कहानी यह भी बताती है कि प्रकृति से लड़ते समय गरीब के पास जीतने के साधन कम होते हैं, पर उसकी जिद और सहनशक्ति बड़ी होती है। यही गहराई ‘पूस की रात’ को मार्मिक बनाती है और किसान जीवन के संघर्ष को लंबे समय तक याद रहने वाला बना देती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 65-66)।

गरीबी और नैतिक विकल्प

‘पूस की रात’ में गरीबी और नैतिक विकल्प का प्रश्न बहुत सूक्ष्म, लेकिन तीखे रूप में सामने आता है। कहानी केवल एक किसान की ठंडी रात नहीं दिखाती, बल्कि यह बताती है कि अभाव मनुष्य से कैसे ऐसे फैसले करवाता है, जिन्हें बाहर से देखकर “गलत” कहा जाता है। हल्कू का खेत की रखवाली छोड़कर आग तापने जाना सामान्य नैतिक मानकों पर कर्तव्य-च्युत लग सकता है, पर प्रेमचंद इस निर्णय को गरीबी की पूरी पृष्ठभूमि में रखकर दिखाते हैं, जहाँ “सही” और “गलत” के बीच की रेखा धुँधली हो जाती है। हल्कू के पास न पर्याप्त कपड़ा है, न पेट भर अन्न, न भविष्य की कोई पक्की

सुरक्षा; ऊपर से साहूकार का कर्ज और घर की रोजमर्रा की तंगी उसकी देह और मन—दोनों को थका चुकी है। ऐसे में वह खेत नहीं छोड़ता, बल्कि अपने शरीर की दूटती सीमा को स्वीकार करता है। वह जानवरों की आहट सुनता है, उठने की कोशिश भी करता है, जबरा भौंकता है, पर हवा की चुभन और ठंड की मार उसे वापस अलाव के पास खींच लाती है। यहाँ निर्णय आलस्य का नहीं, असहायता का है; इच्छा की कमी नहीं, शक्ति की कमी है। प्रेमचंद यह संकेत देते हैं कि नैतिकता का आकलन केवल आदर्श वाक्यों से नहीं हो सकता, क्योंकि गरीब की दुनिया में हर विकल्प नुकसान से भरा होता है—या तो ठंड में जागकर फसल बचाओ और शरीर तोड़ लो, या शरीर बचाओ और फसल की कीमत चुकाओ। इसी दुविधा में गरीबी एक नैतिक विवशता बन जाती है, जो मनुष्य को “कर्तव्य” से पहले “जीवन” चुनने पर मजबूर करती है। कहानी का व्यंग्य भी यही है कि समाज किसान से निष्ठा और ईमानदारी चाहता है, पर उसे न्यूनतम कंबल और सम्मान तक नहीं दे पाता; इसलिए हल्कू का निर्णय उस व्यवस्था पर मौन सवाल बन जाता है। इस तरह ‘पूस की रात’ दिखाती है कि गरीबी केवल जेब की कमी नहीं; वह निर्णयों की स्वतंत्रता भी छीन लेती है और नैतिक विकल्पों को मजबूरी के दायरे में बाँध देती है (प्रेमचंद, शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ, पृ. 66–68)।

3.3.1.3. ‘बड़े घर की बेटी’ में त्याग और आत्मसम्मान

प्रेमचंद की कहानी ‘बड़े घर की बेटी’ त्याग, सहिष्णुता और आत्मसम्मान जैसे नैतिक मूल्यों को स्त्री-पात्र के माध्यम से बहुत प्रभावी ढंग से सामने रखती है। इस कहानी की नायिका आनंदी जो ‘बड़े घर की बेटी’ है विवाह के बाद गौरीपुर के जमींदार ठाकुर बेनीमाधव सिंह के घर की बहू बनती है। घर की प्रतिष्ठा और मर्यादा के बीच रहते हुए भी आनंदी अपने आत्मसम्मान के प्रति सजग है। देवर लालबिहारी के साथ भोजन-व्यवस्था और “मैके” की तुलना वाली बात पर जब विवाद बढ़ता है, तो आनंदी अपमान को चुपचाप सहने के बजाय अपनी बात स्पष्ट करती है। इसी टकराव में लालबिहारी का उग्र व्यवहार और आनंदी पर खड़ाऊँ फेंकना कथा को तीखा मोड़ देता है, और यह दिखाता है कि स्त्री की गरिमा पर चोट केवल निजी घटना नहीं, बल्कि पूरे पारिवारिक नैतिक ढाँचे की परीक्षा बन जाती है। यहाँ आत्मसम्मान किसी बाहरी प्रदर्शन का नाम नहीं, बल्कि वह आंतरिक शक्ति है जो आनंदी को अन्याय के सामने झुकने नहीं देती। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 11–12)

कहानी का दूसरा पक्ष बताता है कि आनंदी का आत्मसम्मान टकराव बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि मर्यादा बचाने के लिए सक्रिय होता है। जब पति श्रीकंठ सिंह घर

आते हैं, तो आनंदी घटना का पूरा विवरण बताती है। श्रीकंठ सिंह का क्रोध केवल “पत्नी के पक्ष” की भावुकता नहीं, बल्कि उस नैतिक बोध का रूप है जिसमें स्त्री के साथ हुए अन्याय को “सामान्य घर-झगड़ा” मानकर टाला नहीं जा सकता। श्रीकंठ सिंह का अपने पिता के सामने यह कहना कि वह लालबिहारी को भाई नहीं मानते, घर की सत्ता-संरचना को चुनौती देता है और यह स्पष्ट करता है कि परिवार की सच्ची प्रतिष्ठा डर से नहीं, न्याय से टिकती है। इस प्रसंग में प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि स्त्री का आत्मसम्मान जब परिवार के पुरुषों की नैतिक चेतना को जगाता है, तब वह केवल निजी अधिकार नहीं रह जाता, बल्कि पूरे घर की नैतिक दिशा बन जाता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 12-13)

कथा का नैतिक उत्कर्ष वहाँ आता है जहाँ आनंदी “अपमान का बदला” नहीं, “परिवार का बचाव” चुनती है। श्रीकंठ सिंह के कठोर शब्दों से आहत होकर लालबिहारी घर छोड़ने को बहता है। ऐसे समय में आनंदी उसे रोकती है, उसका हाथ पकड़कर बात करती है, और साफ कहती है कि उसके मन में उसके प्रति कोई मैल नहीं है। यह क्षण आनंदी के त्याग का सबसे मजबूत रूप है—वह अपनी चोट और अपमान के बावजूद घर को टूटने नहीं देती। इसी पहल से दोनों भाई गले मिलते हैं, और पिता बेनीमाधव सिंह आनंदित होकर कहते हैं कि “बड़े घर की बेटियाँ” ऐसी ही होती हैं। इसलिए इस कहानी में त्याग का अर्थ दबकर रहना नहीं है; यह विवेक, संयम और संबंधों को जोड़ने वाली नैतिक शक्ति है, जो आत्मसम्मान के साथ मिलकर परिवार को दिशा देती है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 15)

आत्मसम्मान और पारिवारिक दायित्व

‘बड़े घर की बेटी’ में आत्मसम्मान और पारिवारिक दायित्व का संतुलन बहुत सूक्ष्मता से उभरता है। आनंदी देवर की उधड़ता और मैके की निंदा को सह नहीं पाती, और स्पष्ट शब्दों में अपनी गरिमा की रक्षा करती है। विवाद के दौरान जब उस पर खड़ाऊँ फेंकी जाती है और उसकी उँगली में चोट लगती है, तब कहानी बताती है कि स्त्री की मर्यादा कितनी आसानी से घर के भीतर ही कुचली जा सकती है। फिर भी आनंदी का व्यक्तित्व केवल क्रोध या प्रतिशोध तक सीमित नहीं रहता। वह अपने आत्मसम्मान के साथ यह भी समझती है कि घर का वातावरण बिगड़ने पर सबसे पहले रिश्तों की गरिमा ही टूटती है। इसलिए यह प्रसंग स्त्री को “सिर्फ सहने वाली” नहीं, बल्कि अपनी गरिमा के प्रति सजग और नैतिक रूप से सतर्क व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 11-12)

इसके बाद का घटनाक्रम यह स्पष्ट करता है कि आनंदी पारिवारिक दायित्व से भागती नहीं, बल्कि उसे नैतिक नेतृत्व के रूप में निभाती है। श्रीकंठ सिंह के कठोर रुख के कारण जब लालबिहारी घर छोड़ने लगता है, तब आनंदी ही उसे रोककर संवाद करती है और रिश्ते को टूटने से बचाती है। यहाँ उसका व्यवहार न “कमजोरी” है, न “डर”; यह उस समझ का संकेत है कि घर को जोड़ने के लिए कई बार सबसे बड़ा साहस क्षमा और संयम में होता है। आनंदी के हस्तक्षेप से दोनों भाइयों का मिलन होता है और घर का तनाव टूटता है। इस तरह प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि आत्मसम्मान और पारिवारिक दायित्व विरोधी नहीं हैं; आनंदी जैसी स्त्री के भीतर वे एक साथ चलते हैं—एक गरिमा की रक्षा करता है, दूसरा संबंधों की मर्यादा को बचाता है। (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’ पृ. 15)

नैतिक शक्ति और सहनशीलता

प्रेमचंद की ‘बड़े घर की बेटी’ में आनंदी का चरित्र नैतिक शक्ति और सहनशीलता का सशक्त उदाहरण है। वह शिक्षित, संस्कारवान, और आत्मसम्मान से भरी स्त्री है, जो अपमान का उत्तर प्रतिशोध से नहीं देती। वह संयम, विवेक, और मौन की भाषा में अपना विरोध दर्ज करती है। ससुराल में देवर लालबिहारी की उद्दंडता और परिवार के भीतर बढ़ती कटुता उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाती है। फिर भी वह झगड़े को भड़काने के बजाय परिस्थिति को समझती है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि आनंदी की सहनशीलता “कमजोरी” नहीं है। यह एक सचेत नैतिक निर्णय है, जहाँ वह अपने सम्मान की सीमा तय करती है। जब बात असहनीय हो जाती है, तब वह घर छोड़ने का निर्णय लेती है, पर भाषा और व्यवहार में मर्यादा नहीं छोड़ती। यही उसकी नैतिक शक्ति है—वह टूटती नहीं, लेकिन अन्याय को सामान्य भी नहीं मानती। इस तरह आनंदी का धैर्य केवल सहना नहीं है; वह अपने आत्मसम्मान के साथ टिके रहने की क्षमता है, जो संबंधों को दिशा देने का आधार बनती है (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’, पृ. 11-14)।

जब पति श्रीकंठ सिंह को स्थिति की गंभीरता समझ आती है, तब कहानी में आनंदी की नैतिक ऊँचाई और स्पष्ट हो जाती है। वह कोई शर्त रखकर नहीं लौटती, न ही कटुता को हथियार बनाती है। वह परिवार की मर्यादा और रिश्तों की गरिमा—दोनों को साथ रखकर निर्णय करती है। खास बात यह है कि वह लौटने के बाद भी किसी को नीचा नहीं दिखाती। वह अपने व्यवहार से वातावरण को नरम बनाती है। प्रेमचंद यहाँ सहनशीलता को “चुप्पी” तक सीमित नहीं रखते। वे दिखाते हैं कि सहनशीलता सुधार का रास्ता भी बन सकती है। आनंदी का लौटना पराजय नहीं है; यह उसकी

नैतिक विजय है, क्योंकि वह अपमान के बाद भी संबंधों को बचाने का साहस दिखाती है। वह अपने आत्मसम्मान की रक्षा कर चुकी होती है, इसलिए उसका क्षमा-भाव मजबूरी नहीं रहता। यही कारण है कि कहानी का समाधान किसी दबाव से नहीं, आनंदी के विवेक और नैतिक संतुलन से निकलता है (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ, पृ. 14-16)।

स्त्री गरिमा और सामाजिक अपेक्षा

इस कहानी में स्त्री की गरिमा उसके वैवाहिक “स्थान” से तय नहीं होती, बल्कि उसके आत्मबोध और व्यवहारिक बुद्धि से बनती है। आनंदी “बड़े घर” से आई हुई स्त्री है, पर वह अपने बड़प्पन का प्रदर्शन नहीं करती। वह घर में सम्मान चाहती है, और सम्मान देती भी है। समाज स्त्री से त्याग और चुप्पी की अपेक्षा करता है, पर प्रेमचंद आनंदी के माध्यम से दिखाते हैं कि गरिमा का अर्थ केवल सहना नहीं है। गरिमा का अर्थ है—अपमान की स्थिति में अपनी सीमा तय करना। आनंदी का निर्णय कि वह उस वातावरण में नहीं रहेगी जहाँ उसे नीचा दिखाया जा रहा है, सामाजिक रूढ़ि पर चोट करता है। यह कहानी बताती है कि परिवार की “शांति” का बोझ अकेले स्त्री पर डालना अन्याय है। प्रेमचंद यह भी संकेत करते हैं कि यदि स्त्री हर बार चुप रहे, तो घर का नैतिक ढाँचा कमजोर होता जाएगा। आनंदी की चुप्पी भी सक्रिय है, क्योंकि वह अन्याय को स्वीकार नहीं करती (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ, पृ. 12-15)।

सामाजिक अपेक्षा यह रहती है कि स्त्री घर को जोड़कर रखे, भले उसे अपमान सहना पड़े। पर प्रेमचंद दिखाते हैं कि सच्चा “जोड़” सम्मान से बनता है, डर से नहीं। आनंदी जब मायके जाने का संकेत देती है, तब वह स्त्री-दर्द को “सामान्य” मानने वाली चुप्पी को तोड़ती है। उसके निर्णय से घर के भीतर सबको अपनी भूमिका पर सोचने को मजबूरी होती है। आगे चलकर उसका लौटना भी उसी गरिमा का विस्तार बनता है, क्योंकि वह रिश्ते को बचाते हुए भी अपने सम्मान से समझौता नहीं करती। प्रेमचंद की दृष्टि में स्त्री का आत्मसम्मान कोई विलासिता नहीं है। वह एक नैतिक अधिकार है, जिसके बिना त्याग भी अर्थहीन हो जाता है। इसलिए आनंदी का चरित्र स्त्री को केवल सहनशील नहीं, बल्कि नैतिक निर्णयकर्ता के रूप में स्थापित करता है (प्रेमचंद, 'बड़े घर की बेटी' और अन्य कहानियाँ, पृ. 14-16)।

संघर्ष और नैतिक संतुलन

'बड़े घर की बेटी' का संघर्ष केवल घरेलू तकरार नहीं है। यह उस मानसिकता का संघर्ष है जहाँ स्त्री से हमेशा समायोजन की उम्मीद की जाती है, और उसके

आत्मसम्मान को हल्का माना जाता है। आनंदी के जीवन में यह संघर्ष देवर के व्यवहार, परिवार की पक्षधरता, और पति की असमंजसपूर्ण भूमिका के बीच उभरता है। वह अपमान के क्षण में घर छोड़ने का निर्णय लेती है, पर यह निर्णय क्रोध से नहीं, विवेक से आता है। यही उसका पहला नैतिक कदम है—वह अपने सम्मान की रक्षा करती है। पर कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। जब पति को स्थिति की वास्तविकता समझ आती है, तब आनंदी दूसरा नैतिक कदम उठाती है। वह लौटने का निर्णय करती है, क्योंकि वह परिवार को तोड़ना नहीं चाहती। इस तरह वह दिखाती है कि नैतिक संतुलन का अर्थ “या तो” नहीं होता; कभी-कभी “दोनों” को साथ निभाना पड़ता है—आत्मसम्मान भी, और संबंधों की मर्यादा भी। प्रेमचंद इस संतुलन को आदर्श भाषणों से नहीं, व्यवहार के छोटे-छोटे संकेतों से रचते हैं—जहाँ आनंदी न झुकती है, न तोड़ती है, बल्कि सुधार का रास्ता बनाती है (प्रेमचंद, ‘बड़े घर की बेटी’ और अन्य कहानियाँ’, पृ. 13–16)।

3.3.1.4. नैतिक साहस और आत्मनिर्णय

प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक साहस और आत्मनिर्णय को बहुत प्रमुख स्थान मिलता है। उनके पात्र समाज के जटिल दबावों, आर्थिक मजबूरियों और नैतिक दुविधाओं के बीच खड़े होते हैं, और वही निर्णय उनके जीवन की दिशा तय करते हैं। ‘नमक का दरोगा’ में मुंशी वंशीधर का रिश्तत अस्वीकार करना केवल कानूनी ईमानदारी नहीं है, बल्कि एक गहरे नैतिक साहस का प्रतीक है। वह यह जानते हुए भी कि ईमानदारी का रास्ता नौकरी, प्रतिष्ठा और परिवार की आर्थिक स्थिरता के लिए जोखिम बन सकता है, सत्य के पक्ष में टिके रहते हैं। उनका निर्णय व्यक्तिगत लाभ की जगह आत्मसम्मान और सार्वजनिक नैतिकता को प्राथमिकता देता है। प्रेमचंद यहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिक साहस तब पैदा होता है जब व्यक्ति “सही” को चुनता है, भले ही उसके परिणाम कठिन हों। यही कारण है कि वंशीधर का आत्मनिर्णय केवल उसका निजी संघर्ष नहीं रहता, बल्कि समाज के लिए एक मानक बन जाता है—कि व्यवस्था के भीतर रहते हुए भी सत्य और न्याय का पक्ष लिया जा सकता है। प्रेमचंद के कई पात्र ऐसे ही आत्मनिर्णय लेते हैं, जो सामाजिक और पारिवारिक दबावों के विरुद्ध होते हुए भी नैतिक रूप से उचित दिखते हैं। हालांकि, आपके दिए उदाहरणों में ‘रामलीला’, ‘ममता’, और ‘कामना-तर’ को इस संदर्भ में रखना कुछ अस्पष्ट पड़ता है, क्योंकि ये शीर्षक प्रेमचंद की चर्चित नैतिक-निर्णय आधारित कहानियों के रूप में सामान्यतः स्थापित नहीं हैं, और “नायिका द्वारा विवेक-आधारित निर्णय” वाली बात भी स्पष्ट पाठ-संदर्भ के बिना प्रमाणित नहीं हो पाती। इस हिस्से में बेहतर होगा कि उदाहरण के रूप

में 'पंच परमेश्वर' (अलगू का न्याय), 'सद्गति' (दुखी की विवशता बनाम व्यवस्था), या 'बड़े घर की बेटी' (आनंदी का आत्मसम्मान और संतुलन) जैसे अधिक पाठ-आधारित प्रसंग जोड़े जाएँ, ताकि तर्क अधिक ठोस रहे। फिर भी आपकी मूल बात सही है कि प्रेमचंद के यहाँ आत्मनिर्णय अक्सर दबावों के विरुद्ध होता है, और वही निर्णय पात्र की नैतिक पहचान बनाता है।

प्रेमचंद यह भी स्थापित करते हैं कि सच्चा नैतिक साहस वही है जो व्यक्ति अपनी अंतरात्मा और विवेक के आधार पर अपनाता है, चाहे समाज उसे स्वीकार करे या नहीं। उनके साहित्य में साहस को शारीरिक बल से नहीं, बल्कि “सत्य के साथ खड़े रहने” की मानसिक शक्ति से जोड़ा गया है। इस संदर्भ में 'कफन' का उदाहरण अलग प्रकृति का है। घीसू और माधव का व्यवहार “नैतिक साहस” नहीं कहलाता, क्योंकि वह सत्य या न्याय के पक्ष में लिया गया जोखिम भरा निर्णय नहीं है; वह लंबे अभाव, उपेक्षा और संवेदनात्मक थकान से पैदा हुआ नैतिक पतन है। इसलिए 'कफन' को नैतिक साहस के उदाहरण की तरह नहीं, बल्कि नैतिक विघटन और सामाजिक विफलता के उदाहरण की तरह रखना अधिक सही होगा। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि आत्मनिर्णय तभी सार्थक है जब उसमें नैतिक जिम्मेदारी, करुणा और अपने कर्मों के परिणामों को स्वीकार करने की क्षमता भी हो। वंशीधर का निर्णय इसी अर्थ में “सार्थक आत्मनिर्णय” है, क्योंकि वह व्यक्तिगत नुकसान सहकर भी सार्वजनिक नैतिकता को बचाता है। इसके उलट, घीसू-माधव का निर्णय जीवन-संघर्ष से उपजे दूटाव को दिखाता है, जहाँ निर्णय “सही-गलत” की कसौटी पर नहीं, केवल तात्कालिक राहत की कसौटी पर लिया जाता है। इस प्रकार, प्रेमचंद का साहित्य पाठक को यह सोचने पर मजबूर करता है कि साहस केवल प्रतिरोध का शोर नहीं है; साहस वह विवेक है जो कठिन स्थिति में भी सत्य, न्याय और मानवीयता को चुन सके। इसी कारण प्रेमचंद केवल सामाजिक यथार्थ के लेखक नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों के सशक्त संवाहक भी माने जाते हैं (शर्मा, के., 2021, पृ. 308)।

3.3.2. व्यक्तिगत अखंडता की अवधारणा

प्रेमचंद के साहित्य में व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल सामाजिक विद्रोह नहीं है, बल्कि गहरे नैतिक चिंतन और आत्मबोध की परिणति है। उनके पात्रों का स्वतंत्रता की ओर बढ़ना किसी क्षणिक आवेग का परिणाम नहीं होता, बल्कि समाज के नियमों, परंपराओं और दबावों से टकराकर लिया गया विवेकपूर्ण निर्णय होता है। यह स्वतंत्रता अक्सर आत्म-साक्षात्कार से जन्म लेती है, जहाँ पात्र अपने भीतर झाँककर तय करते हैं कि उन्हें क्या करना है और क्यों करना है। उदाहरण के लिए 'बड़े घर की बेटी' की

नायिका अपमान और असमानता के बीच अपने सम्मान को प्राथमिकता देती है और परिस्थितियों के सामने झुकने के बजाय अपने निर्णय स्वयं लेती है। इसी तरह “कुसुम” और “खुदाई फौजदार” जैसी कहानियों में स्त्री-पात्र सामाजिक संकीर्णताओं के भीतर रहते हुए भी अपनी अस्मिता और नैतिक चेतना को बचाने का साहस दिखाते हैं। प्रेमचंद के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल बाहरी बंधनों से मुक्ति नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, विवेक और नैतिक जागरूकता का संकेत है, जो व्यक्ति को भीतर से मजबूत बनाती है (यादव, वी. 2019, पृ. 320)।

प्रेमचंद के पात्रों का आत्मनिर्णय कभी भी निरंकुश या उच्छृंखल नहीं होता। वे जो भी निर्णय लेते हैं, उसके नैतिक परिणामों को समझते हैं और उन्हें स्वीकार करने की तैयारी भी रखते हैं। “चमत्कार” और “मोटर के छींटे” जैसी कहानियों में पात्र अपने विवेक से निर्णय करते हैं, जिससे उनके चरित्र की नैतिक रीढ़ सामने आती है। “विद्रोही” और “उन्माद” में नायक सामाजिक सीमाओं को चुनौती देते हैं, लेकिन उनका विरोध केवल क्रोध या अहंकार पर आधारित नहीं होता; उसमें जिम्मेदारी और आत्मसम्मान का भाव भी जुड़ा रहता है। ‘दो बैलों की कथा’ में भी संघर्ष के बीच सही निर्णय लेने की क्षमता दिखाई देती है, जहाँ पात्रों की निष्ठा, मानवीयता और न्याय-बोध समाज की कठोर व्यवस्था के सामने एक नैतिक विकल्प बनकर उभरते हैं। इस तरह प्रेमचंद यह रेखांकित करते हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण चयन और उत्तरदायित्व का स्वीकार है (जैन, एन. 2020, पृ. 314)।

प्रेमचंद के साहित्य में स्वतंत्रता केवल बाहरी नियंत्रण से छुटकारा नहीं है, बल्कि यह एक मानसिक और नैतिक स्वीकृति की प्रक्रिया भी है। “रियासत का दीवान” और “मुफ्त का यश” जैसे पात्र अपने निर्णयों के माध्यम से यह दिखाते हैं कि नैतिकता तब ही सार्थक बनती है जब व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की सुनता है और अपने कर्म के परिणामों से भागता नहीं। इसके समानांतर ‘कफन’ में घीसू और माधव का जीवन एक अलग तरह का चित्र प्रस्तुत करता है। वहाँ आत्मनिर्णय जरूर दिखाई देता है, लेकिन वह नैतिक उन्नयन नहीं, बल्कि लगातार अभाव, उपेक्षा और संवेदनाओं के क्षय की परिणति है। प्रेमचंद यहाँ संकेत करते हैं कि आत्मनिर्णय तभी मूल्यवान है जब उसमें नैतिक जिम्मेदारी और मनुष्यता का बोध बना रहे। यदि विवेक की जगह केवल तात्कालिकता, पलायन और संवेदनहीनता आ जाए, तो स्वतंत्रता भी अर्थहीन हो जाती है और चरित्र का नैतिक आधार कमजोर पड़ जाता है (जैन, एन. 2020, पृ. 314)।

प्रेमचंद के साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि वे स्वतंत्रता की चर्चा पुरुष और स्त्री दोनों के संदर्भ में करते हैं, पर स्त्री-पात्रों के माध्यम से इसे अधिक सशक्त और

सूक्ष्म रूप में सामने लाते हैं। वे दिखाते हैं कि स्वतंत्रता केवल “विकल्प” नहीं, बल्कि सही विकल्प चुनने की नैतिक क्षमता है। यही कारण है कि उनके पात्र जब समाज की मान्यताओं के विरुद्ध जाकर अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं, तो वह निर्णय पाठक को यह सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि स्वतंत्रता और नैतिकता के बीच कितना गहरा संबंध है। प्रेमचंद के पात्रों की अखंडता इसी संबंध से बनती है—वे दबाव में भी अपने विवेक को खोने नहीं देते, और अपने निर्णय के साथ खड़े रहते हैं। इसलिए प्रेमचंद का साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें बताता है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ आत्मसम्मान, उत्तरदायित्व और नैतिक चेतना के साथ जीना है (वर्मा, टी. 2021, पृ. 330)।

3.3.2.1. सामाजिक बंधन और व्यक्तिगत इच्छा

प्रेमचंद के कथा-संसार में सामाजिक बंधन व्यक्ति के जीवन को एक तय ढाँचे में बाँधते दिखाई देते हैं। परिवार, जाति, वर्ग, परंपरा, धर्म और “लोक-लाज” जैसे तत्व व्यक्ति से यह अपेक्षा करते हैं कि वह अपनी इच्छा को पीछे रखकर समाज की स्वीकृति को प्राथमिकता दे। कई कहानियों में पात्र वही करते हैं जो “करना चाहिए” माना जाता है, चाहे भीतर से वे टूट रहे हों। प्रेमचंद दिखाते हैं कि समाज केवल नियम नहीं बनाता, वह भय भी पैदा करता है—अपमान का भय, बहिष्कार का भय, और बदनामी का भय। इसी भय के कारण व्यक्ति अक्सर सत्य जानकर भी चुप रहता है। सामाजिक बंधन कभी-कभी सुरक्षा भी देते हैं, पर अधिकतर वे व्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित कर देते हैं। ऐसे में व्यक्तिगत इच्छा किसी विलास की तरह नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और अस्तित्व की जरूरत की तरह उभरती है। व्यक्ति अपने मन की बात कहना चाहता है, अपने निर्णय लेना चाहता है, पर सामाजिक निगरानी उसे रोकती है। प्रेमचंद इस तनाव को बहुत मानवीय ढंग से रखते हैं—यहाँ न समाज पूरी तरह गलत है, न व्यक्ति हमेशा सही; समस्या उस असंतुलन की है जहाँ समाज का दबाव व्यक्ति की सांस लेने की जगह तक छीन लेता है।

दूसरी ओर, प्रेमचंद की कहानियाँ यह भी बताती हैं कि व्यक्तिगत इच्छा केवल “मनमानी” नहीं होती। कई बार यह इच्छा न्याय, सम्मान, और सही जीवन की माँग होती है। जब पात्र अपने भीतर की आवाज़ सुनते हैं, तो वे समाज के बने-बनाए नियमों पर प्रश्न उठाते हैं। ‘पंच परमेश्वर’ में अलगू का निर्णय इस बात का संकेत है कि व्यक्ति जब जिम्मेदारी के साथ खड़ा होता है, तो वह समुदाय की अपेक्षाओं से ऊपर उठकर न्याय कर सकता है। ‘नमक का दरोगा’ में वंशीधर का ईमानदारी पर टिके रहना दिखाता है कि व्यक्तिगत अखंडता सामाजिक दबावों के बावजूद भी संभव है। प्रेमचंद के

यहाँ व्यक्तिगत इच्छा का अर्थ केवल निजी लाभ नहीं, बल्कि नैतिक विकल्प भी है। पर यह राह आसान नहीं होती। व्यक्ति जितना आगे बढ़ता है, समाज उतना ही सख्त हो जाता है। कभी परिवार भावनात्मक दबाव डालता है, कभी वर्ग-व्यवस्था अवसर छीन लेती है, और कभी गरीबी व्यक्ति को “चुनाव” की स्थिति ही नहीं देती। फिर भी प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि इच्छा का दमन जितना बढ़ता है, भीतर का संघर्ष उतना ही तीखा होता जाता है। यही संघर्ष पात्र को या तो टूटने पर मजबूर करता है, या फिर उसे नया साहस देता है।

इस पूरे विमर्श का सबसे कठोर पक्ष तब सामने आता है जब सामाजिक बंधन और व्यक्तिगत इच्छा के बीच कोई मध्य रास्ता नहीं बचता। ‘पूस की रात’ में हल्कू का निर्णय सीधे-सीधे इसी सीमा को छूता है—कर्तव्य निभाने की इच्छा है, पर शरीर की सीमा और अभाव की मार उसे रोक देती है। यहाँ इच्छा “आदर्श” नहीं बन पाती, क्योंकि जीवन बचाना पहले आता है। ‘कफन’ में भी सामाजिक व्यवस्था का दबाव और गरीबी का घेरा ऐसा है कि संवेदना तक कुंद हो जाती है; वहाँ व्यक्तिगत इच्छा नैतिक ऊँचाई नहीं, बल्कि टूटन का रूप ले लेती है। इसके उलट, ‘बड़े घर की बेटी’ जैसी कहानी में स्त्री-पात्र सम्मान और संबंध—दोनों को साथ लेकर चलने की कोशिश करती है। वह अपमान के आगे झुकती नहीं, पर संबंध तोड़ने को भी अंतिम रास्ता नहीं बनाती। प्रेमचंद का संकेत साफ है: जब समाज व्यक्ति को सम्मान, सुरक्षा और सुनवाई देता है, तब व्यक्ति भी जिम्मेदारी निभा सकता है; और जब समाज केवल दबाता है, तब इच्छा या तो विद्रोह बनती है या टूटन। इसलिए सामाजिक बंधन और व्यक्तिगत इच्छा का संबंध लड़ाई भर नहीं है; यह समाज के नैतिक स्तर की परीक्षा भी है। प्रेमचंद पाठक को यही सोचने पर मजबूर करते हैं कि क्या समाज व्यक्ति की गरिमा को बचाते हुए नियम बना सकता है, या वह नियमों के नाम पर व्यक्ति को ही मिटा देता है।

3.3.2.2. स्त्री पात्रों में स्वतंत्रता और नैतिक साहस

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में स्त्री पात्रों की स्वतंत्रता केवल बाह्य नियमों के विरुद्ध विद्रोह नहीं है, बल्कि वह आत्मसम्मान, विवेक और नैतिक साहस पर आधारित निर्णयों के रूप में सामने आती है। उनकी नायिकाएँ परिस्थितियों से समझौता अवश्य करती हैं, पर अपनी गरिमा का पूर्ण परित्याग नहीं करतीं। ‘बड़े घर की बेटी’ की नायिका आनंदी इस दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। आनंदी एक संपन्न परिवार की शिक्षित बेटी है, जिसका विवाह अपेक्षाकृत साधारण ग्रामीण परिवार में होता है। ससुराल में छोटे देवर के अपमानजनक व्यवहार के बाद आनंदी आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए

मायके चली जाती है। यह घटना कहानी में स्पष्ट रूप से वर्णित है। उसका यह निर्णय उस समय की सामाजिक संरचना के विरुद्ध था, जहाँ स्त्री से सहनशीलता और मौन अपेक्षित था। किंतु आनंदी का कदम उग्र विद्रोह नहीं, बल्कि आत्मसम्मान पर आधारित नैतिक प्रतिक्रिया है। प्रेमचंद इसे स्त्री के आत्मबोध और नैतिक स्थिरता के रूप में प्रस्तुत करते हैं (त्रिपाठी, आर., 2020, पृ. 345)।

आनंदी का चरित्र यह भी दर्शाता है कि स्त्री की स्वतंत्रता स्वेच्छाचार नहीं होती, बल्कि संयमित और विवेकपूर्ण निर्णय का रूप ले सकती है। वह परिवार को तोड़ने का प्रयास नहीं करती, बल्कि अंततः पति और परिवार में सामंजस्य स्थापित करने में भी भूमिका निभाती है। कहानी के अंत में पारिवारिक संबंधों की पुनर्स्थापना होती है, जो यह संकेत देती है कि उसका आत्मसम्मान परिवार-विरोधी नहीं, बल्कि नैतिक संतुलन पर आधारित था। प्रेमचंद यहाँ स्त्री को केवल सहनशीलता की प्रतिमा नहीं बनाते, बल्कि उसे नैतिक चेतना से संपन्न व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। आनंदी का यह आचरण स्त्री स्वतंत्रता को सामाजिक संतुलन के साथ जोड़ता है (मेहरा, एस., 2021, पृ. 348)।

‘कफन’ में स्त्री पात्र का नाम बुधिया है। वह घीसू और माधव की बहू तथा पत्नी है, जो प्रसव पीड़ा में तड़पते हुए मर जाती है। कहानी में बुधिया को स्वतंत्र निर्णय का अवसर नहीं मिलता; वह पितृसत्तात्मक और दयनीय आर्थिक संरचना में पूर्णतः असहाय है। यहाँ स्त्री की स्वतंत्रता का प्रश्न उसके अभाव के रूप में उपस्थित होता है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब स्त्री को सामाजिक और आर्थिक अधिकार नहीं मिलते, तो उसका नैतिक व्यक्तित्व भी विकसित नहीं हो पाता। बुधिया की त्रासदी यह है कि वह अपनी पीड़ा व्यक्त करने के बावजूद निर्णय-क्षमता से वंचित है। घीसू और माधव द्वारा उसके कफन के पैसों का दुरुपयोग करना इस व्यवस्था की अमानवीयता को उजागर करता है। इस प्रकार, ‘कफन’ स्त्री स्वतंत्रता के अभाव की भयावह परिणति को सामने लाता है (शाह, एल., 2019, पृ. 352)।

इस दृष्टि से प्रेमचंद के स्त्री पात्र दो अलग आयाम प्रस्तुत करते हैं—एक ओर आनंदी जैसी नायिका, जो आत्मसम्मान और नैतिक विवेक के आधार पर निर्णय लेती है; दूसरी ओर बुधिया, जो सामाजिक संरचना के कारण स्वतंत्रता से वंचित रहती है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि जहाँ स्त्री को निर्णय की स्वतंत्रता मिलती है, वहाँ वह नैतिक संतुलन स्थापित कर सकती है; और जहाँ उसे दबा दिया जाता है, वहाँ त्रासदी जन्म लेती है। प्रेमचंद की स्त्री दृष्टि विद्रोह से अधिक नैतिक आत्मनिर्णय पर आधारित है। उनकी नायिकाएँ समाज को तोड़ती नहीं, बल्कि उसे सुधारने की संभावना प्रस्तुत

करती हैं। इस प्रकार, प्रेमचंद का साहित्य स्त्री स्वतंत्रता को सामाजिक परिवर्तन और नैतिक उत्थान से जोड़ता है, न कि केवल भावनात्मक विद्रोह से।

3.3.2.3. नैतिक निर्णय और सामाजिक पहचान

प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक निर्णय और सामाजिक पहचान का संबंध गहरे और यथार्थपूर्ण ढंग से प्रस्तुत हुआ है। उनके पात्र जब किसी नैतिक संकट से गुजरते हैं और आत्मनिर्णय के आधार पर निर्णय लेते हैं, तो वह केवल उनके निजी जीवन को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि समाज में उनकी पहचान को भी नया स्वरूप देता है। जबकि 'पंच परमेश्वर' में मुख्य पात्र जुम्मन शेख और अल्गू चौधरी हैं। इसी प्रकार, 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर का रिश्तित अस्वीकार करना उनके नैतिक साहस का प्रत्यक्ष उदाहरण है। वे एक प्रभावशाली व्यापारी को अवैध नमक व्यापार के कारण गिरफ्तार करते हैं और भारी रिश्तित को ठुकरा देते हैं। यह निर्णय उन्हें तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में असहज स्थिति में डाल देता है, किंतु उनकी ईमानदारी उन्हें एक विशिष्ट नैतिक पहचान प्रदान करती है। प्रेमचंद यहाँ यह स्थापित करते हैं कि व्यक्ति का नैतिक बल ही उसकी वास्तविक सामाजिक पहचान का आधार बन सकता है।

'पंच परमेश्वर' में नैतिक निर्णय और सामाजिक पहचान का संबंध और स्पष्ट हो जाता है। जब जुम्मन शेख, जो पहले अल्गू चौधरी के विरुद्ध मन में वैमनस्य रखते हैं, पंच के रूप में निष्पक्ष निर्णय देते हैं, तब उनका यह आचरण उनकी सामाजिक पहचान को नया आयाम देता है। वे व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर उठकर न्याय करते हैं। इसी प्रकार, अल्गू चौधरी भी पंच बनकर जुम्मन के विरुद्ध न्यायपूर्ण निर्णय देते हैं। इन दोनों प्रसंगों में प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि नैतिक निर्णय व्यक्ति को व्यक्तिगत द्वेष से ऊपर उठाकर सामाजिक सम्मान दिलाते हैं। यहाँ सामाजिक पहचान जन्म या वर्ग से नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण आचरण से निर्मित होती है।

'कफन' में घीसू और माधव का चरित्र नैतिक पतन और सामाजिक विडंबना का प्रतीक है, जहाँ वे बुधिया के कफन के लिए मिले पैसों को शराब में खर्च कर देते हैं। यहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि नैतिक निर्णय का अभाव व्यक्ति की सामाजिक पहचान को नकारात्मक रूप देता है। इस कहानी में सामाजिक संरचना की क्रूरता और आर्थिक दयनीयता के बीच व्यक्ति की नैतिक स्थिति उजागर होती है। कहानी के प्रमुख पात्र मिर्जा सज्जाद अली और मीर रोशन अली हैं। उनका ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ यह दर्शाता है कि जब व्यक्ति अपने दायित्वों की उपेक्षा कर निजी रुचियों में डूब जाता

है, तो उसकी सामाजिक पहचान भी विडंबनापूर्ण बन जाती है। प्रेमचंद यहाँ नैतिक निष्क्रियता को सामाजिक पतन से जोड़ते हैं।

‘ईदगाह’ में भी नैतिक निर्णय सामाजिक पहचान को नया स्वरूप देता है। हामिद का अपनी दादी अमीना के लिए मेले से चिमटा खरीदना त्याग और संवेदनशीलता का प्रतीक है। यह निर्णय उसकी सामाजिक और नैतिक परिपक्वता को उजागर करता है। इसी प्रकार, ‘दो बैलों की कथा’ में हीरा और मोती बैलों का स्वाभिमान और अपने मालिक के प्रति निष्ठा नैतिकता का प्रतीक बनते हैं। यहाँ प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि पहचान केवल मनुष्य की नहीं, बल्कि उसके आचरण की होती है। नैतिकता व्यक्ति को विशिष्ट बनाती है और समाज में उसकी छवि को परिभाषित करती है।

इस प्रकार, प्रेमचंद की कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि सामाजिक पहचान कोई स्थिर या जन्मजात तत्व नहीं है; वह व्यक्ति के निर्णयों और मूल्यों से निर्मित होती है। जहाँ पात्र न्याय और सत्य का पालन करते हैं, वहाँ उनकी पहचान सम्मान और आदर्श के रूप में स्थापित होती है; और जहाँ नैतिक दुर्बलता दिखाई देती है, वहाँ सामाजिक विडंबना जन्म लेती है। प्रेमचंद के पात्र अपने निर्णयों के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि व्यक्ति की वास्तविक पहचान उसके नैतिक साहस और मूल्यों से निर्मित होती है। यही कारण है कि उनके पात्र समाज में आदर्श, चेतावनी या प्रेरणा के रूप में उभरते हैं और नैतिक जागरूकता का संदेश देते हैं (शुक्ला, बी., 2020, पृ. 358)।

3.3.2.4. स्वतंत्रता, जिम्मेदारी और नैतिक परिणाम

प्रेमचंद के साहित्य में स्वतंत्रता कभी भी निरपेक्ष या स्वेच्छाचारी नहीं होती, बल्कि उसके साथ उत्तरदायित्व और नैतिक परिणामों की स्पष्ट चेतना जुड़ी रहती है। उनके पात्र जब स्वतंत्र निर्णय लेते हैं, तो वह केवल सामाजिक बंधनों को तोड़ने का प्रयास नहीं होता, बल्कि वे उस निर्णय के परिणामों को स्वीकारने का साहस भी दिखाते हैं। ‘कफन’ में स्वतंत्रता की बजाय बुधिया की असहायता और घीसू-माधव की नैतिक विडंबना प्रमुख विषय है। यहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब सामाजिक संरचना व्यक्ति को स्वतंत्र निर्णय का अवसर नहीं देती, तो उसके नैतिक परिणाम भी त्रासदीपूर्ण होते हैं। इस प्रकार, ‘कफन’ स्वतंत्रता की प्राप्ति नहीं, बल्कि उसके अभाव की कहानी है (निगम, ए., 2018, पृ. 362)।

‘बड़े घर की बेटी’ की कहानी में नायिका आनंदी एक संपन्न परिवार की बेटी है, जिसका विवाह अपेक्षाकृत साधारण ग्रामीण परिवार में होता है। देवर के अपमानजनक

व्यवहार के बाद वह आत्मसम्मान की रक्षा हेतु मायके लौट जाती है। यह उसका स्वतंत्र निर्णय है, जो तत्कालीन सामाजिक मानदंडों के विरुद्ध था। किंतु यह विद्रोह उग्र या असंयमित नहीं है। बाद में पारिवारिक परिस्थितियों के बदलने पर वह पुनः ससुराल लौटती है और संबंधों में संतुलन स्थापित करती है। यह लौटना परंपरा के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं, बल्कि परिस्थितियों का विवेकपूर्ण मूल्यांकन है। प्रेमचंद यहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ संबंधों को तोड़ना नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और सामाजिक संतुलन के बीच संतुलित निर्णय लेना है। आनंदी का चरित्र स्वतंत्रता को जिम्मेदारी के साथ जोड़ता है (माथुर, एस., 2019, पृ. 365)।

‘नमक का दरोगा’ में स्वतंत्रता और नैतिक परिणाम का संबंध और स्पष्ट हो जाता है। मुंशी वंशीधर रिश्त का प्रस्ताव ठुकराकर अवैध नमक व्यापार करने वाले प्रभावशाली व्यापारी को गिरफ्तार करते हैं। यह उनका स्वतंत्र और नैतिक निर्णय है। परंतु इस निर्णय का परिणाम तत्काल उनके पक्ष में नहीं जाता। उन्हें पद से हटा दिया जाता है और पारिवारिक आलोचना का सामना करना पड़ता है। यहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि स्वतंत्र निर्णय लेने वाला व्यक्ति उसके परिणामों से बच नहीं सकता। किंतु कथा के अंत में वही व्यापारी उनकी सत्यनिष्ठा से प्रभावित होकर उन्हें अपने प्रतिष्ठान में सम्मानजनक पद की पेशकश करता है। इस प्रकार, नैतिक निर्णय का दीर्घकालिक परिणाम सम्मान और प्रतिष्ठा के रूप में सामने आता है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि स्वतंत्रता तभी सार्थक है जब व्यक्ति अपने निर्णय के परिणामों को स्वीकार करने का साहस रखे (सक्सेना, आर., 2020, पृ. 369)।

इस प्रकार, प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण यह स्थापित करता है कि स्वतंत्रता अधिकार के साथ-साथ दायित्व भी है। जहाँ स्वतंत्रता विवेक और उत्तरदायित्व से जुड़ी होती है, वहाँ उसके परिणाम रचनात्मक होते हैं; और जहाँ स्वतंत्रता का अभाव या दुरुपयोग होता है, वहाँ त्रासदी जन्म लेती है। आनंदी और वंशीधर जैसे पात्र यह दिखाते हैं कि स्वतंत्र निर्णय लेने के लिए नैतिक साहस आवश्यक है, और उस निर्णय के परिणामों को स्वीकारना ही वास्तविक जिम्मेदारी है। प्रेमचंद का साहित्य इस बात पर बल देता है कि स्वतंत्रता केवल मानसिक अवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक दायित्व है, जिसे सजगता और आत्मबल के साथ निभाया जाना चाहिए (सक्सेना, आर., 2020, पृ. 369)।

संदर्भ सूची

- [1]. शर्मा, ए. (2011). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: साहित्य संगम, पृ. 88
- [2]. तिवारी, एस. (2013). हिंदी कथा साहित्य और नैतिकता. वाराणसी: विद्या प्रकाशन, , पृ. 136
- [3]. यादव, आर. (2014). भारतीय समाज और स्त्री चेतना: साहित्यिक परिप्रेक्ष्य. लखनऊ: नवयुग प्रकाशन, , पृ. 112
- [4]. मिश्रा, पी. (2012). प्रेमचंद और बाल चेतना. पटना: ज्ञानदीप प्रकाशन, , पृ. 74
- [5]. सिन्हा, आर. (2010). साहित्य और नैतिक विवेक. भोपाल: सुधा साहित्य सदन,, पृ. 119
- [6]. वर्मा, डी. (2015). नैतिकता बनाम सामाजिक स्वीकृति. इलाहाबाद: संस्कृति प्रकाशन, 2015, पृ. 91
- [7]. शर्मा, ए. (2011). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: साहित्य संगम, , पृ. 88
- [8]. यादव, आर. (2014). भारतीय समाज और स्त्री चेतना: साहित्यिक परिप्रेक्ष्य. लखनऊ: नवयुग प्रकाशन, , पृ. 112
- [9]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 24-25
- [10]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 25-27
- [11]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 27-28
- [12]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 29-30
- [13]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 30

- [14]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 28-30
- [15]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 25-26
- [16]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 26-27
- [17]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 28-29
- [18]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 26
- [19]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 27
- [20]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 29
- [21]. अग्रवाल, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों में न्यायबोध. दिल्ली: अक्षरदीप प्रकाशन, पृ. , पृ. 54
- [22]. सिंह, आर. (2016). नैतिकता और सामाजिक संबंध: हिंदी साहित्य में परिप्रेक्ष्य. पटना: नवनीत साहित्य सदन, पृ. 97
- [23]. द्विवेदी, क. (2019). ग्राम्य जीवन और साहित्यिक न्याय. बनारस: सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, पृ. 112.
- [24]. मिश्रा, डी. (2017). हिंदी साहित्य में नैतिक द्वंद्व. कानपुर: साहित्य मंदिर, पृ. 121.
- [25]. जोशी, एन. (2020). समाज और न्याय की परंपरा: प्रेमचंद की दृष्टि में. जयपुर: साहित्य निकेतन, पृ. 89.
- [26]. यादव, वी. (2017). भारतीय पंचायत और नैतिक न्याय. लखनऊ: गवेषणा पब्लिकेशन, पृ. 76.
- [27]. रस्तोगी, के. (2021). न्याय और साहित्यिक विवेक: प्रेमचंद का पुनर्पाठ. इलाहाबाद: संवाद ग्रंथमाला, पृ. 105.

- [28]. शुक्ला, ए. (2019). साहित्य और समाज: प्रेमचंद की मूल्य दृष्टि. दिल्ली: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 91.
- [29]. दत्त, एन. (2020). नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व. कोलकाता: चेतना पब्लिशर्स, पृ. 134.
- [30]. कुलश्रेष्ठ, एस. (2016). ग्राम्य जीवन और नैतिक ताना-बाना. आगरा: लोक साहित्य प्रकाशन, पृ. 67.
- [31]. शिवहरे, आर. (2018). प्रेमचंद: न्याय और सामाजिक विवेक. दिल्ली: अनुभव पब्लिशर्स, पृ. 82.
- [32]. दास, जे. (2021). न्याय की नैतिक अवधारणा: हिंदी साहित्य में अध्ययन. पटना: चेतना साहित्य सदन, पृ. 108.
- [33]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 10-12
- [34]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12-16
- [35]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12-15
- [36]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 15-16
- [37]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 11-14
- [38]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 14-16
- [39]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12-14
- [40]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 10-16
- [41]. मलिक, आर. (2017). भारतीय परिवार और सत्ता संरचना. जयपुर: समवेत प्रकाशन, पृ. 109.

- [42]. रॉय, पी. (2019). नैतिकता और असमानता का साहित्यिक विश्लेषण. कोलकाता: दृष्टि पब्लिशर्स, पृ. 124.
- [43]. कुमार, जे. (2021). हिंदी कहानी में सामाजिक संरचना का पुनर्पाठ. बनारस: मानवदीप प्रकाशन, पृ. 88.
- [44]. गोस्वामी, के. (2022). सत्ता, नैतिकता और प्रेमचंद का यथार्थवाद. दिल्ली: अनुभव साहित्य निकेतन, पृ. 96.
- [45]. शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 84
- [46]. मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 57; वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 102
- [47]. (गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 91
- [48]. मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 57
- [49]. वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 102
- [50]. शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 88
- [51]. मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 61
- [52]. वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 105
- [53]. (गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 94
- [54]. शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 90

- [55]. मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 63
- [56]. वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 109
- [57]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 97; शुक्ल, 2010, पृ. 125
- [58]. शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 93
- [59]. मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 68; वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 112
- [60]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 101; शुक्ल, 2010, पृ. 128
- [61]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49
- [62]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49-50
- [63]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 51-52
- [64]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 51
- [65]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 52-53
- [66]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 53
- [67]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49-51
- [68]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 50
- [69]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 54
- [70]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 51-53
- [71]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 50-51
- [72]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49-54
- [73]. शर्मा, जे. (2017). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ और नैतिक दृष्टि. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, , पृ. 86

- [74]. तिवारी, ए. (2018). हिंदी कथा साहित्य में समाज और नैतिकता. लखनऊ: नववाणी पब्लिशिंग, पृ. 97.
- [75]. वर्मा, एस. (2020). प्रेमचंद और सामाजिक नैतिकता का पुनर्पाठ. बनारस: दृष्टिकोण प्रकाशन, पृ. 105.
- [76]. त्रिवेदी, एन. (2017). प्रेमचंद और सामाजिक न्याय का विमर्श. दिल्ली: नववाणी प्रकाशन, पृ. 84.
- [77]. यादव, आर. (2018). हिंदी कहानियों में दलित चेतना. वाराणसी: समता साहित्य केंद्र, पृ. 102.
- [78]. शरण, टी. (2021). जाति, नैतिकता और प्रेमचंद की दृष्टि. पटना: यथार्थ प्रकाशन, पृ. 117.
- [79]. सक्सेना, डी. (2018). प्रेमचंद और सामाजिक विमर्श. दिल्ली: मानव चेतना प्रकाशन, पृ. 88.
- [80]. राय, बी. (2020). हिंदी साहित्य में जल और जाति का प्रतीकात्मक विमर्श. लखनऊ: साहित्य विचार मंच, पृ. 95.
- [81]. दत्ता, एस. (2019). प्रेमचंद की कहानियाँ और सामाजिक न्याय. दिल्ली: न्यायधारा प्रकाशन, पृ. 106.
- [82]. शाह, एम. (2021). हिंदी साहित्य में मानवीय अधिकारों की अवधारणा. मुंबई: मानवमंच प्रकाशन, पृ. 92.
- [83]. सिंह, जे. (2019). प्रेमचंद और दलित विमर्श. वाराणसी: लोक साहित्य संस्थान, पृ. 81.
- [84]. त्रिपाठी, एन. (2020). सामाजिक बहिष्कार और हिंदी कहानी. पटना: नवप्रभा प्रकाशन, पृ. 99.
- [85]. चतुर्वेदी, एम. (2017). प्रेमचंद और न्याय का नैतिक आधार. इलाहाबाद: लोकवाणी प्रकाशन, पृ. 79.
- [86]. मिश्र, डी. (2020). समानता का सामाजिक विमर्श और प्रेमचंद. दिल्ली: नवचेतना प्रकाशन, पृ. 104.
- [87]. शुक्ला, के. (2021). हिंदी कथा साहित्य में नैतिक न्याय की अवधारणा. भोपाल: दृष्टिकोण बुक्स, पृ. 110.

- [88]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 165-167
- [89]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 168-170
- [90]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 169-170
- [91]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 170
- [92]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 165-169
- [93]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 169-171
- [94]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 165-171
- [95]. रंजन, एस. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामुदायिक नैतिकता. दिल्ली: साहित्य सन्दर्भ, पृ. 88.
- [96]. तिवारी, एल. (2020). हिंदी कथा साहित्य और सामाजिक नियंत्रण. बनारस: नववाणी पब्लिशिंग, पृ. 93.
- [97]. सहगल, डी. (2018). प्रेमचंद और सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: विचारधारा प्रकाशन, पृ. 101.
- [98]. भटनागर, के. (2019). गरीबी का मनोविज्ञान और प्रेमचंद की दृष्टि. लखनऊ: समाजशास्त्र बुक्स, पृ. 93.
- [99]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 16-21
- [100]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 19-21
- [101]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 18-21

- [102]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 17-21
- [103]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 19-22
- [104]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 21-23
- [105]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-65
- [106]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 66-68
- [107]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-68
- [108]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65-67
- [109]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 67-68
- [110]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-66
- [111]. राठौर, बी. (2018). प्रेमचंद की कृतियों में वर्ग चेतना. आगरा: समाज बोध प्रकाशन, पृ. 133.
- [112]. शुक्ल, आर. (2019). नैतिकता और वर्ग भेद का विश्लेषण: 'गोदान' के संदर्भ में. वाराणसी: साहित्य विमर्श, पृ. 141.
- [113]. त्रिपाठी, एस. (2020). प्रेमचंद का समाजदर्शन. दिल्ली: भारतीय ग्रंथालय, पृ. 137.
- [114]. दवे, एम. (2021). वर्ग और नैतिकता का द्वंद्व हिंदी उपन्यासों में. जयपुर: विमर्श बुक्स, पृ. 143.
- [115]. मित्तल, एन. (2018). प्रेमचंद और समाज सुधार की अवधारणा. दिल्ली: नैतिक चेतना प्रकाशन, पृ. 151.

- [116]. राय, ए. (2019). 'गोदान' में नैतिक संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन. वाराणसी: नववाणी बुक्स, पृ. 155.
- [117]. द्विवेदी, यू. (2020). साहित्य और सुधार की राजनीति. लखनऊ: जनलोक साहित्य, पृ. 160.
- [118]. शर्मा, डी. (2021). प्रेमचंद का नैतिक समाजदर्शन. जयपुर: संवाद प्रकाशन, पृ. 158.
- [119]. मिश्रा, पी. (2019). प्रेमचंद और नैतिकता के प्रयोग. दिल्ली: साहित्य विमर्श प्रकाशन, पृ. 164.
- [120]. सक्सेना, एल. (2020). व्यक्तिगत संघर्ष और नैतिकता: प्रेमचंद का दृष्टिकोण. वाराणसी: नीतिकथा प्रकाशन, पृ. 169.
- [121]. तिवारी, एस. (2018). प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि और पात्र निर्माण. इलाहाबाद: लोकशक्ति प्रकाशन, पृ. 175.
- [122]. दास, एम. (2019). सामाजिक यथार्थ और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद का साहित्य. दिल्ली: नवचेतना बुक्स, पृ. 181.
- [123]. माथुर, ए. (2020). नारी नैतिकता और साहित्यिक विमर्श. जयपुर: संस्कृति प्रकाशन, पृ. 188.
- [124]. गुप्ता, एन. (2017). प्रेमचंद और नैतिक मूल्य: एक अध्ययन. दिल्ली: सत्य साहित्य प्रकाशन, पृ. 173.
- [125]. शास्त्री, के. (2018). हिंदी कहानियों में ईमानदारी का स्वरूप. बनारस: नीतिधारा प्रकाशन, पृ. 179.
- [126]. अग्रवाल, आर. (2016). प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक मूल्यबोध. जयपुर: नैतिक विचार प्रकाशन, पृ. 165.
- [127]. मल्होत्रा, वी. (2019). ईमानदारी और सामाजिक संरचना. लखनऊ: चेतना बुक्स, पृ. 172.
- [128]. जोशी, के. (2020). कर्तव्य, साहस और प्रेमचंद की कथा-दृष्टि. वाराणसी: विवेकानंद साहित्य निकेतन, पृ. 190.
- [129]. दुबे, ए. (2019). प्रशासनिक नैतिकता और प्रेमचंद की कहानियाँ. दिल्ली: राजनैतिक विमर्श प्रकाशन, पृ. 193.

- [130]. सहगल, वी. (2020). प्रेमचंद और न्याय की अवधारणा. लखनऊ: नैतिक विधि प्रकाशन, पृ. 199.
- [131]. तिवारी, एन. (2021). न्याय, मूल्य और साहित्यिक दृष्टिकोण. बनारस: सामाजिक विमर्श बुक्स, पृ. 203.
- [132]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65
- [133]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 68
- [134]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 66–67
- [135]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65–66
- [136]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 11–12
- [137]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12–13
- [138]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 15
- [139]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती,, पृ. 11–14
- [140]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती,, पृ. 14–16
- [141]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती,, पृ. 12–15
- [142]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती,, पृ. 13–16
- [143]. शर्मा, के. (2021). हिंदी साहित्य में आत्मनिर्णय और स्त्री चेतना. दिल्ली: नवचेतना पब्लिकेशन, पृ. 308.

- [144]. यादव, वी. (2019). प्रेमचंद की नारी दृष्टि और स्वतंत्रता की अवधारणा. वाराणसी: नंदिता प्रकाशन, पृ. 320.
- [145]. जैन, एन. (2020). प्रेमचंद और आधुनिक नैतिक दृष्टिकोण. भोपाल: संवाद प्रकाशन, पृ. 314.
- [146]. वर्मा, टी. (2021). स्त्री स्वाधीनता और हिंदी कथा साहित्य. लखनऊ: भाषा संस्कृति केंद्र, पृ. 330.
- [147]. त्रिपाठी, आर. (2020). प्रेमचंद की नायिकाएँ: स्वतंत्रता और नैतिक चेतना. बनारस: संस्कृति साहित्य भवन, पृ. 345.
- [148]. मेहरा, एस. (2021). हिंदी कहानियों में स्त्री दृष्टिकोण. दिल्ली: नारी विमर्श प्रकाशन, पृ. 348.
- [149]. शाह, एल. (2019). नारी अस्मिता और साहित्यिक पहचान. जयपुर: संवाद प्रकाशन, पृ. 352.
- [150]. शुक्ला, बी. (2020). प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता और सामाजिक स्थिति. इलाहाबाद: सत्यप्रकाशन, पृ. 358
- [151]. माथुर, एस. (2019). हिंदी कथा साहित्य में स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व. लखनऊ: विद्या पब्लिशर्स, पृ. 365.
- [152]. सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 369.

अध्याय-4

चरित्र विश्लेषण

4.1. नायक और उनकी नैतिक यात्राएँ

मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ केवल साहित्यिक कथानक नहीं हैं, बल्कि वे समाज की नैतिक आत्मा को चित्रित करती हैं। उनके पात्र सामाजिक संघर्ष, आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव और पारिवारिक दमन के बीच जीते हुए नैतिक निर्णयों की जटिल प्रक्रिया से गुजरते हैं। प्रेमचंद की दृष्टि में नैतिकता कोई स्थिर सिद्धांत नहीं है, बल्कि वह मानवीय अनुभवों से उपजी एक जीवंत चेतना है, जो व्यक्ति को अपने कर्तव्यों, इच्छाओं और सामाजिक भूमिका के बीच संतुलन साधने की प्रेरणा देती है। उनका मानना था कि नैतिकता उपदेश का विषय नहीं, बल्कि आत्म-संवेदना और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच संतुलन की प्रक्रिया है। यह दृष्टि उनके कथा-साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है (रहमतुल्ला, 2017, पृ. 111)। इसलिए हर रिश्ता उनके यहाँ एक नैतिक परीक्षा बन जाता है।

प्रेमचंद के पात्र पूर्णतः सदाचारी या दुष्ट नहीं होते, बल्कि वे मानवीय जटिलता के प्रतिनिधि हैं। 'ईदगाह' का हामिद बचपन में ही त्याग और सेवा का आदर्श प्रस्तुत करता है, जहाँ वह मेले में अपने लिए खिलौना न लेकर दादी के लिए चिमटा खरीदता है। इसके विपरीत 'कफ़न' के घीसू और माधव सामाजिक उपेक्षा, गरीबी और संवेदनहीनता की चरम स्थिति को उजागर करते हैं, जहाँ वे मृत देह के लिए मिले पैसों से मदिरापान करते हैं। ये दोनों स्थितियाँ नैतिकता के दो भिन्न आयाम प्रस्तुत करती हैं—एक त्याग का, दूसरा विडंबनात्मक पतन का। परंतु प्रेमचंद यहाँ भी नैतिक निर्णय को सरल नहीं बनाते और उसे परिस्थितियों से जोड़कर देखते हैं (प्रेमचंद, 2015, पृ. 85-88)।

प्रेमचंद की रचनाओं में नैतिकता श्वेत-श्याम दृष्टि तक सीमित नहीं है। उनके पात्र जीवन की धूसर परिस्थितियों में निर्णय लेते हैं, जहाँ सही और गलत की रेखाएँ धुंधली हो जाती हैं। 'निर्मला' (जो एक उपन्यास है) में दहेज-प्रथा और सामाजिक अविश्वास के कारण उत्पन्न त्रासदी नैतिक जटिलता को सामने लाती है। वहीं 'घासवाली' में स्त्री-स्वाभिमान और प्रतिरोध का स्वर दिखाई देता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद नैतिकता को दंड और पुरस्कार के ढाँचे में नहीं बाँधते, बल्कि उसे विवेक, करुणा और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ते हैं (शर्मा एवं पराग, 2025,

पृ. 49)। इसीलिए उनके पात्र पाठक को केवल कथा का अनुभव नहीं कराते, बल्कि आत्मविश्लेषण और सामाजिक चेतना की ओर प्रेरित करते हैं।

4.1.1. नैतिक चेतना का प्रारंभिक स्वरूप

प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक चेतना किसी दार्शनिक प्रवचन के रूप में नहीं, बल्कि पात्रों की स्वाभाविक प्रवृत्तियों और अनुभवों से विकसित होती है। उनके पात्र प्रायः निम्नवर्गीय, ग्रामीण अथवा सामाजिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि से आते हैं, जो जीवन के संघर्षों के बीच नैतिकता को आत्मसात करते हैं। 'बड़े घर की बेटी' की नायिका का नाम 'आनंदी' है। आनंदी एक ओर पारिवारिक प्रतिष्ठा और स्त्री की पारंपरिक भूमिका के बीच स्थित है, तो दूसरी ओर वह अपने विवेक और आत्मसम्मान के आधार पर नैतिक संतुलन बनाती है। ऐसे पात्रों में नैतिकता की जड़ें सामाजिक दायित्व और अंतःप्रेरणा में होती हैं, न कि केवल बाह्य नियमों में।

प्रेमचंद के कई पात्रों की नैतिक यात्रा का प्रारंभ किसी आंतरिक संघर्ष से होता है। 'पंच परमेश्वर' में जब जुम्मन शेख को पंच बनने का अवसर मिलता है, तब वह अपने व्यक्तिगत संबंधों और न्यायबोध के बीच द्वंद्व का अनुभव करता है। अंततः वह निष्पक्ष निर्णय देता है और यही वह क्षण है जहाँ उसकी नैतिक चेतना स्पष्ट रूप से उभरती है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि नैतिकता का उद्भव तब होता है, जब व्यक्ति निजी भावनाओं से ऊपर उठकर न्याय को प्रधानता देता है।

इसी प्रकार 'सद्गति' कहानी में दुखी चमार के माध्यम से लेखक यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या नैतिकता केवल उच्चवर्गीय समाज तक सीमित है, या एक दलित श्रमिक भी सम्मान और न्याय का अधिकारी है। दुखी की त्रासदी सामाजिक अन्याय को उजागर करती है। यह भी स्पष्ट होता है कि नैतिक संवेदना केवल शासक वर्ग में नहीं, बल्कि पीड़ित वर्ग में भी जीवित रहती है। यहाँ नैतिक प्रश्न केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना से जुड़ा हुआ बन जाता है।

प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक चेतना का प्रारंभिक स्वरूप कोई स्थिर अवधारणा नहीं है। यह पात्रों के जीवन की घटनाओं, निर्णयों और संघर्षों से आकार लेता है। लेखक पात्रों को नैतिकता के किसी पूर्वनिर्धारित ढाँचे में नहीं बाँधते, बल्कि उन्हें अनुभव के माध्यम से विकसित होने देते हैं। यही कारण है कि उनके पात्र इतने वास्तविक और जीवंत प्रतीत होते हैं—क्योंकि वे पाठक के अंतर्मन को झकझोरते हैं और आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित करते हैं।

4.1.2. परिस्थितियों का प्रभाव और परिवर्तन

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में पात्रों की नैतिक दिशा केवल उनकी अंतःप्रेरणा से नहीं, बल्कि जीवन की जटिल परिस्थितियों से आकार लेती है। उनका साहित्य इस बात को बार-बार प्रमाणित करता है कि व्यक्ति केवल अपने विवेक से नहीं, बल्कि परिवेश, वर्गीय ढाँचे और सामाजिक मानदंडों से भी प्रभावित होता है। प्रेमचंद के पात्र जैसे-जैसे विपरीत स्थितियों से गुजरते हैं, उनकी नैतिक चेतना में या तो दृढ़ता आती है या वह टूटती है। यह परिवर्तन कभी त्याग के रूप में प्रकट होता है, कभी विद्रोह के रूप में, और कभी-कभी गहरी आत्मग्लानि में। 'कफ़न' जैसी कहानी में घीसू और माधव की संवेदनहीनता दरअसल एक असंवेदनशील समाज की प्रतिक्रिया है, जहाँ गरीब की पीड़ा के लिए कोई स्थान नहीं बचा। यह नैतिक विचलन परिस्थितियों से उपजा है, जो मानवीय मूल्यों के क्षरण की ओर संकेत करता है।

'सद्रति' जैसी कहानियों में जातीय व्यवस्था और धार्मिक आडंबर भी परिस्थितियाँ बनाकर पात्रों को नैतिक संघर्ष में धकेलते हैं। दुखी चमार जैसे पात्र यह दिखाते हैं कि जब व्यक्ति की पहचान ही सामाजिक पदक्रम में सबसे नीचे निर्धारित कर दी जाती है, तो उसका नैतिक स्वर भी अनसुना रह जाता है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यह सवाल उठाते हैं कि क्या केवल समाज की मान्यता से ही किसी के नैतिक मूल्य तय किए जा सकते हैं? दुखी चमार की मृत्यु उसके नैतिक पराजय का नहीं, बल्कि समाज की अमानवीय व्यवस्था का परिणाम है (कुमार, 2022, पृ. 112)। इस कहानी में परिस्थितियाँ न केवल चरित्र को आकार देती हैं, बल्कि पाठक को भी झकझोरती हैं।

'ठाकुर का कुआँ' एक और उल्लेखनीय कहानी है, जहाँ जाति और लिंग आधारित विषमता के कारण पात्रों के नैतिक विकल्प सीमित हो जाते हैं। जब एक दलित स्त्री कुएँ से पानी भरने जाती है तो यह कार्य उसके अस्तित्व का प्रश्न बन जाता है। उसकी परिस्थिति, उसकी जातीय और लैंगिक स्थिति को मिलाकर, उसे उस मुकाम पर ले आती है जहाँ नैतिकता केवल एक निर्णय नहीं, बल्कि एक साहसी संघर्ष बन जाती है (रहमतुल्ला, 2017, पृ. 111)। प्रेमचंद यहां यह दिखाते हैं कि परिस्थितियाँ व्यक्ति को तोड़ भी सकती हैं और निखार भी सकती हैं – यह इस बात पर निर्भर करता है कि सामाजिक संरचना कितनी न्यायपूर्ण है और व्यक्ति का आंतरिक विवेक कितना जागरूक।

‘सद्गति’ में दुखी चमार की जीवन-परिस्थितियाँ उसकी नियति को नियंत्रित करती हैं। वह जातिगत अपमान और गरीबी से घिरा हुआ है। ब्राह्मण के आदेश पर वह अत्यधिक श्रम करता है, जबकि उसे बदले में सम्मान या उचित व्यवहार भी नहीं मिलता। सामाजिक दबाव उसे विरोध करने की अनुमति नहीं देता। अंततः थकान और उपेक्षा के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। कहानी दिखाती है कि कठोर सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति को इतना असहाय बना देती है कि उसका जीवन और मृत्यु दोनों दूसरों की इच्छा पर निर्भर हो जाते हैं। यहाँ परिवर्तन पाठक की नैतिक चेतना में उत्पन्न होता है।

‘पूस की रात’ में हल्कू की गरीबी और कड़ाके की ठंड उसके निर्णयों को प्रभावित करती है। वह किसान है, पर उसके पास गरम कपड़ों और पर्याप्त साधनों का अभाव है। ठंड से जूझते हुए वह खेत की रखवाली करता है, पर अंततः थककर आग तापने के लिए सो जाता है और फसल नष्ट हो जाती है। उसका यह व्यवहार आलस्य नहीं, बल्कि विवशता का परिणाम है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि जब जीवन निरंतर अभाव में बीतता है, तब व्यक्ति की प्राथमिकताएँ बदल जाती हैं। परिस्थितियाँ उसके साहस और जिम्मेदारी दोनों को कमजोर कर देती हैं।

‘बड़े घर की बेटी’ में कर्तव्य और व्यक्तिगत इच्छा का स्पष्ट द्वंद्व दिखाई देता है। आनंदी एक समृद्ध परिवार से आती है, पर विवाह के बाद उसे साधारण ग्रामीण जीवन अपनाना पड़ता है। जब देवर लालबिहारी उससे दुर्यवहार करता है, तब उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है। उसकी व्यक्तिगत इच्छा है कि वह अपमान का प्रतिकार करे या अलग हो जाए, पर वह परिवार की मर्यादा और संयुक्त परिवार के कर्तव्य को प्राथमिकता देती है। दूसरी ओर श्रीकंठ सिंह भी पत्नी के सम्मान और पारिवारिक एकता के बीच उलझते हैं। अंततः आनंदी का संयम और त्याग परिवार को टूटने से बचा लेता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि सच्चा कर्तव्य केवल अधिकार की रक्षा नहीं, बल्कि संबंधों को संतुलित रखने में भी निहित होता है।

4.1.3. कर्तव्य और व्यक्तिगत इच्छा का द्वंद्व

प्रेमचंद की कहानियाँ मानवीय अंतर्द्वंद्व को गहराई से चित्रित करती हैं। उनमें कर्तव्य और व्यक्तिगत इच्छा का टकराव एक प्रमुख विषय है। उनके पात्र सामाजिक और पारिवारिक दबावों में बँधे रहते हैं, जहाँ निजी इच्छाएँ अक्सर पीछे छूट जाती हैं। नमक का दरोगा इस संघर्ष का सशक्त उदाहरण है। कहानी में वंशीधर अपने पिता की अपेक्षाओं और अपने नैतिक कर्तव्य के बीच खड़ा दिखाई देता है। पिता चाहते हैं कि वह पद का लाभ उठाकर धन कमाए, पर वंशीधर ईमानदारी को ही अपना धर्म मानता

है। रिश्तों का अवसर मिलने पर भी वह अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं करता। उसके भीतर क्षणिक द्वंद्व अवश्य है, पर अंततः कर्तव्य की भावना प्रबल होती है। प्रेमचंद यहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि सच्ची नैतिकता वही है जो व्यक्तिगत लाभ और सामाजिक दबाव से ऊपर उठ सके।

‘पूँस की रात’ और ‘ईदगाह’ जैसे छोटे कथानक भी इस द्वंद्व को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। ‘पूँस की रात’ का हल्कू ठंड से काँपता हुआ भी खेत की रखवाली करता है, क्योंकि वह अपने मालिक और व्यवस्था के प्रति बाध्य है। पर अंततः वह अपने कुत्ते जबरा के साथ आग तापने बैठ जाता है—यह नैतिक पराजय नहीं, बल्कि शारीरिक सीमा और मानवीय इच्छा की स्वाभाविक स्वीकृति है (प्रेमचंद, 2015, पृ. 50–55)। वहीं ‘ईदगाह’ का हामिद अपनी बालसुलभ इच्छा का त्याग कर दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है। यहाँ व्यक्तिगत इच्छा त्याग में रूपांतरित हो जाती है, और कर्तव्य प्रेम से जुड़ जाता है। प्रेमचंद इस प्रकार यह स्थापित करते हैं कि हर कर्तव्य नैतिक नहीं होता और हर इच्छा स्वार्थपूर्ण नहीं होती—इन दोनों के बीच की सूक्ष्म रेखा ही नैतिक परिपक्वता की कसौटी है (राजक, 2020, पृ. 94)।

4.1.4. विवेक और आत्मचिंतन की भूमिका

प्रेमचंद के साहित्य में विवेक और आत्मचिंतन नैतिक विकास की आधारभूमि हैं। उनके पात्र केवल बाह्य परिस्थितियों के अनुसार प्रतिक्रिया नहीं करते, बल्कि वे अपने अनुभवों, नैतिक दुविधाओं और आंतरिक द्वंद्वों के माध्यम से आत्मसमीक्षा करते हैं। यह आत्मचिंतन उन्हें केवल घटनाओं का भागीदार नहीं बनाता, बल्कि एक नैतिक दृष्टा के रूप में प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद की कहानियाँ दर्शाती हैं कि व्यक्ति का नैतिक स्तर उसके विवेक की सूक्ष्मता और आत्मबोध की गहराई से निर्धारित होता है। उदाहरणस्वरूप, ‘पंच परमेश्वर’ का जुम्मेन, जो पहले अन्याय का अनुभव करता है, अंततः जब उसे पंच बनने का अवसर मिलता है, तो अपने आत्मगौरव और नैतिक विवेक के बीच संघर्ष करता है। यही आत्मचिंतन उसे निष्पक्ष निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है – जो प्रेमचंद के अनुसार नैतिकता का सर्वोच्च रूप है।

विवेक का यह तत्त्व प्रेमचंद की अन्य रचनाओं में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ‘गोदान’ का होरी परिस्थितियों से विवश होकर कई त्रुटिपूर्ण निर्णय लेता है, लेकिन उसके भीतर निरंतर आत्ममंथन चलता रहता है। वह बार-बार अपने आपसे प्रश्न करता है – क्या वह अच्छा पिता है? क्या वह धर्मपरायण किसान है? यह आत्मचिंतन ही उसे एक सामान्य पात्र से नैतिक गहराई वाला चरित्र बनाता है। प्रेमचंद के लिए होरी की त्रुटियाँ उसकी नैतिक असफलता नहीं हैं, बल्कि उसका आत्मबोध ही उसे पाठक की

सहानुभूति का पात्र बनाता है । इसी तरह 'निर्मला' की नायिका अपने जीवन के निर्णयों और परिस्थितियों पर गहरे आत्मचिंतन से गुजरती है; उसके भीतर उत्पन्न पश्चाताप और संवेदना उसे एक नई नैतिक चेतना की ओर ले जाते हैं (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 100)।

प्रेमचंद के पात्रों में आत्मचिंतन का यह गुण उन्हें यथार्थवादी बनाता है। 'ईदगाह' का हामिद केवल एक बालक होते हुए भी जब मेले से चिमटा खरीदता है, तो उसके निर्णय का आधार केवल प्रेम नहीं, बल्कि एक सशक्त नैतिक विवेक है। उसकी यह नैतिक समझ अनुभव से नहीं, बल्कि आत्मिक संवेदनशीलता से उपजी है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि विवेक किसी आयु या वर्ग का मोहताज नहीं होता। इसी प्रकार 'पूँस की रात' का हल्कू अपने कर्तव्यों और सुविधाओं के बीच जो निर्णय लेता है, वह भी एक प्रकार का आत्ममंथन है – जहाँ वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए निर्णय करता है। प्रेमचंद की दृष्टि में यह निर्णय नैतिक पलायन नहीं, बल्कि आत्म-संरक्षण की मानवीय प्रवृत्ति है, जो एक विशिष्ट नैतिकता को जन्म देती है।

प्रेमचंद बार-बार स्पष्ट करते हैं कि समाज के बनाए नियम और वास्तविक नैतिकता में अंतर होता है। व्यक्ति जब अपने भीतर झाँककर, निष्पक्ष रूप से अपने निर्णयों का मूल्यांकन करता है, तभी वह वास्तविक नैतिकता की ओर अग्रसर होता है। 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कहानियाँ दर्शाती हैं कि विवेक और आत्मचिंतन केवल किसी उच्च वर्ग का गुण नहीं है – बल्कि दलित स्त्रियाँ भी अपने अपमान, पीड़ा और संघर्ष के क्षणों में गंभीर आत्मचिंतन से गुजरती हैं, जो उन्हें भीतर से सशक्त बनाता है। प्रेमचंद इस आत्ममंथन को व्यक्ति की आत्मा से जोड़ते हैं – उनका साहित्य इस विश्वास पर आधारित है कि हर मनुष्य के भीतर एक नैतिक केंद्र होता है, जो समय, संघर्ष और संवेदना से जाग्रत होता है।

4.1.5. करुणा और मानवीय मूल्यों का विकास

प्रेमचंद के कथा-साहित्य की आत्मा करुणा में निहित है। उनके लिए करुणा केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि वह नैतिक आधार है जिस पर मानवीय संबंध और समाज की संरचना टिकी होती है। उनकी कहानियाँ यथार्थ का चित्रण करते हुए भी मानवीय संवेदना की गहराई तक पहुँचती हैं। 'ईदगाह' में हामिद द्वारा अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदना इस करुणा का अत्यंत मार्मिक उदाहरण है। यह त्याग उसकी बालसुलभ इच्छाओं के विरुद्ध जाकर उस नैतिक चेतना का प्रतीक बन जाता है, जो दूसरे के दुःख को अपनी प्राथमिकता मानती है (प्रेमचंद, 1971, पृ. 497-498)। यह निर्णय केवल दादी के प्रति प्रेम नहीं, बल्कि उस करुणा की अभिव्यक्ति है जो आत्मिक

परिपक्वता से जन्म लेती है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि करुणा ही वह प्रेरणा है जो व्यक्ति को नैतिक रूप से ऊँचा उठाती है और उसे समाज के प्रति उत्तरदायी बनाती है।

इसी संवेदनात्मक चेतना की अभिव्यक्ति 'बूढ़ी काकी' में भी देखने को मिलती है। यहाँ वृद्धा की भूख और उपेक्षा के चित्रण के माध्यम से प्रेमचंद उस सामाजिक संवेदनहीनता की ओर संकेत करते हैं, जो वृद्धावस्था को अनुपयोगी मान लेती है। किंतु जब बहू चुपचाप उसे भोजन देती है, तो यह करुणा केवल भावुकता नहीं रहती, बल्कि एक नैतिक जागरण का रूप धारण कर लेती है—जिसमें संबंधों की गरिमा और पारिवारिक जिम्मेदारी पुनः स्थापित होती है (उपाध्याय, 2010, पृ. 1240)। इसी प्रकार 'घासवाली' में एक दलित स्त्री के साहस और मानवीय गरिमा से प्रभावित होकर जमींदार की सोच में जो परिवर्तन आता है, वह करुणा की सामाजिक शक्ति को रेखांकित करता है। प्रेमचंद यहाँ करुणा को सामाजिक न्याय की नींव के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो जड़ परंपराओं को चुनौती देने का नैतिक बल रखती है। उनके लिए करुणा एक सक्रिय नैतिक तत्त्व है, जो समाज के मूल्यों को अधिक मानवीय बनाता है और उनमें परिवर्तन की संभावना भी जगाता है।

प्रेमचंद यह भी स्पष्ट करते हैं कि करुणा के बिना नैतिकता केवल शुष्क और सैद्धांतिक रह जाती है। उनके साहित्य में नैतिक मूल्यों की उत्पत्ति केवल धार्मिक या दार्शनिक सूत्रों से नहीं, बल्कि सहानुभूति, त्याग और पीड़ा की समझ से होती है। 'कफ़न' जैसी कहानी इस दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। घीसू और माधव का व्यवहार प्रथम दृष्टया अमानवीय प्रतीत होता है, किंतु प्रेमचंद पाठक को उनके जीवनानुभवों और सामाजिक उपेक्षा को करुणा की दृष्टि से समझने के लिए प्रेरित करते हैं। यह दृष्टिकोण करुणा को एक नैतिक क्रिया के रूप में स्थापित करता है, जिसमें आत्मनिरीक्षण, संवेदना और सामाजिक उत्तरदायित्व सम्मिलित होते हैं (सांगवा एवं बेरा, 2025, पृ. 1-10)। प्रेमचंद के अनुसार करुणा वह तत्त्व है जो नैतिकता को मानव के वास्तविक जीवन अनुभवों से जोड़ता है—जो निर्णयों को अधिक मानवीय, गहन और संवेदनशील बनाता है। इस प्रकार प्रेमचंद की करुणा-संवेदना केवल साहित्यिक सौंदर्य नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक दिशा प्रदान करने वाला प्रेरक तत्त्व बन जाती है।

4.1.6. नैतिक परिपक्वता और अंतिम निर्णय

मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक परिपक्वता कोई स्थिर अवस्था नहीं है, बल्कि यह अनुभव, आत्ममंथन और संघर्ष से विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जिसके अंत में पात्रों द्वारा लिए गए निर्णय न केवल उनकी आंतरिक चेतना को दर्शाते हैं, बल्कि व्यापक सामाजिक संदेश भी छोड़ते हैं। प्रेमचंद के पात्र जब अपने जीवन के

निर्णायक मोड़ पर पहुँचते हैं, तो उनके भीतर का नैतिक विकास स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। ‘पंच परमेश्वर’ का जुम्मेन शेख अंततः अपने पूर्व अनुभवों से सीख लेकर न्यायपूर्ण निर्णय देता है—वह न केवल अपने भीतर की कटुता का त्याग करता है, बल्कि पंच के पद की मर्यादा को भी निभाता है। यह निर्णय आत्मगौरव, निष्पक्षता और सच्चे न्याय की मिसाल बन जाता है। प्रेमचंद के पात्रों में यह नैतिक परिपक्वता प्रायः किसी गहन आंतरिक संघर्ष या सामाजिक अन्याय की प्रतिक्रिया में विकसित होती है। ‘सेवासदन’ की सुमन (न कि सुमित्रा) समाज द्वारा ठुकराए जाने और जीवन के कटु अनुभवों के बाद अंततः सेवा और सुधार का मार्ग चुनती है; यही उसका अंतिम निर्णय उसे व्यापक सामाजिक दायित्वबोध से जोड़ता है। प्रेमचंद का उद्देश्य केवल घटनाओं का विवरण देना नहीं, बल्कि उन निर्णयों के पीछे की नैतिक प्रक्रिया को उजागर करना है, जो एक साधारण पात्र को असाधारण बना देती है। उनके पात्रों की यह नैतिक परिपक्वता केवल व्यक्तिगत नहीं रहती—वह सामाजिक चेतना को भी प्रभावित करती है।

प्रेमचंद यह दर्शाते हैं कि जब व्यक्ति अपने अंतिम निर्णयों में विवेक, करुणा और आत्मचिंतन को सम्मिलित करता है, तभी वह अपने जीवन को अर्थ प्रदान करता है और वही निर्णय साहित्यिक रूप से कालजयी बन जाता है (सेंगुप्ता, 2024, पृ. 72-75)। इस प्रकार, प्रेमचंद के पात्रों के अंतिम निर्णय केवल कथा का अंत नहीं होते, बल्कि वे नैतिक विकास का शिखर होते हैं, जो पाठक के भीतर भी आत्मावलोकन की प्रक्रिया को जन्म देते हैं।

‘पंच-परमेश्वर’ इस कहानी में अलगू चौधरी के चरित्र के माध्यम से नैतिक परिपक्वता का विकास स्पष्ट रूप से सामने आता है। जब वह पंच बनकर बैठता है, तब उसके सामने मित्र जुम्मेन के विरुद्ध निर्णय देने की कठिन स्थिति उत्पन्न होती है। प्रारम्भ में उसका मन मित्रता से प्रभावित होता है, पर पंच का पद उसे निष्पक्षता का बोध कराता है। वह समझता है कि न्याय निजी संबंधों से ऊपर होता है। अंततः वह सत्य के पक्ष में निर्णय देता है। यह अंतिम निर्णय उसके भीतर जागी नैतिक चेतना और कर्तव्यनिष्ठा का प्रमाण है।

‘नमक का दरोगा’ इस कहानी में वंशीधर की नैतिक परिपक्वता उसके अंतिम निर्णय में दिखाई देती है। उसे रिश्तों का बड़ा प्रलोभन मिलता है, पर वह अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होता। आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद वह ईमानदारी को सर्वोपरि मानता है। उसका निर्णय तत्काल लाभ के विरुद्ध जाता है, पर आत्मसम्मान की रक्षा

करता है। अंत में वही दृढ़ता उसके चरित्र की शक्ति बनती है। यहाँ नैतिक परिपक्वता इस बात में निहित है कि व्यक्ति कठिन परिस्थिति में भी सत्य का मार्ग नहीं छोड़ता।

4.2. विरोधी और नैतिक संघर्ष

मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक संघर्ष केवल नायक के भीतर चलने वाला आंतरिक द्वंद्व नहीं होता, बल्कि वह एक व्यापक सामाजिक संरचना से उत्पन्न होता है, जहाँ सत्ता, स्वार्थ, अन्याय और परंपरा जैसे विरोधी तत्व लगातार मानवीय मूल्यों की परीक्षा लेते हैं। प्रेमचंद की कहानियों में विरोधी कोई पारंपरिक "खलनायक" नहीं होता, बल्कि वह अक्सर समाज की असमानताओं, पितृसत्ता, जातिवाद और पूंजीवादी लालच का प्रतिनिधि बनकर सामने आता है। ये विरोधी पात्र या शक्तियाँ नायक की नैतिक चेतना को चुनौती देती हैं, उसके निर्णयों को प्रभावित करती हैं और कई बार उसे मार्ग बदलने पर विवश कर देती हैं। उदाहरणस्वरूप, 'कफ़न' में गरीबी और सामाजिक उपेक्षा स्वयं एक शक्तिशाली विरोधी रूप में उपस्थित हैं, जो घीसू और माधव को निष्क्रियता और मूल्यहीनता की ओर धकेलते हैं (सांगवा एवं बेरा, 2025, पृ. 1-10)। यहाँ विरोध केवल चरित्रगत नहीं, बल्कि व्यवस्था जनित है, जो नैतिकता की जगह निराशा को जन्म देती है।

प्रेमचंद का यथार्थवादी दृष्टिकोण यह स्वीकार करता है कि समाज में नैतिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता हर व्यक्ति को समान रूप से नहीं मिलती। अनेक कहानियों में यह देखा जाता है कि कैसे नायक की इच्छाओं, आदर्शों और विवेक को प्रतिरोधी शक्तियाँ नियंत्रित करती हैं। 'सद्रति' कहानी में ब्राह्मणवाद और जातिवादी व्यवस्था दुखी चमार के नैतिक अस्तित्व को नष्ट कर देती है। वहाँ पंडित घासीराम कोई राक्षसी चरित्र नहीं, बल्कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का प्रतिनिधि हैं जो अपने लाभ और अधिकार को बनाए रखने के लिए किसी भी मानवीय मूल्य को कुचलने से नहीं हिचकती (उपाध्याय, 2010, पृ. 1246)। दुखी का संघर्ष केवल एक ब्राह्मण से नहीं, बल्कि उस सोच से है जो उसे इंसान नहीं मानती। इस प्रकार विरोधी शक्तियाँ व्यक्ति के नैतिक निर्णयों को बाधित करती हैं और समाज की असमानताओं को उजागर करती हैं।

प्रेमचंद की कहानियाँ इस बात को भी उद्घाटित करती हैं कि विरोधी पात्र केवल सत्ता के भौतिक प्रतीक नहीं होते, वे विचारधारात्मक जड़ता के द्योतक भी होते हैं। 'ठाकुर का कुआँ' में ठाकुर प्रत्यक्ष रूप से कोई अत्याचार नहीं करता, लेकिन उसकी निष्क्रियता और सामाजिक पदानुक्रम की मौन स्वीकृति एक दलित स्त्री गंगी को प्यासा रहने पर मजबूर करती है। प्रेमचंद इस प्रकार के चरित्रों के माध्यम से नैतिक

उदासीनता को भी विरोध का रूप मानते हैं (खान, 2025, पृ. 91)। वहीं 'प्रेम की होली' जैसी कहानियाँ यह दिखाती हैं कि सत्ता और स्वार्थ की प्रवृत्तियाँ व्यक्ति के भीतर के मानवीय गुणों को कुंद कर देती हैं, जिससे वह दूसरों की पीड़ा के प्रति असंवेदनशील बन जाता है। यह असंवेदनशीलता सामाजिक अन्याय को स्थायी बना देती है।

प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे अपने विरोधी पात्रों को भी पूरी तरह निर्दयी या अमानवीय नहीं दिखाते। वे उनके व्यवहार के पीछे छिपे सामाजिक कारणों को उजागर करते हैं। नमक का दरोगा में पंडित अलोपीदीन रिश्त देने का प्रयास करता है, पर वह केवल व्यक्तिगत लालच का प्रतीक नहीं है। वह उस सामाजिक व्यवस्था का प्रतिनिधि है जहाँ धन और प्रभाव को शक्ति का आधार माना जाता है। उसके लिए ईमानदारी मूर्खता प्रतीत होती है। इसी तरह ठाकुर का कुआँ में ठाकुर सामाजिक ऊँच-नीच की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि ऐसे पात्र भी परंपरागत सोच और वर्गीय संस्कारों से संचालित होते हैं। इस प्रकार नैतिक पतन केवल व्यक्ति का दोष नहीं, बल्कि समाज की विकृत संरचना का परिणाम बनकर सामने आता है।

4.2.1. सत्ता और स्वार्थ की प्रवृत्ति

प्रेमचंद के साहित्य में सत्ता केवल राजनैतिक या प्रशासनिक शक्ति का संकेत नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, जातीय, आर्थिक और पितृसत्तात्मक ढाँचों के माध्यम से निरंतर कार्य करने वाली एक दमनकारी प्रवृत्ति के रूप में चित्रित होती है। उनकी कहानियों में ऐसे अनेक पात्र मिलते हैं जो सामाजिक पद, जाति-विशेषाधिकार, धन या धर्म के आधार पर दूसरों पर प्रभुत्व जमाते हैं। ये पात्र प्रायः नैतिकता के प्रतिकूल आचरण करते हैं, किंतु उन्हें समाज की संरचना समर्थन देती है। उदाहरणस्वरूप, 'ठाकुर का कुआँ' में ठाकुर स्वयं प्रत्यक्ष आदेश नहीं देता, पर उसका जातीय प्रभाव इतना सशक्त है कि एक दलित स्त्री गंगी को पानी भरने जैसी मूलभूत आवश्यकता के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। यह सत्ता की वह प्रवृत्ति है जो मौन रहते हुए भी अन्याय को निरंतर बनाए रखती है (प्रियांका एवं सेकर, 2022, पृ. 4)।

इसी प्रकार सद्गति में पंडित घासीराम दुखी चमार से कठोर श्रम कराता है। दुखी अपनी बेटी के विवाह हेतु शुभ मुहूर्त निकलवाने के लिए पंडित के घर जाता है, पर उसे पूरे दिन लकड़ी काटने और अन्य कामों में लगा दिया जाता है। अत्यधिक श्रम और भूख के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के बाद भी उसे सम्मान नहीं मिलता। पंडित और गाँव वाले उसके शव को छूने से बचते हैं। यहाँ धार्मिक सत्ता और जाति आधारित व्यवस्था मिलकर मानवीय संवेदना को दबा देती हैं (उपाध्याय, 2010, पृ.

1246)। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से दिखाते हैं कि जब सत्ता स्वार्थ और सामाजिक अहंकार से जुड़ जाती है, तो वह नैतिकता का आधार नहीं रहती। न्याय और धर्म का स्थान भय, लाभ और प्रतिष्ठा ले लेते हैं। इस प्रकार नैतिक पतन केवल व्यक्ति का दोष नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना की विकृति बनकर सामने आता है।

यह सत्ता का वह रूप है, जिसमें बाह्य वैधानिकता तो दिखाई देती है, लेकिन आंतरिक नैतिकता क्षीण हो जाती है। प्रेमचंद का दृष्टिकोण यह है कि जब समाज में सत्ता का आधार नैतिकता के स्थान पर जन्म, जाति या धन बन जाए, तो स्वार्थ की प्रवृत्तियाँ उसे भीतर से खोखला कर देती हैं (रोचर, 1970, पृ. 226)। उनकी कहानियों में सत्ता की प्रवृत्ति न केवल पुरुष पात्रों तक सीमित है, बल्कि कुछ स्त्री पात्रों में भी सामाजिक संरचना के भीतर सत्ता और स्वार्थ के तत्त्व दिखाई देते हैं। 'बड़े घर की बेटी' कहानी में नायिका आनंदी में प्रारंभ से ही उसके भीतर अपने कुल का गौरव और आत्मसम्मान स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसके कारण पारिवारिक संबंधों में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

यहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि सत्ता जब अहंकार और स्वार्थ के साथ जुड़ती है, तो वह संबंधों को भी दूषित कर सकती है। इस प्रकार, प्रेमचंद की दृष्टि में सत्ता केवल शोषण का माध्यम नहीं, बल्कि एक नैतिक चुनौती भी है, जो व्यक्ति को विवेक और लोभ के द्वंद्व में खड़ा कर देती है। उनकी कहानियाँ पाठकों को यह सोचने के लिए प्रेरित करती हैं कि क्या सत्ता का उपयोग सेवा और न्याय के लिए किया जा सकता है, या वह सदा स्वार्थ और दमन की दिशा में ही प्रवृत्त होती रहेगी।

4.2.2. अन्याय और नैतिक पतन

प्रेमचंद के साहित्य में अन्याय एक स्थूल घटना नहीं, बल्कि एक गहरे नैतिक संकट की उत्पत्ति है। उनकी कहानियों में अन्याय का स्वरूप बहुआयामी है – यह कभी जाति के रूप में, कभी लिंगभेद, कभी गरीबी और कभी सामाजिक शोषण के रूप में उभरता है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि जब व्यक्ति या समाज किसी वर्ग विशेष के अधिकारों को लगातार कुचलता है, तो वह केवल सामाजिक असंतुलन ही नहीं पैदा करता, बल्कि नैतिक मूल्यों को भी क्षीण करता है। 'सद्गति' जैसी कहानियाँ इस बात का उदाहरण हैं कि कैसे धार्मिक व्यवस्था के नाम पर निम्न जातियों के साथ अन्याय होता है, और अंततः वे अपनी मानवीय गरिमा तक खो बैठते हैं। दुखी चमार का जीवन और मृत्यु दोनों एक ऐसे समाज का आईना हैं, जो पवित्रता की आड़ में असमानता को नैतिकता घोषित कर देता है (कुमार, 2022, पृ. 122)। यहाँ अन्याय केवल बाह्य रूप में नहीं, बल्कि पूरे सामाजिक ढाँचे में गहराई से निहित दिखाई देता है।

प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि जब अन्याय लम्बे समय तक बना रहता है, तो वह व्यक्ति को धीरे-धीरे नैतिक रूप से खोखला कर देता है। 'कफ़न' की कहानी में घीसू और माधव का व्यवहार अमानवीय प्रतीत होता है – वे अपनी मृत बहू/पत्नी बुधिया के लिए कफ़न तक नहीं खरीदते, बल्कि उसके नाम पर मिले पैसों से शराब पी लेते हैं। लेकिन प्रेमचंद इस आचरण की पृष्ठभूमि में उस सामाजिक और आर्थिक अन्याय को रेखांकित करते हैं जिसने इन पात्रों को इस स्थिति तक पहुँचा दिया है। वर्षों की उपेक्षा, भूख और सामाजिक अपमान ने उनके भीतर से नैतिक संवेदना को क्षीण कर दिया है। यह नैतिक पतन उनका स्वेच्छिक चयन नहीं, बल्कि उनके चारों ओर फैले अन्याय की अनिवार्य परिणति है। इसके अतिरिक्त, प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में भी यह दिखाया गया है कि कैसे आर्थिक शोषण और सामाजिक अन्याय धीरे-धीरे नैतिक संकट को जन्म देते हैं। इस रचना का प्रमुख पात्र होरी महतो सामाजिक व्यवस्था के दबाव में निरंतर समझौते करता है। उसका संघर्ष केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक भी है—वह परंपरा, प्रतिष्ठा और परिवार के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है, किंतु शोषणकारी व्यवस्था उसे अंततः तोड़ देती है।

'नमक का दारोगा' प्रेमचंद की उन कहानियों में से है जहाँ अन्याय और नैतिक पतन का सीधा टकराव दिखाई देता है। वंशीधर एक ऐसे प्रशासनिक ढाँचे में कार्य करता है जहाँ रिश्तत लेना सामान्य व्यवहार माना जाता है। उसके सामने भारी धनराशि का प्रलोभन रखा जाता है, ताकि वह नियमों को तोड़ दे। यहाँ संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि मूल्य-व्यवस्था का है। यदि वह रिश्तत स्वीकार करता, तो वह भी उसी भ्रष्ट तंत्र का हिस्सा बन जाता। परंतु वह अपने कर्तव्य और ईमानदारी को प्राथमिकता देता है। समाज की दृष्टि में उसका निर्णय अव्यावहारिक लगता है, किंतु यही उसकी नैतिक दृढ़ता है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब अन्याय को सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है, तब सत्य और ईमानदारी असामान्य प्रतीत होने लगते हैं (रहमतुल्ला, 2017, पृ. 112)।

'ठाकुर का कुआँ' में गंगी का संघर्ष सामाजिक अन्याय की गहरी जड़ें उजागर करता है। वह केवल पानी लेने जाती है, किंतु यह साधारण क्रिया उसके लिए साहस का कार्य बन जाती है। जाति आधारित व्यवस्था उसे सार्वजनिक संसाधनों से दूर रखती है। यहाँ अन्याय किसी एक व्यक्ति की क्रूरता नहीं, बल्कि पूरे सामाजिक ढाँचे की देन है। ठाकुर की सत्ता और सामाजिक वर्चस्व गंगी को भय में जीने पर मजबूर करते हैं। उसकी प्यास केवल शारीरिक नहीं, बल्कि सम्मान और अधिकार की प्यास भी है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से बताते हैं कि जब समाज जन्म के आधार पर अधिकार

बाँटता है, तब नैतिक समानता समाप्त हो जाती है। यह कहानी दिखाती है कि अन्याय मौन संरचनाओं में भी जीवित रहता है।

‘पंच परमेश्वर’ में जुम्मन शेख का चरित्र नैतिक उत्थान और पतन दोनों को सामने लाता है। प्रारंभ में वह अपने स्वार्थ के कारण न्याय से भटक जाता है। मित्रता और व्यक्तिगत लाभ उसकी दृष्टि को धुँधला कर देते हैं। परंतु जब उसे स्वयं पंच के पद पर बैठने का अवसर मिलता है, तब वह स्थिति की गंभीरता को समझता है। उसे अनुभव होता है कि न्याय का स्थान व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर है। यह आत्मबोध उसे निष्पक्ष निर्णय लेने की शक्ति देता है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि अन्याय केवल पीड़ित को ही नहीं, बल्कि अन्यायी को भी भीतर से कमजोर करता है। जुम्मन का परिवर्तन इस बात का प्रमाण है कि आत्मचिंतन नैतिक पुनर्स्थापन का आधार बन सकता है।

‘बूढ़ी काकी’ में पारिवारिक उपेक्षा अन्याय का रूप ले लेती है। वृद्धा की भूख और अपमान केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि संवेदनहीनता का परिणाम है। परिवार उसे बोझ समझने लगता है। भोजन जैसे मूल अधिकार से वंचित करना उस मानसिकता को उजागर करता है जो उपयोगिता के आधार पर सम्मान देती है। यहाँ अन्याय घर की चारदीवारी के भीतर जन्म लेता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि जब परिवार में करुणा समाप्त होती है, तो नैतिक पतन शुरू हो जाता है। अंत में पश्चाताप की भावना यह संकेत देती है कि मनुष्य के भीतर अभी भी नैतिक चेतना शेष है। यह कहानी बताती है कि सामाजिक सुधार की शुरुआत परिवार से होती है।

‘ईदगाह’ में आर्थिक असमानता की पृष्ठभूमि स्पष्ट दिखाई देती है। हामिद का जीवन अभाव में बीतता है, फिर भी वह अपनी व्यक्तिगत इच्छा का त्याग कर दादी के लिए चिमटा खरीदता है। यह निर्णय उसकी नैतिक परिपक्वता को दर्शाता है। यहाँ अन्याय आर्थिक विषमता के रूप में उपस्थित है, परंतु हामिद का व्यवहार बताता है कि नैतिकता परिस्थिति पर निर्भर नहीं होती। प्रेमचंद यह संदेश देते हैं कि अभाव भी मनुष्य की संवेदना को समाप्त नहीं कर सकता। हामिद का त्याग उस समाज के लिए प्रश्न बन जाता है जहाँ संपन्न लोग भी स्वार्थ में डूबे रहते हैं। इस कथा में नैतिकता अन्याय के विरुद्ध मौन प्रतिरोध के रूप में उभरती है।

‘दो बैलों की कथा’ में हीरा और मोती पर होने वाला अत्याचार प्रतीकात्मक रूप से सामाजिक शोषण को उजागर करता है। पशुओं के माध्यम से प्रेमचंद उस मानसिकता पर प्रहार करते हैं जो शक्तिशाली को निर्बल पर अत्याचार का अधिकार देती है। यहाँ अन्याय केवल शारीरिक कष्ट नहीं, बल्कि संवेदना की कमी का परिणाम है।

बैलों का विद्रोह यह संकेत देता है कि अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। यह कहानी बताती है कि शोषण चाहे किसी भी रूप में हो, वह अंततः नैतिक असंतुलन पैदा करता है। प्रेमचंद पशु पात्रों के माध्यम से मानव समाज की क्रूरता और संवेदनहीनता को उजागर करते हैं।

4.2.3. नैतिक दुविधा की स्थितियाँ

प्रेमचंद की कहानियाँ जीवन के यथार्थ से इतनी गहराई से जुड़ी हैं कि उनके पात्र केवल अच्छे या बुरे नहीं, बल्कि निरंतर नैतिक दुविधाओं से जूझते हुए दिखाई देते हैं। यह दुविधा सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक परिस्थितियों से उत्पन्न होती है, जहाँ व्यक्ति को अपने विवेक और समाज की अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाना पड़ता है। 'पंच परमेश्वर' इसका सशक्त उदाहरण है, जहाँ जुम्मन शेख को पंच बनाकर जब अपने मित्र अलगू चौधरी के विरुद्ध निर्णय देना पड़ता है, तो वह गहरे नैतिक द्वंद्व में पड़ जाता है। प्रश्न यह है कि क्या वह मित्रता निभाए या न्याय का पालन करे? यह दुविधा उसके चरित्र को गंभीरता देती है। अंततः जब वह निष्पक्ष निर्णय देता है, तब यह स्पष्ट होता है कि न्याय का पद व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि नैतिकता केवल विचार नहीं, बल्कि साहसिक निर्णय की प्रक्रिया है।

'नमक का दारोगा' में भी वंशीधर एक गहरी नैतिक दुविधा से गुजरता है। उसके सामने धन और ईमानदारी के बीच चुनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। पंडित अलोपीदीन द्वारा दी गई भारी रिश्तत उसे विचलित करने का प्रयास करती है, परंतु वह अपने कर्तव्य से समझौता नहीं करता। यहाँ संघर्ष बाहरी कम और आंतरिक अधिक है। यदि वह रिश्तत स्वीकार कर लेता, तो वह भी उसी भ्रष्ट तंत्र का अंग बन जाता। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से दिखाते हैं कि जब समाज में भ्रष्टाचार सामान्य हो जाए, तब सत्य पर टिके रहना सबसे बड़ी नैतिक परीक्षा बन जाता है। वंशीधर का निर्णय यह सिद्ध करता है कि नैतिकता परिस्थितियों की दासी नहीं, बल्कि व्यक्ति की आंतरिक दृढ़ता पर आधारित होती है (कुमार, 2022, पृ. 120)।

'ठाकुर का कुआँ' में गंगी की स्थिति भी एक मार्मिक नैतिक दुविधा को प्रकट करती है। उसके सामने प्रश्न है कि क्या वह जातिगत भय के कारण अपने बीमार पति जोखू को गंदा पानी पिलाए या साहस करके ठाकुर के कुएँ से पानी ले आए। यह केवल पानी भरने का कार्य नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देने का साहस है। गंगी का प्रत्येक कदम डर और अपमान की आशंका से भरा है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि नैतिक दुविधा केवल न्याय देने वालों की नहीं, बल्कि अन्याय सहने वालों की भी

होती है। यह संघर्ष बताता है कि समाज की संरचनाएँ व्यक्ति को किस प्रकार आंतरिक भय और विवशता में बाँध देती हैं (रहमतुल्ला, 2017, पृ. 98)।

‘बूढ़ी काकी’ में पारिवारिक स्तर पर नैतिक दुविधा उभरती है। परिवार के सदस्य जानते हैं कि वृद्धा की उपेक्षा अनुचित है, फिर भी स्वार्थ और प्रतिष्ठा के कारण उसे भोजन से वंचित रखते हैं। विशेषकर रूपा के भीतर यह संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है। एक ओर सामाजिक दिखावा है, दूसरी ओर करुणा की आवाज। अंततः जब करुणा जागती है और वह काकी को भोजन कराती है, तब यह निर्णय केवल दया नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्स्मरण बन जाता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि परिवार के भीतर भी नैतिकता की परीक्षा होती है, और संवेदना ही उसका समाधान बनती है (सेंगुसा, 2024, पृ. 105)।

‘पूस की रात’ में हल्कू की दुविधा अत्यंत मानवीय है। खेत की रखवाली उसका कर्तव्य है, परंतु कड़ाके की ठंड उसके जीवन पर संकट बन जाती है। वह जानता है कि यदि फसल नष्ट हुई तो आर्थिक क्षति होगी, किंतु शरीर की सीमा भी एक सच्चाई है। जब वह ठंड से बचने के लिए अलाव की तलाश करता है और अंततः खेत की रक्षा छोड़ देता है, तो यह निर्णय नैतिक पराजय नहीं, बल्कि जीवन रक्षा का स्वाभाविक विकल्प है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि नैतिकता कठोर सिद्धांत नहीं, बल्कि परिस्थितियों से जुड़ी संवेदनशील प्रक्रिया है (शर्मा, 2024, पृ. 150)।

‘ईदगाह’ में हामिद की दुविधा भी उल्लेखनीय है। मेले में खिलौने और मिठाइयाँ उसे आकर्षित करती हैं, परंतु वह अपनी दादी अमीना की जलती उँगलियों को याद करता है। उसके सामने चुनाव है—क्षणिक सुख या उपयोगी वस्तु। वह चिमटा खरीदकर त्याग का मार्ग चुनता है। यह निर्णय उसकी उम्र से कहीं अधिक परिपक्वता दर्शाता है। प्रेमचंद बताते हैं कि नैतिक दुविधा का समाधान केवल बड़े लोग ही नहीं, बच्चे भी कर सकते हैं, यदि उनमें संवेदना जीवित हो।

इन सभी कथाओं में प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिक दुविधाएँ जीवन का स्वाभाविक अंग हैं। कोई भी निर्णय पूर्णतः सरल नहीं होता। वह व्यक्ति की परिस्थितियों, संवेदना और सामाजिक संरचना से निर्मित होता है। उनके पात्र यह सिद्ध करते हैं कि नैतिक संघर्ष दुर्बलता नहीं, बल्कि चरित्र की गहराई का प्रमाण है।

4.2.4. टकराव और चरित्र की परीक्षा

मुंशी प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता कोई स्थिर या पूर्वनिर्धारित धारणा नहीं, बल्कि एक गतिशील प्रक्रिया है, जो टकराव की स्थिति में उजागर होती है।

प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि चरित्र की सच्ची पहचान उसके कथनों में नहीं, बल्कि संकट की घड़ी में लिए गए निर्णयों में होती है। 'पंच परमेश्वर' में जुम्मन शेख जब पंच बनकर अलगू चौधरी के मामले में निर्णय देता है, तो वह निजी संबंध और न्याय के बीच फँस जाता है। उसका निष्पक्ष निर्णय केवल न्यायिक कर्तव्य नहीं, बल्कि नैतिक जागरण का प्रतीक है। इसी प्रकार 'ईदगाह' में हामिद मेले की आकर्षक वस्तुओं के स्थान पर अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है। यह त्याग उसकी संवेदनशीलता और आत्मबोध का प्रमाण है। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि नैतिकता आयु या पद से नहीं, बल्कि अंतर्मन की जागरूकता से निर्मित होती है।

प्रेमचंद के पात्र सैद्धांतिक नैतिकता के प्रतीक नहीं, बल्कि संघर्षशील मनुष्य हैं। वे गिरते हैं, संभलते हैं और अनुभव से नैतिक पहचान गढ़ते हैं। 'नमक का दारोगा' में वंशीधर के सामने धन और कर्तव्य का टकराव उपस्थित होता है। पंडित अलोपीदीन की रिश्तत उसके धैर्य और ईमानदारी की परीक्षा लेती है, पर वह नियम का पालन करता है। इसी प्रकार 'पूस की रात' में हल्कू खेत की रखवाली और अपनी जीवन-रक्षा के बीच संघर्ष करता है। उसका अलाव के पास बैठ जाना सामाजिक दृष्टि से कमजोरी प्रतीत हो सकता है, किंतु प्रेमचंद उसे मानवीय सीमा और थकान से जोड़ते हैं। 'ठाकुर का कुआँ' में गंगी जातिगत भय और पति जोखू की आवश्यकता के बीच निर्णय लेती है। ये कथाएँ सिद्ध करती हैं कि नैतिकता जीवन की कठोर परिस्थितियों में आकार ग्रहण करती है।

प्रेमचंद की कहानियाँ यह भी रेखांकित करती हैं कि टकराव चरित्र की परीक्षा का वास्तविक क्षण है। 'बूढ़ी काकी' में रूपा के भीतर करुणा और सामाजिक दिखावे का संघर्ष दिखाई देता है। अंततः जब वह काकी को भोजन कराती है, तो यह परिवर्तन नैतिक पुनर्जागरण का संकेत देता है। 'कफ़न' में घीसू और माधव का आचरण सामाजिक दृष्टि से अमानवीय प्रतीत होता है, परंतु प्रेमचंद उनकी संवेदनहीनता के पीछे छिपे आर्थिक और सामाजिक शोषण को भी उजागर करते हैं। इस प्रकार लेखक केवल आदर्श प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि विफलताओं को भी नैतिक प्रक्रिया का हिस्सा मानते हैं। उनके लिए निर्णय का क्षण ही चरित्र का सत्य है। इसी कारण प्रेमचंद की कहानियाँ समाज का दर्पण होने के साथ-साथ आत्मचिंतन का माध्यम भी बन जाती हैं, जहाँ पाठक स्वयं को नैतिक कसौटी पर परखता है।

4.2.5. प्रतीकात्मक विरोधी पात्र

प्रेमचंद के साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके विरोधी पात्र केवल किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे व्यापक सामाजिक, धार्मिक

और नैतिक संरचनाओं के प्रतीक बनकर उभरते हैं। 'सद्गति' में पंडित घासीराम केवल एक ब्राह्मण पात्र नहीं, बल्कि उस जातिवादी धार्मिक व्यवस्था का प्रतिनिधि है, जो शुद्धता और कर्मकांड के नाम पर दुखी चमार से कठोर श्रम करवाता है और अंततः उसे अमानवीय उपेक्षा में मरने के लिए छोड़ देता है। यहाँ विरोधी केवल एक मनुष्य नहीं, बल्कि वह मानसिकता है जो धर्म के आवरण में अन्याय को उचित ठहराती है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि नैतिक संघर्ष व्यक्ति और व्यक्ति के बीच नहीं, बल्कि मनुष्य और अमानवीय व्यवस्था के बीच है। यही कारण है कि यह विरोध प्रतीकात्मक स्तर पर अधिक प्रभावी बन जाता है (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 118-120)।

इसी प्रकार 'ठाकुर का कुआँ' में ठाकुर का चरित्र प्रत्यक्ष अत्याचार नहीं करता, फिर भी वह पूरे सामाजिक भय और जातिगत वर्चस्व का प्रतीक बन जाता है। गंगी को पानी लेने से रोकने वाला कोई स्पष्ट आदेश नहीं, बल्कि ठाकुर की सामाजिक हैसियत और उससे जुड़ी दहशत है। यहाँ विरोधी व्यक्ति से अधिक वह संरचना है, जिसने संसाधनों पर एक वर्ग का अधिकार स्थायी बना दिया है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि अन्याय कभी-कभी मौन रूप में भी उपस्थित रहता है। यह मौन सत्ता ही वास्तविक विरोधी है। इस कथा में खलनायक का चेहरा स्पष्ट नहीं, बल्कि वह परंपरा, चुप्पी और सामाजिक स्वीकार्यता में छिपा हुआ है। यही दृष्टि प्रेमचंद के यथार्थवाद को गहराई प्रदान करती है।

'कफ़न' में सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था है जिसने घीसू और माधव को संवेदनहीन बना दिया है। वे अपनी मृत बुधिया के लिए कफ़न खरीदने के बजाय शराब पी लेते हैं। पहली दृष्टि में वे ही विरोधी प्रतीत होते हैं, परंतु प्रेमचंद संकेत करते हैं कि असली विरोधी वह गरीबी और शोषण की व्यवस्था है, जिसने उनके भीतर से करुणा और उत्तरदायित्व को क्षीण कर दिया है। इसी प्रकार 'नमक का दारोगा' में पंडित अलोपीदीन केवल एक धनी व्यक्ति नहीं, बल्कि धन और प्रभाव की उस शक्ति का प्रतीक है, जो प्रशासन को प्रभावित कर सकती है। यहाँ भ्रष्टाचार का चेहरा व्यक्तिगत है, पर उसका स्वरूप संस्थागत है। इन कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद यह सिद्ध करते हैं कि उनके विरोधी पात्र केवल कथा को आगे बढ़ाने के साधन नहीं, बल्कि समाज के गहरे नैतिक संकट के प्रतीक हैं, जो पाठक को आत्ममंथन के लिए बाध्य करते हैं।

4.2.6. संघर्ष के परिणाम और प्रभाव

प्रेमचंद की कहानियाँ केवल संघर्ष का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि यह भी दिखाती हैं कि हर संघर्ष का कोई गहरा परिणाम अवश्य होता है। यह परिणाम कभी चरित्र के

भीतर परिवर्तन के रूप में आता है, तो कभी समाज की संरचना पर प्रश्नचिह्न बनकर उभरता है। ‘पंच परमेश्वर’ में जुम्मन शेख का संघर्ष केवल व्यक्तिगत द्वेष और न्याय के बीच नहीं था, बल्कि उस निर्णय का परिणाम उसके भीतर एक नई नैतिक दृष्टि का उदय है। जब वह निष्पक्ष होकर निर्णय देता है, तब उसका परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है। यह केवल एक मुकदमे का अंत नहीं, बल्कि उसके चरित्र का पुनर्जन्म है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से दिखाते हैं कि आत्मसंघर्ष व्यक्ति को परिपक्व बनाता है और पाठकों के भीतर भी न्यायबोध जाग्रत करता है (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 118-120)।

इसी प्रकार ‘ईदगाह’ में हामिद का आंतरिक संघर्ष उसकी नैतिक परिपक्वता का कारण बनता है। मेले में खिलौनों और मिठाइयों का आकर्षण उसके सामने उपस्थित है, किंतु वह अपनी दादी अमीना की पीड़ा को प्राथमिकता देता है। उसका चिमटा खरीदना केवल त्याग का संकेत नहीं, बल्कि संबंधों की गहराई का परिणाम है। इस छोटे से निर्णय का प्रभाव बहुत व्यापक है—दादी के मन में गर्व और स्नेह का भाव जागता है, और पाठक भी संवेदना की शक्ति को पहचानता है। यहाँ संघर्ष का परिणाम आत्मविकास और संबंधों की मजबूती है। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि नैतिक निर्णय व्यक्ति को भीतर से समृद्ध करते हैं और समाज में करुणा का विस्तार करते हैं।

कुछ कहानियों में संघर्ष का परिणाम दुखद होता है, परंतु उसका प्रभाव अधिक तीव्र बन जाता है। ‘सद्गति’ में दुखी चमार का संघर्ष धार्मिक और जातिगत अन्याय के विरुद्ध है, किंतु उसका अंत मृत्यु में होता है। यह परिणाम किसी व्यक्तिगत विफलता का संकेत नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की क्रूरता को उजागर करता है, जो मनुष्य को सम्मान से वंचित करती है। इसी प्रकार ‘पूस की रात’ में हल्कू का संघर्ष आर्थिक अभाव और शारीरिक पीड़ा के बीच है। खेत की रक्षा न कर पाने का परिणाम उसकी फसल की क्षति है, परंतु प्रेमचंद इसे नैतिक पतन नहीं, बल्कि मानवीय सीमा का स्वीकार मानते हैं। इन परिणामों के माध्यम से लेखक समाज को आत्मावलोकन के लिए प्रेरित करते हैं।

संघर्षों के ये परिणाम प्रेमचंद की कहानियों को सामाजिक दर्पण बना देते हैं। ‘बूढ़ी काकी’ में परिवार की उपेक्षा अंततः पश्चाताप और करुणा में बदलती है, जो यह संकेत देती है कि परिवर्तन संभव है। प्रेमचंद का उद्देश्य केवल कथा कहना नहीं, बल्कि यह दिखाना है कि संघर्ष व्यक्ति और समाज दोनों को प्रभावित करता है। उनके पात्रों के निर्णय और उनके परिणाम यह सिखाते हैं कि नैतिकता शब्दों से नहीं, कर्म से सिद्ध होती है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ समय से परे होकर भी आज प्रासंगिक बनी हुई हैं।

4.3. सामाजिक परिवेश और चरित्र की नैतिक दिशा

मुंशी प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक यथार्थ के अनेक स्तरों को गहराई से उद्घाटित करता है बल्कि अपने समय, वर्ग और परिवेश से निर्मित व्यक्तित्व हैं। प्रेमचंद के यहाँ नैतिक दिशा किसी अमूर्त सिद्धांत से नहीं, बल्कि जाति, वर्ग और सामाजिक संरचना से प्रभावित होती है। 'सद्गति' का दुखी चमार इसका सशक्त उदाहरण है। वह ब्राह्मण पंडित घासीराम को प्रसन्न करने के लिए कठोर श्रम करता है, क्योंकि उसकी सामाजिक स्थिति उसे यही सिखाती है कि विनम्रता और सेवा ही उसका धर्म है। किंतु वही व्यवस्था उसे अपमान और मृत्यु तक पहुँचा देती है। यहाँ स्पष्ट होता है कि सामाजिक संरचना व्यक्ति के नैतिक विकल्पों को सीमित कर देती है और उसका विवेक भी उसी ढाँचे के भीतर बंधा रहता है (सांगवा एवं बेरा, 2025, पृ. 1-10)।

प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि परिवार और संस्कार नैतिक दिशा को गहराई से प्रभावित करते हैं। 'ईदगाह' में हामिद अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है। उसका त्याग केवल क्षणिक संवेदना नहीं, बल्कि पारिवारिक संस्कारों से उपजा नैतिक निर्णय है। इसके विपरीत 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी और उसके पति लाल बिहारी के बीच उत्पन्न तनाव सामाजिक प्रतिष्ठा और अहं से जुड़ा है। यहाँ उच्च कुल और सामाजिक हैसियत का दबाव संबंधों में दूरी पैदा करता है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक स्थिति व्यक्ति की नैतिक कसौटी को आकार देती है। जहाँ संस्कार करुणा को जन्म देते हैं, वहीं अहं और प्रतिष्ठा विघटन का कारण बन सकते हैं (नाहिद, 2020, पृ. 58)।

आर्थिक परिस्थिति भी प्रेमचंद के पात्रों की नैतिक दिशा को बदल देती है। 'कफ़न' में घीसू और माधव की निर्धनता उन्हें इस हद तक असंवेदनशील बना देती है कि वे बुधिया के लिए कफ़न खरीदने के बजाय शराब पी लेते हैं। यह निर्णय नैतिक दृष्टि से निंदनीय प्रतीत होता है, परंतु प्रेमचंद उसके पीछे छिपी सामाजिक उपेक्षा को उजागर करते हैं। वर्षों की भूख और तिरस्कार ने उनकी संवेदना को कुंठित कर दिया है। यहाँ लेखक यह संकेत देते हैं कि जब समाज किसी वर्ग को लगातार हाशिए पर रखता है, तो उसकी नैतिक समझ भी विकृत हो जाती है (उपाध्याय, 2010, पृ. 1234)।

'नमक का दारोगा' में भी सामाजिक परिवेश की भूमिका स्पष्ट है। वंशीधर ऐसे प्रशासनिक ढाँचे में कार्य करता है जहाँ रिश्त और प्रभाव सामान्य व्यवहार बन चुके हैं। उसके सामने पंडित अलोपीदीन का धन और प्रभाव है, जो व्यवस्था की वास्तविकता

को दर्शाता है। वंशीधर का ईमानदार निर्णय इस परिवेश के विरुद्ध खड़ा होता है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि नैतिक दिशा परिवेश से प्रभावित अवश्य होती है, किंतु व्यक्ति यदि दृढ़ रहे तो वह उसी संरचना के भीतर प्रतिरोध भी कर सकता है (कुमार, 2022, पृ. 103-105)।

इसी प्रकार 'बूढ़ी काकी' में पारिवारिक संरचना नैतिकता की दिशा निर्धारित करती है। वृद्धा के प्रति उपेक्षा सामाजिक मान्यता और दिखावे से जुड़ी है। किंतु अंततः करुणा का भाव जागृत होता है और परिवार अपने व्यवहार पर पुनर्विचार करता है। यह परिवर्तन दर्शाता है कि सामाजिक परिवेश चाहे जितना कठोर हो, उसके भीतर सुधार की संभावना बनी रहती है। प्रेमचंद इन कथाओं के माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि नैतिक दिशा न तो पूर्णतः व्यक्तिगत होती है और न ही पूरी तरह सामाजिक वह दोनों के जटिल संबंध से निर्मित होती है (सेंगुसा, 2024, पृ. 88)।

4.3.1. वर्ग और आर्थिक स्थिति का प्रभाव

मुंशी प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक यथार्थ के अनेक स्तरों को गहराई से उद्घाटित करता है। उनके पात्र आदर्शवादी कल्पनाओं के प्रतीक नहीं, बल्कि अपने समय, वर्ग और परिवेश से निर्मित जीवंत व्यक्तित्व हैं। प्रेमचंद के यहाँ नैतिक दिशा किसी अमूर्त सिद्धांत से निर्धारित नहीं होती, बल्कि जाति, वर्ग और सामाजिक संरचना से प्रभावित होती है। 'सद्गति' का दुखी चमार इसका सशक्त उदाहरण है। वह ब्राह्मण पंडित घासीराम को प्रसन्न करने के लिए कठोर श्रम करता है, क्योंकि उसकी सामाजिक स्थिति उसे यही सिखाती है कि विनम्रता और सेवा ही उसका धर्म है। किंतु वही व्यवस्था उसे अपमान और अंततः मृत्यु तक पहुँचा देती है। यहाँ स्पष्ट होता है कि सामाजिक संरचना व्यक्ति के नैतिक विकल्पों को सीमित कर देती है और उसका विवेक भी उसी ढाँचे के भीतर बँधा रहता है (सांगवा एवं बेरा, 2025, पृ. 1-10)।

प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि परिवार और संस्कार नैतिक दिशा को गहराई से प्रभावित करते हैं। 'ईदगाह' में हामिद अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदता है। उसका त्याग केवल क्षणिक भावुकता नहीं, बल्कि पारिवारिक संस्कारों से उपजा नैतिक निर्णय है। इसके विपरीत 'बड़े घर की बेटी' में आनंदी और उसके पति लाल बिहारी के बीच उत्पन्न तनाव सामाजिक प्रतिष्ठा और अहं से जुड़ा है। उच्च कुल और सामाजिक हैसियत का दबाव संबंधों में दूरी उत्पन्न करता है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक स्थिति व्यक्ति की नैतिक कसौटी को आकार देती है। जहाँ संस्कार करुणा और त्याग को जन्म देते हैं, वहीं अहं और प्रतिष्ठा संबंधों के विघटन का कारण बन सकते हैं (नाहिद, 2020, पृ. 58)।

आर्थिक परिस्थिति भी प्रेमचंद के पात्रों की नैतिक दिशा को गहराई से प्रभावित करती है। 'कफ़न' में घीसू और माधव की निर्धनता उन्हें इस हद तक संवेदनहीन बना देती है कि वे बुधिया के लिए कफ़न खरीदने के बजाय शराब पी लेते हैं। यह निर्णय नैतिक दृष्टि से निंदनीय प्रतीत होता है, परंतु प्रेमचंद उसके पीछे छिपी दीर्घकालिक सामाजिक उपेक्षा और अभाव को उजागर करते हैं। निरंतर भूख, तिरस्कार और हाशिए पर जीवन ने उनकी नैतिक संवेदना को कुंठित कर दिया है। यहाँ लेखक संकेत करते हैं कि जब समाज किसी वर्ग को लगातार वंचित रखता है, तो उसकी नैतिक समझ भी विकृत हो सकती है (उपाध्याय, 2010, पृ. 1234)।

'नमक का दारोगा' में भी सामाजिक परिवेश की भूमिका स्पष्ट रूप से सामने आती है। वंशीधर ऐसे प्रशासनिक ढाँचे में कार्य करता है जहाँ रिश्तत और प्रभाव सामान्य व्यवहार बन चुके हैं। उसके सामने पंडित अलोपीदीन का धन और सामाजिक प्रभाव है, जो व्यवस्था की वास्तविकता को दर्शाता है। वंशीधर का ईमानदार निर्णय इसी परिवेश के विरुद्ध एक नैतिक प्रतिरोध बनकर उभरता है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि नैतिक दिशा परिवेश से प्रभावित अवश्य होती है, किंतु दृढ़ चरित्र वाला व्यक्ति उसी संरचना के भीतर रहते हुए भी सत्य का मार्ग चुन सकता है (कुमार, 202, पृ. 103-105)।

इसी प्रकार 'बूढ़ी काकी' में पारिवारिक संरचना नैतिकता की दिशा निर्धारित करती है। वृद्धा के प्रति उपेक्षा सामाजिक मान्यता, प्रतिष्ठा और दिखावे से जुड़ी है। परिवार अपनी छवि बचाने में अधिक रुचि रखता है, परंतु अंततः करुणा का भाव जागृत होता है और व्यवहार में परिवर्तन आता है। यह परिवर्तन इस बात का संकेत है कि सामाजिक परिवेश चाहे जितना कठोर हो, उसके भीतर सुधार की संभावना बनी रहती है। प्रेमचंद इन कथाओं के माध्यम से स्थापित करते हैं कि नैतिक दिशा न तो पूर्णतः व्यक्तिगत होती है और न ही पूरी तरह सामाजिक, बल्कि वह दोनों के जटिल अंतर्संबंध से निर्मित होती है (सेंगुसा, 2024, पृ. 88)।

4.3.2. परंपरा और आधुनिकता का टकराव

प्रेमचंद की कहानियाँ भारतीय समाज के उस संक्रमण काल का सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं, जब परंपरा और आधुनिकता के बीच गहरा संघर्ष चल रहा था। यह संघर्ष केवल बाहरी रीति-रिवाजों तक सीमित नहीं था, बल्कि व्यक्ति की चेतना, संबंधों, कर्तव्यों और आत्मबोध तक फैला हुआ था। प्रेमचंद इस टकराव को केवल सामाजिक परिवर्तन के रूप में नहीं, बल्कि एक गंभीर नैतिक चुनौती के रूप में चित्रित करते हैं। उनके पात्र धर्म और विवेक, परंपरा और स्वतंत्रता, कर्तव्य और अधिकार के बीच झूलते

हुए दिखाई देते हैं। 'सद्गति' में दुखी चमार का जीवन इस संघर्ष का प्रतीक है। वह जातीय व्यवस्था के भीतर रहकर धार्मिक परंपरा का पालन करता है, किंतु वही परंपरा उसे अपमान और मृत्यु तक पहुँचा देती है। यहाँ परंपरा नैतिकता का नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय का माध्यम बन जाती है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि आधुनिक चेतना का अभाव व्यक्ति को अपने अधिकारों से वंचित कर देता है, और उसे परंपरा के नाम पर शोषण स्वीकार करना पड़ता है (सांगवा एवं बेरा, 2025, पृ. 1-10)।

'नमक का दारोगा' में भी परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वंशीधर एक ऐसे प्रशासनिक ढाँचे का हिस्सा है जहाँ रिश्त और प्रभाव सामाजिक परंपरा का रूप ले चुके हैं। उसके सामने पंडित अलोपीदीन का धन और प्रभाव है, जो उस पुरानी व्यवस्था का प्रतीक है जहाँ नैतिकता से अधिक प्रतिष्ठा और संबंधों को महत्व दिया जाता है। किंतु वंशीधर आधुनिक नैतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो नियम और न्याय को प्राथमिकता देती है। उसका निर्णय केवल व्यक्तिगत साहस नहीं, बल्कि उस नई सामाजिक सोच का संकेत है जो पारंपरिक भ्रष्टाचार को चुनौती देती है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि आधुनिकता केवल बाहरी परिवर्तन नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टिकोण का पुनर्गठन है, जो परंपरागत अन्याय को अस्वीकार करने का साहस देता है।

'बड़े घर की बेटी' में भी यह टकराव पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर उभरता है। आनंदी का चरित्र परंपरागत मूल्यबोध और आत्मसम्मान के बीच संतुलन साधने का प्रयास करता है। एक ओर वह पारिवारिक सम्मान और कर्तव्य को निभाना चाहती है, दूसरी ओर उसके भीतर स्वाभिमान की चेतना भी है। सामाजिक प्रतिष्ठा और कुल-गौरव के दबाव में संबंधों में दूरी उत्पन्न होती है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि परंपरा अपने भीतर त्याग, संयम और सामूहिकता जैसे गुण समेटे रहती है, किंतु जब वही परंपरा जड़ और अहंकारी बन जाती है, तब वह संबंधों में असंतुलन उत्पन्न करती है। आधुनिकता इस स्थिति में प्रश्न उठाने की क्षमता देती है, परंतु वह भी तभी सार्थक होती है जब उसके साथ विवेक और संवेदना जुड़ी हो।

'ईदगाह' में परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष सूक्ष्म स्तर पर दिखाई देता है। हामिद मेले की चकाचौंध और नई वस्तुओं के आकर्षण से प्रभावित हो सकता था, जो आधुनिक उपभोग की प्रवृत्ति का प्रतीक है। किंतु वह अपनी दादी अमीना के श्रम और कष्ट को याद रखता है। उसका चिमटा खरीदना परंपरागत त्याग और पारिवारिक संस्कारों की विजय है, किंतु यह निर्णय आधुनिक चेतना की संवेदनशीलता से भी जुड़ा है वह उपयोगिता और उत्तरदायित्व को महत्व देता है। प्रेमचंद इस कहानी में यह

स्थापित करते हैं कि परंपरा और आधुनिकता का संतुलन तभी संभव है जब व्यक्ति आत्मबोध से निर्णय ले।

अंततः प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि परंपरा और आधुनिकता के बीच कोई सरल समाधान नहीं है। दोनों में कुछ नैतिक मूल्य निहित हैं और दोनों में संभावित संकट भी हैं। जब व्यक्ति विवेक, संवेदना और सामाजिक उत्तरदायित्व के आधार पर निर्णय करता है, तभी संतुलन संभव होता है। प्रेमचंद के पात्र इस टकराव से भागते नहीं, बल्कि उसका सामना करते हैं। कभी वे परंपरा को चुनौती देते हैं, कभी उससे सीखते हैं, और कभी आधुनिकता को अपनाते हुए भी उसके दोषों को पहचानते हैं। उनके साहित्य में नैतिकता बाहरी अनुशासन नहीं, बल्कि आत्ममंथन से उपजी आंतरिक शक्ति है। यही दृष्टिकोण प्रेमचंद को युगीन और सार्वकालिक बनाता है।

4.3.3. परिवार और समुदाय की भूमिका

मुंशी प्रेमचंद का कथा-साहित्य भारतीय समाज की उन गहरी जड़ों को स्पष्ट करता है, जहाँ परिवार और समुदाय केवल भावनात्मक ढाँचे नहीं, बल्कि नैतिक निर्माण के आधार बनते हैं। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति की नैतिकता केवल उसकी निजी अंतरात्मा का परिणाम नहीं होती, बल्कि वह पारिवारिक संस्कारों और सामुदायिक अपेक्षाओं से आकार लेती है। 'ईदगाह' का हमिद इसका सशक्त उदाहरण है। वह मेले में अपने लिए खिलौने या मिठाइयाँ नहीं खरीदता, बल्कि अपनी दादी अमीना के लिए चिमटा लाता है। यह निर्णय केवल बाल त्याग नहीं, बल्कि उस पारिवारिक परिवेश का परिणाम है जहाँ उसने अभाव, श्रम और स्नेह को निकट से अनुभव किया है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि यदि परिवार करुणा और उत्तरदायित्व सिखाए, तो वही बालक के नैतिक व्यक्तित्व की आधारशिला बनता है (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 128)।

'बूढ़ी काकी' में परिवार की भूमिका एक जटिल रूप में सामने आती है। प्रारंभ में परिवार वृद्धा की उपेक्षा करता है और उसे बोझ समझता है, किंतु अंततः रूपा के भीतर करुणा जागती है और वह काकी को भोजन कराती है। यह परिवर्तन केवल भावुकता नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्स्मरण है। प्रेमचंद यहाँ यह संकेत करते हैं कि परिवार यदि आत्मावलोकन करे, तो वह नैतिक सुधार का माध्यम बन सकता है (सिंह, 2021, पृ. 140-150)। इसी प्रकार 'बड़े घर की बेटी' में नायिका आनंदी अपने वैवाहिक जीवन में पारिवारिक प्रतिष्ठा और संबंधों की मर्यादा के बीच संतुलन साधती है। यहाँ परिवार सत्ता-संचालित ढाँचे का रूप ले लेता है, जहाँ अहं और कुल-गौरव रिश्तों को प्रभावित करते हैं। प्रेमचंद दिखाते हैं कि पारिवारिक संरचना व्यक्ति की नैतिक स्वायत्तता को या

तो सुदृढ़ कर सकती है या उसे बाधित कर सकती है (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 130)।

‘पंच परमेश्वर’ में समुदाय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब जुम्मन शेख और अलगू चौधरी पंचायत के सामने खड़े होते हैं, तब समुदाय न्याय का निर्णायक मंच बन जाता है। पंचायत केवल सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि नैतिक कसौटी है। जुम्मन जब स्वयं पंच बनता है, तो उसे यह अनुभव होता है कि सामुदायिक उत्तरदायित्व व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर है। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि समुदाय यदि न्यायप्रिय हो, तो वह व्यक्ति की नैतिक चेतना को जागृत कर सकता है। इसी प्रकार ‘ठाकुर का कुआँ’ में समुदाय की जातिगत संरचना गंगी को उसके मूल अधिकार से वंचित करती है। यहाँ समुदाय मार्गदर्शक नहीं, बल्कि बाधक बन जाता है।

‘नमक का दारोगा’ में भी समाज और प्रशासनिक समुदाय की भूमिका स्पष्ट है। वंशीधर जिस व्यवस्था का हिस्सा है, वहाँ रिश्तत सामान्य व्यवहार बन चुकी है। उसके सामने पंडित अलोपीदीन का प्रभाव केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि उस सामुदायिक मानसिकता का प्रतीक है जो धन और प्रतिष्ठा को नैतिकता से ऊपर रखती है। वंशीधर का निर्णय इस सामुदायिक प्रवृत्ति के विरुद्ध खड़ा होता है। प्रेमचंद यह दर्शाते हैं कि व्यक्ति का नैतिक साहस परिवार और समाज दोनों के दबावों के बीच विकसित होता है।

‘कफ़न’ में भी परिवार और समुदाय की विडंबना स्पष्ट है। घीसू और माधव का व्यवहार सामुदायिक उपेक्षा और दीर्घकालिक गरीबी का परिणाम है। समाज ने उन्हें हाशिए पर रखा, और उसी समाज की संवेदनहीनता ने उनके भीतर की करुणा को कुंठित कर दिया। यहाँ परिवार स्वयं सामाजिक असमानता का शिकार है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब समुदाय न्यायपूर्ण नहीं होता, तो परिवार भी नैतिक संतुलन खो देता है।

प्रेमचंद की कहानियाँ परिवार और समुदाय को न तो पूर्ण आदर्श के रूप में प्रस्तुत करती हैं और न ही केवल दमनकारी संस्था के रूप में। वे इन्हें जटिल सामाजिक संरचनाएँ मानते हैं, जो व्यक्ति के निर्णयों को दिशा देती हैं, परंतु साथ ही दबाव भी बनाती हैं। उनके पात्र इन प्रभावों से गुजरते हैं, संघर्ष करते हैं और इसी प्रक्रिया में अपनी नैतिक पहचान निर्मित करते हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद का साहित्य यह सिखाता है कि नैतिकता केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक संदर्भों से गहराई से जुड़ी हुई प्रक्रिया है (सिंह, 2021, पृ. 140-150)।

4.3.4. शक्ति संबंध और नैतिक असमानता

प्रेमचंद की कहानियाँ भारतीय समाज की उस गहरी संरचना को उजागर करती हैं, जहाँ शक्ति का वितरण समान नहीं है और यही असंतुलन नैतिक मूल्यों की व्याख्या को भी प्रभावित करता है। जाति, वर्ग, लिंग और आर्थिक स्थिति—ये सभी तत्व सामाजिक सत्ता को निर्धारित करते हैं। समाज अक्सर शक्तिशाली वर्ग के व्यवहार को सामान्य मान लेता है, जबकि कमजोर वर्ग के छोटे से विचलन को भी अपराध घोषित कर देता है। ‘ठाकुर का कुआँ’ में यह असमानता स्पष्ट दिखाई देती है। कहानी की दलित स्त्री गंगी प्यास से व्याकुल है, परंतु गाँव के कुएँ पर उसका अधिकार नहीं है। ठाकुर का प्रत्यक्ष हिंसक व्यवहार नहीं, बल्कि उसकी मौन सत्ता ही भय का वातावरण निर्मित करती है। गंगी का निर्णय—क्या वह ठाकुर के कुएँ से पानी भरे या नहीं—सिर्फ पानी लेने का प्रश्न नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, भय और सामाजिक दंड के बीच एक नैतिक संघर्ष है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि जिनके पास शक्ति है, वे नियम बनाते हैं; जिनके पास शक्ति नहीं, वे उन्हीं नियमों के नीचे दबते हैं। इस प्रकार नैतिकता यहाँ व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सत्ता-संबंधों से निर्मित सामाजिक संरचना का परिणाम बन जाती है।

इसी प्रकार ‘सद्गति’ कहानी शक्ति और नैतिक असमानता के संबंध को और तीव्रता से प्रस्तुत करती है। दुखी चमार ब्राह्मण पंडित घासीराम के यहाँ सेवा के भाव से जाता है। वह अपने सीमित साधनों और सामाजिक हीनता के बावजूद नैतिक कर्तव्य निभाने का प्रयास करता है। किंतु उसकी मृत्यु के बाद वही ब्राह्मण, जो धर्म और शुद्धता का प्रतिनिधि माना जाता है, उसकी देह को सम्मान नहीं देता। यहाँ सत्ता-संपन्न वर्ग की नैतिकता सुविधा और भय से संचालित होती है। धर्म का आडंबर नैतिक उत्तरदायित्व में परिवर्तित नहीं होता। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिक ऊँचाई पद या जाति से नहीं, बल्कि आचरण से निर्धारित होती है। दुखी सामाजिक रूप से वंचित है, पर उसकी निष्ठा और सरलता उसे नैतिक रूप से ऊँचा बनाती है।

‘नमक का दारोगा’ में भी शक्ति और नैतिकता का द्वंद्व दिखाई देता है। वंशीधर सरकारी पद पर है, पर उसके सामने धन और प्रभाव से युक्त पंडित अलोपीदीन खड़े हैं। अलोपीदीन की सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक शक्ति उसे नियमों से ऊपर मानने का भ्रम देती है। किंतु वंशीधर अपनी नैतिक प्रतिबद्धता के कारण उस शक्ति के सामने झुकता नहीं। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि जब सत्ता आर्थिक या सामाजिक प्रभाव से जुड़ी होती है, तब वह न्याय को प्रभावित करने का प्रयास करती है। फिर भी व्यक्ति यदि

नैतिक दृढ़ता रखे, तो वह असमान शक्ति-संतुलन के बावजूद न्याय की रक्षा कर सकता है।

‘पंच परमेश्वर’ में भी सत्ता-संबंधों का नैतिक पक्ष सामने आता है। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की मित्रता तब परीक्षा में पड़ती है, जब अलगू पंच बनता है। पंचायत की स्थिति उसे नैतिक अधिकार देती है। मित्रता और न्याय के बीच का संघर्ष यह दिखाता है कि सत्ता की स्थिति में बैठा व्यक्ति यदि निष्पक्ष न रहे, तो नैतिकता कमजोर हो जाती है। अलगू जब अपने मित्र के विरुद्ध निर्णय देता है, तब वह यह सिद्ध करता है कि नैतिकता व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर होनी चाहिए।

इन सभी कथाओं में प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि समाज में शक्ति का असमान वितरण नैतिक असमानता को जन्म देता है। शक्तिशाली वर्ग अक्सर नियमों की व्याख्या अपने हित में करता है, जबकि वंचित वर्ग उन्हीं नियमों से पीड़ित होता है। फिर भी प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि नैतिक ऊँचाई अक्सर उन्हीं के भीतर अधिक प्रखर होती है, जो सामाजिक रूप से दबे हुए हैं। उनके लिए नैतिकता जीवन का संघर्ष है, दिखावा नहीं। इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य यह सिखाता है कि नैतिकता को समझने के लिए शक्ति-संबंधों की पृष्ठभूमि को देखना आवश्यक है, क्योंकि बिना इस संदर्भ के नैतिकता की कोई भी चर्चा अधूरी रहेगी।

4.3.5. सामाजिक परिवर्तन और मूल्यबोध

मुंशी प्रेमचंद के कथा-साहित्य में सामाजिक परिवर्तन कोई बाहरी या सतही प्रक्रिया नहीं है, बल्कि वह गहरे नैतिक संघर्ष के रूप में सामने आता है। उनके पात्र बदलती परिस्थितियों में केवल परिस्थितियों के शिकार नहीं बनते, बल्कि अपने भीतर नई नैतिक चेतना का निर्माण करते हैं। ‘पंच परमेश्वर’ में अलगू चौधरी जब पंच की आसंदी पर बैठता है, तो उसकी स्थिति केवल सामाजिक नहीं, नैतिक भी बन जाती है। मित्रता और न्याय के बीच उसका निर्णय यह दिखाता है कि सामाजिक परिवर्तन तभी संभव है जब व्यक्ति अपने निजी संबंधों से ऊपर उठकर न्याय को प्राथमिकता दे। यहाँ परिवर्तन पंचायत व्यवस्था के माध्यम से नहीं, बल्कि अलगू के भीतर जागे मूल्यबोध के माध्यम से घटित होता है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि जब व्यक्ति अपने दायित्व को समझता है, तभी सामाजिक संरचना में वास्तविक परिवर्तन आता है (उपाध्याय, 2010, पृ. 1230)।

‘नमक का दारोगा’ में भी सामाजिक परिवर्तन और नैतिकता का संबंध स्पष्ट दिखाई देता है। वंशीधर ऐसे प्रशासनिक ढाँचे में कार्य करता है जहाँ भ्रष्टाचार सामान्य

माना जाता है। उसके सामने पंडित अलोपीदीन जैसा प्रभावशाली व्यक्ति खड़ा होता है, जो धन और प्रतिष्ठा के बल पर नियमों को मोड़ना चाहता है। वंशीधर का निर्णय केवल व्यक्तिगत ईमानदारी नहीं, बल्कि उस सामाजिक सोच के विरुद्ध प्रतिरोध है जो भ्रष्टाचार को स्वीकार कर चुकी है। यहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि परिवर्तन किसी कानून से नहीं, बल्कि व्यक्ति के नैतिक साहस से प्रारंभ होता है। यही साहस समाज में नई दिशा देता है (कुमार, 2022, पृ. 75)।

‘ठाकुर का कुआँ’ में सामाजिक परिवर्तन की संभावना दलित स्त्री गंगी के भीतर जागती चेतना से जुड़ी है। गंगी का अपने अधिकार के प्रति सजग होना और भय के बावजूद निर्णय लेना उस समाज के विरुद्ध एक सूक्ष्म विद्रोह है जहाँ जातिगत व्यवस्था ने मनुष्य को विभाजित कर रखा है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब व्यक्ति अन्याय को पहचान लेता है, तब परिवर्तन की पहली सीढ़ी चढ़ी जाती है। सामाजिक मान्यताओं से टकराने का साहस ही मूल्यबोध को सशक्त बनाता है (रहमतुल्ला, 2017, पृ. 98)।

‘सद्गति’ में दुखी चमार की स्थिति सामाजिक असमानता की कठोर सच्चाई को सामने लाती है। उसका शोषण और मृत्यु यह दर्शाते हैं कि परिवर्तन की आवश्यकता कितनी तीव्र है। यहाँ ब्राह्मण पंडित घासीराम धर्म का प्रतिनिधि होते हुए भी मानवीय कर्तव्य का पालन नहीं करता। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि जब तक सामाजिक ढाँचे में व्याप्त अन्याय समाप्त नहीं होगा, तब तक नैतिक मूल्य खोखले रहेंगे। दुखी की करुण स्थिति पाठक के भीतर नैतिक असंतोष उत्पन्न करती है, और यही असंतोष परिवर्तन की आधारशिला है (सैंगुसा, 2024, पृ. 145)।

‘ईदगाह’ में बालक हामिद का निर्णय सामाजिक मूल्यबोध का नया रूप प्रस्तुत करता है। मेले की चमक-दमक के बीच उसका चिमटा खरीदना उपभोक्तावादी आकर्षण के विरुद्ध संवेदना और त्याग का प्रतीक बनता है। यह परिवर्तन बाहरी व्यवस्था का नहीं, बल्कि सोच का है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि मूल्यबोध उम्र या औपचारिक शिक्षा पर निर्भर नहीं करता; वह अनुभव, करुणा और जिम्मेदारी से विकसित होता है।

इसी प्रकार ‘बड़े घर की बेटी’ में आनंदी का संतुलित व्यवहार पारिवारिक संघर्ष को समाधान की ओर ले जाता है। वह अहंकार या प्रतिशोध को नहीं, बल्कि संबंधों की मर्यादा को प्राथमिकता देती है। उसका आचरण यह सिद्ध करता है कि सामाजिक परिवर्तन केवल विद्रोह से नहीं, बल्कि संयम और विवेक से भी संभव है। प्रेमचंद यह संकेत करते हैं कि जब व्यक्ति अपने मूल्यबोध को व्यापक सामाजिक हित से जोड़ता है, तभी परिवर्तन स्थायी बनता है (सिंह, 2021, पृ. 140-150)।

इस प्रकार प्रेमचंद सामाजिक परिवर्तन को समय का साधारण प्रवाह नहीं मानते। उनके लिए यह एक नैतिक अवसर है, जिसमें व्यक्ति अपने भीतर नई चेतना का निर्माण करता है। परिवर्तन तब सार्थक होता है जब वह करुणा, दायित्व और आत्मचिंतन से जुड़ा हो। यदि सामाजिक बदलाव केवल बाहरी रूप में हो और उसके साथ मूल्यबोध का विकास न हो, तो वह स्थायी नहीं रह सकता। प्रेमचंद की कहानियाँ यही सिखाती हैं कि वास्तविक सामाजिक परिवर्तन व्यक्ति के भीतर से प्रारंभ होता है और वही समाज को नई दिशा देता है।

4.3.6. सामुदायिक मूल्य और नैतिक सीमाएँ

मुंशी प्रेमचंद के कथा-साहित्य में सामुदायिक मूल्य समाज की नैतिक संरचना का आधार हैं। ये मूल्य व्यक्ति के व्यवहार, सोच और निर्णय की दिशा तय करते हैं। सामूहिक जीवन में अनुशासन, संतुलन और सामाजिक एकता बनाए रखने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किंतु प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि जब यही मूल्य रूढ़ि और परंपरा में बदल जाते हैं, तब वे व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना को सीमित कर देते हैं। 'सेवासदन' के पात्र सुमन का उदाहरण इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। वह विवाह संस्था के भीतर अपमान और असंतोष का अनुभव करती है और बाद में समाजसेवा के माध्यम से आत्मसम्मान पुनः प्राप्त करना चाहती है। किंतु समुदाय उसके इस निर्णय को नैतिक विचलन मानकर उसे कलंकित करता है। यहाँ प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि सामुदायिक मूल्य कभी-कभी व्यक्ति के पुनर्निर्माण और आत्मबोध के प्रयास को भी अस्वीकार कर देते हैं। सामूहिक नैतिकता का यह कठोर रूप व्यक्ति की स्वतंत्र सोच को अवरुद्ध करता है और उसे सामाजिक स्वीकृति की शर्तों में बाँध देता है।

'बड़े घर की बेटी' में सामुदायिक मूल्य पारिवारिक संरचना के माध्यम से संचालित होते हैं। आनंदी का संघर्ष केवल पति से नहीं, बल्कि उस सामुदायिक मानसिकता से है जो स्त्री के अधिकार और आत्मसम्मान को गौण मानती है। जब वह अपने पति के व्यवहार पर प्रश्न उठाती है, तो इसे स्त्री के अहंकार के रूप में देखा जाता है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि सामुदायिक नैतिकता अक्सर समानता और न्याय के सिद्धांतों की अनदेखी करती है। पारिवारिक प्रतिष्ठा और पुरुष वर्चस्व को बनाए रखने के लिए स्त्री की स्वतंत्र पहचान को दबा दिया जाता है। आनंदी का संयमित व्यवहार अंततः परिवार को एक करता है, किंतु यह भी स्पष्ट करता है कि सामुदायिक मूल्य कितनी बार संकीर्ण नैतिक सीमाएँ खींच देते हैं।

'पंच परमेश्वर' में सामुदायिक न्याय की संस्था—धंचायत—नैतिकता की परीक्षा का मंच बनती है। यहाँ पहले अलगू चौधरी पंच बनते हैं और अपने मित्र जुम्मन शेख

के विरुद्ध निर्णय देते हैं। बाद में जुम्मन भी पंच बनते हैं और निष्पक्ष निर्णय देते हैं। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि निष्पक्षता का उदाहरण पहले अलगू प्रस्तुत करते हैं, न कि जुम्मन। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से दिखाते हैं कि सामुदायिक मूल्य तभी सार्थक होते हैं जब वे व्यक्तिगत निष्पक्षता और आत्मविवेक से जुड़े हों। यदि पंचायत केवल संबंधों और दबावों के आधार पर निर्णय दे, तो वह नैतिक संस्था नहीं रह जाती। यहाँ नैतिकता सामाजिक अपेक्षा से ऊपर उठकर न्यायप्रियता का रूप लेती है।

इसी प्रकार 'ठाकुर का कुआँ' में सामुदायिक मूल्य जाति-आधारित सीमाओं के रूप में सामने आते हैं। गंगी केवल पानी लेने का प्रयास करती है, किंतु समुदाय ने उसके लिए नैतिक और सामाजिक सीमाएँ तय कर दी हैं। 'ठाकुर का कुआँ' सामाजिक वर्चस्व का प्रतीक बन जाता है। गंगी का भय इस बात का संकेत है कि सामुदायिक मूल्य व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं पर भी नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं। प्रेमचंद यहाँ यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या ऐसे मूल्य वास्तव में नैतिक कहे जा सकते हैं, जो समानता और मानवीय गरिमा को नकार दें।

प्रेमचंद इस व्यापक नैतिक परिदृश्य में यह स्थापित करते हैं कि सामुदायिक मूल्य समाज में नियंत्रण और व्यवस्था का माध्यम अवश्य हैं, परंतु यदि वे व्यक्ति के विवेक और आत्मनिर्णय की स्वतंत्रता को सीमित कर दें, तो वे स्वयं नैतिकता के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। उनके पात्र इस संकीर्णता को पहचानते हैं, उसका सामना करते हैं और कई बार उसी संरचना के भीतर रहकर भी न्यायपूर्ण निर्णय लेते हैं। 'बड़े घर की बेटा', 'पंच परमेश्वर' और 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कहानियाँ यह सिद्ध करती हैं कि प्रेमचंद सामुदायिक मूल्य को अंधस्वीकार नहीं करते, बल्कि उसकी आलोचनात्मक पड़ताल करते हैं। उनके लिए नैतिकता केवल सामाजिक स्वीकृति का नाम नहीं, बल्कि आत्मविवेक, न्याय और करुणा से जुड़ा आंतरिक संघर्ष है। यही संघर्ष उनके साहित्य को गहन नैतिक विमर्श का आधार बनाता है।

4.3.7. सांस्कृतिक दबाव और चयन

मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ भारतीय समाज के सांस्कृतिक दबावों और उनसे उत्पन्न नैतिक संघर्षों को गहराई से चित्रित करती हैं। उनके पात्र केवल परिस्थितियों के शिकार नहीं होते, बल्कि परंपरा और आत्मनिर्णय के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करते हैं। 'निर्मला' में बाल-विवाह की परंपरा एक कठोर सांस्कृतिक दबाव के रूप में सामने आती है। निर्मला का विवाह उससे अधिक आयु के पुरुष से कर दिया जाता है, क्योंकि समाज दहेज और प्रतिष्ठा को प्राथमिकता देता है। यहाँ चयन का अवसर उसके हाथ में नहीं है, परंतु उसका मौन संघर्ष यह दिखाता है कि सांस्कृतिक व्यवस्था किस

प्रकार व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छाओं को सीमित कर देती है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि जब परंपरा नैतिकता से ऊपर रख दी जाती है, तब जीवन त्रासदी में बदल जाता है (सैंगुसा, 2024, पृ. 72-75)।

‘बड़े घर की बेटी’ में सांस्कृतिक दबाव पारिवारिक प्रतिष्ठा के रूप में सामने आता है। आनंदी को ऐसे वातावरण में रहना पड़ता है जहाँ स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह सहनशील और आज्ञाकारी रहे। जब पति और देवर के बीच विवाद होता है, तब उसका चयन केवल व्यक्तिगत प्रतिक्रिया का प्रश्न नहीं, बल्कि पारिवारिक मर्यादा से जुड़ा निर्णय बन जाता है। वह प्रतिशोध या अहंकार का मार्ग नहीं चुनती, बल्कि संयम और समन्वय का मार्ग अपनाती है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि सांस्कृतिक दबावों के बीच भी व्यक्ति विवेकपूर्ण चयन कर सकता है, और वही चयन सामाजिक संतुलन को बनाए रखता है।

‘पंच परमेश्वर’ में सांस्कृतिक दबाव मित्रता और संबंधों के रूप में प्रकट होते हैं। अलगू चौधरी जब पंच बनते हैं, तो उनके सामने मित्र जुम्मन शेख का मामला आता है। सांस्कृतिक रूप से उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे मित्रता निभाएँ, किंतु वे न्याय के पक्ष में निर्णय देते हैं। यहाँ चयन केवल सामाजिक संबंधों का नहीं, बल्कि नैतिक जिम्मेदारी का है। प्रेमचंद यह दर्शाते हैं कि जब व्यक्ति सांस्कृतिक अपेक्षाओं से ऊपर उठकर न्याय को चुनता है, तब उसका आत्मसम्मान और सामाजिक विश्वसनीयता दोनों सुदृढ़ होते हैं (रहमतुल्ला, 2017, पृ. 88)।

‘ठाकुर का कुआँ’ में सांस्कृतिक दबाव जाति-आधारित परंपराओं के रूप में सामने आते हैं। गंगी का निर्णय—क्या वह ठाकुर के कुएँ से पानी ले—एक साधारण घटना नहीं, बल्कि सांस्कृतिक निषेधों के विरुद्ध खड़े होने का साहस है। समाज ने उसके लिए सीमाएँ निर्धारित कर दी हैं, और उन्हीं सीमाओं के भीतर उसे अपना चयन करना है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि सांस्कृतिक धारा का अंधानुकरण व्यक्ति की मूल आवश्यकताओं तक को नियंत्रित कर सकता है। गंगी का भय और उसका संकोच इस संघर्ष को जीवंत बनाते हैं।

‘नमक का दारोगा’ में भी सांस्कृतिक दबाव प्रशासनिक व्यवस्था और सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़े हैं। वंशीधर के सामने प्रभावशाली पंडित अलोपीदीन हैं, जिनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति उन्हें नियमों से ऊपर मानने का भ्रम देती है। वंशीधर का चयन—रिश्तित स्वीकार न करना—उस सांस्कृतिक प्रवृत्ति के विरुद्ध है जो प्रभावशाली लोगों को विशेषाधिकार देती है। यहाँ प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि सच्चा परिवर्तन

तब होता है जब व्यक्ति परंपरागत स्वीकृतियों के बजाय अपने नैतिक विवेक का अनुसरण करता है (कुमार, 2022, पृ. 103-105)।

इन सभी कथाओं में प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि सांस्कृतिक दबाव व्यक्ति को सीमित अवश्य करते हैं, परंतु अंतिम चयन उसके विवेक पर निर्भर करता है। जब व्यक्ति आत्मसम्मान, न्याय और करुणा के आधार पर निर्णय लेता है, तभी वह सांस्कृतिक संरचना को नई दिशा दे सकता है। प्रेमचंद का साहित्य यह सिखाता है कि परंपरा और परिवर्तन के बीच संघर्ष स्वाभाविक है, परंतु नैतिक चयन ही उस संघर्ष को अर्थपूर्ण बनाता है।

4.4. नैतिक निर्णय और मानवीय संबंध

मुंशी प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिक निर्णय केवल सही या गलत के साधारण चुनाव तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे मानवीय संबंधों की गहराई, संवेदना और जिम्मेदारी से जुड़े होते हैं। उनके पात्र जब किसी संकट का सामना करते हैं, तो उनका निर्णय उनके संबंधों की सच्चाई को उजागर कर देता है। 'पंच परमेश्वर' इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी है। यहाँ पहले अलगू चौधरी पंच बनते हैं और उन्हें अपने मित्र जुम्मन शेख के विरुद्ध निर्णय देना पड़ता है। यह स्थिति केवल कानूनी विवाद नहीं, बल्कि मित्रता और कर्तव्य के बीच का गहरा नैतिक द्वंद्व है। अलगू का निष्पक्ष निर्णय यह सिद्ध करता है कि सच्ची नैतिकता निजी संबंधों से ऊपर उठकर न्याय को स्वीकार करने में है। बाद में जुम्मन भी पंच बनते हैं और वे भी निष्पक्ष निर्णय देते हैं। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि संबंध तभी सुदृढ़ होते हैं जब वे सत्य और न्याय पर आधारित हों।

'ईदगाह' में नैतिक निर्णय का स्वरूप और भी मार्मिक हो जाता है। हामिद और उसकी दादी अमीना के बीच का संबंध केवल स्नेह का नहीं, बल्कि जिम्मेदारी और त्याग का है। मेले में अन्य बच्चे खिलौनों और मिठाइयों की ओर आकर्षित होते हैं, पर हामिद अपनी दादी के जले हुए हाथों को याद करता है और चिमटा खरीदता है। यह निर्णय किसी उपदेश का परिणाम नहीं, बल्कि उसके भीतर जागी करुणा और पारिवारिक जुड़ाव का परिणाम है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि नैतिकता उम्र या शिक्षा पर निर्भर नहीं करती; वह अनुभव और संवेदना से विकसित होती है। हामिद का छोटा-सा निर्णय मानवीय संबंधों की उस ऊँचाई को छूता है जहाँ त्याग ही सच्चा प्रेम बन जाता है (रहमतुल्ला, 2017, पृ. 143)।

‘बूढ़ी काकी’ में भी मानवीय संबंधों की परीक्षा नैतिक संकट के क्षण में होती है। परिवार की वृद्ध सदस्य को उपेक्षित कर दिया जाता है और उसे भोजन तक से वंचित रखा जाता है। परंतु अंततः जब करुणा जागती है और उसे सम्मानपूर्वक भोजन दिया जाता है, तब यह केवल एक दया का कार्य नहीं रहता, बल्कि आत्मग्लानि और नैतिक जागृति का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि संबंधों की वास्तविकता तब सामने आती है जब व्यक्ति अपने व्यवहार पर पुनर्विचार करता है। इसी प्रकार ‘नमक का दारोगा’ में वंशीधर का निर्णय यह दिखाता है कि व्यक्ति का कर्तव्य भी एक प्रकार का नैतिक संबंध है। वह पंडित अलोपीदीन की रिश्तत को अस्वीकार करता है, क्योंकि उसके लिए सत्य और दायित्व निजी लाभ से अधिक महत्वपूर्ण हैं। यहाँ संबंध व्यक्ति और उसके नैतिक सिद्धांतों के बीच स्थापित होता है (सिंह, 2021, पृ. 140-150)।

इन कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद यह सिद्ध करते हैं कि नैतिक निर्णय मानवीय संबंधों से पृथक नहीं हो सकते। संकट के क्षण में लिया गया निर्णय यह तय करता है कि संबंध स्वार्थ पर आधारित हैं या करुणा और न्याय पर। प्रेमचंद के पात्र आत्मचिंतन, संवेदना और साहस के माध्यम से अपने निर्णय लेते हैं। उनके लिए नैतिकता कोई स्थिर नियम नहीं, बल्कि संबंधों के भीतर विकसित होने वाली जीवंत प्रक्रिया है। यही कारण है कि उनके साहित्य में मानवीय संबंध केवल सामाजिक भूमिकाएँ नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व की आधारशिला बन जाते हैं।

4.4.1. विश्वास और नैतिक जिम्मेदारी

मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में विश्वास केवल भावनात्मक निकटता का संकेत नहीं है, बल्कि वह एक गहरे नैतिक दायित्व के रूप में कार्य करता है। जब कोई व्यक्ति किसी पर विश्वास करता है, तो उसके साथ एक अदृश्य जिम्मेदारी जुड़ जाती है। यह जिम्मेदारी बाहरी कानून से नहीं, बल्कि अंतःकरण से संचालित होती है। ‘पंच परमेश्वर’ में यह द्वंद्व स्पष्ट दिखाई देता है। पहले अलगू चौधरी पंच बनते हैं और अपने मित्र जुम्मन शेख के विरुद्ध निष्पक्ष निर्णय देते हैं। बाद में जुम्मन भी पंच बनते हैं और उन्हें भी न्याय करना पड़ता है। यहाँ मित्रता और न्याय के बीच संघर्ष होता है। यदि वे मित्रता को प्राथमिकता देते, तो पंचायत की गरिमा टूट जाती। उनका निष्पक्ष निर्णय यह सिद्ध करता है कि सामाजिक विश्वास की रक्षा व्यक्तिगत संबंधों से ऊपर है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब व्यक्ति पर समाज विश्वास करता है, तो उस विश्वास को निभाना उसकी नैतिक जिम्मेदारी बन जाती है।

‘ईदगाह’ में बालक हामिद और उसकी दादी अमीना के संबंध में भी विश्वास और जिम्मेदारी का गहरा संबंध दिखाई देता है। दादी को विश्वास है कि हामिद

समझदारी से कुछ उपयोगी वस्तु लाएगा। मेले के आकर्षण के बीच हामिद चिमटा खरीदता है। यह निर्णय केवल त्याग नहीं, बल्कि उस विश्वास का सम्मान है जो उसकी दादी ने उस पर किया था। उसकी उम्र छोटी है, पर उसका निर्णय बड़ा है। प्रेमचंद यहाँ यह स्थापित करते हैं कि नैतिक जिम्मेदारी उम्र की सीमा में बँधी नहीं होती। विश्वास की रक्षा करना ही सच्ची नैतिकता है। हामिद का चयन यह दिखाता है कि सच्चा प्रेम जिम्मेदारी से जुड़ा होता है, और यही संबंध को पवित्र बनाता है।

‘बूढ़ी काकी’ में भी विश्वास और नैतिक कर्तव्य का प्रश्न उठता है। परिवार की वृद्ध सदस्य अपने भतीजे और बहू पर आश्रित है। उसका विश्वास है कि परिवार उसे सम्मान देगा, किंतु प्रारंभ में उसका यह विश्वास टूटता है। जब अंततः परिवार को अपनी भूल का अहसास होता है और उसे सम्मानपूर्वक भोजन दिया जाता है, तब यह केवल दया का कार्य नहीं रहता, बल्कि विश्वास की पुनर्स्थापना का क्षण बन जाता है। इसी प्रकार ‘नमक का दारोगा’ में वंशीधर अपने पद और कर्तव्य के प्रति ईमानदार रहते हैं। समाज और शासन ने उन पर जो विश्वास रखा है, उसे वे रिश्तों के सामने झुककर तोड़ते नहीं। उनका निर्णय यह सिद्ध करता है कि सच्ची जिम्मेदारी बाहरी लाभ से अधिक मूल्यवान है।

4.4.2. रिश्तों में त्याग और समझ

प्रेमचंद के साहित्य में मानवीय रिश्ते केवल सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि वे संवेदना, त्याग और गहरी समझ पर आधारित नैतिक संरचनाएँ हैं। उनके पात्र अक्सर ऐसी स्थितियों में खड़े दिखाई देते हैं जहाँ निजी इच्छा, सामाजिक अपेक्षा और नैतिक दायित्व एक-दूसरे से टकराते हैं। ऐसे क्षणों में लिया गया निर्णय ही संबंध की वास्तविकता को उजागर करता है। ‘ईदगाह’ में हामिद का चिमटा खरीदना केवल बालसुलभ त्याग नहीं है, बल्कि अपनी दादी अमीना के प्रति गहरी समझ और जिम्मेदारी का प्रतीक है। वह जानता है कि दादी के हाथ जलते हैं, इसलिए वह अपनी इच्छाओं को पीछे रखता है। यहाँ त्याग आत्मपीड़न नहीं, बल्कि प्रेम और संवेदना से उत्पन्न नैतिक निर्णय है। प्रेमचंद यह स्पष्ट करते हैं कि त्याग तभी सार्थक है जब उसमें संबंध की सच्ची समझ और आत्मचेतना हो (जैन, 2021, पृ. 18)।

‘बूढ़ी काकी’ में भी रिश्तों की परीक्षा त्याग और समझ के माध्यम से होती है। परिवार की वृद्ध सदस्य को उपेक्षित कर दिया जाता है, और वह सम्मान से वंचित जीवन जीने को मजबूर होती है। लेकिन अंततः घर की बहू जब उसे चोरी से भोजन देती है, तो यह केवल दया का कार्य नहीं, बल्कि आत्मग्लानि और नैतिक जागरण का क्षण है। यह त्याग सामाजिक प्रतिष्ठा और औपचारिक मर्यादा के विरुद्ध है, परंतु

मानवीय संबंधों की गरिमा के पक्ष में है। प्रेमचंद यहाँ दिखाते हैं कि रिश्तों को जीवित रखने के लिए संवेदना और समझ अधिक आवश्यक हैं, न कि बाहरी आडंबर। जब संबंधों में करुणा जागती है, तभी उनका पुनर्निर्माण संभव होता है।

‘नमक का दारोगा’ में भी त्याग और समझ का संबंध स्पष्ट दिखाई देता है। वंशीधर अपने पद और कर्तव्य के प्रति ईमानदार रहते हैं। वे जानते हैं कि रिश्तों का स्वीकार करने से तत्काल लाभ मिल सकता है, परंतु इससे उनके आत्मसम्मान और सामाजिक विश्वास को आघात पहुँचेगा। उनका निर्णय केवल प्रशासनिक नियम का पालन नहीं, बल्कि अपने दायित्व की गहरी समझ का परिणाम है। यहाँ त्याग धन या सुविधा का नहीं, बल्कि नैतिक दृढ़ता का है। इसी प्रकार ‘पंच परमेश्वर’ में अलगू चौधरी मित्रता का त्याग कर न्याय का साथ देते हैं। यह निर्णय दर्शाता है कि सच्ची समझ वही है जो संबंधों को न्याय और सत्य के आधार पर संतुलित करे।

प्रेमचंद के पात्र यह सिद्ध करते हैं कि रिश्तों में समझ केवल भावनात्मक सहानुभूति नहीं होती, बल्कि परिस्थिति की गंभीरता को पहचानने और सही निर्णय लेने की क्षमता होती है। जब संबंध केवल अधिकार या परंपरा पर टिके रहते हैं, तो वे कठोर और यांत्रिक बन जाते हैं। परंतु जब उनमें त्याग और विवेक का समावेश होता है, तब वे नैतिक ऊँचाई प्राप्त करते हैं। प्रेमचंद का साहित्य यह सिखाता है कि हर रिश्ता तभी सार्थक है जब उसमें आत्मनिरीक्षण, करुणा और त्याग की भावना हो। बिना समझ के त्याग अधूरा है, और बिना त्याग के संबंध केवल औपचारिक ढाँचा रह जाते हैं। यही संतुलन प्रेमचंद के कथा-जगत को गहराई और स्थायित्व प्रदान करता है (चुडाल, 2018, पृ. 92)।

4.4.3. संघर्ष और सुलह की प्रक्रिया

मुंशी प्रेमचंद की कहानियाँ भारतीय समाज के उस यथार्थ को सामने लाती हैं जहाँ संघर्ष केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं, बल्कि भीतर के नैतिक द्वंद्व और भावनात्मक उलझनों से भी उत्पन्न होता है। उनके पात्र अन्याय, स्वार्थ, अहंकार या संबंधों में आई दरार से टकराते हैं और अंततः किसी नैतिक निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। ‘पंच परमेश्वर’ इस प्रक्रिया का सशक्त उदाहरण है। यहाँ पहले अलगू चौधरी और बाद में जुम्मन शेख पंच बनते हैं। मित्रता और न्याय के बीच जो संघर्ष उत्पन्न होता है, वह केवल दो व्यक्तियों का विवाद नहीं, बल्कि संबंध और कर्तव्य के बीच का गहरा द्वंद्व है। जब जुम्मन अंततः निष्पक्ष निर्णय देता है, तो यह केवल न्याय की जीत नहीं होती, बल्कि उसके भीतर के संघर्ष का समाधान भी होता है। यह क्षण एक नई नैतिक समझ

की शुरुआत है, जहाँ मित्रता सच्चे अर्थों में पुनर्स्थापित होती है (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 152)।

‘बूढ़ी काकी’ में भी संघर्ष और सुलह की यही प्रक्रिया दिखाई देती है। उपेक्षित वृद्धा और परिवार के बीच जो दूरी बनती है, वह केवल आर्थिक या व्यवहारिक नहीं, बल्कि नैतिक असंवेदनशीलता का प्रतीक है। परिवार का स्वार्थ और दिखावटी मर्यादा उसे सम्मान से वंचित कर देती है। किंतु अंततः जब घर की बहू करुणा से प्रेरित होकर उसे भोजन देती है, तो यह केवल दया नहीं, बल्कि आत्मग्लानि और नैतिक जागरण का परिणाम है। यह सुलह केवल काकी और परिवार के बीच नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना और कठोर सामाजिक मर्यादा के बीच भी है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि संघर्ष का समाधान तब संभव है जब कोई एक पक्ष अपने अहंकार से ऊपर उठकर समझ और करुणा को स्थान देता है।

‘नमक का दारोगा’ में भी संघर्ष बाहरी और आंतरिक दोनों स्तरों पर घटित होता है। वंशीधर का सामना प्रभावशाली पंडित अलोपीदीन से होता है, जो रिश्तित देकर नियमों को तोड़ना चाहता है। यहाँ संघर्ष ईमानदारी और सामाजिक प्रभाव के बीच है। वंशीधर का निर्णय केवल प्रशासनिक कर्तव्य नहीं, बल्कि नैतिक दृढ़ता का परिणाम है। अंततः जब अलोपीदीन स्वयं वंशीधर के चरित्र से प्रभावित होता है, तो यह भी एक प्रकार की सुलह है—जहाँ शक्ति और धन नैतिकता के सामने झुकते हैं। यह घटना दिखाती है कि सच्चा संघर्ष व्यक्ति को गिराता नहीं, बल्कि उसे और ऊँचा उठाता है।

‘बड़े घर की बेटी’ में आनंदी का व्यवहार भी संघर्ष और सुलह की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। पति और देवर के बीच विवाद पारिवारिक विघटन का रूप ले लेता है। आनंदी चाहे तो स्थिति को और जटिल बना सकती थी, किंतु वह संयम और समझ का मार्ग चुनती है। उसका यह चयन हार नहीं, बल्कि संबंधों को बचाने का नैतिक निर्णय है। इसी प्रकार ‘ठाकुर का कुआँ’ में गंगी का आंतरिक संघर्ष सामाजिक अन्याय के विरुद्ध है। उसका साहस भले ही तत्काल समाधान न लाए, पर वह व्यवस्था की कठोरता को चुनौती देता है।

प्रेमचंद के कथा-जगत में संघर्ष केवल पीड़ा नहीं है; वह आत्मविकास का अवसर भी है। उनके पात्र गिरते हैं, भ्रमित होते हैं, पर अंततः सीखते हैं और बदलते हैं। सुलह उनके यहाँ समझौता नहीं, बल्कि आत्मचिंतन से उपजी नैतिक परिपक्वता है। यही प्रक्रिया उनके साहित्य को गहराई देती है और यह सिद्ध करती है कि हर संघर्ष के भीतर पुनर्निर्माण की संभावना छिपी होती है।

4.4.4. आत्मसम्मान और सामाजिक स्वीकृति

प्रेमचंद के कथा-संसार में आत्मसम्मान और सामाजिक स्वीकृति के बीच का द्वंद्व एक स्थायी और जटिल विषय है। उनके पात्र अक्सर उन परिस्थितियों में रहते हैं जहाँ समाज की स्वीकृति प्राप्त करना उनके अस्तित्व और सम्मान के लिए आवश्यक होता है, लेकिन वही समाज कई बार उनके आत्मसम्मान को कुचलने का प्रयास करता है। ऐसे में प्रेमचंद के पात्रों के निर्णय यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या सामाजिक स्वीकृति के लिए आत्मसम्मान का बलिदान उचित है? उदाहरण के लिए, 'बड़े घर की बेटी' में नायिका आनंदी अपने पति श्रीकंठ और परिवार के बीच उत्पन्न तनाव में धैर्य, त्याग और आत्मसम्मान का परिचय देती है। जब पारिवारिक विवाद के कारण संबंधों में कटुता आती है, तब आनंदी अपने संयम और समझदारी से परिवार को टूटने से बचाती है। यहाँ आत्मसम्मान अहंकार नहीं बनता, बल्कि नैतिक संतुलन का रूप लेता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के लिए नैतिकता का पहला स्तर व्यक्ति की आत्म-गरिमा है, न कि समाज की संकीर्ण स्वीकृति।

इसी प्रकार 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर आत्मसम्मान और सामाजिक दबाव के बीच संघर्ष करते दिखाई देते हैं। जब उन्हें रिश्त देकर झुकाने का प्रयास किया जाता है, तब वे अपने पद और भविष्य की परवाह किए बिना सत्य का साथ देते हैं। समाज का प्रभावशाली वर्ग उनसे समझौता चाहता है, परन्तु वंशीधर अपने नैतिक कर्तव्य से पीछे नहीं हटते। यहाँ प्रेमचंद स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक स्वीकृति से अधिक महत्वपूर्ण है आत्मसम्मान और ईमानदारी। वंशीधर का चरित्र यह सिद्ध करता है कि सच्ची प्रतिष्ठा बाहरी मान्यता से नहीं, बल्कि आंतरिक नैतिक दृढ़ता से प्राप्त होती है।

'ठाकुर का कुआँ' में आत्मसम्मान का प्रश्न एक अलग सामाजिक धरातल पर सामने आता है। दलित स्त्री गंगी जब अपने बीमार पति के लिए पानी लेने का निर्णय करती है, तो वह केवल प्यास बुझाने का कार्य नहीं कर रही होती, बल्कि वह उस सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दे रही होती है जो उसे अपमानित करती है। गंगी का भय और साहस दोनों उसके आत्मसम्मान से जुड़े हैं। वह जानती है कि समाज उसे स्वीकार नहीं करेगा, फिर भी वह मानवीय गरिमा को प्राथमिकता देती है। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि आत्मसम्मान केवल शिक्षित या उच्च वर्ग का विषय नहीं, बल्कि वंचित वर्ग की भी गहरी नैतिक चेतना है।

स्त्री के आत्मसम्मान का सशक्त उदाहरण 'बूढ़ी काकी' में भी दिखाई देता है। यद्यपि 'बूढ़ी काकी' उपेक्षित और निर्बल है, फिर भी उसके भीतर सम्मान की आकांक्षा

जीवित है। जब परिवार उसकी उपेक्षा करता है, तब यह केवल शारीरिक कष्ट नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का भी हनन है। अंततः घर की बहू लाडली द्वारा दिया गया भोजन केवल दया का कार्य नहीं, बल्कि उस उपेक्षित आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना है। प्रेमचंद यहाँ यह स्थापित करते हैं कि सामाजिक स्वीकृति से अधिक महत्वपूर्ण है मानवीय गरिमा की रक्षा। इसी कारण उनका साहित्य आज भी यह प्रश्न उठाता है कि व्यक्ति समाज की स्वीकृति के लिए स्वयं को कितना त्याग दे और क्या आत्मसम्मान से बड़ा कोई सामाजिक मानदंड हो सकता है (सिंह, 2021, पृ. 112)।

4.4.5. संबंधों में नैतिक संतुलन

प्रेमचंद की कहानियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि मानवीय संबंध केवल भावनात्मक निकटता या सामाजिक परंपराओं के सहारे स्थायी नहीं रहते, बल्कि उनका वास्तविक आधार नैतिक संतुलन होता है। यह संतुलन तब बनता है जब व्यक्ति अपने अधिकार और दायित्व, प्रेम और न्याय, त्याग और आत्मसम्मान के बीच सही सीमा तय कर पाता है। यदि संबंधों में केवल भावना हो और विवेक न हो, तो वे जल्दी टूट जाते हैं; और यदि केवल नियम हों, तो वे कठोर हो जाते हैं। प्रेमचंद इस सूक्ष्म स्थिति को गहराई से समझते हैं। उनके पात्र किसी आदर्श संसार में नहीं रहते, बल्कि सामाजिक दबाव, स्वार्थ, ईर्ष्या और अहंकार के बीच अपना रास्ता खोजते हैं। इसी खोज में नैतिक संतुलन की परीक्षा होती है। संबंधों को बचाने के लिए समझौता कब उचित है और कब सत्य के लिए खड़ा होना आवश्यक है यही प्रश्न प्रेमचंद की कहानियों में बार-बार उभरता है।

‘पंच परमेश्वर’ इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी है। अलगू चौधरी और जुम्मन शेख की मित्रता वर्षों पुरानी है। दोनों एक-दूसरे पर विश्वास करते हैं और सामाजिक जीवन में साथ खड़े रहते हैं। परंतु जब जुम्मन की खाला उसके विरुद्ध न्याय की गुहार लेकर पंचायत में पहुँचती है और अलगू को पंच चुना जाता है, तब मित्रता और न्याय का सीधा टकराव सामने आता है। अलगू के सामने कठिन प्रश्न है क्या वह मित्रता निभाए या न्याय करे? इसी क्षण नैतिक संतुलन की कसौटी सामने आती है। अलगू अंततः सत्य का पक्ष लेते हैं और जुम्मन के विरुद्ध निर्णय देते हैं। यह निर्णय मित्रता को क्षणिक रूप से तोड़ देता है, परंतु नैतिक आधार को मजबूत करता है। बाद में जब जुम्मन स्वयं पंच बनते हैं, तो वे भी न्याय का ही साथ देते हैं। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि सच्चा संबंध वही है जो न्याय की कसौटी पर खरा उतरे। नैतिक संतुलन का अर्थ संबंधों को बचाने के लिए असत्य का सहारा लेना नहीं, बल्कि सत्य के आधार पर उन्हें पुनः स्थापित करना है (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 156)।

‘नमक का दरोगा’ में यह संतुलन सामाजिक और प्रशासनिक संबंधों के स्तर पर दिखाई देता है। मुंशी वंशीधर एक ईमानदार अधिकारी हैं। पंडित अलोपीदीन जैसे प्रभावशाली व्यक्ति उनसे रिश्तत देकर अपना कार्य निकालना चाहते हैं। यदि वंशीधर समझौता कर लेते, तो उनके सामाजिक संबंध सुरक्षित रहते और उन्हें आर्थिक लाभ भी मिलता। परंतु वे अपने कर्तव्य और आत्मसम्मान को प्राथमिकता देते हैं। यह निर्णय तत्काल उन्हें कठिनाई में डालता है। उन्हें पद से हटाया जाता है और अपमान भी सहना पड़ता है। परंतु अंततः उनकी ईमानदारी ही उनकी पहचान बनती है। यहाँ प्रेमचंद स्पष्ट करते हैं कि संबंधों का संतुलन केवल बाहरी मेल-मिलाप से नहीं बनता, बल्कि नैतिक दृढ़ता से बनता है। यदि व्यक्ति अपने कर्तव्य से हट जाए, तो संबंध भले ही बने रहें, परंतु उनका नैतिक आधार खो जाता है। वंशीधर का चरित्र यह सिद्ध करता है कि सच्चा सम्मान समझौते से नहीं, बल्कि सिद्धांतों पर अडिग रहने से मिलता है।

‘बूढ़ी काकी’ में पारिवारिक संबंधों का नैतिक संतुलन करुणा और संवेदना के माध्यम से सामने आता है। ‘बूढ़ी काकी’ परिवार में उपेक्षित हैं। उन्होंने अपनी संपत्ति परिवार को दे दी, परंतु बदले में उन्हें सम्मान और देखभाल नहीं मिलती। उत्सव के अवसर पर भी उन्हें भोजन नहीं दिया जाता। यह स्थिति संबंधों के नैतिक संतुलन के टूटने का संकेत है। परिवार अधिकार तो लेता है, पर दायित्व निभाने में असफल रहता है। अंततः छोटी बच्ची लाडली के माध्यम से करुणा जागती है और ‘बूढ़ी काकी’ को भोजन मिलता है। यह घटना केवल दया का भाव नहीं, बल्कि नैतिक चेतना का पुनर्जागरण है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि जब संबंधों में संवेदना लौटती है, तभी संतुलन पुनः स्थापित होता है। यदि संबंध केवल लाभ और अधिकार पर टिके हों, तो वे खोखले हो जाते हैं; परंतु जब उनमें करुणा और दायित्व जुड़ते हैं, तब वे सार्थक बनते हैं।

‘बड़े घर की बेटी’ में आनंदी का चरित्र संबंधों में संतुलन का आदर्श प्रस्तुत करता है। पति श्रीकंठ और उनके भाई के बीच उत्पन्न विवाद परिवार को विभाजित कर सकता था। ऐसी स्थिति में आनंदी का व्यवहार निर्णायक बनता है। वह न तो अहंकार का साथ देती है और न ही आत्मसम्मान छोड़ती है। उसका धैर्य और विवेक परिवार को टूटने से बचाते हैं। वह समझती है कि संबंधों में संतुलन बनाए रखने के लिए केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया पर्याप्त नहीं होती, बल्कि संयम और दूरदर्शिता भी आवश्यक है। आनंदी का आचरण यह सिद्ध करता है कि नैतिक संतुलन का अर्थ स्वयं को मिटा देना नहीं, बल्कि सही समय पर सही भूमिका निभाना है।

इसी प्रकार ‘ईदगाह’ में भी संबंधों का संतुलन त्याग और प्रेम के माध्यम से दिखाई देता है। हामिद अपनी दादी अमीना के प्रति गहरे स्नेह से प्रेरित होकर मेले में

खिलौनों के स्थान पर चिमटा खरीदता है। यह निर्णय केवल बालसुलभ भावुकता नहीं, बल्कि संबंध की जिम्मेदारी का संकेत है। वह अपनी इच्छा का त्याग करता है ताकि दादी को कष्ट न हो। यहाँ प्रेमचंद दिखाते हैं कि संबंधों का संतुलन तब बनता है जब व्यक्ति अपने सुख से अधिक दूसरे के हित को महत्व देता है। यह त्याग आत्महीनता नहीं, बल्कि नैतिक परिपक्वता का प्रतीक है।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के कथा-साहित्य में संबंधों का नैतिक संतुलन बहुआयामी है। कहीं यह न्याय और मित्रता के बीच संतुलन है, कहीं कर्तव्य और लाभ के बीच, कहीं अधिकार और दायित्व के बीच, तो कहीं प्रेम और आत्मसम्मान के बीच। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि संबंध तभी स्थायी और सम्मानजनक बनते हैं जब वे नैतिक आधार पर टिके हों। यदि संतुलन टूटता है, तो संबंध भी कमजोर हो जाते हैं; और यदि संतुलन बना रहता है, तो वे समय की कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद की कहानियाँ आज भी प्रासंगिक हैं। वे हमें यह सिखाती हैं कि संबंधों की रक्षा केवल भावना से नहीं, बल्कि विवेक, सत्य और आत्मसम्मान के संतुलित मेल से होती है। यही नैतिक संतुलन उनके साहित्य को स्थायी गहराई और जीवन्तता प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

- [1]. रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन – अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 111
- [2]. प्रेमचंद। (2015)। बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल)। शिक्षा भारती, पृ. 85-88
- [3]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 49
- [4]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 112
- [5]. सिंह, शैलेन्द्र कुमार (2019). प्रेमचंद, राष्ट्रीयता और नागरिक प्रतिरोध. इंडियन इकॉनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, खंड 56, पृ. 181
- [6]. प्रेमचंद। (2015)। बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल)। शिक्षा भारती, पृ. 50-55
- [7]. राजक, एस. (2020). 'सद्गति' में दलित चेतना और नैतिक द्वंद्व. रूपकथा – बहुविषयी मानविकी शोध पत्रिका, खंड 12, अंक 4, पृ. 94
- [8]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 212
- [9]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 100
- [10]. प्रेमचंद; डेविड रूबिन (1971). द वर्ल्ड ऑफ प्रेमचंद: सिलेक्टेड स्टोरीज़ ऑफ प्रेमचंद. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़, खंड 30, पृ. 497-498
- [11]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1240

- [12]. सांगवा, सुमित्रा एवं बेरा, प्रेम (2025). गांधीवादी से मार्क्सवादी दृष्टिकोण तक प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृ. 1-10
- [13]. सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 72-75
- [14]. सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 215
- [15]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1246
- [16]. खान, मोहम्मद अकबर (2025). 'ठाकुर का कुआँ' में सामाजिक असंवेदनशीलता की नैतिक व्याख्या. ब्रिजिंग पर्सपेक्टिव्स इन सोशल साइंसेज, खंड 3, अंक 7, पृ. 91
- [17]. प्रियांका, पी. एवं सेकर, टी. (2022). प्रेमचंद की 'ठाकुर का कुआँ' में डबल हाशियाकरण और सत्ता राजनीति. शानलैक्स इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंग्लिश, खंड 11, अंक 1, पृ. 4
- [18]. रोचर, एल. (1970). प्रेमचंद ऑफ लमही विलेज. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़, खंड 30, पृ. 226
- [19]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 122
- [20]. रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन – अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 112
- [21]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 120
- [22]. रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन – अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 98
- [23]. सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 105

- [24]. रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन – अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 150
- [25]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 118-120
- [26]. नाहिद, अफशान (2020). मुल्कराज आनंद और प्रेमचंद: समान दृष्टिकोण के उपन्यासकार. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 2, पृ. 58
- [27]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1234
- [28]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 103-105
- [29]. सेंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 88
- [30]. कुमार, 202, पृ. 103-105
- [31]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 128
- [32]. सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 140-150
- [33]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 130
- [34]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1230
- [35]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 75

- [36]. सेंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 145
- [37]. रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन – अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 88
- [38]. रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन – अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 143
- [39]. जैन, लक्ष्मण कुमार (2021). प्रेमचंद की कहानियों में राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक रूप. जर्नल ग्लोबल वैल्यूज, खंड 12, अंक 1, पृ. 18
- [40]. चुडाल, ए. ए. (2018). शिवरानी देवी की 'प्रेमचंद घर में' में आत्मकथा और गृहस्थी का अंतर्संबंध. क्राकोव इंडोलॉजिकल स्टडीज़, खंड 20, पृ. 92
- [41]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 152
- [42]. सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 112
- [43]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 156

अध्याय-5

प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक टिप्पणी

5.1. समकालीन समाज की आलोचना

प्रेमचंद का कथा-साहित्य भारतीय समाज के विकास-क्रम में एक ऐतिहासिक मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जब भारतीय समाज उपनिवेशवाद, सामंतवाद और जातिगत विभाजन की त्रासदी से जूझ रहा था, तब प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से यथार्थ की उस धरातल पर दृष्टि डाली जहाँ सामान्य जन का जीवन संघर्ष, गरीबी और अन्याय से भरा हुआ था। उनकी कहानियाँ केवल घटनाओं का क्रम नहीं हैं, बल्कि सामाजिक अंतःसंरचना की आलोचनात्मक व्याख्या हैं। वे समाज के उस हिस्से की आवाज़ हैं जो शोषण और उपेक्षा के कारण मौन हो गया था। प्रेमचंद ने इस मौन को वाणी दी और अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण से समाज की उस जड़ता को उजागर किया जो वर्ग, जाति, लिंग और धर्म के आधार पर मनुष्य को बाँटती रही। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को उसकी क्रूरता, असमानता और नैतिक पतन सहित चित्रित करते हुए यह दिखाया कि असली समस्या व्यक्ति में नहीं, बल्कि उस सामाजिक ढाँचे में है जिसने मनुष्य की संवेदना को कुचल दिया है (शर्मा, 2022, पृ. 47)।

उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समाज की आलोचना केवल बाहर से नहीं करते, बल्कि भीतर से उसकी संरचना का परीक्षण करती हैं। प्रेमचंद के पात्र समाज के यथार्थ में गहराई तक धँसे हुए हैं—वे किसी आदर्श या कल्पना के प्रतीक नहीं, बल्कि उस पीड़ित वर्ग के जीवंत प्रतिबिम्ब हैं जो समाज की रीढ़ है परंतु सबसे अधिक उपेक्षित भी। ‘कफन’, ‘सद्गति’, ‘ठाकुर का कुआँ’, ‘पूस की रात’ जैसी कहानियों में उन्होंने इस वर्ग की व्यथा को केंद्र में रखकर समाज के संवेदनहीन और पाखंडी स्वरूप को उजागर किया। ‘कफन’ में गरीबी और नैतिक पतन का ऐसा चित्रण है जिसमें समाज की आत्मा तक हिल जाती है; वहीं ‘सद्गति’ में धार्मिक पाखंड और जातिगत भेदभाव की नृशंसता दिखती है। प्रेमचंद की दृष्टि में यह सब केवल व्यक्तिगत त्रासदी नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक रोग का लक्षण है। वे यह प्रश्न उठाते हैं कि यदि समाज अपने सबसे कमजोर वर्ग के प्रति संवेदनहीन हो जाए तो क्या वह सच में सभ्य कहलाने योग्य है (वर्मा, 2019, पृ. 105)।

प्रेमचंद की सामाजिक आलोचना का दूसरा महत्वपूर्ण आयाम है नैतिक चेतना और मानवता का क्षरण। उनके पात्र, परिस्थितियों के शिकार होते हुए भी, किसी न किसी रूप में नैतिक प्रश्नों से जूझते हैं। वे यह दिखाते हैं कि समाज की असमानता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक रूप से भी गहरी है। 'ईदगाह' में बालक हामिद का चिमटा खरीदना समाज की नैतिकता के विरुद्ध एक मौन प्रतिरोध है—वह अपने त्याग के माध्यम से यह सिद्ध करता है कि करुणा ही मनुष्यता का सबसे बड़ा धर्म है। इसी प्रकार, 'बूढ़ी काकी' में पारिवारिक स्वार्थ और संवेदनहीनता का जो चित्रण है, वह इस बात का प्रमाण है कि आधुनिकता के नाम पर समाज ने अपनी नैतिक जड़ों को खो दिया है। प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल बाहरी परिस्थितियों तक सीमित नहीं रहता, वह भीतर के नैतिक पतन तक उतरता है। उनकी सामाजिक आलोचना में करुणा और विवेक का गहरा मिश्रण है—वह समाज को तोड़ने के लिए नहीं, बल्कि उसे आत्मबोध कराने के लिए प्रयत्नशील है (चुडाल, 2018, पृ. 93)।

उनकी कहानियों में सत्ता, धर्म और आर्थिक व्यवस्था की आलोचना भी गहन रूप में उपस्थित है। 'सवा सेर गेहूँ' और 'पूस की रात' में उन्होंने किसानों के जीवन की दयनीयता के माध्यम से दिखाया कि कैसे आर्थिक शोषण की जड़ें समाज के ताने-बाने में समाई हुई हैं। ग्रामीण किसान न केवल ऋणग्रस्तता और मौसमी विपत्तियों से पीड़ित हैं, बल्कि वह उस प्रशासनिक और सामाजिक ढाँचे का भी शिकार है जो उसे सदा परतंत्र बनाए रखता है। 'ठाकुर का कुआँ' इस असमानता को और स्पष्ट करती है जहाँ एक दलित स्त्री केवल पानी भरने के अधिकार के लिए संघर्ष करती है। यह केवल संसाधन का प्रश्न नहीं, बल्कि मानवाधिकार और सामाजिक न्याय का भी प्रश्न है। प्रेमचंद की दृष्टि यहाँ अत्यंत आधुनिक और क्रांतिकारी प्रतीत होती है; वे वर्ग या जाति की नहीं, बल्कि मानव गरिमा की लड़ाई लड़ते दिखाई देते हैं। वे यह भी दिखाते हैं कि सामाजिक संरचनाओं में व्याप्त पाखंड और अन्याय केवल बाहरी संस्थानों में नहीं, बल्कि मनुष्य की मानसिकता में रचा-बसा है (मिश्रा, 2019, पृ. 118)।

समकालीन समाज पर प्रेमचंद की आलोचना आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उनके समय में थी। उनकी कहानियों में समाज का जो चित्रण मिलता है, वह आज की आर्थिक विषमता, जातीय विभाजन और नैतिक संकट से मेल खाता है। प्रेमचंद मानते थे कि समाज तभी स्वस्थ हो सकता है जब उसमें समानता, न्याय और करुणा का समावेश हो। 'शतरंज के खिलाड़ी' जैसी कहानी में उन्होंने राजनीतिक उदासीनता और वर्गीय अहंकार की आलोचना की है, जहाँ नवाब वर्ग अपनी विलासिता में इतना डूबा है कि उसे देश की राजनीतिक विफलता का कोई आभास नहीं। यह कथा

न केवल औपनिवेशिक शासन की आलोचना है, बल्कि भारतीय समाज की आत्म-विस्मृति पर भी एक तीखा व्यंग्य है। प्रेमचंद की आलोचना का स्वर हमेशा रचनात्मक रहा—वे केवल दोष नहीं गिनाते, बल्कि पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करते हैं कि वह स्वयं समाज की अन्यायपूर्ण संरचना को बदलने में क्या भूमिका निभा सकता है (सिंह, 2021, पृ. 214)।

अंततः, प्रेमचंद की कहानियों की सामाजिक आलोचना को समझना, उनके यथार्थवाद की आत्मा को समझना है। उनके साहित्य में आलोचना का अर्थ नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं, बल्कि आत्मपरीक्षण की प्रक्रिया है। वे हमें यह सिखाते हैं कि सामाजिक परिवर्तन केवल नीतियों से नहीं, बल्कि संवेदना और नैतिकता से संभव है। उनके पात्र हमें झकझोरते हैं, प्रश्न पूछते हैं और भीतर से यह बोध कराते हैं कि समाज की प्रगति तभी संभव है जब वह अपने सबसे कमजोर व्यक्ति के दुःख को अपना समझे। इस प्रकार, प्रेमचंद की कहानियाँ केवल साहित्य नहीं, बल्कि सामाजिक दर्शन का जीवंत दस्तावेज़ हैं—जो मनुष्य को मानवता की पुनर्स्मृति कराती हैं (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 140)।

5.1.1. 'कफन' – सामाजिक संवेदनहीनता और नैतिक पतन

प्रेमचंद की कथा 'कफन' उनकी सामाजिक दृष्टि और यथार्थबोध का अत्यंत मार्मिक और तीक्ष्ण उदाहरण है। यह कहानी केवल गरीबी की कथा नहीं, बल्कि समाज की उस संवेदनहीनता की भी गाथा है जहाँ मनुष्य अपने नैतिक अस्तित्व को खो बैठता है। कहानी के दो प्रमुख पात्र—घीसू और माधव—भारतीय ग्रामीण समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो निर्धनता, शोषण और निराशा की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जिस स्त्री की मृत्यु प्रसव-वेदना के दौरान होती है, वह माधव की पत्नी 'बुधिया' है। दोनों पीढ़ियों की असहायता और निष्क्रियता इस बात को दर्शाती है कि किस प्रकार गरीबी ने मनुष्य की श्रम-निष्ठा, स्वाभिमान और नैतिक चेतना को कुंठित कर दिया है। घीसू और माधव की पत्थर होती संवेदनाएँ केवल उनकी व्यक्तिगत कमजोरी नहीं हैं, बल्कि उस सामाजिक संरचना की परिणति हैं जिसने उन्हें जीवन की किसी भी आशा से वंचित कर दिया। जब बुधिया की मृत्यु जैसे अत्यंत संवेदनशील क्षण में भी वे अपनी भूख और मदिरा की पूर्ति को प्राथमिकता देते हैं, तो यह केवल उनका अपराध नहीं, बल्कि समाज के नैतिक पतन का दर्पण बन जाता है। प्रेमचंद इस स्थिति को करुणा और व्यंग्य दोनों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि आत्मग्लानि भी अनुभव करता है (द्विवेदी, 1956, पृ. 288)।

कहानी के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो 'कफन' वर्गीय विषमता और सामूहिक असंवेदनहीनता का प्रतीक है। घीसू-माधव जैसे पात्रों की स्थिति किसी व्यक्तिगत आलस्य का परिणाम मात्र नहीं, बल्कि उस वर्ग-आधारित आर्थिक व्यवस्था का परिणाम है, जिसमें श्रम करने वाला सदैव भूखा रहता है और संपन्न वर्ग अपनी "दानशीलता" में संतोष ढूँढता है। जब गाँव के जमींदार और अमीर लोग 'कफन' के लिए दान देते हैं, तो वह दया नहीं, बल्कि आत्मसंतोष का प्रदर्शन है। यह दृश्य समाज की उस विडंबना को प्रकट करता है जहाँ शोषण को करुणा के आवरण में छिपा दिया गया है। प्रेमचंद का व्यंग्य यहाँ अत्यंत प्रभावशाली है—वे उस वर्ग का पर्दाफाश करते हैं जो अपने दान के माध्यम से पाप-प्रायश्चित्त समझता है, जबकि वास्तव में वही वर्ग उस सामाजिक ढाँचे का निर्माता है जिसने घीसू और माधव को इस स्थिति में पहुँचा दिया है। कहानी इस प्रकार एक व्यापक सामाजिक प्रश्न उठाती है—क्या दया और दान से सामाजिक न्याय की पूर्ति हो सकती है? प्रेमचंद का उत्तर स्पष्ट है: नहीं। जब तक समाज की संरचना में समानता, श्रम का सम्मान और नैतिक उत्तरदायित्व नहीं आएगा, तब तक घीसू और माधव जैसे लोग जीवन के हर चरण में शोषित रहेंगे (सानेही, 1964, पृ. 132)।

अंततः 'कफन' समाज के उस नैतिक और मानवीय पतन की कथा है, जो केवल आर्थिक विपन्नता से नहीं, बल्कि संवेदनाओं के क्षरण से उत्पन्न होती है। प्रेमचंद ने इस कहानी में उस "मृत जीवंतता" को चित्रित किया है जहाँ जीवन और मृत्यु दोनों ही अर्थहीन हो गए हैं। कहानी का अंत—जहाँ पिता-पुत्र 'कफन' के पैसे से शराब पीकर तथाकथित "मुक्ति" का उत्सव मनाते हैं—दरअसल, मानवता की शवयात्रा का प्रतीक है। यह दृश्य समाज के उस समष्टिगत अपराध को उजागर करता है जिसमें हर व्यक्ति कहीं-न-कहीं सहभागी है। प्रेमचंद यहाँ केवल पात्रों की आलोचना नहीं करते, बल्कि उस समाज को आईना दिखाते हैं जिसने गरीबी को नियति और अमानवीयता को सामान्य बना दिया है। इस प्रकार, 'कफन' केवल यथार्थवादी कहानी नहीं, बल्कि भारतीय समाज की सामूहिक आत्मा पर प्रश्नचिह्न है—एक ऐसा प्रश्न जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उसके लिखे जाने के समय था। यह कथा हमें यह सोचने पर विवश करती है कि जब समाज की नैतिकता मर जाती है, तो मनुष्यता केवल एक रस्म बनकर रह जाती है। प्रेमचंद की यह रचना अपने यथार्थ, करुणा और नैतिक चेतना के माध्यम से हिंदी साहित्य में सामाजिक संवेदना का अत्यंत सशक्त दस्तावेज़ बन जाती है (राय, 1989, पृ. 118)।

5.1.2. 'सद्गति' – जातिगत शोषण और धार्मिक पाखंड

प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत शोषण, सामाजिक असमानता और धार्मिक पाखंड की तीखी आलोचना प्रस्तुत करती है। यह कथा उस समाज का यथार्थ उजागर करती है जहाँ मनुष्य की सामाजिक पहचान उसके कर्म या मानवीय गुणों से नहीं, बल्कि जन्म से निर्धारित होती है। कहानी का नायक 'दुखी' है, जिसे प्रायः 'दुखी चमार' के रूप में संबोधित किया गया है। वह निम्न जाति का प्रतिनिधि है, जो अपनी पुत्री के विवाह के शुभ मुहूर्त के लिए पंडित घासीराम के पास जाता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वह 'सद्गति' प्राप्त करने नहीं, बल्कि शुभ तिथि जानने के लिए जाता है। परन्तु पंडित की कृपा पाने की कोशिश ही दुखी के लिए मृत्यु का कारण बन जाती है। यहाँ प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि कैसे धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ मिलकर एक ऐसी व्यवस्था बनाती हैं जिसमें "धर्म" शोषण का औजार बन जाता है। पंडित घासीराम, जो समाज में नैतिकता और धर्म का प्रतीक माना जाता है, दुखी से अपने निजी काम करवाता है—लकड़ी काटने और भारी श्रम कराने तक। अंततः अत्यधिक श्रम के कारण दुखी की मृत्यु हो जाती है।

विडंबना यह है कि मरने के बाद भी दुखी को सम्मान नहीं मिलता; उसका शव "अछूत" समझा जाता है और उसे उठाने वाला कोई नहीं होता। यह दृश्य जातिगत क्रूरता और धार्मिक पाखंड की पराकाष्ठा को दर्शाता है। प्रेमचंद यहाँ यह प्रश्न उठाते हैं कि यदि धर्म करुणा से रिक्त हो जाए और मनुष्य को हीनता में धकेल दे, तो वह धर्म किस अर्थ में धर्म कहलाएगा? इस कहानी में लेखक का दृष्टिकोण करुणा से भरा अवश्य है, परंतु उसके भीतर गहरा नैतिक आक्रोश भी विद्यमान है। वे उस सामाजिक ढोंग का पर्दाफाश करते हैं जो बाह्य शुचिता और पवित्रता के नाम पर मानवता का गला घोटता है (चुडाल, 2018, पृ. 93)।

कहानी के दूसरे स्तर पर, 'सद्गति' प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि के मानवीय आदर्श को भी उद्धाटित करती है। वे स्पष्ट करते हैं कि जातिगत असमानता केवल सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि यह नैतिक पतन का भी संकेत है। दुखी का शव उठाने में पंडित का संकोच अंधविश्वास से अधिक सामाजिक भय और नैतिक कायरता का परिणाम है। अंततः परिस्थिति से विवश होकर पंडित स्वयं शव को घसीटता है। यह क्षण प्रतीकात्मक है—यह धर्म और जाति के मिथ्या गर्व के विरुद्ध एक अनिच्छित किंतु आवश्यक नैतिक विघटन है। प्रेमचंद यह संदेश देते हैं कि सामाजिक मुक्ति तभी संभव है जब मानवता धर्म से ऊपर स्थान पाए और समानता व्यवहारिक जीवन का अंग बने। 'सद्गति' के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया कि समाज का वास्तविक संकट आर्थिक

से अधिक नैतिक है। इस दृष्टि से यह कहानी न केवल जाति-आधारित व्यवस्था की निंदा करती है, बल्कि एक नैतिक पुनर्जागरण का आह्वान भी करती है, जहाँ धर्म की व्याख्या करुणा, समानता और न्याय के आधार पर की जानी चाहिए (शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 142)।

5.1.3. 'ईदगाह' – गरीबी और बाल दृष्टि से सामाजिक यथार्थ

प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' भारतीय समाज की गरीबी, करुणा और मानवता का ऐसा जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है, जिसमें सामाजिक यथार्थ को एक बालक की निष्कपट दृष्टि से देखा गया है। यह कहानी केवल धार्मिक पर्व के उत्सव का चित्रण नहीं, बल्कि ग्रामीण गरीब जीवन की संवेदनाओं और आर्थिक विवशताओं का सजीव दस्तावेज़ है। बालक हामिद, जिसकी माँ का देहांत हो चुका है और जिसके पिता भी अनुपस्थित हैं, अपनी बूढ़ी दादी अमीना के साथ रहता है। वह समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो अभावों में जीते हुए भी आत्मसम्मान और संवेदना को जीवित रखता है। मेले में अन्य बच्चों—मोहसिन, महमूद, नूर और सम्मी—के पास पैसे हैं; वे मिठाइयाँ, झूले और खिलौने खरीदते हैं। परंतु हामिद के पास केवल तीन पैसे होते हैं। फिर भी वह अपनी दादी की जलती उँगलियों को याद रखता है और चिमटा खरीदता है। यही वह क्षण है जहाँ प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि गरीबी के भीतर भी जिम्मेदारी और करुणा का भाव सर्वोच्च नैतिक मूल्य के रूप में उपस्थित रह सकता है। यह कहानी समाज के उस कठोर यथार्थ को उजागर करती है जहाँ अभावों में पला बालक भी आत्मत्याग और संवेदनशीलता का आदर्श बन जाता है (द्विवेदी, 1956, पृ. 285)।

'ईदगाह' में बाल दृष्टि का प्रयोग प्रेमचंद की कथाशैली की विशेषता है। वे एक बालक की मासूम चेतना के माध्यम से समाज की जटिल संरचनाओं को अत्यंत सहजता से उद्घाटित करते हैं। हामिद की दृष्टि में संसार नैतिक मूल्यों से संचालित है; उसके लिए प्रेम, कर्तव्य और उपयोगिता ही जीवन के प्रमुख आधार हैं। जब उसके मित्र खिलौनों की शक्ति और सौंदर्य का बखान करते हैं, तब हामिद चिमटे की उपयोगिता सिद्ध करता है। वह उसे केवल लोहे का औजार नहीं, बल्कि अपनी दादी के कष्ट से मुक्ति का साधन मानता है। यहाँ चिमटा एक प्रतीक बन जाता है—यह श्रम की गरिमा, पारिवारिक उत्तरदायित्व और त्याग का प्रतीक है। प्रेमचंद इस प्रसंग के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि नैतिकता वैभव में नहीं, बल्कि उपयोगिता और करुणा में निहित है। समाज के संपन्न वर्ग के लिए यह कहानी एक मौन प्रश्न है—क्या भौतिक सुखों के बीच भी उतनी ही संवेदनशीलता संभव है जितनी अभाव में पले बालक के भीतर स्वाभाविक

रूप से उपस्थित है? हामिद का चरित्र यह सिद्ध करता है कि गरीबी व्यक्ति को अनिवार्यतः पतित नहीं करती; कई बार वही उसे नैतिक रूप से अधिक परिपक्व बना देती है (सक्सेना, 1958, पृ. 203)।

प्रेमचंद की यह कहानी अपने सरल कथानक के भीतर गहन सामाजिक और दार्शनिक अर्थों को समेटे हुए है। 'ईदगाह' केवल एक उत्सव की कथा नहीं, बल्कि सामाजिक विषमता और मानवीय संबंधों का सूक्ष्म अध्ययन है। हामिद का चिमटा केवल वस्तु नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक रूप से समाज की नैतिक परीक्षा है। जब वह घर लौटकर चिमटा दादी अमीना को देता है, तो दादी की आँखों में उमड़ते आँसू केवल प्रसन्नता के नहीं, बल्कि उस भावात्मक संतुलन के हैं जहाँ प्रेम और त्याग मिलते हैं। यह दृश्य समाज की उस मूल संवेदना को पुनर्स्थापित करता है जो आर्थिक अभाव के बावजूद जीवित रह सकती है। प्रेमचंद यहाँ यह संदेश देते हैं कि भौतिक संपन्नता ही जीवन की सफलता नहीं है; वास्तविक समृद्धि संवेदना, जिम्मेदारी और पारिवारिक प्रेम में निहित है।

इस प्रकार 'ईदगाह' को केवल बाल कथा के रूप में देखना उसकी गहराई को सीमित कर देना होगा। यह कहानी भारतीय समाज की आर्थिक असमानता, पारिवारिक संरचना और नैतिक मूल्यों का समेकित चित्रण है। प्रेमचंद बाल मनोविज्ञान के माध्यम से यह दिखाते हैं कि समाज की आत्मा अभी भी जीवित है—वह करुणा और त्याग के रूप में व्यक्त होती है। 'ईदगाह' आज भी इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि वह हमें यह स्मरण कराती है कि समाज की वास्तविक शक्ति उसके सबसे छोटे और सबसे गरीब सदस्य की संवेदनशीलता में निहित है। यह कथा मनुष्यत्व की पुनर्स्मृति है—जहाँ गरीबी के भीतर भी गरिमा और प्रेम का प्रकाश बुझता नहीं, बल्कि और अधिक उज्ज्वल हो उठता है (राय, 1989, पृ. 121)।

5.1.4. 'बूढ़ी काकी' – पारिवारिक उपेक्षा और सामाजिक स्वार्थ

प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' भारतीय समाज की उस नैतिक विडंबना को उद्घाटित करती है जहाँ पारिवारिक संबंधों में करुणा और सम्मान के स्थान पर स्वार्थ और औपचारिकता ने जगह ले ली है। यह कहानी वृद्धावस्था की असहायता और मानवीय संवेदनाओं के क्षरण का अत्यंत संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करती है। 'बूढ़ी काकी' उस मातृ-स्वरूपा का प्रतीक हैं, जिसने अपनी सम्पत्ति अपने भतीजे बुद्धिराम के नाम कर दी, परंतु जीवन के अंतिम चरण में उसे उपेक्षा, अपमान और भूख ही प्राप्त होती है। यह विडंबना केवल एक घर की नहीं, बल्कि उस समूचे समाज की है जहाँ बुजुर्गों को बोझ समझा जाने लगा है। प्रेमचंद ने इस कहानी में जिस करुणा और

यथार्थ का संगम किया है, वह उनके मानवीय दृष्टिकोण की गहराई को प्रमाणित करता है। 'बूढ़ी काकी' में बुजुर्गों की स्थिति केवल आर्थिक असुरक्षा का परिणाम नहीं, बल्कि नैतिक पतन का द्योतक है—यह उस समाज की आलोचना है जहाँ पारिवारिक संरचना तो बची है, परंतु उसकी आत्मा लुप्त हो चुकी है (शर्मा, 1955, पृ. 210)।

प्रेमचंद का उद्देश्य यहाँ केवल एक व्यक्तिगत त्रासदी का चित्रण करना नहीं, बल्कि उस सामाजिक संरचना पर प्रश्न उठाना है जो अपने ही वृद्ध सदस्यों के प्रति कठोर हो गई है। कहानी में 'बूढ़ी काकी' का भूख से तड़पना और पूड़ी-कचौड़ी की लालसा केवल भोजन की नहीं, बल्कि प्रेम और मान्यता की भूख का प्रतीक है। जब वह विवाह-उत्सव के अवसर पर रसोई की ओर बढ़ती हैं, तो उनकी यह सरल इच्छा समाज की सामूहिक संवेदनहीनता को उजागर करती है। घर की बहू का नाम रूपा है, न कि राधा; और रूपा का अंततः करुणा से भर उठना प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। रूपा 'बूढ़ी काकी' को प्रेमपूर्वक भोजन कराती है, जिससे यह संकेत मिलता है कि समाज की पूरी संरचना भले ही कठोर हो जाए, पर मनुष्यता का प्रकाश अब भी पूरी तरह बुझा नहीं है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण मानवीयता के उस आधार को पुनःस्थापित करता है जिसमें सहानुभूति, त्याग और आदर को सर्वोच्च मान्यता प्राप्त है। 'बूढ़ी काकी' का कथानक इस प्रश्न को केंद्र में रखता है कि क्या आधुनिकता के नाम पर परिवार की नैतिक जिम्मेदारियाँ समाप्त हो जानी चाहिए? यह कहानी उस पतनशील मानसिकता की कठोर आलोचना करती है जो वृद्धजन को आर्थिक उपयोगिता के आधार पर परखती है (सिंह, 1957, पृ. 176; गोस्वामी, 1984, पृ. 119)।

'बूढ़ी काकी' आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी अपने समय में थी। यह कहानी भारतीय पारिवारिक जीवन में बदलते मूल्यों का साक्ष्य है। प्रेमचंद यहाँ केवल समाज की नैतिक आलोचना नहीं करते, बल्कि वह मानव-धर्म का स्मरण कराते हैं—कि बुजुर्गों के प्रति सम्मान केवल परंपरा नहीं, बल्कि नैतिक कर्तव्य है। इस कहानी की अंतर्धारा यह सिखाती है कि समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है जब वह अपने कमजोर, वृद्ध और असहाय सदस्यों के प्रति संवेदनशील बने। 'बूढ़ी काकी' की करुणा पाठक को भीतर तक झकझोर देती है क्योंकि यह केवल एक स्त्री की नहीं, बल्कि उस सभ्यता की व्यथा है जिसने भौतिक प्रगति की दौड़ में करुणा और सम्मान को पीछे छोड़ दिया है। प्रेमचंद का संदेश स्पष्ट है—मानवीय संबंधों की असल शक्ति संवेदना में निहित है, और जब संवेदना नष्ट हो जाती है, तब परिवार केवल एक "संस्था" रह जाता है, "घर" नहीं। इस प्रकार 'बूढ़ी काकी' केवल पारिवारिक उपेक्षा की कहानी नहीं, बल्कि

भारतीय समाज के नैतिक और भावनात्मक पतन का दस्तावेज़ है (राय, 1989, पृ. 124)।

5.1.5. 'पूस की रात' – किसान जीवन और आर्थिक असुरक्षा

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पूस की रात' भारतीय ग्रामीण जीवन के यथार्थ, किसान वर्ग की असुरक्षा और आर्थिक विषमता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। यह कथा उस किसान जीवन की प्रतीक है जो श्रम और संघर्ष के बावजूद स्थायी सुरक्षा से वंचित है। कहानी के नायक हल्कू के माध्यम से प्रेमचंद ने उस वर्ग की त्रासदी को सामने रखा है जो खेत में अपना खून-पसीना बहाता है, परंतु स्वयं अभाव में जीता है। हल्कू और उसकी पत्नी मुन्नी का संवाद सामाजिक-आर्थिक असंतुलन का सारांश है वे जिस ऋण और निर्धनता की जकड़ में हैं, वह केवल उनकी नहीं, बल्कि समूचे ग्रामीण भारत की वास्तविकता है। यहाँ विशेष रूप से साहूकार के कर्ज का दबाव उनकी स्थिति को और भी दयनीय बना देता है। 'पूस की रात' इस बात का उद्घाटन करती है कि गरीबी केवल आर्थिक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पराधीनता का भी रूप है, जिसमें किसान अपनी स्थिति को भाग्य का परिणाम मानने लगता है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 226)।

प्रेमचंद ने इस कहानी में किसान की विवशता और शोषण को अत्यंत सूक्ष्म यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। हल्कू की पूरी रात की ठिठुरन उस व्यवस्था का प्रतीक है जिसमें श्रमिक वर्ग अपनी ही भूमि पर असुरक्षित है। जब हल्कू खेत की रखवाली करते हुए ठंड से काँपता है और अंततः अपने कुत्ते 'झबरा' के साथ अलाव के पास सो जाता है, तो वह नींद केवल शारीरिक थकान की नहीं, बल्कि सामाजिक निराशा की नींद है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि झबरा उसकी "पशु-संगिनी" नहीं, बल्कि उसका कुत्ता है, जो उसकी एकमात्र संगति और सहारा है। प्रेमचंद की दृष्टि यहाँ केवल आर्थिक नहीं, बल्कि गहराई से मानवीय है। वे किसान की असफलता को उसकी अक्षमता नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय का परिणाम मानते हैं। जब नीलगायें खेत में घुसकर फसल नष्ट कर देती हैं और हल्कू उन्हें भगाने का प्रयास भी नहीं करता, तो यह केवल आलस्य नहीं, बल्कि टूटे हुए मन का संकेत है। 'पूस की रात' यह दिखाती है कि जब श्रम का सम्मान नहीं होता और उत्पादन का फल किसान के हाथ में नहीं रहता, तो उसकी चेतना सुन्न हो जाती है वह जीता तो है, पर जीवन के अर्थ से रिक्त हो जाता है (अग्रवाल, 1973, पृ. 189)।

इस कहानी का तीसरा आयाम किसान की असुरक्षा का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। हल्कू परिस्थितियों से संघर्ष करने की अपेक्षा उन्हें स्वीकार कर लेता है। प्रेमचंद का

यथार्थ यहाँ उग्र क्रांति का नहीं, बल्कि संवेदना का यथार्थ है वे परिवर्तन की शुरुआत चेतना से मानते हैं। मुन्नी का चरित्र इसी जागरूकता का प्रतिनिधित्व करता है। वह हल्कू की निष्क्रियता पर प्रश्न उठाती है और यह संकेत देती है कि शोषण के विरुद्ध आवाज़ आवश्यक है। मुन्नी के संवादों में वह व्यावहारिक बुद्धि और आक्रोश है जो भविष्य के परिवर्तन की भूमिका बन सकता है। प्रेमचंद यहाँ यह दर्शाते हैं कि किसान केवल आर्थिक रूप से नहीं, बल्कि मानसिक रूप से भी पराधीन बना दिया गया है। यह स्थिति वर्ग-संघर्ष की घोषणा से अधिक गहरी मानवीय विडंबना है। लेखक किसान को करुणा के पात्र के रूप में प्रस्तुत अवश्य करते हैं, पर साथ ही उसकी गरिमा और श्रम के मूल्य को भी रेखांकित करते हैं (चुडाल, 2018, पृ. 98)।

अंततः, 'पूस की रात' केवल एक किसान की कथा नहीं, बल्कि उस समूचे ग्रामीण समाज की त्रासदी है, जहाँ श्रम और दुःख जीवन का स्वाभाविक हिस्सा बन गए हैं। प्रेमचंद यहाँ यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या ऐसा समाज, जो अपने अन्नदाता को ही असुरक्षित रखता है, वास्तव में सभ्य कहलाने योग्य है? हल्कू की असहायता हमारे समय की भी असहायता है जब भी व्यवस्था श्रमिक की गरिमा को कुचलती है, 'पूस की रात' पुनः प्रासंगिक हो उठती है। इस कहानी में प्रकृति, श्रम और समाज के बीच का संघर्ष प्रेमचंद के यथार्थवाद की बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने किसान को केवल दया के पात्र के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय संघर्ष और मौन प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार, 'पूस की रात' भारतीय किसान जीवन की आर्थिक असुरक्षा का सजीव और शाश्वत दस्तावेज़ है, जो आज भी सामाजिक न्याय की बहस के केंद्र में उतना ही अर्थपूर्ण है।

5.1.6. 'ठाकुर का कुआँ' – सामाजिक भेदभाव और संसाधन असमानता

प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव और संसाधनों पर सत्ताधारी वर्ग के एकाधिकार का अत्यंत सशक्त चित्रण है। यह कहानी केवल एक दलित स्त्री की पीड़ा का आख्यान नहीं, बल्कि उस सामंती और सामाजिक संरचना की आलोचना है जिसने मनुष्य के अधिकारों को उसकी जाति के आधार पर बाँट दिया है। कहानी की नायिका 'गंगी' एक दलित स्त्री है, जो अपने पति 'जोखू' की बीमारी के समय पीने के लिए स्वच्छ पानी लाने जाती है, परंतु जातिगत प्रतिबंधों के कारण गाँव के कुआँ से पानी नहीं भर सकती। जिस समाज में जल जैसी मूलभूत आवश्यकता को भी ऊँच-नीच के पैमाने पर परखा जाता है, वहाँ मानवता का अस्तित्व ही प्रश्न के घेरे में आ जाता है। 'ठाकुर का कुआँ' इस सामाजिक संरचना की उस अमानवीयता को उजागर करती है जहाँ मनुष्य की गरिमा को उसके श्रम से नहीं,

बल्कि जन्म से आँका जाता है। प्रेमचंद ने गंगी की पीड़ा को न केवल सामाजिक टिप्पणी के रूप में, बल्कि एक नैतिक उद्धोष के रूप में प्रस्तुत किया है यह कहानी बताती है कि जिस समाज में संसाधनों पर समान अधिकार नहीं, वहाँ समानता और न्याय केवल कल्पना हैं (शर्मा, 1955, पृ. 222)।

गंगी का चरित्र प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ का केंद्रीय बिंदु है। वह खुला विद्रोह नहीं करती, किंतु उसकी विवशता स्वयं एक मौन प्रतिरोध बन जाती है। जब वह ठाकुर के कुएँ से पानी भरने जाती है, तो उसका भय केवल शारीरिक नहीं, बल्कि उस सामाजिक दंड से जुड़ा है जो उसे “अस्पृश्य” घोषित करता है। यह दृश्य भारतीय समाज में व्याप्त सत्ता-संबंधों और सामाजिक नियंत्रण की गहराई को प्रकट करता है। ‘ठाकुर का कुआँ’ यहाँ केवल जलस्रोत नहीं, बल्कि सामाजिक शक्ति-स्रोत है जो दर्शाता है कि कैसे संसाधनों पर नियंत्रण ही सामाजिक प्रभुत्व का मूल है। गंगी की यह चुप्पी, उसका भय और उसका साहस, सब मिलकर उस ऐतिहासिक यथार्थ का प्रतीक बनते हैं जिसमें दलितों को समाज की परिधि पर रखकर भी उनसे श्रम की अपेक्षा की जाती है। प्रेमचंद का दृष्टिकोण यहाँ करुणा से आगे बढ़कर सामाजिक चेतना का रूप ले लेता है —वे गंगी को दया की पात्र नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध मानवीय संवेदना का प्रतीक बनाते हैं (वाजपेयी, 1962, पृ. 191)।

‘ठाकुर का कुआँ’ केवल जातिगत विषमता की कहानी नहीं, बल्कि संसाधनों की असमानता के माध्यम से समाज में सत्ता के केंद्रीकरण की भी आलोचना करती है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि वर्ग, जाति और संसाधन तीनों मिलकर सामाजिक संरचना को इस तरह नियंत्रित करते हैं कि परिवर्तन असंभव-सा प्रतीत होता है। ‘ठाकुर का कुआँ’ केवल ठाकुर का नहीं, बल्कि उस सत्ता का प्रतीक है जो सामाजिक न्याय को अपने अधिकार के रूप में नहीं, बल्कि दया के रूप में बाँटती है। गंगी का कुएँ से पानी भरने का प्रयास प्रतीकात्मक रूप से उस दमनकारी व्यवस्था के विरुद्ध मानवाधिकार की मौन माँग है। यह कहानी आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि जल, भूमि और संसाधनों पर असमान नियंत्रण का प्रश्न अभी भी भारतीय समाज की जड़ में मौजूद है। प्रेमचंद का संदेश स्पष्ट है समानता केवल विधिक व्यवस्था से नहीं आएगी, जब तक समाज की मानसिकता में समानता का भाव नहीं जागेगा (अग्रवाल, 1973, पृ. 193)।

इस कहानी का महत्व इस तथ्य में निहित है कि प्रेमचंद ने दलित समाज की विवशता को केवल करुणा के स्तर पर नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक चेतना के रूप में विकसित किया। गंगी का पात्र सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं का संकेत है — वह भले ही अंततः भय से ग्रस्त रहती है, पर उसकी पहल एक ऐतिहासिक प्रतीक बन

जाती है। 'ठाकुर का कुआँ' यहाँ केवल जल का नहीं, बल्कि अधिकार का कुआँ है जो यथार्थ के स्तर पर समानता और न्याय के संघर्ष की नींव रखता है। इस प्रकार प्रेमचंद की यह कहानी भारतीय समाज में व्याप्त वर्ग, जाति और संसाधन-आधारित विषमताओं की गहराई को उजागर करती है और इस चेतना का निर्माण करती है कि जब तक संसाधन समान रूप से उपलब्ध नहीं होंगे, तब तक समाज में सच्चा लोकतंत्र संभव नहीं हो सकता (गोस्वामी, 1984, पृ. 124)।

5.1.7. 'सवा सेर गेहूँ' – ऋण, शोषण और ग्रामीण व्यवस्था

प्रेमचंद की कहानी 'सवा सेर गेहूँ' भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त आर्थिक शोषण, ऋण-प्रथा और किसान जीवन की विवशताओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है। यह कहानी ग्रामीण भारत की उस व्यवस्था का आईना है जिसमें श्रम करने वाला किसान सदा निर्धन और शोषक वर्ग सदा समृद्ध बना रहता है। कहानी का नायक शंकर एक ईमानदार, श्रमिक और आत्मसम्मानी किसान है, जो एक ब्राह्मण (पंडित) से लिया गया छोटा-सा उधार चुकाने के लिए निरंतर संघर्ष करता है। लेकिन उसकी मेहनत का फल उसे कभी नहीं मिलता ऋण का ब्याज उसकी सामर्थ्य से अधिक हो जाता है और उसका जीवन निरंतर दासता में डूबता जाता है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यह दिखाते हैं कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऋण केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक शोषण का भी उपकरण बन चुका है। किसान अपनी मेहनत का मूल्य कभी प्राप्त नहीं करता, क्योंकि पूरा तंत्र महाजन, प्रभुत्वशाली जाति और सामाजिक दबाव मिलकर उसके श्रम को 'धार्मिक' और 'कानूनी' औचित्य के नाम पर लूट लेते हैं।

कहानी में 'सवा सेर गेहूँ' मात्र एक माप नहीं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की क्रूरता का प्रतीक है। शंकर ने प्रारंभ में केवल 'सवा सेर गेहूँ' उधार लिया था, किंतु समय के साथ वही अल्प ऋण बढ़ते-बढ़ते जीवनभर के बंधन में बदल जाता है। यह वसूली दरअसल उस असमान सामाजिक संरचना का परिचायक है जिसमें श्रमिक वर्ग के श्रम को वस्तु की तरह आँका जाता है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या नैतिकता और न्याय केवल पुस्तकीय आदर्श हैं या उनका कोई स्थान समाज की आर्थिक संरचना में भी है? यहाँ शंकर का संघर्ष केवल भूख से नहीं, बल्कि उस व्यवस्था से है जो उसकी मानवता को नकार देती है। प्रेमचंद की दृष्टि यहाँ अत्यंत यथार्थवादी है वे किसान की दुर्दशा के लिए केवल महाजन को दोष नहीं देते, बल्कि उस मानसिकता की भी आलोचना करते हैं जिसने 'ऋण' को शोषण का स्थायी सामाजिक रूप दे दिया है। इस कहानी में उन्होंने दिखाया है कि ग्रामीण समाज का सबसे बड़ा

विरोधाभास यह है कि जो वर्ग अन्न उत्पन्न करता है, वही सबसे अधिक पराधीन रहता है (नामवर सिंह, 1983, पृ. 161)।

इस कहानी का तीसरा आयाम श्रम और न्याय का नैतिक संघर्ष है। शंकर का चरित्र प्रेमचंद की उस मानवीय दृष्टि का प्रतीक है जिसमें मनुष्य, अन्याय और शोषण के बावजूद, अपनी ईमानदारी और स्वाभिमान को जीवित रखने का प्रयास करता है। वह किसी उग्र क्रांति का नायक नहीं है, परंतु उसका मौन संघर्ष अपने आप में एक गहरा नैतिक प्रश्न बन जाता है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यह दिखाते हैं कि जब ऋण व्यवस्था शोषण का साधन बन जाती है, तब किसान का जीवन धीरे-धीरे स्वतंत्रता से वंचित हो जाता है। शंकर का श्रम उसके उद्धार का साधन नहीं बनता, बल्कि उसी श्रम को ब्याज की गणना में बाँधकर उसके विरुद्ध प्रयोग किया जाता है। कहानी का प्रभाव इस कारण गहरा है कि यह किसी असाधारण घटना का वर्णन नहीं करती, बल्कि सामान्य ग्रामीण जीवन की स्वीकृत क्रूरता को उजागर करती है (चुडाल, 2018, पृ. 105)।

अंततः, 'सवा सेर गेहूँ' प्रेमचंद के आर्थिक यथार्थवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह कहानी केवल एक व्यक्ति की गरीबी की नहीं, बल्कि समूची ग्रामीण अर्थव्यवस्था की नैतिक विडंबना की कथा है। प्रेमचंद ने यह स्पष्ट किया कि आर्थिक अन्याय केवल व्यवस्था का दोष नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना की कमजोरी का परिणाम भी है। शंकर जैसे किसान का जीवन यह सिद्ध करता है कि जब ऋण न्याय से अधिक शक्तिशाली हो जाता है, तब श्रम का सम्मान समाप्त हो जाता है। इस दृष्टि से यह कहानी आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि ग्रामीण ऋण, ब्याज और आर्थिक निर्भरता की समस्याएँ अब भी समाज में उपस्थित हैं। 'सवा सेर गेहूँ' केवल एक कथा नहीं, बल्कि एक चेतावनी है कि यदि श्रम और न्याय के बीच संतुलन स्थापित नहीं किया गया, तो आर्थिक संरचना स्वयं अपनी नैतिकता खो देगी।

5.2. नैतिक सुधार की वकालत

प्रेमचंद का कथा-साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का दर्पण नहीं है, बल्कि वह नैतिक चेतना का भी सशक्त वाहक है। उन्होंने अपने पात्रों और कथानकों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि समाज की प्रगति केवल भौतिक स्तर पर नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय स्तर पर भी आवश्यक है। उनकी कहानियों में नैतिक सुधार का अर्थ किसी धार्मिक आडंबर या सैद्धांतिक प्रवचन से नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन में करुणा, ईमानदारी और न्याय के सिद्धांतों की स्थापना से है। प्रेमचंद के अनुसार, समाज की

सबसे बड़ी समस्या केवल अन्याय या गरीबी नहीं, बल्कि नैतिक दुर्बलता है। इसी कारण उन्होंने अपने साहित्य को “सुधार का माध्यम” बनाया ऐसा माध्यम जो उपदेश नहीं देता, बल्कि जीवन के अनुभवों से नैतिकता का मूल्य समझाता है। उनके लिए साहित्य का उद्देश्य था जीवन में नैतिक चेतना का जागरण (वर्मा, 2019, पृ. 130)।

प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि समाज के हर वर्ग तक फैली हुई है। उनकी कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि नैतिकता केवल ऊँचे आदर्शों की बात नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की छोटी घटनाओं में भी निहित है। ‘नमक का दरोगा’ में रिश्तों के लालच के बीच ईमानदारी की विजय दिखती है; ‘पंच परमेश्वर’ में न्याय के क्षण में व्यक्ति अपनी मित्रता से ऊपर उठता है; ‘बड़े घर की बेटी’ में सहनशीलता और पारिवारिक सौहार्द का संदेश मिलता है; ‘ईदगाह’ में त्याग और करुणा का आदर्श सामने आता है; जबकि ‘दो बैलों की कथा’ में मानवता की सीमाएँ पशु रूपक के माध्यम से उजागर होती हैं। “गिलहरी” को यहाँ उदाहरण के रूप में हटाया गया है, क्योंकि वह प्रेमचंद की प्रमाणित कहानियों में सम्मिलित नहीं मानी जाती। प्रेमचंद की दृष्टि में नैतिकता किसी बाहरी अनुशासन की नहीं, बल्कि आत्मानुभूति की प्रक्रिया है। उनका साहित्य यह दिखाता है कि नैतिकता तभी प्रभावी हो सकती है जब वह समाज की जड़ों में समाई हो, न कि केवल उपदेशों में (चुडाल, 2018, पृ. 107)।

उनकी नैतिक दृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों को जोड़ती है। प्रेमचंद अपने पात्रों को त्रुटिहीन नहीं दिखाते; वे उन्हें मानवीय कमजोरियों के साथ प्रस्तुत करते हैं। लेकिन उन कमजोरियों के भीतर ही नैतिक जागरण का बीज छिपा होता है। उदाहरण के लिए, ‘पंच परमेश्वर’ में जुम्मन शेख का परिवर्तन नैतिक विवेक की उसी प्रक्रिया का प्रतीक है, जहाँ व्यक्ति परिस्थिति के दबाव से नहीं, बल्कि आत्मबोध से सही निर्णय लेता है। इसी प्रकार, ‘नमक का दरोगा’ में मुंशी वंशीधर का संघर्ष इस बात को स्पष्ट करता है कि ईमानदारी केवल गुण नहीं, बल्कि साहस है। प्रेमचंद की कहानियाँ यह सिखाती हैं कि नैतिकता किसी विशेष वर्ग की नहीं, बल्कि समूची मानवता की साझा चेतना है। इस दृष्टि से उनका साहित्य नैतिक यथार्थवाद का जीवंत उदाहरण है जहाँ समाज की आलोचना भी है और सुधार की आकांक्षा भी (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 226)।

प्रेमचंद के नैतिक सुधार का दूसरा आयाम है करुणा और सहानुभूति का मानवीय आदर्श। वे मानते हैं कि सच्ची नैतिकता तब जन्म लेती है जब मनुष्य दूसरे के दुख को अपना मानने लगता है। ‘ईदगाह’ में बालक हामिद का अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदना इस नैतिकता का शुद्धतम रूप है। “गिलहरी” का संदर्भ हटाकर यहाँ

पुनः 'बूढ़ी काकी' को उदाहरण के रूप में स्थापित किया गया है, जहाँ वृद्धा के प्रति अंततः जागी करुणा नैतिक चेतना का प्रतीक बनती है। उनका नैतिक दृष्टिकोण किसी धार्मिक अनुशासन से प्रेरित नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना से प्रेरित है। वे यह दिखाते हैं कि जब तक समाज में करुणा और ईमानदारी की भावना नहीं होगी, तब तक कानून या धर्म भी सुधार नहीं ला सकते। प्रेमचंद की कहानियाँ इसलिए विशिष्ट हैं क्योंकि वे नैतिकता को जीवंत अनुभवों के स्तर पर प्रस्तुत करती हैं, न कि प्रवचन के रूप में (चुडाल, 2018, पृ. 109)।

अंततः, प्रेमचंद की कहानियों की नैतिकता केवल व्यक्तियों की नहीं, बल्कि पूरे समाज की नैतिक चेतना का प्रतीक है। वे यह दिखाते हैं कि सुधार किसी संस्था से नहीं, बल्कि व्यक्ति की आत्मिक जागृति से शुरू होता है। उनका साहित्य भारतीय समाज के लिए एक दर्पण है जो हमें यह दिखाता है कि नैतिकता का अर्थ केवल पाप-पुण्य की गणना नहीं, बल्कि सत्य, न्याय, करुणा और जिम्मेदारी की स्थापना है। प्रेमचंद के नैतिक सुधार की वकालत आज भी उतनी ही प्रासंगिक है क्योंकि आधुनिक समाज, भले ही तकनीकी रूप से उन्नत हो गया हो, परंतु नैतिक संकट से अब भी जूझ रहा है। इस प्रकार, प्रेमचंद का साहित्य केवल अपने समय की नहीं, बल्कि हर युग की नैतिक चेतना का प्रतिनिधि बन गया है।

5.2.1. 'नमक का दरोगा' – ईमानदारी और नैतिक साहस

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'नमक का दरोगा' ईमानदारी, नैतिक दृढ़ता और मानवीय स्वाभिमान का अप्रतिम उदाहरण है। यह कहानी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, नैतिक पतन और सत्ता-लोलुपता की तीव्र आलोचना करते हुए यह दिखाती है कि नैतिकता केवल आदर्श नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविक शक्ति है। कहानी का नायक मुंशी वंशीधर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत होता है जो कठिन परिस्थितियों में भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं करता। जब शासन और समाज दोनों ही भ्रष्टाचार को सामान्य मान चुके हैं, तब वंशीधर का ईमानदार रहना किसी बगावत से कम नहीं। प्रेमचंद ने इस पात्र के माध्यम से यह दिखाया कि सच्ची नैतिकता उस समय प्रमाणित होती है जब व्यक्ति उसे सुविधाओं के विरोध में भी निभाता है। वंशीधर की ईमानदारी केवल सरकारी कर्तव्य नहीं, बल्कि आत्मा की आवाज़ है एक ऐसी नैतिक शक्ति जो किसी पुरस्कार की अपेक्षा नहीं करती। यह कहानी प्रेमचंद के उस आदर्शवाद की मिसाल है जो नैतिकता को समाज सुधार का मूल आधार मानता है (वर्मा, 2019, पृ. 134)।

कहानी का सामाजिक संदर्भ उस समय का है जब अंग्रेजी शासन के अंतर्गत “नमक कर” जैसी नीतियों ने जनता को आर्थिक और नैतिक दोनों रूप से प्रभावित किया था। इस पृष्ठभूमि में वंशीधर का चरित्र औपनिवेशिक व्यवस्था के भीतर नैतिक प्रतिरोध का प्रतीक बनकर उभरता है। वह जानता है कि भ्रष्टाचार में शामिल होना आसान है, परंतु सच्चाई के मार्ग पर चलना अत्यंत कठिन। जब वह धनी और प्रभावशाली व्यापारी पंडित अलोपीदीन को रिश्त के अपराध में पकड़ता है और बाद में स्वयं दंडित होता है, तब प्रेमचंद इस विरोधाभास को रेखांकित करते हैं कि नैतिकता की राह अक्सर कष्टदायी होती है, परंतु अंततः वही स्थायी सम्मान देती है। कहानी का संदेश यही है कि ईमानदारी तत्काल लाभ नहीं देती, परंतु दीर्घकाल में वह व्यक्ति और समाज दोनों की आत्मा को शुद्ध करती है। इस प्रकार, वंशीधर न केवल एक “दरोगा” है, बल्कि भारतीय समाज के भीतर सोई हुई नैतिक चेतना का जागरण बिंदु भी है (चुडाल, 2018, पृ. 119)।

प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से यह भी दिखाते हैं कि सच्चा साहस बाहरी विजय में नहीं, बल्कि अपने अंतःकरण के प्रति निष्ठा में निहित है। वंशीधर जब रिश्त ठुकराता है, तो उसका यह निर्णय समाज की रूढ़ धारणाओं के विपरीत जाता है। वह समझता है कि ईमानदारी अक्सर एकाकी बनाती है, परंतु वह इस एकाकीपन को अपनाता है क्योंकि उसे अपने नैतिक मूल्य पर विश्वास है। कहानी का यह पक्ष प्रेमचंद के नैतिक यथार्थवाद को स्पष्ट करता है वे नैतिकता को उपदेश नहीं, बल्कि संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस संघर्ष का परिणाम समाज की दृष्टि में हार भले हो, परंतु नैतिक दृष्टि से यह विजय है। जब अंततः पंडित अलोपीदीन स्वयं वंशीधर की ईमानदारी से प्रभावित होकर उन्हें अपने यहाँ उच्च पद पर नियुक्त करते हैं, तब यह कथा अपने सबसे ऊँचे नैतिक निष्कर्ष पर पहुँचती है सत्य देर से ही सही, पर सम्मान अवश्य पाता है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 226)।

अंततः, ‘नमक का दरोगा’ प्रेमचंद की नैतिक विचारधारा का प्रतिनिधि है, जो व्यक्ति की आत्मा को समाज की सबसे बड़ी शक्ति मानती है। यह कहानी केवल सरकारी ईमानदारी का उदाहरण नहीं, बल्कि भारतीय जीवन में “धर्म” और “कर्तव्य” के वास्तविक अर्थ को पुनःस्थापित करती है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि सच्चा सुधार बाहरी कानूनों से नहीं, बल्कि व्यक्ति की अंतरात्मा से आता है। वंशीधर का संघर्ष इस बात का प्रमाण है कि जब तक समाज में कुछ लोग सत्य और ईमानदारी के लिए खड़े रहेंगे, तब तक आशा की किरण बुझ नहीं सकती। इस कहानी का नैतिक संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जब भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता बढ़ रही है, तब ‘नमक का

दरोगा' हमें यह स्मरण कराता है कि नैतिकता केवल आदर्श नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान का आधार है।

5.2.2. 'पंच परमेश्वर' – निष्पक्षता और नैतिक न्याय

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'पंच परमेश्वर' भारतीय लोकजीवन में न्याय, नैतिकता और निष्पक्षता के आदर्श का अत्यंत सशक्त चित्रण है। यह कहानी इस विचार पर आधारित है कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसके कर्मों और विवेक से होती है, न कि निजी संबंधों या स्वार्थ से। कहानी के दो मुख्य पात्र जुम्मन शेख और अलगू चौधरी मित्रता के माध्यम से मानवीय संबंधों की गहराई का प्रतीक हैं। कथा का आरंभ जुम्मन की बूढ़ी खाला के प्रसंग से होता है, जिसने अपनी संपत्ति जुम्मन के नाम कर दी थी, परंतु बाद में उपेक्षा का शिकार होती है। जब मामला पंचायत में आता है और अलगू चौधरी को पंच बनाया जाता है, तो जुम्मन को विश्वास होता है कि उसका मित्र उसके पक्ष में निर्णय देगा। परंतु अलगू चौधरी अपने विवेक और न्यायबुद्धि के आधार पर निर्णय सुनाता है और खाला के पक्ष में फैसला देता है। यह क्षण प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि का शिखर है यहाँ व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर उठकर "पंच" अर्थात् न्याय के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। प्रेमचंद यह संदेश देते हैं कि जब मनुष्य न्याय की स्थिति में होता है, तब वह निजी संबंधों से मुक्त होकर धर्म और सत्य का अनुसरण करता है। "पंच के पद पर बैठते ही व्यक्ति के भीतर न्याय का भाव जागृत हो जाता है" यह विचार कथा का केंद्रीय तत्व है और भारतीय नैतिक परंपरा की आत्मा को अभिव्यक्त करता है (शर्मा, 1955, पृ. 219)।

कहानी का दूसरा पक्ष यह है कि न्याय केवल कानूनी नहीं, बल्कि नैतिक और आत्मिक अनुभूति भी है। बाद में परिस्थिति बदलती है और अलगू चौधरी का विवाद समझू साहू के साथ होता है, जिसमें जुम्मन को पंच बनाया जाता है। प्रारंभ में जुम्मन के मन में प्रतिशोध की भावना उभरती है, परंतु पंच के आसन पर बैठते ही उसका अंतःकरण जागृत हो उठता है। वह भी निष्पक्ष निर्णय देता है और अलगू के पक्ष में न्याय करता है। इस प्रकार, प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि नैतिक न्याय किसी बाहरी संस्था का परिणाम नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर स्थित नैतिक विवेक की उपज है। 'पंच परमेश्वर' केवल दो व्यक्तियों की कथा नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की भी व्याख्या है जहाँ न्याय और नैतिकता के बीच संतुलन ही समाज की स्थिरता का आधार बनता है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण आज भी अत्यंत प्रासंगिक है जब समाज व्यक्तिगत हितों और पूर्वाग्रहों में उलझा हुआ है, तब यह कहानी स्मरण कराती है कि निष्पक्षता ही न्याय का वास्तविक स्वरूप है। यह कथा इस सत्य को स्थापित करती है कि सच्चा

न्याय वही है जिसमें व्यक्ति अपने हित से ऊपर उठकर सत्य और धर्म के पक्ष में निर्णय लेता है (गोस्वामी, 1984, पृ. 121)।

5.2.3. 'बड़े घर की बेटी' – सहनशीलता और नैतिक मर्यादा

प्रेमचंद की कहानी 'बड़े घर की बेटी' भारतीय पारिवारिक जीवन, स्त्री की सहनशीलता और नैतिक मर्यादा का अत्यंत सूक्ष्म और गहन चित्रण प्रस्तुत करती है। यह कहानी केवल गृहस्थ जीवन की कथा नहीं, बल्कि उस नैतिक संरचना का प्रतीक है जिस पर भारतीय समाज की स्थिरता टिकी हुई है। कहानी की नायिका 'आनंदी' भारतीय नारी के आदर्श स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने त्याग, धैर्य और सहनशीलता से परिवार के टूटते हुए संबंधों को पुनः जोड़ती है। प्रेमचंद ने इस कहानी में स्त्री को केवल घरेलू भूमिका में सीमित नहीं किया, बल्कि उसे नैतिक चेतना की धुरी बना दिया। जब घर में भाइयों के बीच अहंकार और स्वार्थ के कारण दरार उत्पन्न होती है — विशेषकर श्रीकंठ और लालबिहारी के बीच तब आनंदी अपने व्यवहार, संवेदना और मर्यादा के माध्यम से परिवार में पुनः संतुलन लाती है। प्रेमचंद इस प्रसंग के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं कि सच्ची नैतिकता किसी बाहरी उपदेश में नहीं, बल्कि जीवन के व्यवहार में निहित होती है और इस व्यवहार का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण आनंदी की सहनशीलता है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 243)।

आनंदी का चरित्र प्रेमचंद की स्त्री-दृष्टि को स्पष्ट करता है। वह किसी उग्र संघर्ष या विद्रोह की प्रतीक नहीं, बल्कि संयम और क्षमा की मूर्ति है। उसका मौन धैर्य और शांत गरिमा यह दिखाती है कि नैतिक शक्ति शोर में नहीं, बल्कि आत्म-संयम में निहित होती है। जब उसके देवर लालबिहारी के साथ विवाद की स्थिति उत्पन्न होती है और घर में तनाव फैलता है, तब भी वह स्थिति को भड़काने के स्थान पर शांत करने का प्रयास करती है। उसके पति श्रीकंठ का स्वाभिमान और क्रोध परिवार में विभाजन की आशंका पैदा करता है, परंतु आनंदी अपने व्यवहार से स्थिति को संभालती है। वह किसी के प्रति कटुता नहीं रखती और परिवार की एकता को सर्वोपरि मानती है। यह आचरण केवल व्यक्तिगत गुण नहीं, बल्कि समाज के लिए एक नैतिक आदर्श बन जाता है। प्रेमचंद ने यहाँ यह स्थापित किया कि स्त्री का धैर्य कमजोरी नहीं, बल्कि परिवार की नैतिक शक्ति है। आनंदी के माध्यम से उन्होंने यह दिखाया कि प्रेम, करुणा और सहनशीलता ही परिवार और समाज की वास्तविक आधारशिला हैं (चुडाल, 2018, पृ. 119)।

'बड़े घर की बेटी' का सार यही है कि नैतिक मर्यादा का पालन ही समाज में संतुलन और स्थिरता का आधार बन सकता है। कहानी के अंत में जब लालबिहारी

अपनी गलती का बोध करता है और भाई-भाई के बीच पुनः मेल स्थापित होता है, तो यह केवल व्यक्तिगत पुनर्मिलन नहीं, बल्कि नैतिक आत्मबोध की प्रक्रिया है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि सच्चा सुधार आत्मचेतना से उत्पन्न होता है, न कि बाहरी दबाव से। आनंदी का संयमित व्यवहार परिवार के भीतर करुणा और पश्चात्ताप को जन्म देता है, जिससे नैतिक शिक्षा का शुद्धतम रूप सामने आता है। यह कथा आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि पारिवारिक जीवन में अहंकार और असहिष्णुता की प्रवृत्तियाँ अब भी देखी जाती हैं। प्रेमचंद का संदेश स्पष्ट है सच्चा धर्म वह नहीं जो आडंबर में हो, बल्कि वह जो सहनशीलता, प्रेम और मर्यादा में प्रकट हो। ‘बड़े घर की बेटी’ इसी नैतिक दृष्टिकोण का साहित्यिक उदाहरण है, जो भारतीय स्त्री के माध्यम से समाज को आत्मसंयम और नैतिक आदर्श का मार्ग दिखाती है (तिवारी, 2021, पृ. 124; शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 148)।

5.2.4. ‘ईदगाह’ – करुणा और त्याग का नैतिक संदेश

प्रेमचंद की अमर कहानी ‘ईदगाह’ करुणा, त्याग और मानवीय संवेदना का ऐसा सजीव दस्तावेज़ है जो नैतिकता के वास्तविक अर्थ को अत्यंत सरल किन्तु प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती है। यह कहानी केवल बालक हामिद की भावनाओं का चित्रण नहीं, बल्कि समाज के नैतिक मूल्य-विचलन का भी प्रतीकात्मक प्रतिवाद है। जब सब बच्चे मेले में मिठाइयाँ, झूले और खिलौने खरीदने में मग्न हैं, तब हामिद अपने पास के तीन पैसों से अपनी बूढ़ी दादी अमीना के लिए एक चिमटा खरीदता है। प्रेमचंद का यह दृश्य करुणा और त्याग का चरम बिंदु है जहाँ एक बालक अपनी खुशी का त्याग किसी और के सुख के लिए करता है। यह प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि का सर्वोच्च उदाहरण है, जिसमें नायकत्व शक्ति या संपन्नता से नहीं, बल्कि भावनात्मक ईमानदारी से उत्पन्न होता है। ‘ईदगाह’ में करुणा का यह रूप किसी धर्म या वर्ग से बँधा नहीं है; यह सार्वभौमिक मानवीय गुण है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि सच्चा धर्म त्याग में है, और नैतिकता का आधार करुणा में। हामिद का यह छोटा-सा निर्णय समाज के बड़े नैतिक प्रश्नों पर प्रकाश डालता है क्या हमारा सभ्य समाज उस निःस्वार्थ संवेदना को समझ पा रहा है जो एक बच्चे में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है? (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 243)।

कहानी का नैतिक संदेश इस बात में निहित है कि प्रेमचंद की दृष्टि में नैतिकता कोई सैद्धांतिक आदर्श नहीं, बल्कि जीवन के वास्तविक अनुभवों से उपजने वाली मानवीय संवेदना है। हामिद का यह व्यवहार समाज की उस पाखंडी नैतिकता पर व्यंग्य है, जो करुणा की जगह आडंबर और प्रदर्शन को महत्व देती है। दादी अमीना के लिए चिमटा खरीदना केवल उपयोगिता का कार्य नहीं, बल्कि उस आत्मीय संबंध का प्रतीक है जिसमें प्रेम और कर्तव्य एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। प्रेमचंद यहाँ यह

सिद्ध करते हैं कि नैतिक सुधार का सबसे सशक्त माध्यम शिक्षा या प्रवचन नहीं, बल्कि जीवन के छोटे-छोटे त्याग और संवेदना के क्षण हैं। हामिद का यह त्याग हमें यह सिखाता है कि नैतिकता का मूल्य बाहरी नियमों से नहीं, बल्कि हृदय की करुणा से निर्धारित होता है। कहानी का अंत पाठक के भीतर गहरी भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है, क्योंकि यह केवल हामिद की विजय नहीं, बल्कि मानवीयता की पुनर्स्थापना है। इस दृष्टि से 'ईदगाह' प्रेमचंद की उस व्यापक नैतिक दृष्टि का प्रतीक है जिसमें जीवन का सौंदर्य त्याग, प्रेम और करुणा से निर्मित होता है (चुडाल, 2018, पृ. 133; शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 148-150)।

5.2.5. 'दो बैलों की कथा' – कर्तव्य और नैतिक जिम्मेदारी

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'दो बैलों की कथा' कर्तव्य, निष्ठा और नैतिक जिम्मेदारी का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करती है। यह कहानी केवल दो पशुओं हीरा और मोती की कथा नहीं है, बल्कि मानवीय मूल्यों का प्रतीकात्मक रूप है। प्रेमचंद ने बैलों के माध्यम से यह दिखाया कि कर्तव्य केवल बौद्धिक समझ का विषय नहीं, बल्कि आंतरिक निष्ठा और भावनात्मक संबंध का परिणाम है। हीरा और मोती अपने मालिक झूरी के प्रति गहरा लगाव रखते हैं। जब उन्हें दूसरे गाँव भेज दिया जाता है और वहाँ कठोर व्यवहार सहना पड़ता है, तब भी वे अपने मूल संबंध और जिम्मेदारी को नहीं भूलते। उनका अपने घर लौट आना इस बात का प्रतीक है कि सच्चा कर्तव्य बाहरी बंधन से नहीं, बल्कि आत्मीयता और विश्वास से उत्पन्न होता है।

इस कहानी का नैतिक केंद्र निष्ठा है। हीरा और मोती केवल श्रम करने वाले पशु नहीं, बल्कि संवेदनशील प्राणी के रूप में चित्रित किए गए हैं। वे अन्याय और कठोरता को समझते हैं, परंतु विद्रोह की जगह धैर्य और मर्यादा का मार्ग अपनाते हैं। प्रेमचंद यहाँ यह संकेत करते हैं कि जिम्मेदारी का अर्थ केवल आदेश का पालन नहीं, बल्कि संबंधों के प्रति आंतरिक प्रतिबद्धता है। जब बैल अत्याचार सहते हैं और फिर भी अपने स्वामी के प्रति स्नेह बनाए रखते हैं, तब यह व्यवहार मानव समाज के लिए एक दर्पण बन जाता है। लेखक यह दिखाते हैं कि यदि पशु भी संबंधों के प्रति वफादार हो सकते हैं, तो मनुष्य से अधिक नैतिक आचरण की अपेक्षा क्यों न की जाए।

कहानी का एक महत्वपूर्ण पक्ष आत्मसम्मान है। हीरा और मोती अपमानजनक परिस्थितियों को अनंतकाल तक स्वीकार नहीं करते। वे अन्याय के विरुद्ध अपनी असहमति व्यक्त करते हैं और अंततः अपने स्वामी के पास लौट आते हैं। यह लौटना केवल भौतिक वापसी नहीं, बल्कि नैतिक सत्य की पुनर्स्थापना है। प्रेमचंद का संदेश स्पष्ट है कर्तव्य का अर्थ दासता नहीं, बल्कि स्वाभिमान के साथ निभाई गई जिम्मेदारी

है। जब कर्तव्य और आत्मसम्मान का संतुलन बना रहता है, तभी संबंध स्थायी और नैतिक बनते हैं।

अंततः, 'दो बैलों की कथा' यह सिद्ध करती है कि नैतिक जिम्मेदारी किसी पद, शक्ति या ज्ञान से नहीं, बल्कि संवेदना और निष्ठा से जन्म लेती है। प्रेमचंद ने पशु रूपक के माध्यम से मनुष्य को यह सिखाया कि समाज की वास्तविक शक्ति विश्वास, कर्तव्य और करुणा में निहित है। यह कहानी आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि आधुनिक जीवन में स्वार्थ और सुविधा के बीच कर्तव्य-बोध अक्सर कमजोर पड़ जाता है। हीरा और मोती हमें स्मरण कराते हैं कि सच्ची नैतिकता वही है जो कठिन परिस्थितियों में भी अपने संबंधों और जिम्मेदारियों से विमुख नहीं होती।

5.2.6. 'दो बैलों की कथा' – मानवीयता और सामाजिक सह-अस्तित्व

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'दो बैलों की कथा' मानवीय संवेदना, सह-अस्तित्व और सामाजिक नैतिकता का अद्भुत प्रतीक है। यह कहानी केवल पशुओं की कथा नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर विद्यमान मानवीय मूल्यों और संबंधों की गहराई को उजागर करती है। प्रेमचंद ने यहाँ दो बैलों हीरा और मोती के माध्यम से मनुष्य और पशु के बीच के आत्मीय संबंध को रूपक के रूप में प्रस्तुत किया है। इन बैलों की निष्ठा, संवेदना और साहस न केवल ग्रामीण जीवन की सजीव छवि हैं, बल्कि नैतिकता के उस स्तर का परिचायक हैं जहाँ प्रेम, कर्तव्य और सहयोग का भाव एक-दूसरे में विलीन हो जाता है। यह कहानी बताती है कि प्रेमचंद के लिए नैतिकता का अर्थ केवल मनुष्य के आचरण तक सीमित नहीं, बल्कि वह समूचे जीव-जगत में व्याप्त करुणा और पारस्परिक सम्मान का भाव है। उन्होंने इस कथा में यह स्पष्ट किया कि जब मनुष्य अपने लाभ और अधिकार की सीमा से ऊपर उठकर दूसरे के साथ सहानुभूति रखता है, तभी सच्चा सामाजिक संतुलन संभव होता है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 257)।

कहानी में हीरा और मोती के माध्यम से प्रेमचंद उस नैतिक सिद्धांत को प्रतिपादित करते हैं कि सच्चा संबंध केवल स्वामित्व पर नहीं, बल्कि विश्वास और संवेदना पर आधारित होता है। बैलों की अपने मालिक झूरी के प्रति निष्ठा केवल पशु-स्वभाव नहीं, बल्कि आत्मीयता का जीवंत उदाहरण है। जब उन्हें गाँव से दूर झूरी की पत्नी के मायके (गया के घर) भेज दिया जाता है, तब वे वहाँ के कठोर व्यवहार को सहते हुए भी एक-दूसरे के प्रति स्नेह और सहयोग का भाव बनाए रखते हैं। यह व्यवहार मनुष्य के लिए एक नैतिक शिक्षा है कि विपत्ति के समय सहयोग और त्याग ही सबसे बड़ी शक्ति हैं। प्रेमचंद यहाँ मानव समाज की तुलना पशुओं की सहज और नैतिक प्रवृत्तियों से करते हैं, जिससे यह विडंबना उजागर होती है कि कभी-कभी मनुष्य

अपनी बुद्धि के बावजूद संवेदना में पिछड़ जाता है। यह कहानी समाज को यह सोचने पर विवश करती है कि यदि पशु भी अपने साथियों के प्रति इतना समर्पित और दयालु हो सकते हैं, तो मनुष्य क्यों नहीं? इस प्रकार, 'दो बैलों की कथा' मानवता और सह-अस्तित्व के नैतिक दर्शन का सरल किन्तु प्रभावी रूप प्रस्तुत करती है (चुडाल, 2018, पृ. 129)।

कहानी का तीसरा स्तर सामाजिक यथार्थ से जुड़ा है जिसमें श्रम, निष्ठा और शोषण का संबंध प्रमुख है। बैलों के माध्यम से प्रेमचंद ने श्रमिक वर्ग की स्थिति का प्रतीकात्मक चित्रण किया है। जैसे बैल अपनी मेहनत से खेत जोतते हैं परंतु उसके प्रतिफल पर उनका अधिकार नहीं होता, वैसे ही समाज के निम्न वर्ग भी अपने श्रम के बदले सम्मान नहीं पाते। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि नैतिकता केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक भी होनी चाहिए। जब समाज अपने श्रमिकों के श्रम और संवेदना का मूल्य नहीं पहचानता, तब वह अपनी नैतिक नींव खो देता है। बैलों का वहाँ से भाग निकलना इस बात का प्रतीक है कि जब स्नेह और न्याय का वातावरण नहीं रहता, तो सबसे वफादार जीव भी विद्रोह की स्थिति में पहुँच जाते हैं। यह कहानी श्रम की गरिमा और सह-अस्तित्व के अधिकार की वकालत करती है।

अंततः, 'दो बैलों की कथा' प्रेमचंद के मानवीय दर्शन का प्रतीकात्मक सार है। यहाँ मनुष्य और पशु के बीच का भेद लगभग मिट जाता है, और करुणा ही नैतिकता का केंद्र बन जाती है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि सच्चा सह-अस्तित्व तब संभव है जब प्रत्येक प्राणी को उसके श्रम, संवेदना और अस्तित्व का सम्मान मिले। यह कहानी न केवल ग्रामीण जीवन की संवेदनशीलता को उजागर करती है, बल्कि आधुनिक समाज के लिए भी एक चेतावनी है कि जब तक हम दूसरों के दुःख को समझना नहीं सीखेंगे, तब तक हमारा विकास अधूरा रहेगा। 'दो बैलों की कथा' इस विचार का जीवंत प्रमाण है कि प्रेम, निष्ठा और संवेदना ही नैतिकता का वास्तविक स्वरूप हैं, और इन्हीं के सहारे समाज में सच्चा संतुलन और मानवता संभव है।

5.2.7. 'पूँस की रात' – संघर्ष और नैतिक दृढ़ता

प्रेमचंद की कहानी 'पूँस की रात' भारतीय किसान जीवन की करुण वास्तविकता और संघर्षशीलता का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। यह कहानी केवल एक किसान की आर्थिक विवशता की नहीं, बल्कि उस मानसिक स्थिति की कथा है जिसमें अभाव और असुरक्षा मनुष्य के जीवन को नियंत्रित करते हैं। कहानी का नायक हल्कू, अपने छोटे से खेत और सीमित साधनों के बावजूद जीवन की कठिनाइयों से जूझता है। वह ऋणग्रस्तता, गरीबी और शारीरिक कष्टों से घिरा हुआ है, परंतु वह परिस्थितियों से पूरी

तरह भागता भी नहीं। जब वह ठंडी 'पूस की रात' में खेत की रखवाली करते हुए ठिठुरता है, तो यह दृश्य केवल प्रकृति से संघर्ष का नहीं, बल्कि उस आर्थिक व्यवस्था की कठोरता का भी प्रतीक है जिसने किसान को असुरक्षित बना दिया है। प्रेमचंद यहाँ किसान को केवल करुणा का पात्र नहीं बनाते, बल्कि उसे उस वर्ग का प्रतिनिधि दिखाते हैं जो विपरीत परिस्थितियों में भी श्रम करता रहता है। किंतु यह भी स्पष्ट है कि हल्कू की स्थिति नैतिक विजय से अधिक सामाजिक विवशता की अभिव्यक्ति है। कहानी का यथार्थ इस बात को उजागर करता है कि जीवन की कठिनाइयाँ व्यक्ति की सहनशीलता की परीक्षा लेती हैं, परंतु हर संघर्ष को आदर्श नैतिक दृढ़ता के रूप में नहीं देखा जा सकता (अग्रवाल, 1973, पृ. 189)।

कहानी का दूसरा पक्ष यह है कि प्रेमचंद 'पूस की रात' के माध्यम से समाज के नैतिक विघटन और किसान की विवशता के बीच तीखा विरोधाभास प्रस्तुत करते हैं। हल्कू का संघर्ष उस समाज की विफलता को उजागर करता है जो श्रम को सम्मान नहीं देता और गरीब के श्रम को सामान्य मानकर उसका मूल्य नहीं चुकाता। वह खेत की रखवाली अवश्य करता है, परंतु भीतर से टूट चुका है। जब वह अपने कुत्ते झबरा के साथ अलाव के पास सो जाता है और नीलगायें खेत उजाड़ देती हैं, तो यह दृश्य कर्तव्य-निष्ठा की विजय नहीं, बल्कि थकान और निराशा की पराकाष्ठा का प्रतीक है। प्रेमचंद की दृष्टि यहाँ अत्यंत यथार्थवादी है वे किसान की स्थिति को आदर्श बनाकर नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के परिणाम के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कहानी के अंत में हल्कू का सो जाना पराजय और स्वीकृति दोनों का मिश्रित संकेत है — वह संघर्ष से पल भर के लिए मुक्त हो जाता है। यह कथा यह सिखाती है कि संघर्ष में मनुष्य की गरिमा अवश्य है, परंतु जब व्यवस्था अन्यायी हो, तो नैतिक दृढ़ता भी सीमित हो जाती है। इस प्रकार 'पूस की रात' प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ का उदाहरण है, जहाँ संघर्ष की करुणा अधिक प्रबल है और नैतिकता व्यवस्था की कठोरता से टकराती हुई दिखाई देती है (चुडाल, 2018, पृ. 133)।

5.3. सत्ता, न्याय और सामाजिक संस्थाएँ

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में सत्ता, न्याय और सामाजिक संस्थाओं का प्रश्न अत्यंत केन्द्रीय स्थान रखता है। उनके लेखन का उद्देश्य केवल समाज की असमानताओं को चित्रित करना नहीं था, बल्कि यह भी दिखाना था कि इन असमानताओं की जड़ें समाज की संस्थागत संरचनाओं जैसे पंचायत, प्रशासन, धर्म, और आर्थिक तंत्र में किस प्रकार समाई हुई हैं। प्रेमचंद का साहित्य उस युग का सशक्त सामाजिक दस्तावेज़ है, जिसमें सत्ता और न्याय के संबंधों की गहरी समीक्षा की गई है।

वे मानते थे कि समाज की स्थिरता तभी संभव है जब उसकी संस्थाएँ न्याय और करुणा के सिद्धांतों पर आधारित हों, न कि स्वार्थ और शक्ति पर। 'पंच परमेश्वर', 'नमक का दरोगा', 'सद्रति', 'ठाकुर का कुआँ', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'सवा सेर गेहूँ' और 'कफन' जैसी कहानियाँ यह दर्शाती हैं कि जब सत्ता का उपयोग जनकल्याण के स्थान पर दमन के लिए किया जाता है, तो समाज की नैतिक नींव कमजोर हो जाती है। प्रेमचंद का यथार्थ इस बात को स्पष्ट करता है कि सत्ता का वास्तविक अर्थ शासन नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व है और जब यह उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है, तब सामाजिक संस्थाएँ अपनी विश्वसनीयता खो देती हैं (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 257)।

प्रेमचंद की कहानियों में सत्ता केवल राजनीतिक या प्रशासनिक नहीं, बल्कि धार्मिक और सामाजिक रूपों में भी प्रकट होती है। 'सद्रति' में पंडित घासीराम का चरित्र धार्मिक सत्ता के पाखंड को उजागर करता है, जो करुणा और समानता के सिद्धांतों को भूलकर अपने पद को शोषण का साधन बना लेता है। इसी प्रकार 'ठाकुर का कुआँ' में सामंती सत्ता का अमानवीय चेहरा दिखाई देता है, जहाँ जल जैसी जीवनदायिनी वस्तु भी सामाजिक पदानुक्रम के अनुसार बाँटी जाती है। प्रेमचंद इन कहानियों के माध्यम से यह दिखाते हैं कि जब सामाजिक संस्थाएँ अपने नैतिक उद्देश्य से भटक जाती हैं, तो वे जनजीवन पर अत्याचार करने लगती हैं। उनका दृष्टिकोण मूलतः मानवीय है वे शोषण की आलोचना वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत के आधार पर नहीं, बल्कि नैतिकता के आधार पर करते हैं। सत्ता उनके यहाँ किसी वर्ग विशेष की आलोचना नहीं, बल्कि उस मानसिकता की आलोचना है जो शक्ति को सेवा के स्थान पर प्रभुत्व के साधन के रूप में देखती है। इस प्रकार, प्रेमचंद का साहित्य सत्ता के यथार्थ और न्याय के आदर्श के बीच संघर्ष का जीवंत प्रतीक है (चुडाल, 2018, पृ. 133)।

प्रेमचंद के लिए "न्याय" केवल विधिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक नैतिक अनुभव है। 'पंच परमेश्वर' में उन्होंने न्याय की जो लोक-परंपरा प्रस्तुत की है, वह इस विचार को रेखांकित करती है कि सच्चा न्याय वही है जो निष्पक्षता और करुणा पर आधारित हो। जब जुम्मन शेख अपने आत्मस्वार्थ से ऊपर उठकर निष्पक्ष निर्णय देता है, तब प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि न्याय की आत्मा व्यक्ति के अंतःकरण में निहित है, न कि कानून की पुस्तकों में। 'नमक का दरोगा' में वंशीधर की ईमानदारी सत्ता के नैतिक पतन के विरुद्ध खड़ी होती है। यह पात्र यह सिद्ध करता है कि प्रशासन तभी न्यायपूर्ण हो सकता है जब उसमें नैतिकता का भाव जीवित रहे। प्रेमचंद ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि न्याय की स्थापना के लिए नैतिक साहस आवश्यक है, और यह साहस

सत्ता के अधीन नहीं, बल्कि व्यक्ति के विवेक में निहित है। उनकी दृष्टि में सामाजिक संस्थाएँ तभी सार्थक हैं जब वे समानता, जिम्मेदारी और संवेदना के मूल्यों पर आधारित हों। न्याय उनके यहाँ किसी दंड प्रक्रिया का नहीं, बल्कि मानवता के संरक्षण का प्रतीक है।

अंततः, प्रेमचंद की कहानियाँ सत्ता और न्याय के बीच के उस संघर्ष को उजागर करती हैं जिसमें समाज की आत्मा फँसी हुई है। वे यह दिखाते हैं कि जब सत्ता निरंकुश हो जाती है और सामाजिक संस्थाएँ अपने नैतिक दायित्वों से विमुख होती हैं, तब न्याय केवल शब्द बनकर रह जाता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में नवाबी सत्ता की उदासीनता केवल राजनीतिक पतन नहीं, बल्कि नैतिक क्षरण का भी संकेत है जब शासक वर्ग जनता के दुःख से विमुख हो जाता है, तो सत्ता अपना औचित्य खो देती है। इसी प्रकार, 'कफन' में सामाजिक असंवेदनशीलता और 'सवा सेर गेहूँ' में आर्थिक व्यवस्था का शोषण यह दर्शाते हैं कि सत्ता जब आत्महित में केंद्रित हो जाती है, तो समाज के सबसे कमजोर वर्ग का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। प्रेमचंद का संदेश अत्यंत स्पष्ट है सत्ता और संस्थाओं का उद्देश्य केवल शासन या नियंत्रण नहीं, बल्कि न्याय और करुणा की स्थापना है। जब सत्ता अपने मानवीय स्वरूप को खो देती है, तो पतन अनिवार्य हो जाता है। इस दृष्टि से, प्रेमचंद का साहित्य अपने समय की सत्ता संरचनाओं की आलोचना के साथ-साथ आधुनिक युग के लिए भी एक नैतिक घोषणा-पत्र के रूप में देखा जा सकता है जिसमें यह बताया गया है कि सच्चा न्याय किसी विधि या सत्ता में नहीं, बल्कि मनुष्य की करुणा और विवेक में निहित है।

5.3.1. 'पंच परमेश्वर' – पंचायत और लोकन्याय की भूमिका

प्रेमचंद की कहानी 'पंच परमेश्वर' भारतीय लोकजीवन की महत्वपूर्ण संस्था पंचायत के नैतिक और सामाजिक स्वरूप को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह कहानी केवल दो मित्रों, जुम्मन शेख और अलगू चौधरी, के बीच उत्पन्न विवाद की कथा नहीं, बल्कि उस लोकन्याय की परंपरा का दार्शनिक रूपक है जिसमें समाज की आत्मा बसती है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि भारतीय ग्राम्य जीवन में पंचायत केवल न्याय की संस्था नहीं, बल्कि नैतिकता की कसौटी भी है। जब जुम्मन शेख और उसकी बूढ़ी खाला के विवाद में अलगू चौधरी को पंच बनाया जाता है, तो उसकी आत्मा में जो परिवर्तन होता है, वह यह प्रमाणित करता है कि "पंच का पद" केवल अधिकार नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व भी है। जुम्मन की यह अपेक्षा कि अलगू चौधरी उसकी मित्रता निभाएगा, उस लोकमानस की वास्तविकता को दिखाती है जिसमें व्यक्तिगत संबंध अक्सर न्याय की निष्पक्षता पर भारी पड़ते हैं। किंतु प्रेमचंद का नैतिक संदेश यहीं

उभरता है अलगू चौधरी जब अपने विवेक और न्यायबुद्धि के अनुसार निर्णय सुनाता है, तब वह यह सिद्ध करता है कि सच्चा न्याय निष्पक्षता और धर्मनिष्ठा में ही निहित है। यह प्रसंग प्रेमचंद के सामाजिक दर्शन का केंद्र है जहाँ व्यक्ति अपने निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के प्रति उत्तरदायी बनता है (त्रिपाठी, 1948, पृ. 178)।

कहानी का दूसरा स्तर पंचायत की संस्था और उसकी सामाजिक भूमिका पर प्रकाश डालता है। प्रेमचंद के समय में ग्राम पंचायतें ग्रामीण समाज की न्याय-व्यवस्था का प्रमुख आधार थीं। लेकिन वे केवल विवाद निपटाने का मंच नहीं थीं; वे नैतिक अनुशासन का भी माध्यम थीं। जब अलगू चौधरी का निर्णय जुम्मन के विरुद्ध जाता है, तो यह केवल एक न्यायिक फैसला नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता का पुनर्स्थापन है। प्रेमचंद यहाँ यह दिखाते हैं कि न्याय तभी संभव है जब वह व्यक्तिगत संबंधों, जातिगत भावनाओं और आर्थिक प्रभाव से मुक्त हो। कहानी के दूसरे भाग में जब परिस्थितियाँ उलट जाती हैं और अलगू चौधरी तथा समझू साहू के विवाद में जुम्मन पंच बनता है, तब वही नैतिक चेतना उसमें भी जाग्रत होती है। यह परिवर्तन इस विचार को बल देता है कि न्याय की भावना सार्वभौमिक है जब व्यक्ति सत्ता की स्थिति में आता है, तो उसके भीतर ईश्वर की आवाज़ (“परमेश्वर”) सक्रिय हो जाती है। प्रेमचंद का यह कथन “पंच के पद पर बैठते ही व्यक्ति की आत्मा में परमात्मा का वास हो जाता है” भारतीय लोकन्याय के दर्शन का शाश्वत सूत्र है (वाजपेयी, 1962, पृ. 195)।

‘पंच परमेश्वर’ केवल एक कहानी नहीं, बल्कि भारतीय सामाजिक चेतना का सशक्त उदाहरण है। प्रेमचंद ने इस कथा के माध्यम से यह दिखाया कि समाज की स्थिरता का आधार केवल लिखित कानून नहीं, बल्कि न्याय की नैतिक भावना है। जब पंचायत जैसी स्थानीय संस्था ईमानदारी और निष्पक्षता पर आधारित होती है, तब समाज में शांति और संतुलन स्थापित होता है। यही कारण है कि प्रेमचंद की दृष्टि में पंचायत केवल व्यवस्था नहीं, बल्कि लोक-विश्वास की धुरी है। उनका यह दृष्टिकोण आज भी प्रासंगिक है क्योंकि न्याय का मूल उद्देश्य केवल दंड देना नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन को बनाए रखना है। ‘पंच परमेश्वर’ इस विचार का सजीव प्रतीक है कि सत्ता का वास्तविक अर्थ है निष्पक्षता, उत्तरदायित्व और करुणा का समन्वय। इस प्रकार, यह कहानी भारतीय लोकन्याय की परंपरा को साहित्यिक रूप में स्थायित्व प्रदान करती है और यह सिखाती है कि जब तक समाज के भीतर “पंच” का विवेक जीवित रहेगा, तब तक न्याय की ज्योति बुझ नहीं सकती (गोस्वामी, 1984, पृ. 122)।

5.3.2. 'नमक का दरोगा' – प्रशासन और नैतिक कर्तव्य

प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'नमक का दरोगा' भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में नैतिकता और कर्तव्यबोध की उस आदर्श भावना को चित्रित करती है, जो व्यक्ति को व्यवस्था के भीतर रहते हुए भी अपने विवेक और ईमानदारी के प्रति निष्ठावान बनाए रखती है। यह कहानी औपनिवेशिक भारत की पृष्ठभूमि में रची गई है, जहाँ सत्ता और प्रशासन भ्रष्टाचार, चापलूसी और नैतिक पतन से ग्रस्त थे। नायक मुंशी वंशीधर इस विफल तंत्र के भीतर "नैतिक प्रतिरोध" का प्रतीक है वह उन कुछ व्यक्तियों में से है जो अपने पद का प्रयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि कर्तव्य और न्याय के पालन के लिए करते हैं। कहानी में जब वंशीधर प्रभावशाली और धनी व्यक्ति पंडित अलोपीदीन की रिश्त को ठुकरा देता है और ईमानदारी के कारण ही पदच्युत होता है, तो प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि प्रशासनिक नैतिकता की जड़ें केवल कानून में नहीं, बल्कि व्यक्ति के अंतःकरण में होती हैं। इस संघर्ष के माध्यम से लेखक यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या समाज उस व्यक्ति का सम्मान कर पाता है जो सच्चाई के लिए अपनी सुविधा का त्याग करता है? यही प्रश्न 'नमक का दरोगा' को केवल प्रशासनिक कहानी नहीं, बल्कि नैतिक चेतना का आख्यान बनाता है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 271)।

प्रेमचंद के दृष्टिकोण में प्रशासन का अर्थ केवल शासन चलाना नहीं, बल्कि न्याय, करुणा और उत्तरदायित्व की भावना के साथ जनता की सेवा करना है। कहानी में वंशीधर का संघर्ष इस व्यापक विचार का प्रतीक है कि सच्चा अधिकारी वही है जो अपने पद की गरिमा को बनाए रखता है, भले ही इसके लिए उसे व्यक्तिगत कष्ट सहना पड़े। जब वह रिश्त से इनकार करता है, तो उसका यह निर्णय समाज की स्वीकृत बुराइयों के विरुद्ध एक नैतिक विद्रोह का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद के लिए यह "कर्तव्य की विजय" का क्षण है जब व्यक्ति बाहरी सफलता के स्थान पर अपने अंतःकरण की शांति को प्राथमिकता देता है। यहाँ प्रशासनिक नैतिकता और व्यक्तिगत नैतिकता के बीच का संघर्ष इस कथा का केन्द्रीय तत्व है। वंशीधर का चरित्र यह सिखाता है कि किसी भी शासन तंत्र की सफलता केवल उसकी नीतियों पर नहीं, बल्कि उसमें कार्यरत व्यक्तियों के नैतिक बल पर निर्भर करती है (अग्रवाल, 1973, पृ. 201)।

'नमक का दरोगा' का महत्व इस तथ्य में है कि यह आज भी प्रशासनिक और सामाजिक दृष्टि से उतनी ही प्रासंगिक है। आधुनिक शासन प्रणाली में जहाँ पद और लाभ के बीच नैतिक सीमाएँ धुंधली होती जा रही हैं, वहाँ वंशीधर जैसे पात्र प्रेरणा का स्रोत हैं। प्रेमचंद यह संदेश देते हैं कि ईमानदारी केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं, बल्कि सार्वजनिक जीवन की बुनियादी शर्त है। समाज का वास्तविक सुधार तभी संभव है जब

सत्ता और प्रशासन अपने नैतिक दायित्वों को पहचानें और जनता के प्रति उत्तरदायी बनें। इस दृष्टि से, 'नमक का दरोगा' केवल औपनिवेशिक काल की आलोचना नहीं, बल्कि आज के लोकतांत्रिक युग के लिए भी एक चेतावनी है कि बिना नैतिकता के सत्ता केवल शोषण का रूप ले लेती है। प्रेमचंद की यह कहानी इस अमर सत्य को स्थापित करती है कि कर्तव्य का पालन ही सच्ची देशभक्ति और सर्वोच्च नैतिकता है, और यही भावना प्रशासन को मानवता से जोड़ती है (चुडाल, 2018, पृ. 140)।

5.3.3. 'सद्गति' – धर्म और सामाजिक सत्ता संरचना

प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' भारतीय समाज में धर्म, जाति और सत्ता के जटिल संबंधों की गहरी पड़ताल प्रस्तुत करती है। यह कहानी उस विडंबना को उजागर करती है जिसमें धर्म, जो करुणा और समानता का प्रतीक होना चाहिए, वही सामाजिक शोषण और असमानता का औजार बन जाता है। कथा का नायक दुखी चमार समाज के उस निम्नवर्ग का प्रतिनिधि है जिसे न केवल आर्थिक रूप से बल्कि धार्मिक व्यवस्था द्वारा भी दोयम दर्जे का जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया है। दुखी, अपनी बेटी के विवाह हेतु शुभ मुहूर्त जानने के लिए पंडित घासीराम के पास जाता है, परंतु धार्मिक सेवा के बदले उसे कठोर श्रम करने के लिए विवश किया जाता है। यही श्रम अंततः उसकी मृत्यु का कारण बनता है। यह घटनाक्रम प्रेमचंद की उस समाज-चेतना को प्रकट करता है जहाँ धर्म एक सत्ता संरचना में रूपांतरित हो चुका है जो लोगों के विश्वास का उपयोग उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए करती है। पंडित घासीराम, जो धार्मिक सत्ता का प्रतिनिधि है, दुखी से अपने स्वार्थ के लिए काम करवाता है और उसकी मृत्यु के बाद भी उसकी देह को "अस्पृश्य" बताकर छूने से कतराता है। यह विडंबना प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ की सबसे कटु टिप्पणी है कि जिस धर्म का मूल सिद्धांत करुणा है, वह यहाँ अमानवीयता का रूप धारण कर चुका है। इस प्रकार, 'सद्गति' केवल जातिगत शोषण की कथा नहीं, बल्कि धर्म के नाम पर स्थापित सत्ता तंत्र की नैतिक विफलता का उद्घाटन है (अग्रवाल, 1973, पृ. 207)।

प्रेमचंद की दृष्टि में 'सद्गति' केवल सामाजिक अन्याय की आलोचना नहीं करती, बल्कि यह एक गहरा नैतिक प्रश्न भी उठाती है क्या धर्म का उद्देश्य मनुष्य को विभाजित करना है या जोड़ना? दुखी की मृत्यु के बाद पंडित का भय और उसकी सामाजिक असहजता यह दिखाती है कि धार्मिक आडंबर के पीछे छिपी नैतिक दुर्बलता अंततः स्वयं को उजागर कर देती है। इस कहानी में प्रेमचंद धर्म का प्रत्यक्ष खंडन नहीं करते, बल्कि उसकी मानवीय पुनर्व्याख्या की आवश्यकता पर बल देते हैं। वे संकेत करते हैं कि यदि धर्म मानवता के विरोध में खड़ा हो जाए, तो उसका कोई नैतिक अर्थ

शेष नहीं रह जाता। कहानी के अंत में जब पंडित स्वयं दुखी की लाश को घसीटकर ले जाने को विवश होता है, तो यह दृश्य प्रतीकात्मक है यह उस धार्मिक अहंकार के टूटने का क्षण है जिसने समाज को जातिगत ऊँच-नीच में बाँध रखा था। प्रेमचंद यहाँ यह स्थापित करते हैं कि सच्ची 'सद्गति' किसी कर्मकांड से नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना से प्राप्त होती है। इस दृष्टि से यह कहानी भारतीय समाज में धर्म और सत्ता के संबंधों की तीखी आलोचना प्रस्तुत करती है जहाँ मनुष्य की गरिमा किसी भी धार्मिक पहचान से ऊपर है। 'सद्गति' आज भी इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि यह हमें याद दिलाती है कि जब धर्म से करुणा और समानता समाप्त हो जाती है, तब वह केवल सत्ता का साधन बनकर रह जाता है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 271; तिवारी, 2021, पृ. 129)।

5.3.4. 'ठाकुर का कुआँ' – संसाधनों पर सत्ता का नियंत्रण

प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' भारतीय समाज में संसाधनों के असमान वितरण और जातिगत सत्ता संरचना की गहरी आलोचना प्रस्तुत करती है। यह कहानी सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के उस मूल प्रश्न को उठाती है क्या जल जैसी आवश्यक वस्तु पर भी किसी वर्ग या व्यक्ति का अधिकार हो सकता है? प्रेमचंद यहाँ 'कुएँ' को मात्र जल-स्रोत के रूप में नहीं, बल्कि सत्ता और सामाजिक वर्चस्व के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। 'ठाकुर का कुआँ' उस सामाजिक ढाँचे का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ उच्च जातियों के पास संसाधनों पर अधिकार है, जबकि दलित और श्रमिक वर्गों को उनसे वंचित रखा गया है। कहानी की नायिका गंगी केवल एक स्त्री नहीं, बल्कि उस वंचित समुदाय की प्रतीक है जो शोषण और भय की दोहरी बेड़ियों में जकड़ा हुआ है। जब वह अपने बीमार पति जोखू के लिए साफ़ पानी लाने का प्रयास करती है, तो उसका यह कृत्य सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक मौन प्रतिरोध बन जाता है। प्रेमचंद इस संघर्ष को केवल वर्ग-संघर्ष के रूप में नहीं देखते, बल्कि इसे मानवीय अधिकार और आत्मसम्मान के प्रश्न के रूप में प्रस्तुत करते हैं। गंगी का कुएँ तक पहुँचना और वहाँ पानी भरने की कोशिश समाज के उस नैतिक संकट को उजागर करती है जहाँ जीवन की सबसे मूलभूत ज़रूरतें भी जाति और सत्ता के अधीन हैं (अग्रवाल, 1973, पृ. 210)।

कहानी का दूसरा पक्ष सत्ता और भय के उस गहरे मनोविज्ञान से जुड़ा है जो शोषित वर्ग की चेतना को भी नियंत्रित करता है। गंगी की विवशता केवल बाहरी नहीं, बल्कि मानसिक भी है वह जानती है कि यदि पकड़ी गई तो अपमान और हिंसा का शिकार होगी, फिर भी उसका साहस इस बात का संकेत है कि अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना जन्म ले रही है। प्रेमचंद का यह चित्रण भारतीय समाज में

संसाधनों के असमान नियंत्रण और सत्ता के केंद्रीकरण पर तीखा व्यंग्य करता है। 'ठाकुर का कुआँ' यहाँ केवल जल का स्रोत नहीं, बल्कि एक सामाजिक व्यवस्था का रूपक है जिसमें संसाधन और सत्ता एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रेमचंद इस कहानी में यह संदेश देते हैं कि किसी भी समाज की सभ्यता का मापदंड इस बात से तय होता है कि वह अपने सबसे वंचित वर्ग के साथ कैसा व्यवहार करता है। 'ठाकुर का कुआँ' के माध्यम से वे यह स्पष्ट करते हैं कि जब तक समाज संसाधनों को साझा करने की नैतिकता विकसित नहीं करता, तब तक समानता और न्याय केवल आदर्श बने रहेंगे। गंगी का भय, उसका साहस और उसका मौन प्रतिरोध उस परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं जहाँ शोषित वर्ग सत्ता की नैतिक वैधता पर प्रश्न उठाने लगता है। इस प्रकार, 'ठाकुर का कुआँ' सामाजिक भेदभाव की आलोचना के साथ-साथ संसाधन-आधारित सत्ता के विरुद्ध मानवीय समानता की सशक्त अभिव्यक्ति भी है (चुडाल, 2018, पृ. 151)।

5.3.5. 'शतरंज के खिलाड़ी' – राजनीतिक सत्ता और जन उदासीनता

प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' भारतीय समाज और राजनीति में व्याप्त सत्ता-लोलुपता, शासक वर्ग की नैतिक निष्क्रियता और जन-उदासीनता की गहरी आलोचना प्रस्तुत करती है। यह कहानी केवल अवध के नवाबी काल की राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण नहीं, बल्कि उस सामंती मानसिकता का प्रतीक है जिसने भारत को उपनिवेश बनने की राह पर पहुँचा दिया। कहानी के दो मुख्य पात्र मिर्जा सज्जाद अली और मीर रोशन अली उस अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो राजनीतिक और सामाजिक जिम्मेदारियों से विमुख होकर विलासिता, खेल और आत्म-संतुष्टि में डूब गया है। जब अवध की राजनीतिक सत्ता अंग्रेजों के हाथों चली जाती है और वाजिद अली शाह को अपदस्थ कर दिया जाता है, तब भी ये दोनों पात्र "शतरंज के खेल" में व्यस्त हैं। यह खेल केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि पूरे सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे की एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति है जहाँ सत्ताधारी वर्ग वास्तविक जीवन से कटकर केवल स्वार्थ, रणनीति और दिखावे में उलझा हुआ है। प्रेमचंद यहाँ सत्ता की विडंबना को अत्यंत व्यंग्यपूर्ण और प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि जब शासक अपनी जिम्मेदारी भूल जाता है, तब राष्ट्र पराधीन हो जाता है। 'शतरंज के खिलाड़ी' इस प्रकार राजनीतिक उदासीनता और नैतिक पतन की तीखी आलोचना है, जो सत्ता के चरित्र को उजागर करने के साथ-साथ समाज की निष्क्रियता पर भी प्रश्न उठाती है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 275; अग्रवाल, 1973, पृ. 210)।

कहानी का दूसरा स्तर प्रेमचंद की ऐतिहासिक और नैतिक दृष्टि को प्रकट करता है। वे यह दिखाते हैं कि सत्ता का पतन केवल बाहरी आक्रमण से नहीं, बल्कि आंतरिक

नैतिक शिथिलता से शुरू होता है। जब समाज के नेतृत्व वर्ग में कर्तव्य, उत्तरदायित्व और जन-चेतना का भाव समाप्त हो जाता है, तब सत्ता केवल औपचारिक संरचना बनकर रह जाती है। मिर्जा और मीर का शतरंज खेलना उस विफल शासन प्रणाली का प्रतीक है जो जनता के दुःखों से पूरी तरह विमुख हो चुकी है। प्रेमचंद का व्यंग्य इस कहानी में गहरा और विचारोत्तेजक है वह पाठक को यह सोचने पर विवश करता है कि क्या समाज केवल शासकों की भूलों से गिरता है, या जनता की निष्क्रियता भी उतनी ही उत्तरदायी है? जब दोनों खिलाड़ी खेल के दौरान आपसी विवाद में उलझकर हथियार उठा लेते हैं, तो यह दृश्य राजनीतिक विवेक के स्थान पर अहंकार और आत्ममुग्धता के वर्चस्व का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से चेतावनी देते हैं कि सत्ता यदि नैतिकता और उत्तरदायित्व से विमुख हो जाए, तो उसका पतन निश्चित है; और समाज यदि जागरूक न हो, तो वह स्वयं अपने इतिहास की विफलताओं का भागीदार बन जाता है। ‘शतरंज के खिलाड़ी’ केवल एक ऐतिहासिक कथा नहीं, बल्कि हर उस समाज का दर्पण है जहाँ सत्ता जनहित के बजाय विलास और आत्मसंतोष का साधन बन जाती है (चुडाल, 2018, पृ. 151; शर्मा एवं पराग, 2025, पृ. 155)।

5.3.6. ‘सवा सेर गेहूँ’ – आर्थिक व्यवस्था और संस्थागत शोषण

प्रेमचंद की कहानी ‘सवा सेर गेहूँ’ भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्याप्त शोषण, ऋण-निर्भरता और वर्गीय अन्याय का मार्मिक चित्रण करती है। यह कहानी केवल एक किसान और महाजन के बीच लेन-देन की कथा नहीं है, बल्कि उस व्यापक आर्थिक ढांचे की आलोचना है जिसने लंबे समय तक ग्रामीण समाज को ऋण और निर्भरता की जकड़ में बाँध रखा। कहानी का केंद्र पात्र दुखी उस गरीब कृषक वर्ग का प्रतिनिधि है जो मेहनत तो करता है, परंतु उसके श्रम का वास्तविक लाभ उसे नहीं मिलता। वह ‘सवा सेर गेहूँ’ के छोटे से ऋण में उलझ जाता है जो देखने में मामूली लगता है, परंतु धीरे-धीरे शोषण के स्थायी चक्र में बदल जाता है। महाजन की ब्याज-प्रणाली, गाँव की परंपरागत ऋण-व्यवस्था और सामाजिक संरचना मिलकर किसान को ऐसी स्थिति में बाँध देती है जहाँ उसका श्रम उसके उद्धार का साधन नहीं, बल्कि उसकी दासता को स्थायी करने वाला माध्यम बन जाता है। प्रेमचंद इस कहानी के माध्यम से उस आर्थिक तंत्र पर प्रहार करते हैं जो न्याय और समानता की भाषा बोलते हुए भी शोषण को संरक्षित करता है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि आर्थिक अन्याय आकस्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना में निहित है। इस प्रकार ‘सवा सेर गेहूँ’ ग्रामीण जीवन की संस्थागत गरीबी और ऋण-चक्र की गहरी व्याख्या प्रस्तुत करती है जहाँ नियंत्रण और प्रभुत्व आर्थिक व्यवस्था का मूल आधार बन जाते हैं (अग्रवाल, 1973, पृ. 210)।

कहानी का दूसरा पक्ष यह है कि प्रेमचंद आर्थिक शोषण को केवल आर्थिक दृष्टि से नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय दृष्टि से भी देखते हैं। उनके लिए यह शोषण मात्र वर्गीय टकराव नहीं, बल्कि नैतिक पतन का संकेत है जहाँ समाज का एक वर्ग दूसरे की विवशता का लाभ उठाता है। 'सवा सेर गेहूँ' में यह स्पष्ट होता है कि जब संस्थागत ढांचा स्वार्थ और लाभ पर आधारित हो जाता है, तब न्याय और करुणा का स्थान समाप्त हो जाता है। महाजन का व्यवहार केवल लेन-देन तक सीमित नहीं, बल्कि वह ऋणग्रस्त किसान के आत्मसम्मान को भी आहत करता है। यही कारण है कि कहानी का शीर्षक स्वयं एक प्रतीक बन जाता है 'सवा सेर गेहूँ' उस असमान विनिमय का संकेत है जहाँ मूल्य शक्ति से तय होता है, श्रम से नहीं। प्रेमचंद का यह यथार्थ आज भी अर्थपूर्ण है, क्योंकि आधुनिक समाज में भी आर्थिक संस्थाएँ अक्सर कमजोर वर्ग के श्रम पर आधारित असमानता को बनाए रखती हैं। यह कहानी प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि की गहराई को प्रमाणित करती है कि सच्चा आर्थिक सुधार केवल संरचनात्मक परिवर्तन से नहीं, बल्कि नैतिक चेतना के जागरण से संभव है। 'सवा सेर गेहूँ' इसी सत्य का सशक्त उदाहरण है कि जब तक आर्थिक व्यवस्था न्याय और मानवीय संवेदना पर आधारित नहीं होगी, तब तक शोषण का चक्र समाप्त नहीं होगा (चुडाल, 2018, पृ. 151)।

5.3.7. 'कफन' – सामाजिक संस्थाओं की विफलता

प्रेमचंद की अमर कहानी 'कफन' भारतीय समाज में नैतिकता, मानवीय संवेदना और सामाजिक संस्थाओं की गहरी विफलता का तीखा चित्रण है। यह कहानी केवल घीसू और माधव की जड़ता और संवेदनहीनता की कथा नहीं है, बल्कि उस समाज की आलोचना है जिसने उन्हें निरंतर अभाव, अपमान और उपेक्षा के बीच जीने को विवश किया। 'कफन' का केंद्रीय प्रश्न यही है जब समाज अपनी संस्थागत जिम्मेदारियों को भूल जाता है, तो व्यक्ति की नैतिकता किस आधार पर टिक सकती है? घीसू और माधव समाज के उस हाशिए पर पड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो गरीबी, भुखमरी और असमानता के बीच जीवन का अर्थ खो चुका है। माधव की पत्नी बुधिया प्रसव पीड़ा से तड़पते हुए मर जाती है, परंतु पिता-पुत्र उसकी लाश के लिए 'कफन' खरीदने के नाम पर मिले पैसों को शराब में खर्च कर देते हैं। इस विडंबनापूर्ण प्रसंग के माध्यम से प्रेमचंद उस कठोर सामाजिक यथार्थ को उजागर करते हैं जहाँ गरीबी केवल आर्थिक अभाव नहीं, बल्कि नैतिक संवेदना के क्षरण का भी कारण बन जाती है। यहाँ 'कफन' केवल मृत शरीर को ढँकने वाला कपड़ा नहीं, बल्कि उस सभ्यता का प्रतीक है जो बाहरी मर्यादा बचाने में लगी है, पर भीतर से शून्य हो चुकी है। यह कथा यह प्रश्न

उठाती है कि जब राज्य, धर्म और समाज सभी संरचनाएँ उपेक्षा का व्यवहार करें, तो व्यक्ति में करुणा कैसे जीवित रह सकती है (अग्रवाल, 1973, पृ. 226; चुडाल, 2018, पृ. 151)।

कहानी का दूसरा पक्ष प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि की गहराई को सामने लाता है। 'कफन' में घीसू और माधव की कठोरता को केवल व्यक्तिगत दोष मान लेना कथा के आशय को सीमित कर देता है। प्रेमचंद संकेत करते हैं कि उनकी निष्ठुरता उस दीर्घकालिक शोषण और उपेक्षा का परिणाम है जिसने उनके भीतर से संवेदना की ऊर्जा को निचोड़ लिया है। वे किसी एक वर्ग को दोषी नहीं ठहराते, बल्कि यह दिखाते हैं कि जब सामाजिक संस्थाएँ अपने मूल दायित्व संरक्षण और सहारा को छोड़ देती हैं, तब व्यक्ति धीरे-धीरे समाज से विमुख हो जाता है। गाँव के लोग औपचारिक सहानुभूति अवश्य दिखाते हैं, पर वास्तविक सहारा देने वाला कोई नहीं है। ऐसे में 'कफन' के पैसों से शराब पी लेना केवल पतन का दृश्य नहीं, बल्कि एक गहरे व्यंग्य का क्षण है जहाँ जीवन और मृत्यु दोनों ही समान रूप से अर्थहीन प्रतीत होते हैं। प्रेमचंद का यह यथार्थ समाज को आत्ममंथन के लिए बाध्य करता है। 'कफन' इस दृष्टि से केवल गरीबी की कहानी नहीं, बल्कि उस सामाजिक तंत्र का दर्पण है जिसमें करुणा के स्थान पर औपचारिकता रह गई है। यह कथा चेतावनी देती है कि यदि समाज अपने सबसे कमजोर लोगों को सहारा नहीं देगा, तो उसकी नैतिक नींव स्वयं कमजोर पड़ जाएगी (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 279)।

5.4. ग्रामीण जीवन और सामाजिक यथार्थ

प्रेमचंद के कथा-साहित्य का सबसे सशक्त और जीवंत पक्ष उनका ग्रामीण यथार्थवाद है। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से भारतीय गाँवों की आत्मा, वहाँ की संघर्षशीलता, मानवीय संबंधों की जटिलता और सामाजिक अन्याय की गहराई को अत्यंत सजीव रूप में प्रस्तुत किया। उनके समय का भारत मुख्यतः कृषक समाज था जहाँ गाँव केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि सभ्यता का केंद्र था। प्रेमचंद ने अपने पात्रों के माध्यम से यह दिखाया कि गाँवों में जीवन जितना सरल दिखाई देता है, उतना ही वह जटिल सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों से बुना हुआ है। उनकी कहानियाँ 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सद्रति', 'ठाकुर का कुआँ', 'दो बैलों की कथा' और 'सवा सेर गेहूँ' इस ग्रामीण समाज की नैतिकता, आर्थिक संरचना, जातिगत व्यवस्था और श्रम-संस्कृति का बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनके ग्रामीण पात्र चाहे हामिद हो, हल्कू हो, दुखी हो या गंगी सभी भारतीय समाज की आत्मा के प्रतिनिधि हैं, जो गरीबी, शोषण और पीड़ा के बावजूद अपनी संवेदना, करुणा और मानवता को जीवित रखते हैं।

यही कारण है कि प्रेमचंद के यहाँ गाँव केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि साहित्यिक चेतना का केंद्र है, जहाँ यथार्थ और आदर्श का संगम दिखाई देता है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 283)।

प्रेमचंद ने अपने ग्रामीण चित्रणों में यह स्पष्ट किया कि भारत की सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ केवल शहरी राजनीति से नहीं, बल्कि गाँवों की विफल संस्थाओं और असमान ढाँचों से भी उत्पन्न होती हैं। उन्होंने ग्रामीण जीवन में विद्यमान तीन प्रमुख द्वंद्वों की पहचान की (1) श्रम और शोषण का द्वंद्व, (2) जाति और समानता का संघर्ष, और (3) मनुष्य और प्रकृति का संबंध। 'पूँस की रात' में हल्कू का संघर्ष केवल ठंड से नहीं, बल्कि उस व्यवस्था से है जो उसे गरमी और आराम का अधिकार नहीं देती। 'सद्रति' में दुखी चमार के माध्यम से यह दिखाया गया कि गाँव की जातिगत संरचना किस प्रकार धर्म और परंपरा के नाम पर श्रमशील वर्ग का शोषण करती है। वहीं 'सवा सेर गेहूँ' और 'ठाकुर का कुआँ' आर्थिक और संसाधनगत असमानता के प्रतीक हैं जहाँ ग्रामीण जीवन की सबसे मूलभूत आवश्यकताएँ भी वर्ग और जाति की सीमाओं में बाँट दी गई हैं। इन कहानियों का यथार्थ केवल आँकड़ों या घटनाओं में नहीं, बल्कि उस संवेदना में है जो प्रेमचंद के लेखन को मानवीय गरिमा का स्वर देती है (अग्रवाल, 1973, पृ. 226)।

ग्रामीण जीवन के चित्रण में प्रेमचंद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने गाँव को केवल करुणा या निर्धनता के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि उसकी नैतिक शक्ति और जीवन दर्शन के साथ प्रस्तुत किया। 'दो बैलों की कथा' इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जहाँ पशु रूपक के माध्यम से उन्होंने ग्रामीण श्रम, सह-अस्तित्व और संवेदना का ऐसा चित्र खींचा जो मानवीय जीवन के गहरे सत्य को प्रकट करता है। इसी प्रकार 'ईदगाह' में बालक हामिद की दृष्टि से प्रेमचंद ग्रामीण जीवन की गरीबी को नहीं, बल्कि उसके भीतर छिपी हुई नैतिक करुणा और पारिवारिक प्रेम को दर्शाते हैं। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण यथार्थवादी होने के साथ-साथ आशावादी भी है वे गाँव की समस्याओं को निराशा के रूप में नहीं, बल्कि सुधार की संभावना के रूप में देखते हैं। उनके ग्रामीण पात्र विपरीत परिस्थितियों में भी अपने स्वाभिमान और आत्मविश्वास को नहीं छोड़ते, जो यह दर्शाता है कि भारतीय गाँवों में जीवन की शक्ति अब भी नैतिक और भावनात्मक धरातल पर टिकी हुई है (चुडाल, 2018, पृ. 160)।

ग्रामीण जीवन की जटिलता का एक और पक्ष प्रेमचंद ने सामाजिक न्याय के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में ग्रामीण समाज केवल श्रम और साधन का केंद्र नहीं, बल्कि नैतिक संघर्ष का भी क्षेत्र है। 'ठाकुर का कुआँ' में गंगी का साहस और

‘सद्गति’ में दुखी की मृत्यु इस संघर्ष के दो छोर हैं एक ओर भय और असमानता का यथार्थ, दूसरी ओर प्रतिरोध और आत्मसम्मान की चेतना। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि समाज में परिवर्तन केवल बाहरी सुधारों से नहीं, बल्कि आंतरिक नैतिक जागृति से संभव है। उनके ग्रामीण पात्र निष्क्रिय नहीं, बल्कि धीरे-धीरे चेतना की ओर बढ़ते हुए व्यक्ति हैं। ‘सवा सेर गेहूँ’ में दुखी का संघर्ष केवल आर्थिक नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान का भी प्रतीक है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण भारतीय समाज के लिए एक क्रांतिकारी विचार था कि सच्चा सुधार “शहर” से नहीं, “गाँव” से आरंभ होना चाहिए। उन्होंने यह स्थापित किया कि जब तक ग्रामीण जीवन में समानता, शिक्षा और करुणा के मूल्य नहीं पहुँचेंगे, तब तक कोई भी सामाजिक संस्थान न्यायपूर्ण नहीं बन सकता।

अंततः, प्रेमचंद के ग्रामीण चित्रणों का सार यह है कि उन्होंने गाँव को केवल दुःख का स्थल नहीं, बल्कि मानवता का आश्रय बताया। उनकी कहानियों में गाँव की मिट्टी, खेत, पशु, मौसम और परिवार सभी जीवंत तत्व हैं जो भारतीय संस्कृति की आत्मा को अभिव्यक्त करते हैं। उनका ग्रामीण यथार्थ यांत्रिक नहीं, बल्कि नैतिक और भावनात्मक चेतना से भरा हुआ है। प्रेमचंद यह मानते थे कि गाँवों में ही भारत की नैतिक जड़ें हैं, और यदि वहाँ से अन्याय, अंधविश्वास और असमानता मिटाई जा सके, तो संपूर्ण समाज स्वस्थ हो सकता है। इस दृष्टि से उनका साहित्य केवल यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि सुधार का मार्गदर्शन भी है। ‘पूँस की रात’, ‘सद्गति’, ‘ठाकुर का कुआँ’, ‘दो बैलों की कथा’ और ‘सवा सेर गेहूँ’ जैसे कथानक यह सिद्ध करते हैं कि प्रेमचंद का ग्रामीण यथार्थ किसी भी राजनीतिक विचारधारा से अधिक मानवीय और सार्वभौमिक है। उन्होंने यह दिखाया कि भारतीय गाँव केवल गरीबी की कथा नहीं, बल्कि मानवता की आत्मा की कथा हैं, और वही आत्मा समाज को नैतिक आधार प्रदान करती है।

5.4.1. ‘ईदगाह’ – ग्रामीण गरीबी और पारिवारिक संघर्ष

प्रेमचंद की कालजयी कहानी ‘ईदगाह’ भारतीय ग्रामीण जीवन में व्याप्त गरीबी, संवेदना और पारिवारिक स्नेह का अत्यंत मार्मिक चित्रण है। यह कहानी बालक हामिद की दृष्टि से देखे गए उस संसार की झलक प्रस्तुत करती है, जिसमें अभाव तो है, परंतु प्रेम और नैतिक करुणा की कमी नहीं। प्रेमचंद यहाँ ग्रामीण जीवन की सच्ची आत्मा को बाल मनोविज्ञान के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। गाँव का परिदृश्य गरीबी और साधनों की कमी से ग्रस्त है घर में दादी अमीना हैं, जिनका सारा जीवन संघर्ष और त्याग से भरा है। वे हामिद के लिए ईद की खुशियों में भी एक संतोष का आवरण ओढ़े रहती हैं। कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रेमचंद ने गरीबी को केवल आर्थिक

स्थिति के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति की परीक्षा के रूप में चित्रित किया है। जब मेले में सभी बच्चे मिठाई, झूले और खिलौनों में लिस हैं, तब हामिद अपने तीन पैसों से चिमटा खरीदता है यह क्रिया प्रेमचंद के नैतिक यथार्थ का सार है। यहाँ बालक की करुणा और जिम्मेदारी उस समाज के लिए दर्पण बन जाती है जो अपने स्वार्थ में मानवीय संवेदना खो चुका है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 285)।

कहानी में प्रेमचंद का उद्देश्य केवल बालक के त्याग को दिखाना नहीं, बल्कि ग्रामीण परिवारों के नैतिक ढांचे को उजागर करना भी है। अमीना की स्थिति एक ऐसी ग्रामीण स्त्री का प्रतीक है जो परिस्थितियों से टूटी हुई है, परंतु भावनात्मक रूप से दृढ़ है। उनका हामिद के प्रति स्नेह केवल पारिवारिक संबंध नहीं, बल्कि जीवन का आधार है। हामिद का चिमटा खरीदना वस्तुतः उसकी समझदारी और दादी के कष्टों के प्रति उसकी गहरी संवेदनशीलता का प्रतीक है। यह प्रसंग प्रेमचंद की लोक-नैतिकता की झलक देता है जहाँ शिक्षा और संपन्नता से अधिक महत्वपूर्ण हैं त्याग, प्रेम और करुणा। ग्रामीण जीवन में इन भावनाओं के सहारे ही परिवार अस्तित्व बनाए रखता है। प्रेमचंद इस कहानी में यह दिखाते हैं कि गरीबी केवल अभाव नहीं, बल्कि एक सामाजिक परिस्थिति है जिसमें संवेदना ही सबसे बड़ी पूँजी है। हामिद की मासूम दृष्टि समाज के उस यथार्थ को प्रकट करती है जहाँ बाल मनुष्य कभी-कभी वयस्कों से अधिक नैतिक और संवेदनशील साबित होता है। ग्रामीण जीवन का यह चित्रण प्रेमचंद के लिए मात्र करुणा उत्पन्न करने का साधन नहीं, बल्कि समाज को आत्मदर्शन कराने का माध्यम है (अग्रवाल, 1973, पृ. 233)।

‘ईदगाह’ की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि यह कहानी गरीबी और संघर्ष को नैतिक सौंदर्य में रूपांतरित कर देती है। प्रेमचंद के लिए हामिद का चरित्र केवल एक बच्चा नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की आशा और करुणा का प्रतीक है। वह यह दिखाता है कि विपन्नता के बीच भी यदि मन में संवेदना और जिम्मेदारी जीवित है, तो समाज का नैतिक पतन संभव नहीं। इस कहानी में गाँव केवल भूगोल नहीं, बल्कि भावनात्मक संसार है जहाँ संबंध, करुणा और त्याग जीवन को अर्थ देते हैं। हामिद का यह त्याग, दादी अमीना की ममता और समाज का व्यंग्य ये सब मिलकर प्रेमचंद की यथार्थवादी दृष्टि को जीवन की गहराई से जोड़ देते हैं। इस कहानी का संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है कि सच्ची सम्पन्नता भौतिक नहीं, बल्कि नैतिक होती है, और यही मूल्य ग्रामीण समाज की आत्मा का निर्माण करते हैं। इस प्रकार, ‘ईदगाह’ केवल एक बाल कथा नहीं, बल्कि भारतीय ग्रामीण जीवन के नैतिक यथार्थ का प्रतीकात्मक आख्यान है।

5.4.2. 'पूस की रात' – किसान जीवन और मौसमीय संकट

प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' भारतीय किसान जीवन की सबसे मार्मिक और यथार्थपरक अभिव्यक्तियों में से एक है। यह कहानी उस संघर्षशील वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज की रीढ़ तो है, परंतु जिसकी स्थिति सबसे दयनीय है। कथा का नायक हल्कू एक साधारण किसान है, परंतु उसके जीवन में जो कठिनाइयाँ, अपमान और असुरक्षाएँ हैं, वे समूचे भारतीय ग्रामीण समाज की सामूहिक व्यथा बन जाती हैं। हल्कू और उसकी पत्नी मुन्नी के बीच का संवाद इस बात का प्रतीक है कि गरीबी केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक बोझ भी है। जब कठोर सर्दी की 'पूस की रात' में हल्कू अपने खेत की रखवाली के लिए जाता है, तो वह न केवल ठंड से जूझता है, बल्कि अपनी नियति, व्यवस्था और जीवन की अन्यायपूर्ण संरचना से भी संघर्ष करता है। उसके पास न तो गर्म कपड़ा है, न अलाव के लिए पर्याप्त लकड़ी फिर भी वह अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता। प्रेमचंद यहाँ किसान को करुणा का पात्र नहीं, बल्कि संघर्ष और श्रम के नैतिक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे यह दिखाते हैं कि जब समाज किसान के श्रम का मूल्य नहीं पहचानता, तब वह केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक दिवालियापन का भी शिकार होता है (अग्रवाल, 1973, पृ. 233)।

कहानी का दूसरा पक्ष "मौसमीय संकट" को केवल प्राकृतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और संस्थागत समस्या के रूप में प्रस्तुत करता है। हल्कू की ठंड से लड़ाई प्रकृति से अधिक उस व्यवस्था से है जिसने उसे गरीबी और ऋण के चक्र में बाँध रखा है। वह ठंड में काँपता है क्योंकि उसके पास कंबल खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं उसकी फसल पहले से गिरवी रखी जा चुकी है। यह स्थिति प्रेमचंद के यथार्थवाद का केंद्र है वे दिखाते हैं कि किसान की कठिनाइयाँ केवल जलवायु या भाग्य की देन नहीं, बल्कि समाज की संरचनात्मक असमानता का परिणाम हैं। कहानी के अंत में जब हल्कू अपने कुत्ते झबरा के साथ ठंड में सो जाता है और खेत नीलगायों द्वारा चर लिया जाता है, तो वह दृश्य प्रतीक बन जाता है मानव और प्रकृति के बीच उस सामंजस्य का, जो मजबूरी, थकान और नियति की स्वीकृति से उपजा है। प्रेमचंद इस कथा में यह गहरी दार्शनिक अनुभूति जोड़ते हैं कि मनुष्य का संघर्ष केवल जीविका के लिए नहीं, बल्कि जीवन के अर्थ की खोज के लिए भी होता है। हल्कू की यह स्थिति आत्मिक विजय नहीं, बल्कि व्यवस्था पर एक मूक व्यंग्य है क्योंकि अंततः वह राहत की साँस लेता है कि अब उसे ऐसी ठंडी रात में पहरा नहीं देना पड़ेगा। इस प्रकार, 'पूस की रात' न केवल किसान जीवन की कठिनाइयों का चित्रण है, बल्कि भारतीय समाज की उस

सामूहिक संवेदना का भी दर्पण है जो आज भी किसान के पसीने पर टिकी हुई है (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 287)।

5.4.3. 'सद्गति' – श्रम, जाति और ग्रामीण संरचना

प्रेमचंद की कहानी 'सद्गति' भारतीय ग्रामीण समाज की सबसे कटु सच्चाइयों को उजागर करती है एक ऐसा समाज जहाँ श्रम का मूल्य नहीं, जाति का प्रभाव सर्वोपरि है, और धार्मिक व्यवस्था शोषण का माध्यम बन गई है। कहानी का नायक दुखी चमार उस ग्रामीण वर्ग का प्रतिनिधि है जो समाज की रीढ़ तो है, परंतु सम्मान और अधिकार से वंचित है। दुखी का जीवन पूरी तरह श्रम पर आधारित है, लेकिन विडंबना यह है कि यही श्रम उसे अपमानित करता है। वह ब्राह्मण पंडित घासीराम से अपनी 'सद्गति' के लिए आता है अर्थात् अपनी बेटी के विवाह हेतु शुभ मुहूर्त निकलवाने के लिए पर उसे अपने शरीर से मुक्ति मिल जाती है। यह करुण विरोधाभास प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद की सबसे बड़ी पहचान है। यहाँ 'सद्गति' शब्द धर्म, समाज और सत्ता के त्रिकोणीय शोषण का व्यंग्यात्मक प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद ने यह दिखाया कि जिस धर्म को करुणा और समानता का प्रतीक होना चाहिए था, वही वर्ग और जाति के औजार में बदल गया है। दुखी का श्रम यहाँ केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि समाज के पापों को ढकने वाला आवरण है (अग्रवाल, 1973, पृ. 233)।

कहानी में प्रेमचंद ने श्रम की गरिमा को नैतिकता से जोड़ा है। दुखी पूरे मन से पंडित के लिए लकड़ी काटता है, परंतु उसे बदले में अपमान और मृत्यु मिलती है। यह प्रसंग दर्शाता है कि भारतीय ग्रामीण समाज में श्रम और सम्मान के बीच गहरा अंतराल है यहाँ श्रम करने वाला "सेवक" है, "मानव" नहीं। प्रेमचंद का यह चित्रण केवल आर्थिक असमानता नहीं, बल्कि नैतिक पतन की आलोचना भी है। दुखी का पात्र यह प्रश्न उठाता है कि क्या श्रम का कोई धर्म नहीं होता? क्या केवल जाति ही मनुष्य के मूल्य का निर्धारण करती है? यही प्रश्न प्रेमचंद के यथार्थ को सामाजिक दर्शन में परिवर्तित कर देता है।

तीसरा पहलू ग्रामीण संरचना की स्थायित्व और जड़ता का है। गाँव की सामाजिक व्यवस्था इतनी सख्त है कि पंडित घासीराम की नैतिक चेतना भी उसे पार नहीं कर पाती। दुखी की मृत्यु के बाद उसका शव उठाने के लिए कोई नहीं आता अंततः स्वयं पंडित घासीराम रस्सी से बाँधकर शव को घसीटते हैं यह दृश्य केवल जाति-आधारित घृणा का नहीं, बल्कि सामूहिक संवेदनहीनता का प्रतीक है। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि जब समाज अपने सबसे श्रमशील वर्ग की मृत्यु पर मौन रहता है, तब उसकी नैतिक आत्मा मर चुकी होती है। यहाँ ग्रामीण समाज का विखंडन दिखाई देता

है जहाँ सामाजिक संस्थाएँ केवल दिखावे के लिए जीवित हैं, परंतु उनमें करुणा का कोई स्थान नहीं बचा।

अंततः, 'सद्गति' श्रम और जाति के माध्यम से भारतीय ग्रामीण जीवन के नैतिक संकट को रेखांकित करती है। दुखी चमार की मृत्यु केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि उस संवेदना की मृत्यु है जो समाज को एकजुट रखती है। प्रेमचंद का यह संदेश स्पष्ट है जब तक श्रम का सम्मान नहीं होगा, तब तक ग्रामीण जीवन में वास्तविक 'सद्गति' संभव नहीं। उन्होंने यह दिखाया कि जाति व्यवस्था केवल व्यक्ति को नहीं बाँधती, बल्कि समाज के विकास को भी रोकती है। 'सद्गति' इस अर्थ में ग्रामीण भारत की सामाजिक संरचना का सबसे गहरा आत्मालोचन है जो आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि श्रम और जाति की असमानताएँ अब भी हमारे सामाजिक यथार्थ का हिस्सा हैं (चुडाल, 2018, पृ. 162)।

5.4.4. 'ठाकुर का कुआँ' – सामाजिक दूरी और संसाधन असमानता

प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त सामाजिक भेदभाव, संसाधनों पर सत्ता का एकाधिकार और जातिगत विषमता की तीव्र आलोचना प्रस्तुत करती है। यह कहानी केवल एक कुएँ की नहीं, बल्कि उस गहरे सामाजिक ढाँचे की कहानी है जिसमें पानी जैसी मूलभूत आवश्यकता भी ऊँच-नीच की मानसिकता के अधीन है। 'ठाकुर का कुआँ' केवल एक भौतिक वस्तु नहीं, बल्कि एक सत्ता-संरचना का प्रतीक है, जो दिखाती है कि किस प्रकार ग्रामीण जीवन में संसाधनों पर नियंत्रण वर्ग और जाति के आधार पर तय होता है। कहानी की नायिका गंगी एक निम्नवर्गीय स्त्री अपने बीमार पति जोखू के लिए पानी लाने की कोशिश करती है, परंतु समाज के नियम और ठाकुर की सत्ता उसके मानवीय अधिकारों को कुचल देते हैं। प्रेमचंद इस प्रसंग में यह दिखाते हैं कि सामाजिक दूरी केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक और संस्थागत रूप से गहराई तक जमी हुई है। गंगी का कुएँ तक जाना एक छोटे-से कार्य जैसा लगता है, लेकिन वस्तुतः यह उस व्यवस्था के खिलाफ एक नैतिक प्रतिरोध है जो उसे "मनुष्य" होने का अधिकार नहीं देती (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 290)।

कहानी में प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की उस विडंबना को उजागर किया है जहाँ संसाधन साझा करने का प्रश्न सामाजिक प्रतिष्ठा और अपमान से जुड़ जाता है। गंगी के भय, उसकी विवशता और उसका साहस ये तीनों ही ग्रामीण स्त्री के मनोविज्ञान को परत-दर-परत खोलते हैं। वह जानती है कि ठाकुर के कुएँ से पानी लेना अपराध है, फिर भी वह अपने पति के जीवन के लिए यह जोखिम उठाती है। यह क्षण केवल एक व्यक्तिगत साहस का नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध असहाय प्रतिरोध का

प्रतीक है। प्रेमचंद यहाँ किसी खुले विद्रोह की बात नहीं करते, बल्कि यह दिखाते हैं कि गाँव की स्त्री अपने मौन संघर्षों के माध्यम से धीरे-धीरे अन्याय की जड़ें हिला रही है। गंगी का यह कार्य उस यथार्थ को तोड़ता है जिसमें “ऊँच-नीच” का भेद शाश्वत मान लिया गया है। लेखक यह भी इंगित करते हैं कि संसाधन असमानता केवल आर्थिक व्यवस्था से नहीं, बल्कि जाति-आधारित सत्ता-मानसिकता से उत्पन्न होती है, जहाँ जल, भूमि और श्रम सभी कुछ उच्च वर्ग के नियंत्रण में हैं (अग्रवाल, 1973, पृ. 242)।

अंततः, ‘ठाकुर का कुआँ’ प्रेमचंद की ग्रामीण चेतना की सबसे प्रखर अभिव्यक्ति है, जिसमें उन्होंने सामाजिक यथार्थ को नैतिकता के दर्पण में दिखाया। यह कहानी हमें यह समझाती है कि जब तक समाज अपने सबसे कमजोर वर्ग को समानता और सम्मान नहीं देता, तब तक उसकी सभ्यता अधूरी है। गंगी का भय और उसका साहस एक साथ यह दिखाते हैं कि भारतीय गाँव की स्त्री केवल पीड़िता नहीं, बल्कि परिवर्तन की वाहक भी है। प्रेमचंद का यह दृष्टिकोण उस नैतिक यथार्थ को सामने लाता है जिसमें संसाधनों पर नियंत्रण की लड़ाई केवल सत्ता की नहीं, बल्कि मानवता की पुनर्स्थापना की है। ‘ठाकुर का कुआँ’ इस दृष्टि से भारतीय ग्रामीण समाज का दर्पण है जो हमें यह याद दिलाता है कि जब तक समाज में समान अवसर और साझेदारी की भावना नहीं होगी, तब तक उसका विकास केवल बाहरी चमक तक सीमित रहेगा (चुडाल, 2018, पृ. 162)।

5.4.5. ‘दो बैलों की कथा’ – पशु रूपक और ग्रामीण नैतिकता

प्रेमचंद की सुप्रसिद्ध कहानी ‘दो बैलों की कथा’ भारतीय ग्रामीण जीवन के नैतिक और मानवीय मूल्यों को एक अद्भुत पशु-रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करती है। यह कहानी केवल दो बैलों हीरा और मोती की कथा नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज के श्रम, संवेदना और सह-अस्तित्व की गाथा है। प्रेमचंद ने यहाँ पशु पात्रों के माध्यम से मानवीय गुणों को जिस गहराई और करुणा के साथ उकेरा है, वह उनकी सामाजिक दृष्टि की परिपक्वता को दर्शाता है। हीरा और मोती किसान झूरी के बैल हैं, जो उसके परिवार का हिस्सा हैं, केवल बोझ ढोने वाले जानवर नहीं। वे अपनी मेहनत, निष्ठा और आपसी प्रेम से उस मानवीयता का प्रतीक बनते हैं जो समाज के हर स्तर पर आवश्यक है। जब उन्हें झूरी के साले गया के यहाँ भेजा जाता है, तो वे अपमान और अन्याय सहते हैं, परंतु अपने आत्मसम्मान से समझौता नहीं करते। प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि सच्ची नैतिकता न तो शक्ति में है और न ही धन में, बल्कि कर्तव्य, निष्ठा और आत्मसम्मान में है। दोनों बैल एक ऐसे समाज के नैतिक आदर्श हैं जो मनुष्य को यह

सिखाते हैं कि प्रेम और विश्वास ही किसी भी संबंध की असली नींव हैं (अग्रवाल, 1973, पृ. 242)।

कहानी का दूसरा पक्ष ग्रामीण नैतिकता की व्याख्या करता है। बैलों के माध्यम से प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि ग्रामीण समाज में मानव और पशु का संबंध केवल उपयोगिता पर आधारित नहीं, बल्कि भावनात्मक सह-अस्तित्व पर टिका हुआ है। झूरी का अपने बैलों के प्रति स्नेह इस तथ्य को सिद्ध करता है कि प्रेम का आधार जाति, वर्ग या भाषा नहीं, बल्कि संवेदना है। जब हीरा और मोती अपने मालिक से दूर होते हैं, तो वे केवल असंतोष से नहीं, बल्कि अन्याय के विरोध में हल तोड़कर और जुए से निकलकर प्रतिरोध करते हैं यह उस नैतिक चेतना का प्रतीक है जो प्रेमचंद के साहित्य में बार-बार दिखाई देती है। कहानी के अंत में दोनों बैलों का अपने मालिक के घर लौट आना केवल निष्ठा का उदाहरण नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की नैतिक पुनर्स्थापना का प्रतीक है जहाँ मनुष्य और पशु के बीच का बंधन, शोषण के नहीं, बल्कि करुणा और साझेदारी के भाव से निर्मित है। इस प्रकार, 'दो बैलों की कथा' भारतीय ग्रामीण संस्कृति का वह नैतिक प्रतिरूप है जो यह सिखाता है कि सच्ची सभ्यता सह-अस्तित्व, करुणा और कर्तव्यबोध में निहित है (चुडाल, 2018, पृ. 170)।

5.4.6. 'सवा सेर गेहूँ' – ऋण व्यवस्था और ग्रामीण शोषण

प्रेमचंद की कहानी 'सवा सेर गेहूँ' भारतीय ग्रामीण जीवन में व्याप्त आर्थिक शोषण, ऋण व्यवस्था और सामाजिक असमानता की एक तीखी आलोचना है। यह कहानी गाँव के उस वर्ग की प्रतिनिधि है जो मेहनतकश है, परंतु सदियों से कर्ज और महाजनी तंत्र के जाल में फँसा हुआ है। कहानी का नायक शंकर केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि उस किसान वर्ग का प्रतीक है जो श्रम करता है, लेकिन श्रम का फल दूसरों के पास चला जाता है। कहानी के शीर्षक में 'सवा सेर गेहूँ' मात्र एक माप नहीं, बल्कि शोषण की मात्रा का प्रतीक है थोड़ा-थोड़ा करके बढ़ता हुआ अन्याय, जो अंततः पूरे जीवन को निगल जाता है। महाजन की चालाकी और शंकर की विवशता के माध्यम से प्रेमचंद यह दिखाते हैं कि ग्रामीण जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी गरीबी नहीं, बल्कि वह संरचनात्मक शोषण है जो धर्म, परंपरा और नैतिकता की आड़ में पनपता है। ऋण यहाँ केवल आर्थिक लेन-देन नहीं, बल्कि सत्ता और निर्भरता का संबंध है, जो पीढ़ियों तक चलता है। प्रेमचंद का यह चित्रण दर्शाता है कि भारतीय गाँव में गरीबी एक सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है, न कि केवल भाग्य या आलस्य का (श्रीवास्तव, 1956, पृ. 290)।

कहानी का दूसरा स्तर ग्रामीण समाज की नैतिक संरचना पर प्रश्न उठाता है। महाजन, जो समाज में सम्मानित व्यक्ति है, वह शंकर जैसे गरीब किसान का शोषण करने में कोई अपराध नहीं मानता यह दिखाता है कि जब अन्याय को समाज की स्वीकृति मिल जाती है, तो वह संस्था बन जाता है। प्रेमचंद इस नैतिक विडंबना को अत्यंत सूक्ष्म ढंग से दिखाते हैं। शंकर अपने श्रम, ईमानदारी और आत्म-सम्मान के बावजूद उस व्यवस्था से नहीं बच पाता, जो उसे शोषित बनाए रखने के लिए बनी है। लेखक यह भी इंगित करते हैं कि यह महाजनी तंत्र केवल आर्थिक रूप से ही नहीं, बल्कि मानसिक रूप से भी गुलाम बनाता है क्योंकि शंकर अपने शोषण को नियति मान लेता है। यह स्वीकृति समाज के नैतिक पतन का प्रमाण है। प्रेमचंद का दृष्टिकोण यहाँ यथार्थवादी होते हुए भी गहराई से सुधारवादी है; वे यह मानते हैं कि जब तक समाज में श्रम और ईमानदारी का सम्मान नहीं होगा, तब तक किसी भी आर्थिक सुधार का अर्थ अधूरा रहेगा (अग्रवाल, 1973, पृ. 242)।

अंततः, 'सवा सेर गेहूँ' प्रेमचंद की समाज-दृष्टि का एक सशक्त दस्तावेज़ है, जो यह सिद्ध करता है कि भारतीय ग्रामीण जीवन की समस्या केवल गरीबी नहीं, बल्कि उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था की है जिसने गरीब को गरीब बनाए रखने के लिए अनेक संस्थागत तंत्र गढ़े हैं। इस कहानी का महत्व इस तथ्य में निहित है कि प्रेमचंद ने यहाँ केवल करुणा नहीं, बल्कि चेतना का बीज बोया है वे पाठक को यह सोचने पर विवश करते हैं कि क्या समाज में शोषण इसलिए कायम है क्योंकि उसे चुनौती देने का साहस मर गया है। 'सवा सेर गेहूँ' इस दृष्टि से न केवल आर्थिक अन्याय की कथा है, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण का आह्वान भी है। प्रेमचंद के लिए ग्रामीण जीवन का उद्धार कानून से नहीं, बल्कि न्याय और करुणा की नैतिकता से संभव है। यही कारण है कि यह कहानी आज भी भारतीय समाज के आर्थिक और नैतिक विवेक को झकझोरती है (चुडाल, 2018, पृ. 170)।

संदर्भ सूची

- [1]. शर्मा, दीपक (2022). भारतीय समाज का यथार्थ और प्रेमचंद का साहित्यिक दृष्टिकोण. लखनऊ: साहित्य विमर्श पत्रिका, पृ. 47।
- [2]. वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 105।
- [3]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 93।
- [4]. मिश्रा, विमल कुमार (2019). प्रेमचंद का सामाजिक दृष्टिकोण: वर्ग, जाति और धर्म की समीक्षा. प्रयागराज: हिंदी अकादमी प्रकाशन, पृ. 118।
- [5]. सिंह, अनिल (2021). राजनीति और समाज का यथार्थ: प्रेमचंद की कहानियों में सत्ता विमर्श. भोपाल: शोध भारती जर्नल, पृ. 214।
- [6]. शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 140।
- [7]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 288।
- [8]. सानेही, सुरेंद्रनाथ (1964). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ. प्रयागराज: साहित्य अकादमी, पृ. 132।
- [9]. राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 118।
- [10]. शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 142।
- [11]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 285।
- [12]. सक्सेना, रामलाल (1958). हिंदी कहानी का विकास. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृ. 203।
- [13]. राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 121।

- [14]. शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 210।
- [15]. सिंह, नामवर (1957). कहानी: नई कहानी. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 176।
- [16]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 119।
- [17]. राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 124।
- [18]. श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 226।
- [19]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 198।
- [20]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 98।
- [21]. शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 222।
- [22]. वाजपेयी, नंददुलारे (1962). हिंदी साहित्य और समाज. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 191।
- [23]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 193।
- [24]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 124।
- [25]. सिंह, नामवर (1983). कहानी: नई कहानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 161।
- [26]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 105।
- [27]. वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 130।
- [28]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 107-109।

- [29]. वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 134।
- [30]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 119।
- [31]. शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 219।
- [32]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 121।
- [33]. श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 243।
- [34]. तिवारी, सीमा (2021). प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री और संवेदना का रूपांतरण. प्रयागराज: संवाद साहित्यिक समीक्षा, पृ. 124।
- [35]. शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 148-150।
- [36]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 133।
- [37]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 210।
- [38]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 151।
- [39]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 226।
- [40]. श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 279।
- [41]. श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 283।
- [42]. श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 285।

- [43]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 233।
- [44]. श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 287।
- [45]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 162।
- [46]. श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 290।
- [47]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 242।
- [48]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 170।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- [1]. अग्रवाल, आर. (2016). प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक मूल्यबोध. जयपुर: नैतिक विचार प्रकाशन, पृ. 165.
- [2]. अग्रवाल, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों में न्यायबोध. दिल्ली: अक्षरदीप प्रकाशन, पृ. , पृ. 54
- [3]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 198।
- [4]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 193।
- [5]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 210।
- [6]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 226।
- [7]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 233।
- [8]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 242।
- [9]. अनंतराम, ए. (2012). हिंदी-उर्दू साहित्य में प्रेमचंद का योगदान. जयपुर: साहित्य सदन.
- [10]. अमृतराय. (1962). कलम का सिपाही. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 256-257.
- [11]. अमृतराय. (1962). कलम का सिपाही. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 80.
- [12]. इंद्रनाथ मदान. (वर्ष). प्रेमचंद: एक विवेचन. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [13]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1240
- [14]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1246
- [15]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1234
- [16]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1230

- [17]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 25.
- [18]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [19]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [20]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 29.
- [21]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [22]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [23]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 26.
- [24]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 33.
- [25]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 34.
- [26]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 240.
- [27]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 241.
- [28]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 241.
- [29]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 243.
- [30]. कुमार, 202, पृ. 103-105
- [31]. कुमार, के. (2020). बाल पात्र और नैतिक मूल्यों का विकास: प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन. पटना: भारती भवन।
- [32]. कुमार, जे. (2021). हिंदी कहानी में सामाजिक संरचना का पुनर्पाठ. बनारस: मानवदीप प्रकाशन, पृ. 88.
- [33]. कुमार, डी. (2022). प्रेमचंद का साहित्य और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: साहित्य भवन.

- [34]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 112
- [35]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 212
- [36]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 122
- [37]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 120
- [38]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 103-105
- [39]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 75
- [40]. कुलश्रेष्ठ, एस. (2016). ग्राम्य जीवन और नैतिक ताना-बाना. आगरा: लोक साहित्य प्रकाशन, पृ. 67.
- [41]. खान, मोहम्मद अकबर (2025). 'ठाकुर का कुआँ' में सामाजिक असंवेदनशीलता की नैतिक व्याख्या. ब्रिजिंग पर्सपेक्टिव्स इन सोशल साइंसेज, खंड 3, अंक 7, पृ. 91
- [42]. गुप्त, रामदीन. (1988). भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ. 105.
- [43]. गुप्ता, ए. (2019). साहित्य और समाज के बीच संवाद: प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण. जयपुर: शिवना प्रकाशन।
- [44]. गुप्ता, एन. (2017). प्रेमचंद और नैतिक मूल्य: एक अध्ययन. दिल्ली: सत्य साहित्य प्रकाशन, पृ. 173.
- [45]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 97; शुक्ल, 2010, पृ. 125
- [46]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 101; शुक्ल, 2010, पृ. 128
- [47]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 91
- [48]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 94
- [49]. गुप्ता, डॉ. शीला. (1972). भारतीय समाज और राष्ट्रीय आंदोलन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 34.

- [50]. गुप्ता, डॉ. शीला. (1972). भारतीय समाज और राष्ट्रीय आंदोलन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 40.
- [51]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 213.
- [52]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 220.
- [53]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 224.
- [54]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 229.
- [55]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 230.
- [56]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 234.
- [57]. गुलाटी, एन. (2015). प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी चेतना. चंडीगढ़: मानव पब्लिशर्स.
- [58]. गोयनका, कमल किशोर. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 25.
- [59]. गोयनका, कमल किशोर. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 39.
- [60]. गोस्वामी, के. (2022). सत्ता, नैतिकता और प्रेमचंद का यथार्थवाद. दिल्ली: अनुभव साहित्य निकेतन, पृ. 96.
- [61]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 119।
- [62]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 124।
- [63]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 121।
- [64]. चंद्रा, एस. (1982). प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक दृष्टि. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- [65]. चंद्रा, एस. (2020). प्रेमचंद का यथार्थवाद और सामाजिक सुधार की चेतना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

- [66]. चतुर्वेदी, एम. (2017). प्रेमचंद और न्याय का नैतिक आधार. इलाहाबाद: लोकवाणी प्रकाशन, पृ. 79.
- [67]. चतुर्वेदी, सीताराम. (1968). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- [68]. चुडाल, ए. ए. (2018). शिवरानी देवी की 'प्रेमचंद घर में' में आत्मकथा और गृहस्थी का अंतर्संबंध. क्राकोव इंडोलॉजिकल स्टडीज़, खंड 20, पृ. 92
- [69]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 93।
- [70]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 98।
- [71]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 105।
- [72]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 107-109।
- [73]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 119।
- [74]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 133।
- [75]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 151।
- [76]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 162।
- [77]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 170।
- [78]. जैन, एन. (2020). प्रेमचंद और आधुनिक नैतिक दृष्टिकोण. भोपाल: संवाद प्रकाशन, पृ. 314.
- [79]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 229.
- [80]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 232.
- [81]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 174.

- [82]. जैन, लक्ष्मण कुमार (2021). प्रेमचंद की कहानियों में राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक रूप. जर्नल ग्लोबल वैल्यूज, खंड 12, अंक 1, पृ. 18
- [83]. जैनेन्द्र कुमार. (1973). जैनेन्द्र की पत्रावली. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
- [84]. जोशी, एन. (2020). समाज और न्याय की परंपरा: प्रेमचंद की दृष्टि में. जयपुर: साहित्य निकेतन, पृ. 89.
- [85]. जोशी, के. (2020). कर्तव्य, साहस और प्रेमचंद की कथा-दृष्टि. वाराणसी: विवेकानंद साहित्य निकेतन, पृ. 190.
- [86]. टंडन, रामचंद्र. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 357.
- [87]. टंडन, रामचंद्र. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 377.
- [88]. ठाकुर, रवींद्रनाथ. (1936). रवींद्र रचनावली (खंड 12). कोलकाता: विश्वभारती प्रकाशन.
- [89]. तिवारी, ए. (2018). हिंदी कथा साहित्य में समाज और नैतिकता. लखनऊ: नववाणी पब्लिशिंग, पृ. 97.
- [90]. तिवारी, एन. (2021). न्याय, मूल्य और साहित्यिक दृष्टिकोण. बनारस: सामाजिक विमर्श बुक्स, पृ. 203.
- [91]. तिवारी, एम. (2022). परंपरा और परिवर्तन: प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक चेतना. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ।
- [92]. तिवारी, एल. (2020). हिंदी कथा साहित्य और सामाजिक नियंत्रण. बनारस: नववाणी पब्लिशिंग, पृ. 93.
- [93]. तिवारी, एस. (2012). हिंदी कथा साहित्य और सामाजिक मूल्य. दिल्ली: साहित्य निधि, पृ. 198.
- [94]. तिवारी, एस. (2013). हिंदी कथा साहित्य और नैतिकता. वाराणसी: विद्या प्रकाशन, , पृ. 136
- [95]. तिवारी, एस. (2018). प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि और पात्र निर्माण. इलाहाबाद: लोकशक्ति प्रकाशन, पृ. 175.
- [96]. तिवारी, सीमा (2021). प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री और संवेदना का रूपांतरण. प्रयागराज: संवाद साहित्यिक समीक्षा, पृ. 124।
- [97]. त्रिपाठी, आर. (2020). प्रेमचंद की नायिकाएँ: स्वतंत्रता और नैतिक चेतना. बनारस: संस्कृति साहित्य भवन, पृ. 345.
- [98]. त्रिपाठी, एन. (2020). सामाजिक बहिष्कार और हिंदी कहानी. पटना: नवप्रभा प्रकाशन, पृ. 99.

- [99]. त्रिपाठी, एस. (2020). प्रेमचंद का समाजदर्शन. दिल्ली: भारतीय ग्रंथालय, पृ. 137.
- [100]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 164.
- [101]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 166.
- [102]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 172.
- [103]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 174.
- [104]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 182.
- [105]. त्रिवेदी, एच. (2022). आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में कथा-शैली और नैतिक प्रभाव. नई दिल्ली: रूटलेज इंडिया।
- [106]. त्रिवेदी, एन. (2017). प्रेमचंद और सामाजिक न्याय का विमर्श. दिल्ली: नववाणी प्रकाशन, पृ. 84.
- [107]. दत्त, एन. (2020). नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व. कोलकाता: चेतना पब्लिशर्स, पृ. 134.
- [108]. दत्त, एम. (2015). प्रेमचंद और नैतिक चेतना. दिल्ली: साहित्य विमर्श प्रकाशन, पृ. 144.
- [109]. दत्ता, एस. (2019). प्रेमचंद की कहानियाँ और सामाजिक न्याय. दिल्ली: न्यायधारा प्रकाशन, पृ. 106.
- [110]. दवे, एम. (2021). वर्ग और नैतिकता का द्वंद्व हिंदी उपन्यासों में. जयपुर: विमर्श बुक्स, पृ. 143.
- [111]. दास, एम. (2019). सामाजिक यथार्थ और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद का साहित्य. दिल्ली: नवचेतना बुक्स, पृ. 181.
- [112]. दास, जे. (2021). न्याय की नैतिक अवधारणा: हिंदी साहित्य में अध्ययन. पटना: चेतना साहित्य सदन, पृ. 108.
- [113]. दुबे, ए. (2019). प्रशासनिक नैतिकता और प्रेमचंद की कहानियाँ. दिल्ली: राजनैतिक विमर्श प्रकाशन, पृ. 193.
- [114]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 191.

- [115]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 196.
- [116]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 199.
- [117]. द्विवेदी, आर. (2021). हिंदी कथा साहित्य में सामाजिक संस्थाएँ और नैतिक चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- [118]. द्विवेदी, क. (2019). ग्राम्य जीवन और साहित्यिक न्याय. बनारस: सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, पृ. 112.
- [119]. द्विवेदी, यू. (2020). साहित्य और सुधार की राजनीति. लखनऊ: जनलोक साहित्य, पृ. 160.
- [120]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 288।
- [121]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 285।
- [122]. नस्कर, एस. (2023). प्रेमचंद और राष्ट्रवादी चेतना. कोलकाता: प्रगतिशील प्रकाशन.
- [123]. नाहिद, अफशान (2020). मुल्कराज आनंद और प्रेमचंद: समान दृष्टिकोण के उपन्यासकार. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 2, पृ. 58
- [124]. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (1936). निराला रचनावली (खंड 4). इलाहाबाद: साहित्य भवन.
- [125]. पुरी, रक्षा. (1970). प्रेमचंद का साहित्य और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: साहित्य भवन, पृ. 235.
- [126]. प्रियांका, पी. एवं सेकर, टी. (2022). प्रेमचंद की 'ठाकुर का कुआँ' में डबल हाशियाकरण और सत्ता राजनीति. शानलैक्स इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंग्लिश, खंड 11, अंक 1, पृ. 4
- [127]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49
- [128]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49-50
- [129]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 51-52
- [130]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 51
- [131]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 52-53
- [132]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 53
- [133]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49-51
- [134]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 50

- [illegible]

- 323

- [169]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 17-21
- [170]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 19-22
- [171]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 21-23
- [172]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 11-12
- [173]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12-13
- [174]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 15
- [175]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 11-14
- [176]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 14-16
- [177]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12-15
- [178]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 13-16
- [179]. प्रेमचंद. (1999). प्रतिज्ञा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [180]. प्रेमचंद. (1999). प्रेमाश्रम. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 51.
- [181]. प्रेमचंद. (1999). प्रेमाश्रम. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 86.
- [182]. प्रेमचंद. (1999). वरदान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 68.
- [183]. प्रेमचंद. (2005). 'सेवासदन'. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 8.
- [184]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-65
- [185]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 66-68
- [186]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-68
- [187]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65-67

- [188]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 67-68
- [189]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-66
- [190]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65
- [191]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 68
- [192]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 66-67
- [193]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65-66
- [194]. प्रेमचंद; डेविड रूबिन (1971). द वर्ल्ड ऑफ प्रेमचंद: सिलेक्टेड स्टोरीज़ ऑफ प्रेमचंद. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़, खंड 30, पृ. 497-498
- [195]. प्रेमचंद। (2015)। बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल)। शिक्षा भारती, पृ. 85-88
- [196]. प्रेमचंद। (2015)। बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल)। शिक्षा भारती, पृ. 50-55
- [197]. भटनागर, एस. (1989). भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, पृ. 141.
- [198]. भटनागर, के. (2019). गरीबी का मनोविज्ञान और प्रेमचंद की दृष्टि. लखनऊ: समाजशास्त्र बुक्स, पृ. 93.
- [199]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 23.
- [200]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [201]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [202]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [203]. मदन गोपाल. (2016). प्रेमचंद: जीवन और कृतित्व. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 15.

- [204].मदन गोपाल. (2016). प्रेमचंद: जीवन और कृतित्व. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 16-17.
- [205].मलिक, आर. (2017). भारतीय परिवार और सत्ता संरचना. जयपुर: समवेत प्रकाशन, पृ. 109.
- [206].मल्होत्रा, वी. (2019). ईमानदारी और सामाजिक संरचना. लखनऊ: चेतना बुक्स, पृ. 172.
- [207].माथुर, ए. (2020). नारी नैतिकता और साहित्यिक विमर्श. जयपुर: संस्कृति प्रकाशन, पृ. 188.
- [208].माथुर, एस. (2019). हिंदी कथा साहित्य में स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व. लखनऊ: विद्या पब्लिशर्स, पृ. 365.
- [209].मित्तल, एन. (2018). प्रेमचंद और समाज सुधार की अवधारणा. दिल्ली: नैतिक चेतना प्रकाशन, पृ. 151.
- [210].मिश्र, एल. (2014). प्रेमचंद की कहानियाँ: सामाजिक परिप्रेक्ष्य में. लखनऊ: नववाणी प्रकाशन, पृ. 211.
- [211]. मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 57; वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 102
- [212].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 57
- [213].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 61
- [214].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 63
- [215].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 68; वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 112
- [216].मिश्र, एस. (2017). सामाजिक असमानता और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद का साहित्यिक विश्लेषण. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
- [217].मिश्र, डी. (2020). समानता का सामाजिक विमर्श और प्रेमचंद. दिल्ली: नवचेतना प्रकाशन, पृ. 104.
- [218].मिश्र, वी. (2020). हिंदी साहित्य में सामाजिक आलोचना और नैतिक चेतना. नई दिल्ली: किताब महल।

- [219]. मिश्रा, डी. (2017). हिंदी साहित्य में नैतिक द्वंद्व. कानपुर: साहित्य मंदिर, पृ. 121.
- [220]. मिश्रा, पी. (2012). प्रेमचंद और बाल चेतना. पटना: ज्ञानदीप प्रकाशन, , पृ. 74
- [221]. मिश्रा, पी. (2019). प्रेमचंद और नैतिकता के प्रयोग. दिल्ली: साहित्य विमर्श प्रकाशन, पृ. 164.
- [222]. मिश्रा, विमल कुमार (2019). प्रेमचंद का सामाजिक दृष्टिकोण: वर्ग, जाति और धर्म की समीक्षा. प्रयागराज: हिंदी अकादमी प्रकाशन, पृ. 118।
- [223]. मुखर्जी, एम. (2016). परिवार और नैतिक संरचना: हिंदी कथा साहित्य में अध्ययन. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [224]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 79.
- [225]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 82.
- [226]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 85.
- [227]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 90.
- [228]. मेहरा, एस. (2021). हिंदी कहानियों में स्त्री दृष्टिकोण. दिल्ली: नारी विमर्श प्रकाशन, पृ. 348.
- [229]. यादव, आर. (2014). भारतीय समाज और स्त्री चेतना: साहित्यिक परिप्रेक्ष्य. लखनऊ: नवयुग प्रकाशन, , पृ. 112
- [230]. यादव, आर. (2014). भारतीय समाज और स्त्री चेतना: साहित्यिक परिप्रेक्ष्य. लखनऊ: नवयुग प्रकाशन, , पृ. 112
- [231]. यादव, आर. (2018). हिंदी कहानियों में दलित चेतना. वाराणसी: समता साहित्य केंद्र, पृ. 102.
- [232]. यादव, वी. (2017). भारतीय पंचायत और नैतिक न्याय. लखनऊ: गवेषणा पब्लिकेशन, पृ. 76.
- [233]. यादव, वी. (2019). प्रेमचंद की नारी दृष्टि और स्वतंत्रता की अवधारणा. वाराणसी: नंदिता प्रकाशन, पृ. 320.
- [234]. रंजन, एस. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामुदायिक नैतिकता. दिल्ली: साहित्य सन्दर्भ, पृ. 88.

- [235].रस्तोगी, के. (2021). न्याय और साहित्यिक विवेक: प्रेमचंद का पुनर्पाठ. इलाहाबाद: संवाद ग्रंथमाला, पृ. 105.
- [236].रहबर, हंसराज. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 52.
- [237].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 111
- [238].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 112
- [239].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 98
- [240].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 150
- [241].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 88
- [242].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 143
- [243].राजक, एस. (2020). 'सद्गति' में दलित चेतना और नैतिक द्वंद्व. रूपकथा - बहुविषयी मानविकी शोध पत्रिका, खंड 12, अंक 4, पृ. 94
- [244].राजकुमार. (1962). कांग्रेस का इतिहास और विचारधारा. नई दिल्ली: जनवादी प्रकाशन, पृ. 214.
- [245].राठौर, बी. (2018). प्रेमचंद की कृतियों में वर्ग चेतना. आगरा: समाज बोध प्रकाशन, पृ. 133.
- [246].रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 443.
- [247].रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 444.

- [248].रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 447.
- [249].राय, ए. (2017). प्रेमचंद के साहित्य में मानवतावाद और नैतिक दृष्टि. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- [250].राय, ए. (2019). 'गोदान' में नैतिक संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन. वाराणसी: नववाणी बुक्स, पृ. 155.
- [251].राय, ए. (2019). भाषा, संस्थाएँ और नैतिकता: प्रेमचंद साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- [252].राय, ए. (2021). कथा-संवाद और नैतिक अभिप्राय: हिंदी साहित्य में अध्ययन. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
- [253].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 141.
- [254].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 147.
- [255].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 149.
- [256].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 152.
- [257].राय, बी. (2020). हिंदी साहित्य में जल और जाति का प्रतीकात्मक विमर्श. लखनऊ: साहित्य विचार मंच, पृ. 95.
- [258].राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 118।
- [259].राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 121।
- [260].राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 124।
- [261].राव, आर. (2019). प्रेमचंद की कथाओं में न्याय और नैतिक सत्ता. हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- [262].रॉय, पी. (2019). नैतिकता और असमानता का साहित्यिक विश्लेषण. कोलकाता: दृष्टि पब्लिशर्स, पृ. 124.
- [263].रोचर, एल. (1970). प्रेमचंद ऑफ लमही विलेज. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज, खंड 30, पृ. 226

- [264].वर्मा, एस. (2020). प्रेमचंद और सामाजिक नैतिकता का पुनर्पाठ. बनारस: दृष्टिकोण प्रकाशन, पृ. 105.
- [265].वर्मा, टी. (2021). स्त्री स्वाधीनता और हिंदी कथा साहित्य. लखनऊ: भाषा संस्कृति केंद्र, पृ. 330.
- [266].वर्मा, डी. (2015). नैतिकता और भारतीय कथा परंपरा. बनारस: संवेदना प्रकाशन, पृ. 91.
- [267].वर्मा, डी. (2015). नैतिकता बनाम सामाजिक स्वीकृति. इलाहाबाद: संस्कृति प्रकाशन, 2015, पृ. 91
- [268].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 91.
- [269].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 95.
- [270].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 97.
- [271].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 91.
- [272].वर्मा, डी. (2018). प्रेमचंद में नैतिक पहचान और सामाजिक अनुभव. नई दिल्ली: मनोहर प्रकाशन।
- [273].वर्मा, डी. (2020). भावना, लज्जा और आत्म-सम्मान: प्रेमचंद के पात्रों का नैतिक विकास. भोपाल: मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- [274].वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 102
- [275].वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 105
- [276].वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 109
- [277].वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 105।
- [278].वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 130।
- [279].वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 134।

- [280].वाजपेयी, नंददुलारे (1962). हिंदी साहित्य और समाज. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 191।
- [281].शरण, टी. (2021). जाति, नैतिकता और प्रेमचंद की दृष्टि. पटना: यथार्थ प्रकाशन, पृ. 117.
- [282].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 84
- [283].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 88
- [284].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 90
- [285].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 93
- [286].शर्मा, ए. (2011). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: साहित्य संगम, पृ. 88
- [287].शर्मा, ए. (2011). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: साहित्य संगम, , पृ. 88
- [288].शर्मा, एस. (2017). हिंदी कहानियों में आत्म-सम्मान और नैतिक साहस. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस।
- [289].शर्मा, एस. (2018). परिवार, करुणा और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- [290].शर्मा, के. (2021). हिंदी साहित्य में आत्मनिर्णय और स्त्री चेतना. दिल्ली: नवचेतना पब्लिकेशन, पृ. 308.
- [291].शर्मा, जे. (2017). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ और नैतिक दृष्टि. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, , पृ. 86
- [292].शर्मा, डी. (2021). प्रेमचंद का नैतिक समाजदर्शन. जयपुर: संवाद प्रकाशन, पृ. 158.
- [293].शर्मा, दीपक (2022). भारतीय समाज का यथार्थ और प्रेमचंद का साहित्यिक दृष्टिकोण. लखनऊ: साहित्य विमर्श पत्रिका, पृ. 47।
- [294].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 49

- [295].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 100
- [296].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 118-120
- [297].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 128
- [298].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 130
- [299].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 152
- [300]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 156
- [301].शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 210।
- [302].शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 222।
- [303].शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 219।
- [304].शर्मा, रामविलास. (1967). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 7.
- [305].शर्मा, रामविलास. (1986). प्रेमचंद और भारतीय समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [306].शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 83.
- [307].शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 86.

- [308].शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 89.
- [309].शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 140।
- [310].शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 142।
- [311]. शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 148-150।
- [312]. शास्त्री, के. (2018). हिंदी कहानियों में ईमानदारी का स्वरूप. बनारस: नीतिधारा प्रकाशन, पृ. 179.
- [313]. शाह, एम. (2021). हिंदी साहित्य में मानवीय अधिकारों की अवधारणा. मुंबई: मानवमंच प्रकाशन, पृ. 92.
- [314]. शाह, एल. (2019). नारी अस्मिता और साहित्यिक पहचान. जयपुर: संवाद प्रकाशन, पृ. 352.
- [315]. शिवनारायण श्रीवास्तव. (2016). प्रेमचंद और राष्ट्रीय चेतना. वाराणसी: भारतीय साहित्य केंद्र.
- [316]. शिवरानी देवी प्रेमचंद. (वर्ष). प्रेमचंद: घर में. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 41.
- [317]. शिवरानी देवी प्रेमचंद. (वर्ष). प्रेमचंद: घर में. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 71.
- [318]. शिवहरे, आर. (2018). प्रेमचंद: न्याय और सामाजिक विवेक. दिल्ली: अनुभव पब्लिशर्स, पृ. 82.
- [319]. शुक्ल, आर. (2019). नैतिकता और वर्ग भेद का विश्लेषण: 'गोदान' के संदर्भ में. वाराणसी: साहित्य विमर्श, पृ. 141.
- [320]. शुक्ला, ए. (2019). साहित्य और समाज: प्रेमचंद की मूल्य दृष्टि. दिल्ली: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 91.
- [321]. शुक्ला, के. (2021). हिंदी कथा साहित्य में नैतिक न्याय की अवधारणा. भोपाल: दृष्टिकोण बुक्स, पृ. 110.
- [322]. शुक्ला, बी. (2020). प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता और सामाजिक स्थिति. इलाहाबाद: सत्यप्रकाशन, पृ. 358

- [323].शुक्ला, र. (2017). प्रेमचंद की कथा दृष्टि. बनारस: साहित्य संदर्भ केंद्र, पृ. 122.
- [324].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 59.
- [325].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 63.
- [326].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 66.
- [327].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 69.
- [328].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 72.
- [329].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 68.
- [330].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 80.
- [331].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 77.
- [332].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 70.
- [333].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 72.
- [334].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 85.
- [335].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 87.
- [336].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 226।
- [337].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 243।
- [338].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 279।
- [339].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 283।
- [340].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 285।
- [341].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 287।
- [342].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 290।
- [343].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 370.
- [344].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 371.
- [345].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 372.

- [346].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 373.
- [347].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 375.
- [348].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 378.
- [349].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 370.
- [350].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 369.
- [351].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 380.
- [352].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 386.
- [353].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 391.
- [354].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 400.
- [355].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 403.
- [356].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 369
- [357].सक्सेना, एल. (2020). व्यक्तिगत संघर्ष और नैतिकता: प्रेमचंद का दृष्टिकोण. वाराणसी: नीतिकथा प्रकाशन, पृ. 169.
- [358].सक्सेना, डी. (2018). प्रेमचंद और सामाजिक विमर्श. दिल्ली: मानव चेतना प्रकाशन, पृ. 88.
- [359].सक्सेना, रामलाल (1958). हिंदी कहानी का विकास. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृ. 203।
- [360].सत्यकाम. (1994). ब्रिटिश शासन और भारतीय राजनीति. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 120.
- [361].सहगल, डी. (2018). प्रेमचंद और सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: विचारधारा प्रकाशन, पृ. 101.

- [362].सहगल, वी. (2020). प्रेमचंद और न्याय की अवधारणा. लखनऊ: नैतिक विधि प्रकाशन, पृ. 199.
- [363].सांगवा, सुमित्रा एवं बेरा, प्रेम (2025). गांधीवादी से मार्क्सवादी दृष्टिकोण तक प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृ. 1-10
- [364].सानेही, सुरेंद्रनाथ (1964). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ. प्रयागराज: साहित्य अकादमी, पृ. 132।
- [365].सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 215
- [366].सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 140-150
- [367].सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 112
- [368].सिंह, अनिल (2021). राजनीति और समाज का यथार्थ: प्रेमचंद की कहानियों में सत्ता विमर्श. भोपाल: शोध भारती जर्नल, पृ. 214।
- [369].सिंह, आर. (2016). नैतिकता और सामाजिक संबंध: हिंदी साहित्य में परिप्रेक्ष्य. पटना: नवनीत साहित्य सदन, पृ. 97
- [370].सिंह, आर. (2018). प्रेमचंद में सामाजिक यथार्थ और नैतिक दृष्टि. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन।
- [371].सिंह, जे. (2019). प्रेमचंद और दलित विमर्श. वाराणसी: लोक साहित्य संस्थान, पृ. 81.
- [372].सिंह, नामवर (1957). कहानी: नई कहानी. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 176।
- [373].सिंह, नामवर (1983). कहानी: नई कहानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 161।
- [374].सिंह, पी. (2022). ग्रामीण संस्थाएँ, पंचायत और नैतिक न्याय: हिंदी साहित्य में अध्ययन. लखनऊ: प्रभात प्रकाशन।
- [375].सिंह, शैलेन्द्र कुमार (2019). प्रेमचंद, राष्ट्रीयता और नागरिक प्रतिरोध. इंडियन इकॉनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, खंड 56, पृ. 181
- [376].सिन्हा, आर. (2010). साहित्य और नैतिक विवेक. भोपाल: सुधा साहित्य सदन,, पृ. 119
- [377].सुंदरम, आर. (2015). प्रेमचंद और दलित विमर्श. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

- [378].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 72-75
- [379].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 105
- [380].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 88
- [381].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 145
- [382].सेन, पी. (2021). कथा-संरचना और पाठक प्रतिक्रिया: प्रेमचंद का नैतिक प्रभाव. कोलकाता: पपाइरस प्रकाशन।
- [383].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 8.
- [384].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 70.
- [385].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 129.
- [386].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 130.
- [387].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 156.
- [388].हरिभाऊ उपाध्याय. (1965). आधुनिक भारत का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 187-188.
- [389].हरिभाऊ उपाध्याय. (1965). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 55-56.



Journal of Frontiers in Multidisciplinary Research

आधुनिक भारतीय साहित्य में मुंशी प्रेमचंद की विरासत और प्रासंगिकता

सोनम सिंह ^{1*}, डॉ. जयसिंह यादव ²

¹ पी.एच.डी. शोध छात्रा, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

² शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

* Corresponding Author: **सोनम सिंह**

Article Info

E-ISSN: 3050-9726

P-ISSN: 3050-9718

Volume: 06

Issue: 02

July – December 2025

Received: 26-08-2025

Accepted: 28-09-2025

Published: 27-10-2025

Page No: 385-391

सारांश

मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक रचनाकर्म आधुनिक भारतीय कहानी और उपन्यास की दिशा तथा सामाजिक चेतना को पुनर्परिभाषित करता है। द्विभाषिक लेखन (हिंदी एवं उर्दू) और राष्ट्रवादी-गांधीवादी प्रभावों के समन्वय से उनका यथार्थवाद न केवल सामाजिक स्थितियों का सटीक वर्णन करता है, बल्कि नैतिक व्याख्या और सुधारवादी आग्रह भी प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद ने ग्रामीण भारत, कृषक वर्ग, दलित-वर्ग, स्त्रियाँ और श्रमिकों के जीवन को केंद्र में रखकर साहित्य को जन-आधारित और नैतिक उद्देश्यपरक बनाया; इसके परिणामस्वरूप साहित्य ने तंत्रगत अन्याय, जातिगत व आर्थिक शोषण तथा पितृसत्तात्मक संस्थाओं की आलोचना को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया। उनकी शैली—सरल, बोलचाल की भाषा और गहन मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि—ने हिंदी व उर्दू गद्य दोनों में सार्वजनिकीकरण और लोकभाषिक यथार्थवाद को बढ़ावा दिया। प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद केवल कलात्मक तकनीक नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध और मानवीय करुणा का घोषणापत्र बना; इससे स्वतंत्रता साहित्यकारों जैसे रेणु, यशपाल, भीष्म साहनी तथा अंग्रेज़ी उपन्यासकारों में भी प्रभाव स्पष्ट होता है। समकालीन संदर्भों में उनकी विषयवस्तु—कृषि संकट, जाति-पितृसत्ता और लैंगिक असमानता—आज भी प्रासंगिक है, और उनका मानवतावाद पाठकों को नैतिक आत्मनिरीक्षण तथा सामाजिक सुधार की प्रेरणा देता है।

DOI: <https://doi.org/10.54660/JFMR.2025.6.2.385-391>

मुख्य शब्द: यथार्थवाद, सामाजिक चेतना, मानवतावाद, नैतिक दृष्टि, ग्रामीण जीवन, जाति और वर्गीय शोषण और द्विभाषिक साहित्य

1. परिचय: भारतीय साहित्यिक परंपरा में मुंशी प्रेमचंद की स्थिति

मुंशी प्रेमचंद (1880–1936), जिन्हें व्यापक रूप से “उपन्यास सम्राट” के रूप में जाना जाता है, आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में लेखन करते हुए, प्रेमचंद ने भाषाई, सांस्कृतिक और वैचारिक विभाजनों को पाटते हुए एक ऐसा साहित्यिक संसार रचा जिसने यथार्थवाद, सामाजिक न्याय और मानव करुणा को केंद्र में स्थापित किया। उनका साहित्यिक जीवन भारत के राष्ट्रवादी जागरण के दौर में शुरू हुआ—एक ऐसा समय जब देश गहरे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गुजर रहा था। उस समय भारतीय साहित्य अब भी पौराणिक आख्यानों और रोमांटिक कल्पनाओं से बंधा हुआ था, लेकिन प्रेमचंद ने साहित्य को नैतिक और सामाजिक सुधार का माध्यम बनाकर उसमें एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया। उनकी प्रमुख रचनाएँ—गोदान, सेवासदन, और कर्मभूमि—किसानों, स्त्रियों और वंचित वर्गों के दैनिक संघर्षों को जीवंत रूप में प्रस्तुत करती हैं, जिससे भारतीय समाज का यथार्थ रूप उभरकर सामने आता है। उनका यथार्थवादी गद्य भारतीय जीवनानुभवों में निहित था, परंतु उसकी दृष्टि सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों पर आधारित थी, जिससे उनकी रचनाएँ सामाजिक और कलात्मक दोनों दृष्टियों से कालजयी बन गई (चंद्रा, 1982) ^[1]। प्रेमचंद का साहित्यिक उद्देश्य राष्ट्रवादी भावना से गहराई से जुड़ा था—वे मानते थे कि उपनिवेशित समाज के लेखकों का कर्तव्य है कि वे अन्यायों को उजागर करें और सुधार की प्रेरणा दें। इस प्रकार उन्होंने कला को सामाजिक सक्रियता (एक्टिविज़्म) से जोड़ दिया।

भारतीय साहित्यिक परंपरा में प्रेमचंद की विरासत उनके मानवतावादी दृष्टिकोण, सामाजिक यथार्थ के प्रति निष्ठा, और सत्य के प्रति अडिग समर्पण में निहित है। उनका प्रभाव भाषा और समय की सीमाओं से परे जाकर भारतीय यथार्थवाद के विषयगत और शैलीगत विकास को दिशा देता है। बाद के लेखकों जैसे मुल्कराज आनंद, आर.के. नारायण, और फणीश्वरनाथ रेणु ने उनके गरीब और वंचित वर्गों के प्रति सरोकार को आगे बढ़ाया, जबकि जाति, वर्ग और लिंग के उनके सूक्ष्म विश्लेषण आज भी उत्तर-औपनिवेशिक और उपेक्षित (सबाल्टर्न) विमर्शों में प्रतिध्वनित होते हैं। हाल के अध्ययनों (जयरलक्ष्मी, 2016) ने प्रेमचंद को एक सामाजिक सुधारक और सांस्कृतिक प्रतीक दोनों के रूप में देखा है। उन्होंने जातिगत उत्पीड़न, नारी मुक्ति और भाषाई पहचान जैसे विषयों पर गहन विचार करते हुए स्वयं को दलित और नारीवादी साहित्यिक आंदोलनों का अग्रदूत सिद्ध किया। साहित्य की भाषा को जनता की भाषा बनाकर, प्रेमचंद ने भारतीय कथा-साहित्य को नैतिक जागृति और सामूहिक चेतना का माध्यम बना दिया। आज भी उनकी प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि उन्होंने न्याय, पहचान, और मानवता के शाश्वत संघर्षों को अभिव्यक्त किया—जो आज भी भारतीय समाज के केंद्र में हैं।

2. प्रेमचंद के लेखन का ऐतिहासिक और सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ

मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक जीवन एक ऐसे ऐतिहासिक दौर में विकसित हुआ जब भारत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दमन और राष्ट्रवादी चेतना के उदय से गुजर रहा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई स्वदेशी, असहयोग, और नागरिक अवज्ञा आंदोलन जैसे प्रयासों के माध्यम से राजनीतिक ही नहीं, बल्कि नैतिक मुक्ति की ओर भी अग्रसर थी। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में इस द्वैध संघर्ष—बाहरी शोषण और आंतरिक संघर्ष—को सजीव रूप में प्रस्तुत किया। उनकी रचनाएँ जैसे गोदान, कर्मभूमि, और सेवासदन भारत के राजनीतिक और सामाजिक जागरण की सशक्त कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। उनके कथा-संसार में किसान की भूख, विधवा की वेदना, और सुधारक की असफलता मात्र व्यक्तिगत त्रासदियाँ नहीं, बल्कि राष्ट्र की दासता के प्रतीक हैं। यथार्थवादी दृष्टि के माध्यम से उन्होंने कला को नैतिक चेतना से जोड़ा, यह विश्वास प्रकट करते हुए कि साहित्य का उद्देश्य समाज की सामूहिक चेतना को जागृत करना और स्वतंत्रता के आदर्श को सशक्त बनाना है। ग्रामीण भारत का उनका गहन चित्रण—जो औपनिवेशिक आर्थिक शोषण और सामाजिक विषमताओं से जकड़ा हुआ था—उनकी उस अटूट प्रतिबद्धता को दर्शाता है जो वे अपने युग के सत्य और यथार्थ के प्रतिनिधित्व के प्रति रखते थे।

2.1. औपनिवेशिक भारत और राष्ट्रवादी आंदोलन – स्वतंत्रता संग्राम ने कैसे प्रेमचंद की विषयवस्तु और राजनीतिक दृष्टि को आकार दिया

प्रेमचंद का विश्वदृष्टिकोण गहराई से राष्ट्रवादी आंदोलन और भारत की औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध संघर्ष से प्रभावित था। उनकी प्रारंभिक उर्दू कहानी-संग्रह "सोज़-ए-वतन" को उसके राष्ट्रवादी संदेश के कारण ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया—यह घटना उनके जीवनभर की मुक्ति की राजनीति से जुड़ाव की शुरुआत बनी। औपनिवेशिक अनुभव ने उनमें प्रणालीगत अन्याय के प्रति गहरी संवेदनशीलता विकसित की, जो उनके लेखन का केन्द्रीय विषय बन गया। अपने समकालीनों के विपरीत, प्रेमचंद ने राष्ट्रवाद का रोमानीकरण नहीं किया, बल्कि उसके सामाजिक आयामों और

नैतिक जटिलताओं की पड़ताल की। अपने उपन्यास "कर्मभूमि" में उन्होंने ऐसे पात्रों का चित्रण किया जो अहिंसा और सामाजिक सुधार की नैतिक चुनौतियों से जूझते हैं, जो गांधीजी के विचारों के प्रति उनके गहरे प्रभाव को दर्शाता है। प्रेमचंद के लिए राष्ट्रवाद केवल विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष नहीं था, बल्कि आंतरिक शोषण—जाति, गरीबी और लैंगिक असमानता—के विरुद्ध भी एक आंदोलन था। उनका राष्ट्रवाद राजनीतिक से अधिक मानवीय था, जिसका उद्देश्य आम लोगों में करुणा, नैतिकता और आत्मबोध को जागृत करना था। वे मानते थे कि लेखक एक नैतिक मार्गदर्शक है, जिसका कर्तव्य है स्वतंत्र भारत की नैतिक और सामाजिक नींव को आकार देना।

2.2. सामाजिक सुधार आंदोलन और उनका प्रभाव – गांधीवादी आदर्श, जाति सुधार और ग्रामीण उत्थान का प्रतिबिंब प्रेमचंद के साहित्य में

प्रेमचंद के साहित्य में भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ चलने वाले सामाजिक सुधार आंदोलनों की गहरी छाप दिखाई देती है, विशेषकर वे जो महात्मा गांधी के आदर्शों से प्रेरित थे। गांधीजी के सादगी, सत्य और सेवा के संदेश ने प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि और नैतिक चिंतन को गहराई से प्रभावित किया। उनके उपन्यास और कहानियाँ केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनती हैं। उपन्यास 'सेवासदन' में उन्होंने स्त्री की स्थिति, समाज की नैतिक पाखंडिता और नारी-सुधार की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। यह कृति आत्मबोध और सेवा के माध्यम से मुक्ति के उस गांधीवादी विचार को मूर्त रूप देती है। इसी प्रकार 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' जैसे उपन्यासों में उन्होंने विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा और स्त्री-चेतना के प्रश्नों को उठाया, जो बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक सुधारवादी एजेंडे से गहराई से जुड़े हुए थे।

प्रेमचंद की लेखनी ने जाति-व्यवस्था और ग्रामीण जीवन के उत्थान को भी केंद्र में रखा, जिससे वे निर्वाचितों के नहीं, बल्कि वंचितों के स्वर बन गए। उनके पात्र प्रायः समाज के सबसे निचले तबकों से आते हैं—किसान, मज़दूर और दलित—जिन्हें औपनिवेशिक शोषण के साथ-साथ स्वदेशी सामाजिक अन्याय ने भी पीड़ित किया। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचंद ने ग्रामीण किसानों के संघर्ष को राष्ट्र की सहनशीलता और गरिमा का प्रतीक बना दिया। उनका यथार्थवादी चित्रण सहानुभूति पर आधारित था, दया पर नहीं; यह उनके उस विश्वास को व्यक्त करता है कि सच्ची स्वतंत्रता तभी संभव है जब भारत के गाँव समृद्ध और सशक्त हों। गांधीवादी मानवतावाद से प्रेरित उनका नैतिक समाजवाद समानता, करुणा और सामूहिक कल्याण की भावना पर आधारित था। प्रेमचंद का सुधारवादी दृष्टिकोण सर्वसमावेशी था—उन्होंने यथार्थवाद और नैतिक आदर्शवाद को मिलाकर भारतीय समाज के लिए नैतिक चेतना और सामाजिक संवेदना का एक आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत किया।

2.3. सामाजिक आलोचक के रूप में लेखक – अपने युग के सत्य के चित्रण के प्रति प्रेमचंद की प्रतिबद्धता

प्रेमचंद की साहित्यिक शक्ति उनके निडर यथार्थ चित्रण में निहित थी। उन्होंने पलायनवादी साहित्य को अस्वीकार करते हुए समाज के साधारण लोगों के संघर्ष, पाखंड और आशाओं को अपने लेखन का केंद्र बनाया। उनका यथार्थवाद केवल शैलीगत नहीं, बल्कि नैतिक प्रतिबद्धता से प्रेरित था। 'कफन' और 'पंच परमेश्वर' जैसी कहानियों में उन्होंने गरीबी और सामाजिक अन्याय से विकृत मानव व्यवहार की गहरी अंतर्विरोधपूर्ण वास्तविकताओं को उजागर किया। प्रेमचंद के लिए साहित्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि एक

नैतिक कर्म था—एक ऐसा माध्यम जिसके द्वारा वे उस पीड़ा और भ्रष्टाचार को प्रकट करते थे जिसे समाज प्रायः अनदेखा कर देता था। उनका साहित्य अपने समय का दर्पण था, जिसमें औपनिवेशिक शोषण, सामाजिक पतन और आधुनिकता के नैतिक संकट स्पष्ट दिखाई देते हैं। अपनी संवेदनशील दृष्टि से उन्होंने समाज के हाशिये पर खड़े लोगों को मानवता की गरिमा दी और पाठकों से नैतिक आत्ममंथन की अपेक्षा की। एक सामाजिक आलोचक के रूप में प्रेमचंद की अमर विरासत इस विश्वास में निहित है कि कला में सत्य का चित्रण स्वयं एक प्रतिरोध का कार्य है।

3. प्रेमचंद के कथा-साहित्य में यथार्थवाद और सामाजिक चेतना

मुंशी प्रेमचंद की साहित्यिक प्रतिभा उनकी उस अद्वितीय क्षमता में निहित है, जिसके द्वारा उन्होंने कलात्मक यथार्थवाद को गहरी नैतिक और सामाजिक चेतना के साथ जोड़ा। उन्होंने भारतीय कथा-साहित्य को रोमांटिक और पौराणिक आख्यानों से हटाकर सामान्य जीवन, संघर्ष और मानवीय पीड़ा की सच्ची अभिव्यक्ति की दिशा में अग्रसर किया। टॉल्स्टॉय के मानवतावाद और गांधीजी के नैतिक आदर्शों से प्रेरित होकर प्रेमचंद ने साहित्य को समाज परिवर्तन का नैतिक माध्यम बनाया। उनके उपन्यास 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'निर्मला' और कहानियाँ 'कफन', 'पंच परमेश्वर' बीसवीं शताब्दी के भारत की सामाजिक जटिलताओं और नैतिक विडंबनाओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनका यथार्थवाद मात्र चित्रण नहीं, बल्कि एक नैतिक व्याख्या था, जिसके माध्यम से वे मनुष्य की पीड़ा, उसकी विवशता और उसके भीतर छिपे नैतिक बल को प्रकट करते थे। उन्होंने गरीबों, किसानों, श्रमिकों और स्त्रियों को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखकर साहित्य को जनतांत्रिक स्वर और सामाजिक उद्देश्य प्रदान किया। उनके पात्र समाज के हाशिये पर खड़े वे लोग हैं जो अन्याय के शिकार होते हुए भी नैतिक दृढ़ता और मानवीय गरिमा को बनाए रखते हैं। 'गोदान' में उन्होंने जातिगत विभाजन, सामंती शोषण और शहरी पाखंड का चित्रण करते हुए भी आशा और मानवीयता के मूल्यों पर विश्वास बनाए रखा। वहीं 'कफन' और 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कहानियाँ जाति, गरीबी और स्त्री उत्पीड़न के यथार्थ को करुणा और सत्य की दृष्टि से उजागर करती हैं। उनकी सरल परंतु गहन भाषा, जीवन के प्रति ईमानदार दृष्टि और नैतिक उद्देश्य ने यथार्थवाद को केवल साहित्यिक तकनीक नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध और नैतिक जागरण का रूप दे दिया। प्रेमचंद का साहित्य एक दर्पण है, जो समाज की विषमता और पाखंड को उजागर करता है, और साथ ही पाठक के भीतर सहानुभूति, आत्ममंथन और परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करता है। इस प्रकार प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल साहित्य नहीं, बल्कि मानवता का नैतिक घोषणापत्र बनकर उभरता है, जो आज भी भारतीय समाज और साहित्य दोनों को दिशा देता है।

4. प्रेमचंद की कथा-शैली के माध्यम से हिंदी और उर्दू गद्य का विकास

मुंशी प्रेमचंद ने हिंदी और उर्दू गद्य को यथार्थवादी, सामाजिक और नैतिक आधार प्रदान कर साहित्य में निर्णायक मोड़ लाया। उन्होंने अलंकारिक शैली छोड़कर सरल, बोलचाल की भाषा अपनाई और कथा को जनता के करीब किया। प्रारम्भिक उर्दू रचनाएँ जैसे 'सोज़-ए-वतन' अन्याय और उत्पीड़न की पड़ताल का प्रारंभ थीं। टॉल्स्टॉय एवं गांधीवादी मानवीय आदर्शों से प्रभावित उनका यथार्थवाद मनोवैज्ञानिक गहराई और नैतिक व्याख्या दोनों समेटता है। 'कफन', 'पूँस की रात' और 'पंच परमेश्वर' जैसी कथाएँ लघुकथा को सामाजिक आत्ममंथन का माध्यम बनातीं; पात्र—किसान, विधवाएँ

और मजदूर—जनजीवन की भाषा बोलते हैं। प्रेमचंद ने गाँव को आदर्शवादी छवि की बजाय सामाजिक और आर्थिक पतन का दर्पण दिखाया, परन्तु हमेशा मानवीय गरिमा पर विश्वास रखा। उनके यथार्थवाद ने सहानुभूति और आलोचना का संतुलन स्थापित किया, जिसे 'नैतिक यथार्थवाद' कहा गया; इस तरह उन्होंने आधुनिक भारतीय उपन्यास और कहानी की नींव रखी। उनकी भाषा आज भी लेखन को सामाजिक जिम्मेदारी का पाठ पढ़ाती है।

4.1. उर्दू और हिंदी साहित्यिक परंपराओं के बीच सेतु – दोनों भाषाई संस्कृतियों को एकीकृत करने में प्रेमचंद की भूमिका

प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा उर्दू और हिंदी के बीच एकता और सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक है—एक ऐसा सेतु जिसने भाषाई, सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक विभाजनों को जोड़ा। उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत उर्दू में 'नवाब राय' के उपनाम से की, और बाद में हिंदी में लेखन आरंभ किया, किंतु इस परिवर्तन के दौरान उन्होंने उर्दू की काव्यात्मकता और सांस्कृतिक गहराई के प्रति अपनी संवेदनशीलता को बनाए रखा। यह परिवर्तन किसी अस्वीकृति का नहीं, बल्कि विस्तार का संकेत था—एक व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचने का प्रयास, जो उत्तर भारत की विविध भाषाई परंपराओं को समेटता था। प्रेमचंद की यह द्विभाषिक साहित्यिक पहचान उन्हें दोनों परंपराओं का साझा लेखक बनाती है। उनकी गद्य-शैली में उर्दू की नफ़ासत और हिंदी की सादगी का सुंदर सम्मिश्रण दिखाई देता है, जिसने उनके लेखन को एक सांस्कृतिक सेतु में बदल दिया। उन्होंने उस समय, जब भाषाई राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता उभर रही थी, सांस्कृतिक एकता और मानवतावाद की दृष्टि प्रस्तुत की। चाहे उनकी कहानियाँ उर्दू में हों या हिंदी में, उनमें निहित भारतीय आत्मा—करुणा, न्याय और नैतिक आत्ममंथन—समान रूप से प्रकट होती है। विद्वानों के अनुसार, भाषा की इस निरंतरता में उनका "आंतरिक संचलन" न केवल दोनों गद्य परंपराओं को आधुनिक बनाने में सहायक हुआ, बल्कि उसने एक ऐसी साझी सांस्कृतिक चेतना को जन्म दिया जो साम्प्रदायिक राजनीति से परे थी (वेसलर, 2015)^[17]।

5. कृषक वर्ग और वंचित स्वर का प्रतिनिधित्व

प्रेमचंद का कथा-साहित्य ग्रामीण भारत का एक जीवंत सामाजिक दस्तावेज़ है, जो किसानों और वंचित वर्गों के संघर्ष, गरिमा और निराशा को गहन संवेदना के साथ अभिव्यक्त करता है। उनके साहित्य में एक ऐसा संसार जीवंत होता है जहाँ जाति, गरीबी और सामंती शोषण सामाजिक जीवन की नियति बन चुके हैं। 'गोदान', 'कर्मभूमि' जैसे उपन्यासों और 'कफन', 'सद्गति' जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने किसानों, दलितों और मजदूरों को पीड़ित नहीं, बल्कि नैतिक केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया। उनका यथार्थवाद सहानुभूतिपूर्ण था—जो उनके दुःख को मानवीय गरिमा प्रदान करता है और साथ ही प्रणालीगत अन्याय को उजागर करता है। प्रेमचंद मानते थे कि साहित्य का उद्देश्य समाज का दर्पण बनना और सुधार का साधन बनना है। उनके लेखन में गरीब किसान का संघर्ष—औपनिवेशिक करो, जातिगत भेदभाव और जमींदारी शोषण के खिलाफ—अत्यंत प्रामाणिकता और करुणा के साथ चित्रित होता है। विद्वानों के अनुसार, प्रेमचंद पहले भारतीय लेखक थे जिन्होंने लोकभाषा-आधारित यथार्थवाद को औपनिवेशिक आधुनिकता और स्वदेशी शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध के रूप में प्रयोग किया (पांडेय, 1983)^[10]। अपने पात्रों के नैतिक धैर्य और संघर्षशीलता के माध्यम से उन्होंने भारत के मौन जनसमूहों को स्वर दिया और साहित्य को सामाजिक सहानुभूति और न्याय के नैतिक कार्य में रूपांतरित कर दिया (घोष, 1983)^[2]।

5.1. भारतीय संघर्ष के प्रतीक के रूप में किसान – 'गोदान' में कृषक जीवन की केंद्रीयता

प्रेमचंद का उपन्यास 'गोदान' (1936) भारतीय किसान जीवन की नैतिक और भावनात्मक गहराई का सर्वोच्च प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास का नायक होरी महतो उस भारतीय किसान का प्रतीक है जो ईमानदार, त्यागी और परिश्रमी होते हुए भी ऋण, गरीबी और शोषण के अनंत चक्र में फँसा हुआ है। होरी का आजीवन स्वप्न—एक गाय का दान (गोदान) करना—भारतीय किसान की गरिमा और मुक्ति की आकांक्षा का रूपक बन जाता है, जो अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में लगातार संघर्षरत है। प्रेमचंद ने होरी के माध्यम से जाति, निर्धनता और सामंती प्रभुत्व के निर्मम गठजोड़ को उजागर किया है, जो किसान को उसकी भौतिक और आध्यात्मिक शांति दोनों से वंचित करता है। उपन्यास में ग्रामीण जीवन का कोई आदर्शिकरण नहीं है; बल्कि यह जमींदारी व्यवस्था की अमानवीयता का निष्पक्ष और गहन चित्रण प्रस्तुत करता है। फिर भी, होरी की नैतिक दृढ़ता और मानवीय सहनशीलता उसे एक राष्ट्रीय प्रतीक बना देती है—एक ऐसे भारतीय आत्मा का रूपक, जो विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रहती है।

5.2. हाशिए से उठती आवाज़ें: दलित और श्रमिक वर्ग – उत्पीड़ितों के प्रतिनिधित्व में प्रेमचंद की संवेदना और सामाजिक यथार्थवाद

प्रेमचंद की रचनात्मक संवेदना ने भारतीय साहित्य को एक नया मानवीय आयाम प्रदान किया, विशेषकर दलितों और श्रमिकों के जीवन-संघर्षों के यथार्थ चित्रण के माध्यम से। 'सद्गति' और 'कफन' जैसी कहानियों में उन्होंने उन वर्गों को न केवल दृश्यता (visibility) दी, बल्कि आवाज़ और स्वायत्तता (agency) भी प्रदान की, जिन्हें परंपरागत साहित्य ने लंबे समय तक उपेक्षित रखा था। 'सद्गति' का पात्र दुखी चमार जातिगत शोषण की क्रूरता को उजागर करता है, परंतु साथ ही वह हाशिए पर खड़े मनुष्य की गरिमा और आत्मबल का प्रतीक भी बन जाता है। प्रेमचंद का यथार्थवाद करुणा नहीं, सहानुभूति पर आधारित था—वे गरीब और दलित पात्रों को दया के पात्र नहीं, बल्कि नैतिक साहस से संपन्न मनुष्य के रूप में चित्रित करते हैं। आलोचकों के अनुसार, दलित जीवन का उनका चित्रण आगे चलकर दलित साहित्यिक आंदोलन की पूर्वभूमि बन गया, जिसने उच्चवर्णीय यथार्थवाद और उपेक्षित विमर्श (subaltern expression) के बीच सेतु का कार्य किया (नस्कर, 2023) [8]। प्रेमचंद की ये रचनाएँ उन लोगों को मानवीय पहचान और गरिमा प्रदान करती हैं जिन्हें मुख्यधारा साहित्य ने भुला दिया था, और इस प्रकार उन्होंने साहित्य को सामाजिक समावेशन का माध्यम बना दिया।

5.3. आर्थिक शोषण और वर्ग-संघर्ष – सामंतवाद और पूँजीवाद पर प्रेमचंद की आलोचनात्मक दृष्टि

प्रेमचंद का कथा-साहित्य भारतीय साहित्य में आर्थिक शोषण और वर्ग-संघर्ष की सबसे प्रारंभिक और तीक्ष्ण आलोचनाओं में से एक प्रस्तुत करता है। उन्होंने जमींदारों और किसानों, मालिकों और मज़दूरों के बीच के संघर्षों के माध्यम से उस संरचनात्मक अन्याय को उजागर किया, जिसे सामंतवाद और नवोदित पूँजीवाद दोनों ने जन्म दिया। 'गोदान' और 'कर्मभूमि' में उन्होंने दिखाया कि आर्थिक शोषण केवल भौतिक नहीं, बल्कि नैतिक पतन का भी कारण है—जहाँ मानवीय संबंध शक्ति और स्वार्थ के लेन-देन में बदल जाते हैं। उनके साहूकार और जमींदार लालच और पाखंड के प्रतीक हैं, जबकि किसान पीड़ा के बीच भी नैतिकता और धैर्य का प्रतीक बना

रहता है। प्रेमचंद की आलोचना मात्र आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय चेतना पर आधारित है। उन्होंने दिखाया कि भौतिक असमानता करुणा और समुदाय की भावना को नष्ट करती है, जिससे समाज शोषण का रणक्षेत्र बन जाता है। उनका यह नैतिक यथार्थवाद आगे चलकर भारतीय साहित्य में मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष की व्याख्या का मार्ग प्रशस्त करता है। आलोचकों का मत है कि प्रेमचंद का साहित्य राष्ट्रवाद और समाजवाद के वैचारिक विभाजन को पाटता है—जहाँ किसान केवल उत्पीड़ित नहीं, बल्कि नैतिक उद्धारक के रूप में भी उभरता है (पांडेय, 1983; नाहिद, 2020) [10, 7]।

6. स्त्रियाँ और प्रेमचंद के साहित्य में लैंगिक विमर्श

प्रेमचंद की रचनाओं में स्त्रियों का चित्रण बीसवीं शताब्दी के आरंभिक भारत में लैंगिक असमानता, नैतिकता और सामाजिक न्याय के प्रश्नों के साथ गहरे संवाद को दर्शाता है। उन्होंने स्त्रियों को केवल त्याग और सदाचार की प्रतीकात्मक छवि के रूप में नहीं, बल्कि जटिल और आत्मचेतन व्यक्तित्वों के रूप में प्रस्तुत किया, जो पितृसत्ता, जाति और गरीबी के बीच अपनी पहचान के लिए संघर्षरत हैं। 'सेवासदन', 'निर्मला' और 'गोदान' जैसे उपन्यासों में प्रेमचंद ने यह दिखाया कि लिंग और वर्गीय उत्पीड़न किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हैं, जिससे स्त्रियाँ सामाजिक शोषण की दोहरी शिकार बनती हैं। उनके पात्र—सुमन ('सेवासदन') और धनिया ('गोदान')—भारतीय स्त्रीत्व की उस द्वंद्वात्मक स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं जो परंपरा और आधुनिकता के बीच फँसी हुई है। प्रेमचंद का यथार्थवाद स्त्रियों के जीवित अनुभवों को अभिव्यक्त करता है—वह शोषण, विधवापन और सामाजिक कलंक झेलती हुई भी गरिमा और स्वायत्तता की तलाश करती हैं। उनके साहित्य में स्त्री पात्र केवल सहानुभूति के नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के वाहक बनते हैं। उन्होंने पितृसत्तात्मक संस्थाओं—विवाह, धर्म और परिवार—की नैतिकता पर प्रश्न उठाकर स्त्री स्वतंत्रता के विमर्श को आगे बढ़ाया। आलोचकों के अनुसार, प्रेमचंद का मानवतावादी स्त्री-चित्रण उन्हें भारत के सामाजिक सुधार आंदोलनों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्थापित करता है, जिससे उनका साहित्य सामाजिक रूप से प्रभावशाली और नैतिक रूप से रूपांतरकारी बन जाता है (पांडेय, 1983; नाहिद, 2020) [10, 7]।

6.1. लैंगिक भूमिकाएँ और पितृसत्तात्मक बंधन – सामाजिक अपेक्षाओं और लैंगिक अन्याय पर प्रेमचंद की आलोचना

प्रेमचंद की पितृसत्ता की आलोचना सबसे तीव्र रूप में उनकी उन रचनाओं में दिखती है जहाँ स्त्रियाँ सामाजिक संस्थाओं के भीतर कैद हैं। उनके उपन्यास 'निर्मला' में वे बाल-विवाह और दहेज-प्रथा के विनाशकारी परिणामों को उजागर करते हैं, जहाँ एक किशोरी का जीवन समाज की लोभ और पुरुष-प्रधान मानसिकता के कारण नष्ट हो जाता है। यह उपन्यास दिखाता है कि कैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्रियों को परिवार की इज्जत और आर्थिक लेन-देन के साधन में बदल देती है। प्रेमचंद की स्त्रियाँ अपने शोषण से भली-भाँति परिचित हैं, परंतु वे आर्थिक निर्भरता और सामाजिक बंधनों के कारण विद्रोह नहीं कर पातीं। उनका यथार्थवाद स्त्रियों की पीड़ा का महिमामंडन नहीं करता, बल्कि उस नैतिक व्यवस्था की निंदा करता है जो परंपरा के नाम पर अन्याय को पवित्र बना देती है। उनके स्त्री पात्र उस समाज की पाखंडपूर्ण मानसिकता को चुनौती देते हैं जो स्त्रियों की देवी के रूप में पूजा करता है, परंतु उन्हें मनुष्य के रूप में स्वतंत्रता नहीं देता। प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण प्रारंभिक नारीवादी विचारधारा से गहराई से जुड़ा है—वह दिखाते हैं कि

पितृसत्ता केवल लैंगिक असमानता ही नहीं, बल्कि वर्ग और जातिगत अन्याय को भी स्थायी बनाती है। आलोचकों का मत है कि प्रेमचंद की यह पितृसत्ता-विरोधी दृष्टि आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि यह आधुनिक भारत में जारी लैंगिक हिंसा और सामाजिक नियंत्रण की वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करती है (घोष, 1983; नस्कर, 2023) [2, 8]।

6.2. प्रगतिशील स्त्री-चित्रण और नारीवादी प्रतिध्वनि – प्रेमचंद की स्त्रियाँ आधुनिक नारीवादी व्याख्याओं की पूर्वछाया के रूप में

प्रेमचंद का स्त्री-चित्रण अपने समय की सामाजिक रूढ़ियों और नैतिक सीमाओं से परे जाकर उन्हें भारत के प्रारंभिक साहित्यिक नारीवादियों में स्थापित करता है। उनके उपन्यास 'सेवासदन' में नायिका सुमन उन नैतिक बंधनों को तोड़ती है जो उसे घरेलू दासता में बाँधते हैं, और स्वयं-निर्णय के उस मार्ग को चुनती है जो उसे सामाजिक बहिष्कार की ओर ले जाता है। सुमन की यात्रा—एक ठुकराई हुई पत्नी से एक सुधारक तक—प्रेमचंद के इस विश्वास को दर्शाती है कि शिक्षा और आत्मबोध ही मुक्ति के वास्तविक साधन हैं। इसी प्रकार, 'प्रतिज्ञा' की पूर्ण विधवा-विवाह जैसे सामाजिक कलकों को चुनौती देती है, जबकि 'गोदान' की धनिया ग्रामीण समाज की नैतिक शक्ति के रूप में उभरती है—वह दृढ़, स्पष्टवादी और करुणामयी है। प्रेमचंद की स्त्रियाँ ऊँची आवाज़ में विद्रोह नहीं करतीं, परंतु वे गरिमा, आत्मसम्मान और नैतिक साहस से अपने उत्पीड़न का सामना करती हैं। उन्होंने स्त्रियों के आंतरिक जीवन—उनकी इच्छाओं, भय और विरोधाभासों—को बड़ी सूक्ष्मता से समझा, जिससे उनका साहित्य आधुनिक नारीवादी दृष्टि का पूर्वाभास कराता है, जहाँ स्त्री की स्वायत्तता और आत्मबोध को केंद्र में रखा गया है।

प्रेमचंद का मानवतावादी नारीवाद किसी उग्र विद्रोह में नहीं, बल्कि नैतिक जागरण में निहित है। उनकी स्त्रियाँ सहानुभूति, नैतिकता और आत्मबल के माध्यम से शक्ति का परिचय देती हैं—यह उनके उस विचार को प्रतिध्वनित करता है कि वास्तविक सुधार चेतना के विकास से संभव है, न कि टकराव से। उन्होंने पितृसत्ता द्वारा निर्मित 'पवित्र' और 'अपवित्र' स्त्री के कृत्रिम द्वंद्व को तोड़ते हुए स्त्रीत्व को जीवनानुभवों के विविध रूपों में चित्रित किया—जहाँ सामाजिक और भावनात्मक यथार्थ एक-दूसरे से जुड़ते हैं। यह दृष्टिकोण उनके लेखन को कालातीत प्रासंगिकता प्रदान करता है, क्योंकि यह आज के अंतःसंबंधी (intersectional) और न्यायपरक नारीवादी विमर्शों से गहराई से मेल खाता है। प्रेमचंद का साहित्य हमें यह याद दिलाता है कि स्त्री-मुक्ति सामाजिक समानता के संघर्ष से अलग नहीं है, और इसी कारण वे भारतीय साहित्य में लैंगिक सुधार के नैतिक अग्रदूत माने जाते हैं (हैरिस एवं शर्मा, 1970; पांडेय, 1983) [4, 10]।

7. प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक दृष्टि और मानवतावाद

प्रेमचंद के साहित्यिक संसार के केंद्र में एक गहन नैतिक दृष्टि और मानवीय संवेदना विद्यमान है, जो करुणा, न्याय और मानव गरिमा में विश्वास पर आधारित है। उनका मानवतावाद धर्म, जाति और वर्ग की सीमाओं से परे जाकर एक ऐसे नैतिक ढाँचे का निर्माण करता है, जो सहानुभूति और सामाजिक जिम्मेदारी पर टिका है। प्रेमचंद का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि पाठकों की नैतिक चेतना को जगाना था। 'गोदान', 'कर्मभूमि' और 'निर्मला' जैसी रचनाएँ उनके इस विश्वास को प्रकट करती हैं कि किसी सभ्यता का असली मूल्यांकन इस बात से होता है कि वह अपने गरीबों और वंचितों के साथ कैसा व्यवहार करती है। उनके नायक—किसान, विधवा और मज़दूर—पीड़ा में भी नैतिक शक्ति और मानवीय गरिमा का प्रतीक

बने रहते हैं। प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद औपनिवेशिक दमन और स्वदेशी नैतिक पतन दोनों के खिलाफ एक साहित्यिक प्रतिरोध था। उन्होंने जमींदारों, पुरोहितों और नौकरशाहों के भ्रष्टाचार को उजागर कर कथा-साहित्य को नैतिक विरोध का मंच बना दिया। उनका साहित्यिक मानवतावाद गांधीवादी सत्य (सत्य) और करुणा (करुणा) की भावना से प्रेरित था, जो पाठकों को पहले स्वयं को सुधारने और फिर समाज को सुधारने का संदेश देता है (पांडेय, 1983) [10]।

प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण उनके सामाजिक यथार्थवाद से अविभाज्य है। उनका साहित्य यह स्थापित करता है कि नैतिकता केवल विचारों में नहीं, बल्कि मानवीय पीड़ा की वास्तविक परिस्थितियों में परखी जानी चाहिए। 'कफन' जैसी कहानी में गरीबी को किसी भावनात्मक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि समाज की नैतिक परीक्षा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दलितों, स्त्रियों और किसानों के प्रति उनकी सहानुभूति सर्वमानविकता के उस विश्वास से उत्पन्न होती है जो समानता और न्याय के उत्तर-औपनिवेशिक विमर्शों की पूर्वभूमि तैयार करती है। प्रेमचंद ने कट्टर नैतिकता को अस्वीकार करते हुए मानव-केंद्रित नैतिकता का समर्थन किया, जिसमें करुणा और सत्यनिष्ठा को प्रधानता दी गई। आलोचकों के अनुसार, उनका यह नैतिक मानवतावाद आज भी प्रासंगिक है क्योंकि यह आधुनिक भारत के उन्हीं **सामाजिक दोषों—असमानता, पाखंड और लोभ—**को चुनौती देता है जो तब मौजूद थे (घोष, 1983; नाहिद, 2020) [2, 7]। प्रेमचंद की विरासत इस विचार में निहित है कि सच्चा सुधार हृदय से आरंभ होता है—सहानुभूति, न्याय और नैतिक साहस के माध्यम से।

8. स्वतंत्रोत्तर भारतीय लेखकों पर प्रेमचंद का प्रभाव

स्वतंत्रता के बाद भारतीय साहित्य पर प्रेमचंद का प्रभाव गहरा और स्थायी रहा है। उन्होंने अपने साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद और नैतिक मानवतावाद का जो समन्वय प्रस्तुत किया, उसने आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की दिशा निर्धारित की। उनके ग्रामीण जीवन, वर्गीय विषमता और नैतिक संघर्षों के चित्रण ने फणीश्वरनाथ रेणु, यशपाल और भीष्म साहनी जैसे लेखकों को प्रेरित किया। रेणु का 'मैला आँचल' और यशपाल का 'मेरी तेरी उसकी बात' प्रेमचंद की 'गोदान' की सामाजिक चेतना को आगे बढ़ाते हैं। इन लेखकों ने उनके मानवतावाद को स्वतंत्र भारत की नई परिस्थितियों—शहरीकरण, वर्ग-संघर्ष और नैतिक मोहभंग—के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया (पांडेय, 1983) [10]। हिंदी के परे, मुल्कराज आनंद और आर.के. नारायण जैसे भारतीय अंग्रेज़ी लेखक भी प्रेमचंद से गहराई से प्रभावित हुए। आनंद के 'अनटचेबल' और 'कूली' में वर्ग और जातिगत शोषण की वही चिंता मिलती है, जबकि नारायण के उपन्यासों में उनकी मानवतावादी संवेदना और नैतिक सादगी झलकती है (नाहिद, 2020; हैरिस एवं शर्मा, 1970) [7, 4]।

8.1. हिंदी साहित्य में प्रेमचंद की विरासत: रेणु, यशपाल और अन्य – उत्तरवर्ती हिंदी उपन्यासकारों पर उनका प्रभाव

प्रेमचंद का साहित्यिक दृष्टिकोण आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की नैतिक और यथार्थवादी आधारशिला बन गया। उन्होंने ग्रामीण भारत, मानवीय पीड़ा और नैतिक संघर्ष को जिस गहराई से चित्रित किया, उसने फणीश्वरनाथ रेणु, यशपाल और निर्मल वर्मा जैसे लेखकों को गहराई से प्रभावित किया। रेणु का 'मैला आँचल' प्रेमचंद के 'गोदान' की उत्तरकथा जैसा प्रतीत होता है, जिसमें ग्रामीण यथार्थ, सामाजिक चेतना और मानवीय करुणा का समन्वय झलकता है। यशपाल ने प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि को राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के आयामों में विस्तारित किया और

स्वतंत्रता के बाद के वैचारिक संघर्षों को नए संदर्भों में प्रस्तुत किया। इन लेखकों ने प्रेमचंद की इस आस्था को अपनाया कि साहित्य समाज सुधार का माध्यम होना चाहिए और लेखक का कर्तव्य है कि वह सत्य और न्याय के पक्ष में खड़ा हो। प्रेमचंद के यथार्थवाद ने हिंदी गद्य में प्रामाणिकता का मानक स्थापित किया। उनकी विरासत वंचितों के प्रति करुणा, सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता और इस विश्वास में निहित है कि साहित्य का सत्य नैतिक उद्देश्य की सेवा करे—यही उन्हें हिंदी उपन्यास का पथप्रदर्शक और नैतिक संरक्षक बनाता है (घोष, 1983; पांडेय, 1983) [2, 10]।

8.2. भारतीय अंग्रेजी साहित्य में यथार्थवाद और सामाजिक विषय – मुल्कराज आनंद और आर.के. नारायण से समानताएँ

प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद ने भारतीय अंग्रेजी उपन्यास की दिशा को गहराई से प्रभावित किया, विशेषकर मुल्कराज आनंद और आर.के. नारायण जैसे लेखकों के माध्यम से। आनंद के उपन्यास 'अछूत' और 'कूली' में वही नैतिक और सामाजिक चेतना दिखाई देती है जो प्रेमचंद के साहित्य का मूल तत्व है। दोनों लेखक गरीबी और शोषण को केवल सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि मानवीय नैतिक संकट के रूप में प्रस्तुत करते हैं। आनंद का समाजवादी यथार्थवाद, जिसमें उत्पीड़ितों के प्रति गहरी सहानुभूति झलकती है, प्रेमचंद की मानवतावादी दृष्टि और सामाजिक प्रतिबद्धता की प्रतिध्वनि बनकर उभरता है (नाहिद, 2020) [7]। इसी प्रकार आर.के. नारायण के लेखन में प्रेमचंद की सादगी, नैतिक संवेदनशीलता और शांत यथार्थवाद की स्पष्ट झलक मिलती है। यद्यपि नारायण का 'मालगुड़ी' प्रेमचंद के ग्रामीण भारत से भिन्न है, परंतु दोनों की चिंता समान है—साधारण जीवन की नैतिक जटिलताएँ और करुणा में निहित सत्य। प्रेमचंद का प्रभाव भाषाई सीमाओं से परे जाकर भारतीय कथा-साहित्य की नैतिक भाषा और मानवीय दृष्टि को गढ़ने में निर्णायक सिद्ध हुआ (हैरिस एवं शर्मा, 1970; पांडेय, 1983) [4, 10]।

8.3. रंगमंच और सिनेमा में रूपांतरण और विस्तार – पर्दे और मंच पर प्रेमचंद का प्रभाव

प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद और सामाजिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण भारतीय रंगमंच और सिनेमा में स्वाभाविक रूप से विस्तार पाता है। उनकी कहानियों की जीवंत मानवीय भावनाएँ, नैतिक द्वंद्व और सामाजिक यथार्थ ने उन्हें रूपांतरित कला के लिए उपयुक्त आधार बनाया। महान फिल्मकार सत्यजीत रे ने उनकी प्रसिद्ध कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' को पर्दे पर उतारकर प्रेमचंद के यथार्थ, व्यंग्य और नैतिक चिंतन को दृश्य रूप में जीवंत किया। इसी प्रकार, देशभर के प्रगतिशील नाट्य समूहों ने उनकी रचनाओं को मंच पर प्रस्तुत कर जनता तक सामाजिक चेतना पहुँचाने का कार्य किया। इन रूपांतरणों में प्रेमचंद का मानवतावाद, वर्ग-संघर्ष और अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध प्रमुख रूप से उभरता है। आधुनिक भारतीय सिनेमा और रंगमंच में अब भी उनके सामाजिक विषय, ग्रामीण पीड़ा और नैतिक जागृति जैसे विषय प्रतिध्वनित होते हैं। प्रेमचंद की कथाएँ आज भी कलाकारों और निर्देशकों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं—क्योंकि उनमें निहित सत्य, करुणा और सुधार की चेतना भारतीय समाज की आत्मा को प्रतिबिंबित करती है (घोष, 1983; नाहिद, 2020) [2, 7]।

8.4. समकालीन भारत में प्रेमचंद की विषयवस्तु की प्रासंगिकता

मुंशी प्रेमचंद का साहित्य भले ही बीसवीं शताब्दी के आरंभिक भारत की पृष्ठभूमि में रचा गया हो, परंतु यह आज के नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों से गहराई से जुड़ा हुआ है। उन्होंने अपने लेखन में गरीबी, जाति, लिंग और वर्गीय असमानता जैसे विषयों को जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया, वह आज भी भारतीय समाज की सच्चाई को उजागर करता है। 'गोदान' में किसानों का कर्ज, विस्थापन और असहायता वर्तमान भारत के कृषि संकट की झलक प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद का यह विश्वास कि किसी राष्ट्र की नैतिकता उसके गरीबों के कल्याण में निहित है, आज भी सामाजिक न्याय और आर्थिक असमानता के विमर्शों में प्रासंगिक है। उनके किसान, मजदूर और स्त्री पात्र केवल किसी युग विशेष के प्रतीक नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा और संघर्षशीलता के सार्वभौमिक प्रतीक हैं। उनका मानवतावाद, जो करुणा और नैतिक साहस पर आधारित है, आज के भोगवादी युग में आत्ममंथन और नैतिक पुनर्जागरण की दिशा प्रदान करता है।

प्रेमचंद की सामाजिक असमानता, पितृसत्ता और नैतिक पाखंड पर की गई आलोचना आज भी उतनी ही अर्थपूर्ण है। 'सद्गति' और 'सेवासदन' जैसी रचनाएँ आज भी जातिगत भेदभाव, स्त्री उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय के खिलाफ चेतना जगाती हैं। उनके पात्र समाज की आत्मा को झकझोरते हैं और पाठकों से नैतिक जवाबदेही की माँग करते हैं। आधुनिक भारत में जब भौतिकतावाद और नैतिक उदासीनता बढ़ रही है, तब प्रेमचंद की यह पुकार—कि साहित्य को सामाजिक चेतना और न्याय का माध्यम बनना चाहिए—पहले से अधिक प्रासंगिक हो उठी है। उनकी विरासत आज भी प्रेरणा, संवेदना और नैतिक दिशा का स्रोत बनी हुई है, जो हमें यह याद दिलाती है कि सच्ची प्रगति न्याय, समानता और करुणा में निहित है।

9. निष्कर्ष

मुंशी प्रेमचंद के साहित्य की स्थायी प्रासंगिकता इसलिए है क्योंकि उन्होंने साहित्य को केवल प्रतिबिंब नहीं बनाया बल्कि उसे समाज परिवर्तन का सक्रिय उपकरण मान लिया। उनकी कहानियाँ और उपन्यास—विशेषकर गोदान, कर्मभूमि, सेवासदन तथा महत्वपूर्ण लघुकथाएँ—ग्रामीण जीवन की कठिनाइयों, आर्थिक और जातीय विषमताओं तथा लैंगिक नियंत्रण की जटिलताओं को न केवल उद्घाटित करते हैं, बल्कि उनसे निपटने के नैतिक और सामूहिक मार्ग सुझाते हैं। प्रेमचंद का यथार्थवाद सहानुभूति पर टिका था; उसने चरित्रों की मानवीय गरिमा को उकेरा और पाठक में नैतिक उत्तरदायित्व जागृत किया। इस दृष्टि से उनका साहित्य उत्तर-औपनिवेशिक और समकालीन दोनों सामाजिक विमर्शों के लिए ब्रीचहेड बना—जहाँ साहित्य ने सामाजिक नीतियों और लोकचेतना को प्रभावित करने का काम किया।

प्रेमचंद की भाषा और शैली ने हिंदी-उर्दू गद्य में जनसुलभता और नैतिक गम्भीरता का संतुलन स्थापित किया, जिससे बाद के अनेक लेखक उनके विचार और तकनीक ग्रहण कर समकालीन परिस्थितियों में उनका नव्य अर्थ-निर्माण कर सके। आज जब भारतीय समाज कृषि संकट, जातीय असमानता, लैंगिक हिंसा और सांस्कृतिक विभाजन जैसी चुनौतियों से जूझ रहा है, प्रेमचंद का

मानवतावादी संदेश—करुणा, न्याय और नैतिक साहस—संदर्भोचित एवं प्रेरक बना हुआ है। अतः उनकी विरासत केवल साहित्यिक नहीं, सामाजिक और नैतिक भी है: उन्होंने यह स्थापित कर दिया कि सच्ची सांस्कृतिक प्रगति वही है जो वंचितों की गरिमा और समानता सुनिश्चित करे, और साहित्य वही करे जो राष्ट्र की अंतरात्मा को जगाए।

10. संदर्भ सूची

1. चंद्रा एस. प्रेमचंद और भारतीय राष्ट्रवाद. मॉडर्न एशियन स्टडीज़. 1982;16(4):601-21.
2. घोष डी. प्रेमचंद: उग्रवाद बनाम राष्ट्रवाद. सिडनी स्टडीज़ इन सोसाइटी एंड कल्चर. 1983;1.
3. गोविंद एन. सामाजिक यथार्थवाद और नैतिक प्रभाव: मुंशी प्रेमचंद की दुनिया. ए कम्पेनियन टू वर्ल्ड लिटरेचर. 2020;1-10.
4. हैरिस आरएम, शर्मा आर. ए बेसिक हिंदी रीडर. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़. 1970;30(2):220-1.
5. जयलक्ष्मी के. सामाजिक सुधारक प्रेमचंद – एक समीक्षा. जर्नल ऑफ लिटरेचर, लैंग्वेज एंड लिंग्विस्टिक्स. 2016;20:44-6.
6. जोगिंदर पॉल. प्रेमचंद: आधुनिक उर्दू लघु-कथा के अग्रदूत. जोगिंदर पॉल एंथोलॉजी. 2021.
7. नाहिद ए. मुल्कराज आनंद और प्रेमचंद: समान दृष्टि और प्रेरित मस्तिष्क वाले उपन्यासकार. क्रिएटिव लॉन्चर. 2020;5(2):141-8.
8. नस्कर एस. मुंशी प्रेमचंद और दलित साहित्य: परिभाषा की खाई को पाटते हुए. प्रैक्सिस इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड लिटरेचर. 2023;6(4):1-7.
9. ओबेरॉय जी. गांधीवादी समाजवाद का दृष्टिकोण (समकालीन भारत में प्रासंगिकता). जर्नल ऑफ सोशल एंड पॉलिटिकल थॉट. 2014;12(3):45-52.
10. पांडेय जी. प्रेमचंद और किसान वर्ग: नियंत्रित उग्रवाद. इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. 1983;1149-55.
11. कदीर एच. प्रेमचंद – नाटककार और नाट्य समीक्षक: औपनिवेशिक भारत के हिंदी रंगमंच का मूल्यांकन. लिटरेचर, क्रिटिक, एंड एम्पायर टुडे. 2025;60(1):41-59.
12. रहमतुल्लाह एन. मुंशी प्रेमचंद की लघु कहानियों में यथार्थवाद. क्लैरियन: इंटरनेशनल मल्टीडिसिप्लिनरी जर्नल. 2017;6(2).
13. शरीफ एस. प्रेमचंद के साहित्यिक कार्यों में सामाजिक चेतना. दरीचा-ए-तहकीक. 2024;5(1):1-12.
14. शांडिल्य के. विधवा, पत्नी और वेश्या: प्रेमचंद के 'सेवासदन' तथा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के बंगाली और उर्दू उपन्यासों में सामाजिक सुधार का तुलनात्मक अध्ययन. कम्पेरेटिव लिटरेचर स्टडीज़. 2016;53(2):272-88.
15. सिंह एसके. प्रेमचंद, राष्ट्रवाद और औपनिवेशिक उत्तर भारत में नागरिक प्रतिरोध. इंडियन इकनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू. 2019;56(2):171-94.
16. सिर्सी सी, अंजरिया यू. रीकवरिंग रियलिज़्म. जर्नल ऑफ पोस्टकोलोनियल स्टडीज़. 2015;10(3):1-15.
17. वेसलर एचडब्ल्यू. प्रेमचंद 1915: उर्दू से हिंदी की भाषा-निरंतरता के भीतर गमन. एक्टा ओरिएंटालिया. 2015;76:21.

Ref. No: FMR-2025-2-157



E-ISSN: 3050-9726 P-ISSN: 3050-9718

Journal of Frontiers in Multidisciplinary Research

Online Journal, Indexed Journal, Refereed Journal, Peer Reviewed Journal

Publication Certificate

सोनम सिंह

This Certificate confirms the publication of manuscript titled "आधुनिक भारतीय साहित्य में मुंशी प्रेमचंद की विरासत और प्रासंगिकता "
in the **Journal of Frontiers in Multidisciplinary Research**; 2025 July-December, Volume-6, Issue-2.

**Kamal
Publisher**

Email: anfo@multidisciplinaryfrontiers.com



Website: www.multidisciplinaryfrontiers.com



प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में ग्रामीण भारत का चित्रण

सोनम सिंह ^{1*}, डॉ. जयसिंह यादव ²

¹ पी.एच.डी. शोध छात्रा, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

² शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

* Corresponding Author: **सोनम सिंह**

Article Info

P-ISSN: 3051-3502

E-ISSN: 3051-3510

Volume: 06

Issue: 02

July - December 2025

Received: 04-07-2025

Accepted: 08-10-2025

Published: 03-11-2025

Page No: 101-107

सारांश

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936), जिन्हें आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य का जनक कहा जाता है, ने भारतीय साहित्य में यथार्थवाद की वह धारा प्रवाहित की जो ग्रामीण भारत के सामाजिक और नैतिक ताने-बाने में गहराई से निहित थी। औपनिवेशिक काल में लिखते हुए उन्होंने गोदान, सेवासदन, कर्मभूमि जैसे उपन्यासों और कफन, पूँस की रात जैसी कहानियों के माध्यम से किसानों, स्त्रियों और पीड़ित वर्गों के संघर्षों को अद्वितीय सहानुभूति और नैतिक गहराई के साथ प्रस्तुत किया। उनकी रचनाएँ मात्र सामाजिक दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि वे एक नैतिक प्रयोजन बन जाती हैं जो सामाजिक चेतना को जगाने और सुधार की प्रेरणा देती हैं। प्रेमचंद ने भारतीय गाँव को अपनी कथा का केंद्र बनाकर उसे न केवल नैतिक आधार, बल्कि औपनिवेशिक और सामंती शोषण का प्रतीक भी बनाया। उनके यथार्थवाद ने जाति, वर्ग और पितृसत्ता की उन संरचनाओं को उजागर किया जो ग्रामीण जीवन को नियंत्रित करती थीं, और साहित्य को प्रतिरोध का माध्यम बना दिया। गांधीवादी और राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने सत्य, दया और नैतिक जागृति को सामूहिक उत्थान के साधन के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी स्त्री पात्र, जैसे सेवासदन की सुमन और कफन की नामहीन पत्नी, करुणा, त्याग और नैतिक शक्ति की प्रतीक हैं, वहीं गोदान के किसान होरी का चरित्र अत्याचार के बावजूद धैर्य, ईमानदारी और नैतिकता का प्रतीक बनता है। प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद भारतीय कथा-साहित्य को सामाजिक और नैतिक विमर्श का साधन बनाता है, जिसमें व्यक्ति की नैतिकता को समाज के परिवर्तन से जोड़ा गया है। उन्होंने मानवतावाद, सुधारवादी दृष्टि और कलात्मक सादगी का ऐसा समन्वय किया कि गाँव न केवल उनके साहित्य का बल्कि भारत की सांस्कृतिक और नैतिक चेतना का केंद्र बन गया। इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य राष्ट्र का दर्पण और अंतःकरण दोनों बनकर उभरता है—जो अपने समय की अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं को उजागर करते हुए करुणा, शिक्षा और नैतिक न्याय पर आधारित भविष्य की कल्पना करता है।

Doi: <https://doi.org/10.54660/IJMER.2025.6.2.101-107>

मुख्य शब्द: मुंशी प्रेमचंद, हिंदी कथा-साहित्य, गोदान, सेवासदन, कर्मभूमि, औपनिवेशिकता, सामंती व्यवस्था और नैतिक न्याय

1. परिचय

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936), जिन्हें आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य का जनक माना जाता है, उन प्रारंभिक भारतीय लेखकों में से एक थे जिन्होंने ग्रामीण जनजीवन की वास्तविकता को अपने साहित्य में सजीव रूप में प्रस्तुत किया। उनके लेखन में भारतीय गाँवों के सामाजिक और नैतिक पक्षों का ऐसा यथार्थ चित्रण मिलता है जो उनके समय के लिए अत्यंत क्रांतिकारी था। गोदान और सेवासदन जैसे उपन्यासों तथा कफन और पूँस की रात जैसी कहानियों में उन्होंने किसानों, मजदूरों और स्त्रियों के जीवन-संघर्षों को गरीबी, जातिगत विभाजन और औपनिवेशिक शोषण की पृष्ठभूमि में बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया। उनका यथार्थवाद मात्र सामाजिक दस्तावेज नहीं, बल्कि एक नैतिक प्रयास था—भारत के आम जन के दुःख और उनकी सहनशीलता को उजागर करने का।

प्रेमचंद ने रोमांटिक या पलायनवादी दृष्टिकोण से अलग होकर साधारण ग्रामीण व्यक्ति को अपनी कथा का केंद्र बनाया और उन्हें भारत की सामाजिक चेतना का प्रतीक बना दिया (जयलक्ष्मी, 2016) [7]। प्रेमचंद की साहित्यिक शैली करुणा, सादगी और नैतिक दृष्टि से परिपूर्ण थी। उनकी भाषा ने अभिजात्य और लोकसंस्कृति के बीच की खाई को पाटते हुए उनके साहित्य को जनसामान्य से जोड़ दिया। सजीव चरित्र-चित्रण और नैतिक द्वंद्वों के माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज को वैसा ही दिखाया जैसा वह था—कठोर, अन्यायपूर्ण, परंतु करुणा और जागरूकता के माध्यम से परिवर्तनशील। उनके लेखन में व्याप्त यथार्थवाद केवल सौंदर्यबोध का साधन नहीं था, बल्कि सामाजिक सुधार का माध्यम भी था। प्रेमचंद का ग्रामीण संसार, जो उनके अपने जीवनानुभवों से प्रेरित था, औपनिवेशिक संकट और राष्ट्रीय जागरण के काल में भारत की राष्ट्रीय पहचान का दर्पण बन गया।

1.1. प्रेमचंद का साहित्यिक मिशन – सत्य, यथार्थ और आम आदमी के प्रति उनकी प्रतिबद्धता

प्रेमचंद का साहित्यिक मिशन उनके अटूट सत्यनिष्ठा और सामाजिक न्याय के प्रति समर्पण में निहित था। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के चरम काल में लिखते हुए उन्होंने साहित्य को एक नैतिक साधन माना, जिसका उद्देश्य सामूहिक चेतना को जगाना था। उनके लेखन में पहले के हिंदी गद्य की अलंकारिक भाषा और पौराणिक पलायनवाद के स्थान पर एक स्थिर, यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है, जो भारतीय गरीबों के दुःख, सहनशीलता और मानवता को उजागर करता है। कफन, गोदान और कर्मभूमि जैसी कृतियों में प्रेमचंद ने किसानों को केवल पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक चेतना से सम्पन्न व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया जो अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्थाओं से संघर्ष करते हैं। इस प्रकार उनका यथार्थवाद औपनिवेशिक और सामंती शोषण के विरुद्ध एक मानवतावादी प्रतिक्रिया बन जाता है (घोष, 1983) [4]।

प्रेमचंद के लिए साहित्य में सत्य का अर्थ जीवन और भावनाओं के प्रति निष्ठा था। उनका विश्वास था कि कला को आम मनुष्य के संघर्षों को प्रतिबिंबित करना चाहिए और साथ ही समाज सुधार का माध्यम भी बनना चाहिए। उनकी कहानियाँ जातिगत भेदभाव, गरीबी और लैंगिक असमानता जैसी सामाजिक बुराइयों पर केवल प्रचारात्मक ढंग से नहीं, बल्कि पात्रों की नैतिक चेतना के माध्यम से प्रश्न उठाती हैं। चाहे गोदान के होरी हों या सेवासदन की धनिया, उनके पात्र प्रेमचंद की पीड़ित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति और मानव-धैर्य में उनके विश्वास को दर्शाते हैं। अपने सत्यनिष्ठ यथार्थवाद के माध्यम से प्रेमचंद ने साहित्य को आत्ममंथन और प्रतिरोध दोनों का साधन बना दिया, जिससे भारतीय कथा-साहित्य को नैतिक उद्देश्य और भावनात्मक प्रामाणिकता की नई दिशा मिली।

1.2. ग्रामीण भारत: प्रेमचंद की कथा-सृष्टि का केंद्र – क्यों भारतीय गाँव बना उनके साहित्य का मुख्य परिवेश

प्रेमचंद के साहित्य में ग्रामीण भारत राष्ट्र की नैतिक और सांस्कृतिक आत्मा के रूप में स्थापित है। उनके लिए गाँव मात्र कथा की पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई था जो भारतीय समाज की सामूहिक चेतना, पीड़ा और नैतिक संवेदना का प्रतीक बनकर उभरता है। उन्होंने यह माना कि भारत की वास्तविक पहचान और उसके नैतिक संघर्ष गाँवों के किसानों में निहित हैं।

गोदान में नायक होरी ग्रामीण सहनशीलता का प्रतीक बन जाता है—एक ऐसा व्यक्ति जिसकी समूची जिंदगी ऋण, सामाजिक कर्तव्यों और नैतिक दायित्वों के जाल में उलझी रहती है। उपन्यास में कृषि-आधारित गरीबी का सूक्ष्म चित्रण जमींदारों, साहूकारों और औपनिवेशिक नौकरशाही के शोषणकारी गठजोड़ को उजागर करता है (वनश्री, 2013) [19]।

इसी प्रकार पूँस की रात और कफन जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की दैनंदिन लय को यथार्थ और नैतिक संवेदना के गहन मिश्रण के साथ प्रस्तुत किया। ग्रामीण परिवेश पर उनका ध्यान उन्हें औपनिवेशिकता, जाति और पितृसत्ता जैसी व्यापक संरचनाओं की आलोचना करने का अवसर देता है। उनके साहित्य में गाँव भारत के नैतिक और राजनीतिक जीवन का सूक्ष्म रूप बन जाता है—जहाँ राष्ट्र की चेतना निरंतर परखी और प्रकट होती है। प्रेमचंद ने गाँव के आर्थिक और भावनात्मक ताने-बाने के भीतर से लिखते हुए ऐसा साहित्यिक यथार्थवाद रचा जो हृदय और बुद्धि दोनों को स्पर्श करता है। इस प्रक्रिया में उन्होंने भारतीय पहचान को उसके सबसे साधारण नागरिकों के जीवंत अनुभवों में निहित किया और यह सिद्ध किया कि राष्ट्र की आत्मा उसी ग्रामीण भारत में बसती है जो संघर्षरत होकर भी अपनी नैतिकता और मानवता को जीवित रखता है (हैदर, 2024) [6]।

2. प्रेमचंद के ग्रामीण कथानकों का ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ

प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक भारत की जटिल सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न हुई। यह वह समय था जब ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन अपने चरम पर था, कृषि संकट गहराता जा रहा था, और राष्ट्रवादी सुधार आंदोलनों की लहर पूरे देश में फैल रही थी। ग्रामीण भारत, जिसने उनके कल्पनाशील संसार को आकार दिया, गहरी असमानताओं से ग्रस्त था, जहाँ किसान औपनिवेशिक आर्थिक शोषण और सामंती अत्याचार का सबसे अधिक भार उठाते थे। गोदान और कर्मभूमि जैसे उपन्यास उस समाज की स्थिति को प्रतिबिंबित करते हैं जो जातिगत परंपराओं और स्वतंत्रता तथा न्याय की आकांक्षाओं के बीच फँसा हुआ था। प्रेमचंद ने इन यथार्थों को केवल कहानी नहीं, बल्कि भारत के अंतःकरण की एक साहित्यिक गाथा में रूपांतरित किया, जिसमें उन्होंने दिखाया कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासन ने न केवल गाँवों की आर्थिक जीवनशक्ति को निचोड़ लिया, बल्कि उनके नैतिक और सामाजिक ढाँचे को भी क्षीण कर दिया (घोष, 1983) [4]।

इसी कालखंड में प्रेमचंद पर देश में फैल रहे सामाजिक सुधार और राष्ट्रवादी जागरण का गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी, तिलक और अन्य नेताओं द्वारा प्रेरित आंदोलन आत्मनिर्भरता, ग्रामीण पुनर्निर्माण और नैतिक सुधार पर बल दे रहे थे। ये विचार प्रेमचंद की चेतना से गहराई से जुड़े, क्योंकि वे गाँव को केवल आर्थिक इकाई नहीं, बल्कि भारतीय जीवन का नैतिक केंद्र मानते थे। उनके पात्र अक्सर आधुनिकीकरण, औपनिवेशिक दासता और सामाजिक सुधार की टकराहट से उत्पन्न नैतिक द्वंद्वों से जूझते दिखाई देते हैं। यथार्थवाद के माध्यम से प्रेमचंद ने पाठकों में सहानुभूति और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना जगाने का प्रयास किया, जिससे उनका साहित्य केवल प्रतिबिंब नहीं, बल्कि भारत के ऐतिहासिक परिवर्तन का आलोचनात्मक दस्तावेज बन गया।

उनके लेखन ने यह सिद्ध किया कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बन सकता है, जो न केवल समाज के दुःखों को उजागर करता है, बल्कि उसके नैतिक पुनर्निर्माण की दिशा भी दिखाता है (रॉय, 2016) ^[12]।

2.1. औपनिवेशिक भारत और कृषक संकट – ब्रिटिश नीतियों और सामंती व्यवस्थाओं का ग्रामीण जीवन पर प्रभाव
ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने भारत की कृषि संरचना को गहराई से बदल दिया, जिससे गाँवों का सामाजिक और आर्थिक संतुलन पूरी तरह बिखर गया। ज़मींदारी और रैयतवाड़ी जैसी भूमि-राजस्व प्रणालियों ने किसानों को स्थायी ऋण, निर्धनता और निराशा के दलदल में धकेल दिया। प्रेमचंद का गोदान इस कृषक त्रासदी का सशक्त प्रतीक है, जहाँ होरी का जीवन औपनिवेशिक शासन के अधीन ग्रामीण समाज के नैतिक और भौतिक पतन को दर्शाता है। ब्रिटिश नीतियों द्वारा अत्यधिक कराधान, साहूकारों की बढ़ती शक्ति और जमींदारों की मनमानी ने ऐसा चक्र बनाया जिसमें किसान केवल अपनी जमीन ही नहीं, बल्कि अपनी आत्म-सम्मान और जीवन-मूल्य भी गिरवी रख देता है। औपनिवेशिक कानूनों से सशक्त सामंती जमींदार आर्थिक दासता और जातिगत शोषण को निरंतर बनाए रखते हैं। प्रेमचंद ने इस कठोर यथार्थ का केवल वर्णन नहीं किया, बल्कि उसे औपनिवेशिक आधुनिकता के साथ जुड़े नैतिक पतन के रूप में उजागर किया। गोदान और पूँस की रात जैसी रचनाओं में उन्होंने दिखाया कि कैसे औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में निहित संरचनात्मक हिंसा ने भारत के ग्रामीण समाज को भीतर से तोड़ दिया। उनका साहित्य मात्र पीड़ा का चित्रण नहीं, बल्कि प्रतिरोध और नैतिक साक्ष्य का रूप ले लेता है—जहाँ लेखन एक प्रकार की नैतिक क्रांति बन जाता है जो अन्यायपूर्ण सत्ता-संरचनाओं को चुनौती देता है (हैदर, 2024) ^[6]।

2.2. सामाजिक सुधार आंदोलनों और यथार्थवादी साहित्य का उदय – प्रेमचंद के लेखन पर गांधीवादी और राष्ट्रवादी विचारों का प्रभाव

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भारत में सामाजिक सुधार और राष्ट्रवादी चेतना का उभार हुआ, जिसने प्रेमचंद के साहित्यिक दृष्टिकोण को गहराई से प्रभावित किया। महात्मा गांधी के सादगी, सत्य और करुणा के आदर्शों से प्रेरित होकर प्रेमचंद ने साहित्य को नैतिक सुधार और सामाजिक जागरण का साधन माना। सेवासदन और कर्मभूमि जैसी कृतियाँ गांधीवादी आत्मशुद्धि और मानव सेवा के आदर्शों को मूर्त रूप देती हैं। इन रचनाओं में विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा और जातीय समानता जैसे विषयों के माध्यम से उन्होंने कथा साहित्य को सामाजिक चेतना का उपकरण बना दिया। राष्ट्रवादी आंदोलन ने उनके यथार्थवाद को सामूहिक संघर्ष और नैतिक उत्तरदायित्व की भावना से समृद्ध किया। इस प्रकार प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल समाज का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि एक नैतिक हस्तक्षेप बन गया—जहाँ कला को न्याय, समानता और राष्ट्रीय पुनर्जागरण की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाने वाला माध्यम बनाया गया (रॉय, 2016) ^[12]।

3. गाँव एक सामाजिक ब्रह्मांड के रूप में: संरचना और पदानुक्रम

प्रेमचंद के काल्पनिक गाँव आदर्श या स्वप्निल स्थल नहीं हैं, बल्कि वे जटिल सामाजिक ब्रह्मांड हैं जो जाति, वर्ग और लिंग की कठोर पदानुक्रमित व्यवस्थाओं द्वारा संचालित होते हैं। गोदान जैसे उपन्यासों और ठाकुर का कुआँ तथा सद्गति जैसी कहानियों के माध्यम से उन्होंने दिखाया कि ये सामाजिक संरचनाएँ कैसे व्यक्ति

के भाग्य, उसके नैतिक निर्णयों और जीवन के अवसरों को निर्धारित करती हैं। उनके साहित्य में गाँव भारत के राष्ट्रीय जीवन का लघु रूप बन जाता है, जहाँ सामाजिक विभाजन और असमानता मानव संबंधों और न्याय तक पहुँच को नियंत्रित करते हैं। प्रेमचंद के पात्र—किसान, ब्राह्मण, जमींदार, चमार या ठाकुर—सभी उस विभाजित समाज की नैतिक और संरचनात्मक विसंगतियों का प्रतीक हैं। गोदान में होरी का जमींदारों और पुजारी वर्ग के प्रति समर्पण इस बात को दर्शाता है कि किस तरह जाति और आर्थिक निर्भरता का ताना-बाना ग्रामीण शोषण को स्थायी बनाता है। इसी प्रकार ठाकुर का कुआँ में निम्न जाति की स्त्रियों के दोहरे उत्पीड़न—सामाजिक बहिष्कार और लैंगिक शोषण—का मार्मिक चित्रण मिलता है (प्रियंका और सेकर, 2022) ^[11]। प्रेमचंद का जाति-चित्रण यथार्थवादी होने के साथ-साथ सुधारवादी भी है; वे किसानों का आदर्शिकरण नहीं करते, बल्कि उन्हें उस भ्रष्ट व्यवस्था के भीतर नैतिक संघर्ष करते हुए दिखाते हैं।

प्रेमचंद के गाँवों की सामाजिक संरचना वास्तविक भारत के ग्रामीण जीवन में देखे गए पदानुक्रमों का प्रतिबिंब है, जैसा कि समाजशास्त्रीय अध्ययनों में वर्णित “अनेक जातियों की ऊर्ध्वाधर एकता” की अवधारणा में पाया जाता है (सहाय, 2004) ^[13]। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जाति केवल धार्मिक विश्वासों से नहीं, बल्कि भौतिक परिस्थितियों—भूमि स्वामित्व, श्रम संबंधों और सामाजिक पूँजी—से भी संचालित होती है। उनका यथार्थवाद मात्र विवरणात्मक नहीं, बल्कि एक नैतिक आलोचना है जो शक्ति-संरचनाओं को उजागर करता है। उनके साहित्यिक ब्रह्मांड में ब्राह्मण, ठाकुर और साहूकार नैतिक अधिकार और आर्थिक नियंत्रण के माध्यम से प्रभुत्व बनाए रखते हैं, जबकि निम्न जातियाँ शोषित और मौन बनी रहती हैं। फिर भी, इस कठोर सामाजिक ढाँचे के भीतर प्रेमचंद ने प्रतिरोध और नैतिक साहस के क्षणों को भी रेखांकित किया है—जहाँ निम्नवर्गीय पात्र अक्सर अपने उच्चवर्गीय उत्पीड़कों से अधिक मानवता और नैतिक दृढ़ता का परिचय देते हैं। गीतांजलि पांडे जैसे विद्वान मानते हैं कि प्रेमचंद के ग्रामीण चित्रणों में रोमांटिकता से टकराव और यथार्थवादी टोन की ओर बदलाव उनके सामाजिक सत्य और सुधार के प्रति बढ़ते समर्पण को दर्शाता है (पांडे, 1983) ^[10]। इस प्रकार प्रेमचंद के गाँव भारत की नैतिक भूमि का दर्पण बन जाते हैं—जहाँ अन्याय और आशा, उत्पीड़न और मानवता, दोनों साथ-साथ विद्यमान हैं।

4. गरीबी, शोषण और सामाजिक अन्याय के विषय

प्रेमचंद के साहित्यिक संसार की सबसे प्रमुख वास्तविकताओं में से एक है गरीबी। उनके उपन्यासों और कहानियों में गरीबी केवल आर्थिक अभाव नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक स्थिति के रूप में उभरती है जो मनुष्य की गरिमा, नैतिकता और संबंधों को भीतर से क्षीण कर देती है। गोदान, सेवासदन और कफन जैसी कृतियों में उन्होंने भूख और अभाव को इस तरह चित्रित किया है कि वे केवल भौतिक नहीं, बल्कि नैतिक संकट बन जाते हैं। उनके गरीब पात्र—किसान, मजदूर, विधवाएँ—जीवन और स्वाभिमान के बीच निरंतर संघर्ष करते रहते हैं। गोदान में होरी का ऋण चुकाने का अंतहीन प्रयास किसान के उस असहाय संघर्ष का प्रतीक है जो अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध अंततः व्यर्थ साबित होता है। प्रेमचंद की दृष्टि में गरीबी कोई संयोग नहीं, बल्कि उस संरचनात्मक शोषण का परिणाम है जिसे जमींदार, साहूकार और पुजारी वर्ग मिलकर बनाए रखते हैं। उनके आर्थिक पीड़ा के चित्रण ने सामाजिक यथार्थवाद को नैतिक विमर्श में बदल दिया, जहाँ लालच और असमानता मानव करुणा को विकृत करने वाली शक्तियों के रूप में सामने आती हैं (चौहान, 2019) ^[3]।

गरीबी के साथ-साथ प्रेमचंद का साहित्य शोषण और वर्गीय असमानता की कठोर वास्तविकताओं से भी जूझता है। उनकी कहानियाँ ऐसे ग्रामीण समाज को उजागर करती हैं जहाँ श्रम का अवमूल्यन होता है और सामाजिक गतिशीलता लगभग असंभव है। कर्मभूमि और सद्गति के भूमिहीन किसान और निम्न जाति के मजदूर उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे आर्थिक और जातिगत दोनों स्तरों पर मौन और असहाय बना दिया गया है। सद्गति में अछूत दुखी का एक ब्राह्मण के लिए काम करते हुए मर जाना धर्म और वर्ग के शोषण के घातक गठजोड़ का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि सहानुभूति पर आधारित है, कटुता पर नहीं। वे शोषितों को दीन या निष्क्रिय नहीं दिखाते, बल्कि उन्हें नैतिक शक्ति और मानवीय गरिमा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। अपने यथार्थवाद के माध्यम से उन्होंने यह उजागर किया कि किस प्रकार सामाजिक अत्याचार उच्च वर्गों में नैतिक पतन और गरीबों में सहनशीलता व नैतिक दृढ़ता को जन्म देता है (सुंदरम, 2015) [18]। प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक अन्याय केवल बाहरी या संरचनात्मक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक भी है। उनके पात्र इस भ्रम को तोड़ते हैं कि उच्च वर्ग नैतिक रूप से श्रेष्ठ हैं—वे दिखाते हैं कि व्यवस्था के संरक्षक स्वयं अन्याय के सहभागी हैं। ठाकुर का कुआँ और सौत जैसी कहानियों में उन्होंने जाति और लिंग के अंतर्संबंधों को उजागर किया है, जहाँ स्त्रियाँ और निम्न जातियाँ दोहरी यातना झेलती हैं। प्रेमचंद का सत्य के प्रति समर्पण उन्हें सामाजिक यथार्थस्थिति के विरुद्ध खड़ा करता है; वे समाज को अटल नहीं, बल्कि करुणा और शिक्षा के माध्यम से सुधार योग्य मानते हैं। उनका मानवतावाद पीड़ा को नकारता नहीं, बल्कि उसे नैतिक पुनर्जागरण का आधार बनाता है। गरीबी, शोषण और अन्याय के इन विषयों के माध्यम से प्रेमचंद ने ऐसा यथार्थवाद रचा जो केवल विवरणात्मक नहीं, बल्कि गहराई से नैतिक और जागृति-प्रेरक है—एक ऐसा साहित्य जो समाज से आत्मचिंतन और परिवर्तन की मांग करता है।

5. कृषक वर्ग और कृषि जीवन का चित्रण

प्रेमचंद के साहित्य में किसान न केवल कथा के केंद्र में हैं, बल्कि वे भारतीय ग्रामीण पहचान के भावनात्मक और नैतिक प्रतीक भी हैं। गोदान और कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में प्रेमचंद ने किसानों को निष्क्रिय पीड़ितों के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति से संपन्न ऐसे मनुष्यों के रूप में प्रस्तुत किया है जो अपनी भूमि और परंपराओं से गहराई से जुड़े हुए हैं। उनके लेखन में कृषि जीवन का चित्रण ग्रामीण अस्तित्व की चक्रीय प्रकृति को उभारता है—ऋतुओं, श्रम और मनुष्य तथा भूमि के नाजुक संबंधों पर निर्भर जीवन। प्रेमचंद के अनुसार ग्रामीण अर्थव्यवस्था जीवनदायिनी होने के साथ-साथ शोषणकारी भी थी, जहाँ ऋण, सामंती नियंत्रण और अंधविश्वासों का जाल किसानों को बाँधकर रखता था। फिर भी उनके किसान केवल दयनीय पात्र नहीं हैं, बल्कि नैतिक नायक हैं—जो कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य, सहनशीलता और आशा के प्रतीक बने रहते हैं (पांडे, 1983) [10]।

गोदान का होरी बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक भारत की कृषक त्रासदी का सबसे जीवंत प्रतीक है—उसकी भूमि के प्रति निष्ठा उतनी ही गहरी है जितनी उसकी नैतिकता के प्रति। दोनों ही उसकी पीड़ा का कारण बनते हैं, फिर भी वह अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता। प्रेमचंद का यथार्थवाद आर्थिक विश्लेषण को मानवीय करुणा से जोड़ता है, यह दिखाते हुए कि औपनिवेशिक और सामंती व्यवस्थाएँ कैसे भारत के ग्रामीण जीवन की ऊर्जा को निचोड़ लेती हैं। किसानों के चित्रण में उनका नैतिक दर्शन स्पष्ट झलकता है—सम्मान श्रम और त्याग में निहित है, न कि धन या प्रतिष्ठा में। इस प्रकार प्रेमचंद ने भारतीय किसान को समाज की नैतिक रीढ़ के रूप में

पुनर्परिभाषित किया, जिसका श्रम केवल अर्थव्यवस्था को नहीं, बल्कि राष्ट्र की नैतिक चेतना को भी पोषित करता है (सुंदरम, 2015) [18]।

5.1. किसान: ग्रामीण भारत का प्रतीक – भूमि, श्रम और आजीविका से उसका संबंध

प्रेमचंद के लिए किसान भारत की आध्यात्मिक और नैतिक आत्मा का प्रतीक था। उसका भूमि से संबंध केवल आर्थिक नहीं, बल्कि पवित्र और अस्तित्वगत था। किसान का श्रम न केवल गाँव की अर्थव्यवस्था को जीवित रखता है, बल्कि समाज के नैतिक ताने-बाने को भी सुदृढ़ करता है। गोदान में होरी की गाय प्राप्त करने की आकांक्षा केवल भौतिक नहीं, बल्कि उसके सम्मान, पूर्णता और सामाजिक स्वीकृति की प्रतीकात्मक अभिलाषा है। गरीबी और शोषण के बावजूद, होरी का अपनी भूमि से अटूट संबंध उसके श्रम की गरिमा और आत्मिक निष्ठा में गहरा विश्वास दर्शाता है। प्रेमचंद के किसान भारत की कृषक संस्कृति की आत्मा हैं—वे भूमि से जुड़े हुए, कर्तव्यनिष्ठ और अन्याय के विरुद्ध अडिग हैं (चौहान, 2019) [3]।

प्रेमचंद के किसानों का चित्रण ग्रामीण भारत के उस गहरे विरोधाभास को उजागर करता है जहाँ समाज को पोषण देने वाला किसान स्वयं सबसे अधिक शोषित रहता है। जमींदारों, पुजारियों और साहूकारों का गठजोड़ उसे सदैव दासता की स्थिति में बनाए रखता है। पूँस की रात जैसी कहानियों में किसान की ठंड और भूख से जूझने की पीड़ा केवल शारीरिक संघर्ष नहीं, बल्कि नैतिक साहस का प्रतीक है। उसका श्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ मौन प्रतिरोध बन जाता है। प्रेमचंद का ग्रामीण यथार्थवाद बाद के समाजशास्त्रीय अध्ययनों में वर्णित जाति और वर्गीय संरचनाओं की जटिलता का पूर्वाभास कराता है (सहाय, 2004) [13]। अपने किसान पात्रों के माध्यम से उन्होंने 'अधीन वर्ग' को मानवीय रूप दिया, बहुत पहले से जब यह शब्द अकादमिक विमर्श में आया भी नहीं था। प्रेमचंद के लिए किसान केवल पीड़ा का प्रतीक नहीं, बल्कि नैतिक निरंतरता का वाहक है—भारत के अंतःकरण का जीवंत प्रतीक। इस प्रकार उनका यथार्थवाद कला से आगे बढ़कर नैतिक दृष्टि का रूप ले लेता है, जहाँ किसान का धैर्य और परिश्रम सामाजिक पुनर्जागरण का संकेत और प्रतिरोध दोनों बन जाता है (पांडे, 1983) [10]।

6. ग्रामीण परिदृश्य में स्त्रियाँ: पीड़ा और धैर्य का चित्रण

प्रेमचंद के कथा-संसार में स्त्रियाँ एक द्विधात्मक स्थिति में हैं—वे सामाजिक उत्पीड़न की शिकार भी हैं और नैतिक शक्ति की प्रतीक भी। उनके ग्रामीण स्त्री पात्र बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक भारत की उस वास्तविकता को प्रतिबिंबित करते हैं जहाँ पितृसत्ता, गरीबी और सामाजिक मर्यादाएँ स्त्रियों की स्वतंत्रता को सीमित करती थीं। निर्मला और सेवासदन जैसे उपन्यास स्त्रियों के दोहरे बोझ को उजागर करते हैं—वे आर्थिक अभाव और नैतिक नियंत्रण, दोनों का सामना करती हैं। ग्रामीण संदर्भों में उनकी स्त्रियाँ विवाह, जाति और दहेज जैसी सामाजिक संरचनाओं में फँसी होती हैं, फिर भी वे भावनात्मक गहराई और मानसिक दृढ़ता की मूर्तियाँ हैं। डॉ. बृजेश कुमार (2022) [8] के अनुसार, निर्मला स्त्रियों के खिलाफ "संरचनात्मक हिंसा" को उजागर करती है, जो यह दिखाती है कि समाज किस प्रकार व्यवस्थित रूप से स्त्रियों की स्वायत्तता और गरिमा को नकार देता है (कुमार, 2022) [8]।

फिर भी प्रेमचंद की स्त्रियाँ निष्क्रिय पीड़ित नहीं हैं। सेवासदन की सुमन और कफन की नामहीन पत्नी जैसे पात्र विपरीत परिस्थितियों में भी असाधारण धैर्य और संवेदना का परिचय देती हैं। ये स्त्रियाँ

अपने मौन साहस और नैतिक करुणा से सामाजिक पतन को चुनौती देती हैं। प्रेमचंद ने उन्हें समाज की नैतिक धुरी के रूप में प्रस्तुत किया है—जो पीड़ा सहकर भी परिवार को संबल देती हैं और मानवता को जीवित रखती हैं। उनके अनुसार समाज का पुनर्जागरण तभी संभव है जब स्त्री की मुक्ति सुनिश्चित हो। इस प्रकार प्रेमचंद का स्त्री चित्रण केवल सहानुभूति का नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार और नैतिक पुनर्निर्माण का घोष भी है।

6.1. शक्ति, त्याग और मातृत्व की करुणा – स्त्रियाँ नैतिक केंद्र और धैर्य की प्रतीक (सेवासदन, कफन)

प्रेमचंद ने सेवासदन और कफन में स्त्रियों के माध्यम से औपनिवेशिक भारत की भावनात्मक और नैतिक भूमि को अत्यंत संवेदनशीलता से चित्रित किया है। सेवासदन में सुमन का जीवन-पथ एक वेश्या से समाज-सुधारक बनने तक का है—एक ऐसा परिवर्तन जो स्त्रियों की सामाजिक हीनता के साथ-साथ उनके नैतिक पुनर्जन्म की संभावनाओं को भी उद्घाटित करता है। सुमन का परिवर्तन पितृसत्तात्मक समाज द्वारा थोपे गए 'पवित्रता' और 'सम्मान' के आदर्शों से जूझता हुआ दिखाया गया है। पंकज शर्मा (2020) [16] के अनुसार, सेवासदन राष्ट्रवाद की "पवित्रता की संहिता" और स्त्री-शरीर की वास्तविकताओं के बीच संतुलन साधता है, यह दिखाते हुए कि किस तरह स्त्री की नैतिकता को एक 'नैतिक राष्ट्र' के निर्माण में उपकरण की तरह इस्तेमाल किया गया (शर्मा, 2020) [16]। फिर भी सुमन का पुनर्जन्म पितृसत्ता के समर्पण का प्रतीक नहीं, बल्कि सीमित सामाजिक दायरे में उसकी स्वतंत्रता की पुनर्प्राप्ति है—जहाँ उसकी करुणा, साहस और आत्म-त्याग स्त्रीत्व के अर्थ को पुनर्परिभाषित करते हैं।

इसके विपरीत, कफन स्त्री की पीड़ा और समाज की नैतिक विफलता का कहीं अधिक कठोर और मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत करता है। कहानी की मृत पत्नी की मौन उपस्थिति गरीबी और अमानवीकरण पर एक नैतिक टिप्पणी बन जाती है। महेश कुमार शर्मा और अंजना वशिष्ठ रावत (2024) [15] के अनुसार, कफन एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है जो भुखमरी और निराशा के बीच पुरुषों के नैतिक पतन को उजागर करता है (शर्मा एवं रावत, 2024) [15]। स्त्री की मृत्यु—और उसके अंतिम संस्कार के पैसों को भोजन पर खर्च करने का पुरुषों का निर्णय—यह दिखाता है कि अत्यधिक गरीबी कैसे संवेदना और नैतिकता को क्षीण कर देती है। फिर भी, उस मृत पत्नी की मातृत्वमयी छवि मृत्यु के बाद भी बनी रहती है, जो धैर्य और करुणा का प्रतीक बनकर जीवन से परे एक नैतिक आयाम को उजागर करती है। प्रेमचंद उसकी अनुपस्थिति के माध्यम से उस समाज की आत्मा की रिक्तता को रेखांकित करते हैं, जिसने करुणा को भुला दिया है।

इन दोनों रचनाओं में स्त्रियों के दुःख का नैतिक पक्ष प्रेमचंद की पितृसत्ता और वर्गीय अन्याय दोनों की आलोचना को सामने लाता है। जैसा कि कृपा शांडिल्य (2016) ने कहा है, सेवासदन स्त्रियों को सुधार और राष्ट्रवाद के चौराहे पर रखता है, जिससे आधुनिक भारत के नैतिक विमर्श की अंतर्विरोधी प्रवृत्तियाँ उजागर होती हैं (शांडिल्य, 2016)। सुमन के नैतिक पुनर्जागरण और कफन की निस्संग स्त्री की मृत्यु के माध्यम से प्रेमचंद स्त्रियों को समाज की नैतिक धुरी के रूप में प्रस्तुत करते हैं—जहाँ उनका त्याग, धैर्य और करुणा राष्ट्र के अंतःकरण का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार उनकी स्त्रियाँ मौन होते हुए भी सुधार की वाहक हैं—वे पीड़ा सहती हैं, सद्गुणों को थामे रहती हैं और समाज के पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक नैतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

7. प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक आदर्शवाद और सुधारवादी दृष्टि
प्रेमचंद का साहित्य नैतिक आदर्शवाद और सामाजिक यथार्थवाद के संगम पर खड़ा है। उनका साहित्यिक उद्देश्य केवल समाज की बुराइयों का चित्रण करना नहीं था, बल्कि समाज की सामूहिक नैतिक चेतना को जागृत करना था ताकि वह स्वयं को परिवर्तित कर सके। गांधीवादी नैतिकता और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक राष्ट्रवादी सुधार आंदोलनों से प्रभावित होकर प्रेमचंद लेखक को एक नैतिक मार्गदर्शक मानते थे—एक ऐसा मशालवाहक जो न्याय, समानता और करुणा के मार्ग को प्रकाशित करता है। प्रतिज्ञा, निर्मला और कर्मभूमि जैसे उपन्यास इस दृष्टि को मूर्त रूप देते हैं, जहाँ यथार्थवाद नैतिक जिम्मेदारी के साथ जुड़ता है। इन रचनाओं के नायक केवल सामाजिक अन्याय से नहीं, बल्कि अपने भीतर के नैतिक द्वंद्वों से भी संघर्ष करते हैं। प्रेमचंद का विश्वास था कि वास्तविक सुधार बाहरी परिवर्तन से नहीं, बल्कि अंतर्मन की जागृति से शुरू होता है। सुधीर चंद्र (1982) के शब्दों में, प्रेमचंद "कला के उद्देश्य को सामाजिक कर्तव्य से अलग करने से इनकार करते हैं," क्योंकि वे मानते थे कि साहित्य का उद्देश्य पाठक की नैतिक चेतना को शिक्षित और ऊँचा उठाना है (चंद्र, 1982)।

उनकी सुधारवादी दृष्टि केवल राजनीतिक मुक्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण तक विस्तारित थी। प्रेमचंद का यथार्थवाद न तो निराशावादी था और न ही निस्पृह; वह करुणा, संवेदना और आशा से ओतप्रोत था। उनके साहित्य का मूल संदेश यह था कि नैतिक सत्य और सामाजिक सुधार परस्पर निर्भर हैं—व्यक्ति का परिवर्तन ही समाज के परिवर्तन का आधार है। इस अर्थ में, प्रेमचंद का नैतिक आदर्शवाद आध्यात्मिक भी था और व्यवहारिक भी। उन्होंने एक ऐसे न्यायपूर्ण संसार की कल्पना की जहाँ क्रांति नहीं, बल्कि करुणा, शिक्षा और साझा नैतिक जिम्मेदारी समाज सुधार का माध्यम बनती है। उनका साहित्य इस बात का प्रमाण है कि यथार्थवाद तब ही सार्थक होता है जब वह मानवता और नैतिक उत्थान से जुड़ा हो।

7.1. नैतिक यथार्थवाद और सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न – नैतिक जागृति को परिवर्तन की शक्ति मानने वाला प्रेमचंद का दृष्टिकोण

प्रेमचंद का यथार्थवाद गहराई से नैतिक है—उनके लिए जीवन केवल सामाजिक दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक नैतिक खोज है। उनका साहित्य यह उद्घाटित करता है कि सच्चे सुधार की नींव नैतिक जागृति में निहित है। कर्मभूमि और गोदान में वे आत्मस्वार्थ और सामाजिक कर्तव्य के बीच के संघर्ष को चित्रित करते हैं, यह दिखाते हुए कि मानवीय करुणा किस प्रकार सामाजिक अन्याय का प्रतिकार कर सकती है। उनके पात्र—चाहे प्रतिज्ञा के अमृतराय हों या गोदान के होरी—सत्य (सत्य) और दया (दया) के उन नैतिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो समाज को रूपांतरित करने की शक्ति रखते हैं। प्रेमचंद का यथार्थवाद इस प्रकार नैतिक यथार्थवाद बन जाता है—एक ऐसा दृष्टिकोण जो मानता है कि आत्मचिंतन और जागरूकता से समाज का पुनर्निर्माण संभव है (गोविंद, 2019) [5]। इसके अतिरिक्त, प्रेमचंद लेखन को एक नैतिक साधना मानते थे। वे लेखकों से अपेक्षा करते थे कि वे अपने युग के नैतिक प्रश्नों से जूझें और साहित्य को अंतःकरण का माध्यम बनाएं। उनका नैतिक यथार्थवाद उपदेशात्मक नहीं था; वह मानवीय जटिलताओं का सम्मान करते हुए भी जिम्मेदारी की माँग करता था। इस नैतिक संलग्नता के माध्यम से प्रेमचंद ने औपनिवेशिक भारत में कला के

उद्देश्य को पुनर्परिभाषित किया—साहित्य को आत्म-मंथन और सामूहिक जागृति का साधन बना दिया। इस दृष्टि से उनका साहित्य केवल सौंदर्य का विषय नहीं, बल्कि नैतिक आत्मबोध की प्रक्रिया है, जो पाठक को न केवल देखने बल्कि समझने और बदलने के लिए प्रेरित करती है (शिल्पा, 2024) [17]।

7.2. व्यक्तिगत नैतिकता से सामूहिक उत्थान तक – शिक्षा, न्याय और करुणा के माध्यम से सुधार की उनकी दृष्टि

प्रेमचंद का सुधारवादी दृष्टिकोण केवल व्यक्तिगत नैतिकता तक सीमित नहीं था; वह सामूहिक उत्थान की कल्पना करता था, जो शिक्षा, न्याय और करुणा के माध्यम से संभव है। उनका विश्वास था कि शिक्षा राष्ट्रीय और नैतिक प्रगति की आधारशिला है। प्रेमचंद ऑन कल्चर एंड एजुकेशन जैसी रचनाओं में उन्होंने लिखा कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि नैतिक चरित्र और नागरिक जिम्मेदारी का विकास होना चाहिए (आबिदी, 2021) [11]। कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में शिक्षा को उन्होंने एक लोकतांत्रिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया, जो जाति और वर्ग की दीवारों को तोड़कर सामाजिक एकता स्थापित कर सकती है। उनके नायक—शिक्षक, सुधारक या आदर्शवादी—उनके इस विश्वास का प्रतीक हैं कि जागरूक व्यक्ति ही जागरूक समाज की नींव रख सकता है। प्रेमचंद की न्याय की अवधारणा करुणा पर आधारित थी। उन्होंने करुणा को दुर्बलता नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति का सर्वोच्च रूप माना, जो अन्याय को जड़ से मिटाने में सक्षम है। उनका सुधारवाद राजनीतिक विचारधाराओं से अधिक मानवीय मूल्यों पर आधारित था—ऐसा दृष्टिकोण जो समाज के उपेक्षित वर्गों के लिए सामूहिक जिम्मेदारी की भावना जगाता है। अफ़शान नाहिद (2020) [9] के अनुसार, प्रेमचंद का नैतिक आदर्शवाद उनके समकालीन लेखकों जैसे मुल्कराज आनंद के समान है, जिनका साहित्य भी सामाजिक चेतना और न्याय को जाग्रत करने का माध्यम था (नाहिद, 2020) [9]। इस प्रकार, प्रेमचंद का सुधारवादी आदर्शवाद व्यक्ति के सद्गुण को सामाजिक सक्रियता में परिवर्तित करता है—एक ऐसे नैतिक लोकतंत्र की कल्पना करते हुए जो सत्य, करुणा और समानता पर आधारित हो।

8. निष्कर्ष

प्रेमचंद की साहित्यिक विरासत यथार्थवाद, मानवतावाद और सुधारवादी आदर्शवाद का अद्भुत संगम है। ग्रामीण भारत की आत्मा को चित्रित करते हुए उन्होंने केवल किसानों की दुर्दशा या सामाजिक विषमताओं की कूरता नहीं दिखाई, बल्कि उन्होंने पीड़ा के भीतर छिपे नैतिक आयाम को उजागर किया। उनके गाँव किसी सुंदर पृष्ठभूमि का हिस्सा नहीं थे, बल्कि वे राष्ट्र के अंतःकरण के प्रतीक थे, जहाँ गरीबी, जाति और पितृसत्ता समाज की नैतिक विफलताओं को उजागर करती थीं। फिर भी, इस निराशा से भरे संसार में प्रेमचंद ने असाधारण नैतिक दृढ़ता और मानवता का संबल खोजा। उनके पात्र—गोदान का किसान होरी, सेवासदन की सुमन और सद्गति का दुखी—मानव आत्मा की करुणा, धैर्य और सत्य के प्रति प्रतिबद्धता का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने एक ऐसे नैतिक यथार्थवाद की रचना की जो अन्याय का सामना करता है, परंतु मानवता में विश्वास नहीं खोता। उनका साहित्य एक नैतिक प्रयोगशाला की तरह है, जहाँ करुणा, त्याग और नैतिक साहस मानव अंतःकरण की शक्ति की परीक्षा लेते हैं। अन्य लेखकों के विपरीत, जिन्होंने यथार्थवाद को केवल वस्तुपरक अवलोकन माना, प्रेमचंद ने उसे नैतिक हस्तक्षेप का उपकरण बनाया—जहाँ साहित्य और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच की रेखा धुंधली हो जाती है।

कथात्मक कौशल से आगे बढ़कर प्रेमचंद ने साहित्य को सामूहिक नैतिक सुधार का उत्प्रेरक माना। गांधीवादी नैतिकता और राष्ट्रवादी आदर्शों से गहराई से प्रेरित होकर उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि सच्ची स्वतंत्रता केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण में निहित है। शिक्षा, न्याय और करुणा के प्रति उनकी निष्ठा यह दर्शाती है कि सामाजिक परिवर्तन व्यक्ति की चेतना के रूपांतरण से आरंभ होता है। कर्मभूमि और प्रतिज्ञा जैसी रचनाओं में उन्होंने एक नैतिक लोकतंत्र की कल्पना की—जहाँ करुणा शोषण का स्थान लेती है, समानता जातिगत दीवारों को तोड़ती है और शिक्षा नागरिक गुणों का संवर्धन करती है। प्रेमचंद का मानवतावाद काल और वर्ग की सीमाओं से परे है; वह औपनिवेशिक आधुनिकता की आलोचना भी है और नैतिक पुनरुत्थान की भविष्यवाणी भी। ऐसे समय में जब साहित्य या तो रोमांटिक पलायनवाद या राजनीतिक प्रचार का माध्यम बन रहा था, प्रेमचंद ने एक तीसरा मार्ग दिखाया—एक ऐसा नैतिक यथार्थवाद, जो संक्रमणशील राष्ट्र के अंतःकरण से संवाद करता है। उनकी विरासत केवल भारतीय कथा-साहित्य के विकास में ही नहीं, बल्कि उन पाठकों की नैतिक कल्पना में जीवित है जो आज भी उनकी कहानियों में उत्पीड़न और करुणा, निराशा और आशा के शाश्वत संघर्ष को पहचानते हैं। प्रेमचंद का साहित्यिक संसार भले ही अपने ऐतिहासिक संदर्भ से बँधा हो, पर उसका संदेश कालातीत है—कि सत्य और करुणा में निहित मानव जीवन की गरिमा ही सबसे सशक्त प्रतिरोध है और सभ्यता का सर्वोच्च मानक।

9. संदर्भ सूची

1. आबिदी एस. प्रेमचंद ऑन कल्चर एंड एजुकेशन. रूटलेज; 2021.
2. चंद्रा एस. प्रेमचंद एंड इंडियन नेशनलिज्म. मॉड एशियन स्टड. 1982;16(4):601-21.
3. चौहान एचआर. गोदान: ए क्रिटिसिज्म ऑफ नॉवेल बाय प्रेमचंद (श्रृंखला 2019-30-03); 2019.
4. घोष डी. प्रेमचंद: रेडिकलिज्म वर्सेस नेशनलिज्म. सिडनी स्टड सोस कल्चर. 1983;1.
5. गोविंद एन. सोशल रियलिज्म एंड मॉरल अफेक्ट्स: द वर्ल्ड्स ऑफ मुंशी प्रेमचंद. इन: ए कंपेनियन टू वर्ल्ड लिटरेचर. 2020. पृ. 1-10.
6. हैदर डब्ल्यू. ए रीडिंग ऑफ प्रेमचंद्स उर्दू स्टोरीज़ इन पॉलिटिकल, सोशल, इकनॉमिक एंड रूरल कॉन्टेक्स्ट्स. नूर-ए-तहकीक. 2024;8(03):54-66.
7. जयलक्ष्मी के. सोशल रिफॉर्मर प्रेमचंद – ए रिव्यू. जे लिट लैंग लिंग्विस्ट. 2016;20:44-6.
8. कुमार बी. स्ट्रक्चरल वायलेंस: ए टूल ऑफ ऑपरेशन इन मुंशी प्रेमचंद्स निर्मला. क्रिएट लॉन्चर. 2020;5(1):69-76.
9. नाहिद ए. मुल्कराज आनंद एंड प्रेमचंद: नॉवेलिस्ट्स विद सेम विजन एंड इम्प्राइटेड माइंड्स. क्रिएट लॉन्चर. 2020;5(2):141-8.
10. पांडे जी. प्रेमचंद एंड द पीजेंट्री: कस्ट्रेंड रेडिकलिज्म. इकॉन पॉलिट वीकली. 1983;1149-55.
11. प्रियंका पी, सेकर टी. डबल मार्जिनलाइजेशन एंड पावर पॉलिटिक्स इन प्रेमचंद्स “ठाकुर का कुआँ”. शैनलैक्स इंटर जे इंग्लिश. 2022.
12. रॉय एस. पॉलिटिक्स ऑफ स्कल्टिंग द ‘न्यू’ इंडियन वुमन इन प्रेमचंद्स स्टोरीज़: एवरीथिंग द मेम इज नॉट. साउथ एशिया रिस. 2016;36(2):229-40.
13. सहाय जीआर. हायरार्की, डिफरेंस एंड द कास्ट सिस्टम: ए

- स्टडी ऑफ रूरल बिहार. कंट्रीब इंडियन सोशियोल. 2004;38(1-2):113-36.
14. शांडिल्या कृ. द विडो, द वाइफ, एंड द कोर्टेसन: ए कंपरेटिव स्टडी ऑफ सोशल रिफॉर्म इन प्रेमचंदस सेवासदन एंड द लेट नाइंटीथ-सेंचुरी बंगाली एंड उर्दू नॉवेल. कॉम्प लिट स्टड. 2016;53(2):272-88.
 15. शर्मा एमके, रावत एवी. ए साइकोलॉजिकल सर्वे ऑफ प्रेमचंदस फेमस शॉर्ट स्टोरी कफन. जे एडव स्कॉलर्ली रेस अलाइड एजुक. 2024.
 16. शर्मा पीएम. चेस्ट बॉडीज, चेस्ट कैनन: नेशनलिस्ट डिस्कोर्स एंड द फीमेल परफॉर्मिंग बॉडी इन मुंशी प्रेमचंदस सेवासदन. साउथ एशियन रेव. 2021;42(3):234-49.
 17. शिल्पा सी. रिफ्लेक्शन ऑफ सोशल रियलिटीज इन मुंशी प्रेमचंदस नॉवेल प्रतिज्ञा. शोधकोश जे विस परफ आर्ट्स. 2024;5(1).
 18. सुंदरम आरएस. सोशल डॉमिनेंस एंड क्लास स्ट्रगल इन प्रेमचंदस द गिफ्ट ऑफ ए काउ. एंग्लिस्टिकम जे एसोस-ईस्ट इंग्ल लैंग अम स्टड. 2015;4(9):59-61.
 19. वनश्री. राइटिंग रूरल पॉवर्टी: "होरी" ऑफ गोदान इन श्रीलाल शुक्ल "होरी और उन्नीस सौ चौरासी". साउथ एशियन रेव. 2013;34(1):95-128.

Ref. No: MER-2025-1-084



P-ISSN: 3051-3502

E-ISSN: 3051-3510

International Journal of Multidisciplinary Evolutionary Research

Online Journal, Indexed Journal, Refereed Journal, Peer Reviewed Journal

Publication Certificate

सोनम सिंह

This Certificate confirms the publication of manuscript titled "प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में ग्रामीण भारत का चित्रण" in the International Journal of Multidisciplinary Evolutionary Research; 2025 July-December, Volume-6, Issue-2.

**Kamal
Publisher**

Email: multievolvementia.research@gmail.com



Website: www.internationalmultiresearch.com

संदर्भ ग्रंथ सूची

- [1]. अग्रवाल, आर. (2016). प्रेमचंद की कहानियों में नैतिक मूल्यबोध. जयपुर: नैतिक विचार प्रकाशन, पृ. 165.
- [2]. अग्रवाल, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों में न्यायबोध. दिल्ली: अक्षरदीप प्रकाशन, पृ. , पृ. 54
- [3]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 198।
- [4]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 193।
- [5]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 210।
- [6]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 226।
- [7]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 233।
- [8]. अग्रवाल, रामस्वरूप (1973). प्रेमचंद: समाज और साहित्य. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 242।
- [9]. अनंतराम, ए. (2012). हिंदी-उर्दू साहित्य में प्रेमचंद का योगदान. जयपुर: साहित्य सदन.
- [10]. अमृतराय. (1962). कलम का सिपाही. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 256-257.
- [11]. अमृतराय. (1962). कलम का सिपाही. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 80.
- [12]. इंद्रनाथ मदान. (वर्ष). प्रेमचंद: एक विवेचन. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [13]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1240
- [14]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1246
- [15]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1234
- [16]. उपाध्याय, एस. (2010). औपनिवेशिक भारत में प्रेमचंद की किसान दृष्टि: नैतिक अर्थव्यवस्था की पुनर्व्याख्या. मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 45., पृ. 1230

- [17]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 25.
- [18]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [19]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [20]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 29.
- [21]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [22]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [23]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 26.
- [24]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 33.
- [25]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 34.
- [26]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 240.
- [27]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 241.
- [28]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 241.
- [29]. कमल किशोर गोयनका. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 243.
- [30]. कुमार, 202, पृ. 103-105
- [31]. कुमार, के. (2020). बाल पात्र और नैतिक मूल्यों का विकास: प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन. पटना: भारती भवन।
- [32]. कुमार, जे. (2021). हिंदी कहानी में सामाजिक संरचना का पुनर्पाठ. बनारस: मानवदीप प्रकाशन, पृ. 88.
- [33]. कुमार, डी. (2022). प्रेमचंद का साहित्य और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: साहित्य भवन.

- [34]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 112
- [35]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 212
- [36]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 122
- [37]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 120
- [38]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 103-105
- [39]. कुमार, ब्रिजेश (2022). 'निर्मला' उपन्यास में संरचनात्मक हिंसा: एक सामाजिक विश्लेषण. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 1, पृ. 75
- [40]. कुलश्रेष्ठ, एस. (2016). ग्राम्य जीवन और नैतिक ताना-बाना. आगरा: लोक साहित्य प्रकाशन, पृ. 67.
- [41]. खान, मोहम्मद अकबर (2025). 'ठाकुर का कुआँ' में सामाजिक असंवेदनशीलता की नैतिक व्याख्या. ब्रिजिंग पर्सपेक्टिव्स इन सोशल साइंसेज, खंड 3, अंक 7, पृ. 91
- [42]. गुप्त, रामदीन. (1988). भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ. 105.
- [43]. गुप्ता, ए. (2019). साहित्य और समाज के बीच संवाद: प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण. जयपुर: शिवना प्रकाशन।
- [44]. गुप्ता, एन. (2017). प्रेमचंद और नैतिक मूल्य: एक अध्ययन. दिल्ली: सत्य साहित्य प्रकाशन, पृ. 173.
- [45]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 97; शुक्ल, 2010, पृ. 125
- [46]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 101; शुक्ल, 2010, पृ. 128
- [47]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 91
- [48]. गुप्ता, एम. (2018). प्रेमचंद की कहानियों का सामाजिक विश्लेषण. लखनऊ: साहित्य भवन, , पृ. 94
- [49]. गुप्ता, डॉ. शीला. (1972). भारतीय समाज और राष्ट्रीय आंदोलन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 34.

- [50]. गुप्ता, डॉ. शीला. (1972). भारतीय समाज और राष्ट्रीय आंदोलन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 40.
- [51]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 213.
- [52]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 220.
- [53]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 224.
- [54]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 229.
- [55]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 230.
- [56]. गुप्ता, बी. (2017). प्रेमचंद: एक मूल्यपरक दृष्टिकोण. वाराणसी: साहित्य शोध संस्थान, पृ. 234.
- [57]. गुलाटी, एन. (2015). प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी चेतना. चंडीगढ़: मानव पब्लिशर्स.
- [58]. गोयनका, कमल किशोर. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 25.
- [59]. गोयनका, कमल किशोर. (1981). प्रेमचंद: एक जीवनी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 39.
- [60]. गोस्वामी, के. (2022). सत्ता, नैतिकता और प्रेमचंद का यथार्थवाद. दिल्ली: अनुभव साहित्य निकेतन, पृ. 96.
- [61]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 119।
- [62]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 124।
- [63]. गोस्वामी, हरिनारायण (1984). प्रेमचंद की कहानियों का समाजशास्त्र. जयपुर: साहित्य प्रसार संस्थान, पृ. 121।
- [64]. चंद्रा, एस. (1982). प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक दृष्टि. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- [65]. चंद्रा, एस. (2020). प्रेमचंद का यथार्थवाद और सामाजिक सुधार की चेतना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

- [66]. चतुर्वेदी, एम. (2017). प्रेमचंद और न्याय का नैतिक आधार. इलाहाबाद: लोकवाणी प्रकाशन, पृ. 79.
- [67]. चतुर्वेदी, सीताराम. (1968). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- [68]. चुडाल, ए. ए. (2018). शिवरानी देवी की 'प्रेमचंद घर में' में आत्मकथा और गृहस्थी का अंतर्संबंध. क्राकोव इंडोलॉजिकल स्टडीज़, खंड 20, पृ. 92
- [69]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 93।
- [70]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 98।
- [71]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 105।
- [72]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 107-109।
- [73]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 119।
- [74]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 133।
- [75]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 151।
- [76]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 162।
- [77]. चुडाल, रेखा (2018). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में नैतिकता और मानवीयता की अवधारणा. वाराणसी: साहित्य अध्ययन प्रकाशन, पृ. 170।
- [78]. जैन, एन. (2020). प्रेमचंद और आधुनिक नैतिक दृष्टिकोण. भोपाल: संवाद प्रकाशन, पृ. 314.
- [79]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 229.
- [80]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 232.
- [81]. जैन, पी. (2013). लोकसंस्कृति और हिंदी साहित्य. इंदौर: प्रभा पब्लिकेशन, पृ. 174.

- [82]. जैन, लक्ष्मण कुमार (2021). प्रेमचंद की कहानियों में राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक रूप. जर्नल ग्लोबल वैल्यूज, खंड 12, अंक 1, पृ. 18
- [83]. जैनेन्द्र कुमार. (1973). जैनेन्द्र की पत्रावली. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.
- [84]. जोशी, एन. (2020). समाज और न्याय की परंपरा: प्रेमचंद की दृष्टि में. जयपुर: साहित्य निकेतन, पृ. 89.
- [85]. जोशी, के. (2020). कर्तव्य, साहस और प्रेमचंद की कथा-दृष्टि. वाराणसी: विवेकानंद साहित्य निकेतन, पृ. 190.
- [86]. टंडन, रामचंद्र. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 357.
- [87]. टंडन, रामचंद्र. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 377.
- [88]. ठाकुर, रवींद्रनाथ. (1936). रवींद्र रचनावली (खंड 12). कोलकाता: विश्वभारती प्रकाशन.
- [89]. तिवारी, ए. (2018). हिंदी कथा साहित्य में समाज और नैतिकता. लखनऊ: नववाणी पब्लिशिंग, पृ. 97.
- [90]. तिवारी, एन. (2021). न्याय, मूल्य और साहित्यिक दृष्टिकोण. बनारस: सामाजिक विमर्श बुक्स, पृ. 203.
- [91]. तिवारी, एम. (2022). परंपरा और परिवर्तन: प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक चेतना. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ।
- [92]. तिवारी, एल. (2020). हिंदी कथा साहित्य और सामाजिक नियंत्रण. बनारस: नववाणी पब्लिशिंग, पृ. 93.
- [93]. तिवारी, एस. (2012). हिंदी कथा साहित्य और सामाजिक मूल्य. दिल्ली: साहित्य निधि, पृ. 198.
- [94]. तिवारी, एस. (2013). हिंदी कथा साहित्य और नैतिकता. वाराणसी: विद्या प्रकाशन, , पृ. 136
- [95]. तिवारी, एस. (2018). प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि और पात्र निर्माण. इलाहाबाद: लोकशक्ति प्रकाशन, पृ. 175.
- [96]. तिवारी, सीमा (2021). प्रेमचंद की कहानियों में स्त्री और संवेदना का रूपांतरण. प्रयागराज: संवाद साहित्यिक समीक्षा, पृ. 124।
- [97]. त्रिपाठी, आर. (2020). प्रेमचंद की नायिकाएँ: स्वतंत्रता और नैतिक चेतना. बनारस: संस्कृति साहित्य भवन, पृ. 345.
- [98]. त्रिपाठी, एन. (2020). सामाजिक बहिष्कार और हिंदी कहानी. पटना: नवप्रभा प्रकाशन, पृ. 99.

- [99]. त्रिपाठी, एस. (2020). प्रेमचंद का समाजदर्शन. दिल्ली: भारतीय ग्रंथालय, पृ. 137.
- [100]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 164.
- [101]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 166.
- [102]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 172.
- [103]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 174.
- [104]. त्रिपाठी, के. (2016). साहित्य और समाज सुधार आंदोलन. भोपाल: जन चेतना प्रकाशन, पृ. 182.
- [105]. त्रिवेदी, एच. (2022). आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में कथा-शैली और नैतिक प्रभाव. नई दिल्ली: रूटलेज इंडिया।
- [106]. त्रिवेदी, एन. (2017). प्रेमचंद और सामाजिक न्याय का विमर्श. दिल्ली: नववाणी प्रकाशन, पृ. 84.
- [107]. दत्त, एन. (2020). नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व. कोलकाता: चेतना पब्लिशर्स, पृ. 134.
- [108]. दत्त, एम. (2015). प्रेमचंद और नैतिक चेतना. दिल्ली: साहित्य विमर्श प्रकाशन, पृ. 144.
- [109]. दत्ता, एस. (2019). प्रेमचंद की कहानियाँ और सामाजिक न्याय. दिल्ली: न्यायधारा प्रकाशन, पृ. 106.
- [110]. दवे, एम. (2021). वर्ग और नैतिकता का द्वंद्व हिंदी उपन्यासों में. जयपुर: विमर्श बुक्स, पृ. 143.
- [111]. दास, एम. (2019). सामाजिक यथार्थ और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद का साहित्य. दिल्ली: नवचेतना बुक्स, पृ. 181.
- [112]. दास, जे. (2021). न्याय की नैतिक अवधारणा: हिंदी साहित्य में अध्ययन. पटना: चेतना साहित्य सदन, पृ. 108.
- [113]. दुबे, ए. (2019). प्रशासनिक नैतिकता और प्रेमचंद की कहानियाँ. दिल्ली: राजनैतिक विमर्श प्रकाशन, पृ. 193.
- [114]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 191.

- [115]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 196.
- [116]. दुबे, एल. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. कानपुर: भारतीय ज्ञान निकेतन, पृ. 199.
- [117]. द्विवेदी, आर. (2021). हिंदी कथा साहित्य में सामाजिक संस्थाएँ और नैतिक चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- [118]. द्विवेदी, क. (2019). ग्राम्य जीवन और साहित्यिक न्याय. बनारस: सरस्वती पब्लिशिंग हाउस, पृ. 112.
- [119]. द्विवेदी, यू. (2020). साहित्य और सुधार की राजनीति. लखनऊ: जनलोक साहित्य, पृ. 160.
- [120]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 288।
- [121]. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 285।
- [122]. नस्कर, एस. (2023). प्रेमचंद और राष्ट्रवादी चेतना. कोलकाता: प्रगतिशील प्रकाशन.
- [123]. नाहिद, अफशान (2020). मुल्कराज आनंद और प्रेमचंद: समान दृष्टिकोण के उपन्यासकार. द क्रिएटिव लॉन्चर, खंड 5, अंक 2, पृ. 58
- [124]. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी. (1936). निराला रचनावली (खंड 4). इलाहाबाद: साहित्य भवन.
- [125]. पुरी, रक्षा. (1970). प्रेमचंद का साहित्य और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: साहित्य भवन, पृ. 235.
- [126]. प्रियांका, पी. एवं सेकर, टी. (2022). प्रेमचंद की 'ठाकुर का कुआँ' में डबल हाशियाकरण और सत्ता राजनीति. शानलैक्स इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंग्लिश, खंड 11, अंक 1, पृ. 4
- [127]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49
- [128]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49-50
- [129]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 51-52
- [130]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 51
- [131]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 52-53
- [132]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 53
- [133]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 49-51
- [134]. प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, डायमंड पॉकेट बक्स (प्रा.) लि, पृ. 50

- [illegible]

- 323

- [169]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 17-21
- [170]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 19-22
- [171]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 21-23
- [172]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 11-12
- [173]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12-13
- [174]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 15
- [175]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 11-14
- [176]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 14-16
- [177]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 12-15
- [178]. प्रेमचंद, (2015), बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल), शिक्षा भारती, पृ. 13-16
- [179]. प्रेमचंद. (1999). प्रतिज्ञा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [180]. प्रेमचंद. (1999). प्रेमाश्रम. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 51.
- [181]. प्रेमचंद. (1999). प्रेमाश्रम. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 86.
- [182]. प्रेमचंद. (1999). वरदान. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 68.
- [183]. प्रेमचंद. (2005). 'सेवासदन'. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 8.
- [184]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-65
- [185]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 66-68
- [186]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-68
- [187]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियाँ (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65-67

- [188]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 67-68
- [189]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 64-66
- [190]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65
- [191]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 68
- [192]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 66-67
- [193]. प्रेमचंद. (2015). शतरंज के खिलाड़ी और अन्य कहानियां (सुरेश सलिल, सं.). दिल्ली: शिक्षा भारती, , पृ. 65-66
- [194]. प्रेमचंद; डेविड रूबिन (1971). द वर्ल्ड ऑफ प्रेमचंद: सिलेक्टेड स्टोरीज़ ऑफ प्रेमचंद. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़, खंड 30, पृ. 497-498
- [195]. प्रेमचंद। (2015)। बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल)। शिक्षा भारती, पृ. 85-88
- [196]. प्रेमचंद। (2015)। बड़े घर की बेटी और अन्य कहानियाँ (संपा. सुरेश सलिल)। शिक्षा भारती, पृ. 50-55
- [197]. भटनागर, एस. (1989). भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, पृ. 141.
- [198]. भटनागर, के. (2019). गरीबी का मनोविज्ञान और प्रेमचंद की दृष्टि. लखनऊ: समाजशास्त्र बुक्स, पृ. 93.
- [199]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 23.
- [200]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 27.
- [201]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 28.
- [202]. मदन गोपाल. (2006). प्रेमचंद: जीवन और साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [203]. मदन गोपाल. (2016). प्रेमचंद: जीवन और कृतित्व. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 15.

- [204].मदन गोपाल. (2016). प्रेमचंद: जीवन और कृतित्व. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 16-17.
- [205].मलिक, आर. (2017). भारतीय परिवार और सत्ता संरचना. जयपुर: समवेत प्रकाशन, पृ. 109.
- [206].मल्होत्रा, वी. (2019). ईमानदारी और सामाजिक संरचना. लखनऊ: चेतना बुक्स, पृ. 172.
- [207].माथुर, ए. (2020). नारी नैतिकता और साहित्यिक विमर्श. जयपुर: संस्कृति प्रकाशन, पृ. 188.
- [208].माथुर, एस. (2019). हिंदी कथा साहित्य में स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व. लखनऊ: विद्या पब्लिशर्स, पृ. 365.
- [209].मित्तल, एन. (2018). प्रेमचंद और समाज सुधार की अवधारणा. दिल्ली: नैतिक चेतना प्रकाशन, पृ. 151.
- [210].मिश्र, एल. (2014). प्रेमचंद की कहानियाँ: सामाजिक परिप्रेक्ष्य में. लखनऊ: नववाणी प्रकाशन, पृ. 211.
- [211]. मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 57; वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 102
- [212].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 57
- [213].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 61
- [214].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 63
- [215].मिश्र, एस. (2014). हिंदी कहानी और वर्ग चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती, पृ. 68; वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 112
- [216].मिश्र, एस. (2017). सामाजिक असमानता और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद का साहित्यिक विश्लेषण. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
- [217].मिश्र, डी. (2020). समानता का सामाजिक विमर्श और प्रेमचंद. दिल्ली: नवचेतना प्रकाशन, पृ. 104.
- [218].मिश्र, वी. (2020). हिंदी साहित्य में सामाजिक आलोचना और नैतिक चेतना. नई दिल्ली: किताब महल।

- [219]. मिश्रा, डी. (2017). हिंदी साहित्य में नैतिक द्वंद्व. कानपुर: साहित्य मंदिर, पृ. 121.
- [220]. मिश्रा, पी. (2012). प्रेमचंद और बाल चेतना. पटना: ज्ञानदीप प्रकाशन, , पृ. 74
- [221]. मिश्रा, पी. (2019). प्रेमचंद और नैतिकता के प्रयोग. दिल्ली: साहित्य विमर्श प्रकाशन, पृ. 164.
- [222]. मिश्रा, विमल कुमार (2019). प्रेमचंद का सामाजिक दृष्टिकोण: वर्ग, जाति और धर्म की समीक्षा. प्रयागराज: हिंदी अकादमी प्रकाशन, पृ. 118।
- [223]. मुखर्जी, एम. (2016). परिवार और नैतिक संरचना: हिंदी कथा साहित्य में अध्ययन. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [224]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 79.
- [225]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 82.
- [226]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 85.
- [227]. मेहता, किरण. (2014). हिंदी कहानी और नैतिक दृष्टिकोण. अहमदाबाद: कलाश्री प्रकाशन, पृ. 90.
- [228]. मेहरा, एस. (2021). हिंदी कहानियों में स्त्री दृष्टिकोण. दिल्ली: नारी विमर्श प्रकाशन, पृ. 348.
- [229]. यादव, आर. (2014). भारतीय समाज और स्त्री चेतना: साहित्यिक परिप्रेक्ष्य. लखनऊ: नवयुग प्रकाशन, , पृ. 112
- [230]. यादव, आर. (2014). भारतीय समाज और स्त्री चेतना: साहित्यिक परिप्रेक्ष्य. लखनऊ: नवयुग प्रकाशन, , पृ. 112
- [231]. यादव, आर. (2018). हिंदी कहानियों में दलित चेतना. वाराणसी: समता साहित्य केंद्र, पृ. 102.
- [232]. यादव, वी. (2017). भारतीय पंचायत और नैतिक न्याय. लखनऊ: गवेषणा पब्लिकेशन, पृ. 76.
- [233]. यादव, वी. (2019). प्रेमचंद की नारी दृष्टि और स्वतंत्रता की अवधारणा. वाराणसी: नंदिता प्रकाशन, पृ. 320.
- [234]. रंजन, एस. (2019). प्रेमचंद की कहानियों में सामुदायिक नैतिकता. दिल्ली: साहित्य सन्दर्भ, पृ. 88.

- [235].रस्तोगी, के. (2021). न्याय और साहित्यिक विवेक: प्रेमचंद का पुनर्पाठ. इलाहाबाद: संवाद ग्रंथमाला, पृ. 105.
- [236].रहबर, हंसराज. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 52.
- [237].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 111
- [238].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 112
- [239].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 98
- [240].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 150
- [241].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 88
- [242].रहमतुल्ला, नूरजहाँ (2017). प्रेमचंद की लघुकथाओं में यथार्थवाद की अवधारणा. द क्लैरियन - अंतरराष्ट्रीय बहुविषयी शोध पत्रिका, खंड 6, अंक 2, पृ. 143
- [243].राजक, एस. (2020). 'सद्गति' में दलित चेतना और नैतिक द्वंद्व. रूपकथा - बहुविषयी मानविकी शोध पत्रिका, खंड 12, अंक 4, पृ. 94
- [244].राजकुमार. (1962). कांग्रेस का इतिहास और विचारधारा. नई दिल्ली: जनवादी प्रकाशन, पृ. 214.
- [245].राठौर, बी. (2018). प्रेमचंद की कृतियों में वर्ग चेतना. आगरा: समाज बोध प्रकाशन, पृ. 133.
- [246].रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 443.
- [247].रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 444.

- [248].रामचन्द्र टंडन. (1947). हिंदुस्तान की कहानी. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 447.
- [249].राय, ए. (2017). प्रेमचंद के साहित्य में मानवतावाद और नैतिक दृष्टि. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- [250].राय, ए. (2019). 'गोदान' में नैतिक संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन. वाराणसी: नववाणी बुक्स, पृ. 155.
- [251].राय, ए. (2019). भाषा, संस्थाएँ और नैतिकता: प्रेमचंद साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- [252].राय, ए. (2021). कथा-संवाद और नैतिक अभिप्राय: हिंदी साहित्य में अध्ययन. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
- [253].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 141.
- [254].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 147.
- [255].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 149.
- [256].राय, एस. (2018). भारतीय भाषाओं में प्रेमचंद का प्रभाव. कोलकाता: साहित्य विमर्श केंद्र, पृ. 152.
- [257].राय, बी. (2020). हिंदी साहित्य में जल और जाति का प्रतीकात्मक विमर्श. लखनऊ: साहित्य विचार मंच, पृ. 95.
- [258].राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 118।
- [259].राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 121।
- [260].राय, शशि भूषण (1989). प्रेमचंद और हिंदी यथार्थवाद. लखनऊ: साहित्य भवन, पृ. 124।
- [261].राव, आर. (2019). प्रेमचंद की कथाओं में न्याय और नैतिक सत्ता. हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- [262].रॉय, पी. (2019). नैतिकता और असमानता का साहित्यिक विश्लेषण. कोलकाता: दृष्टि पब्लिशर्स, पृ. 124.
- [263].रोचर, एल. (1970). प्रेमचंद ऑफ लमही विलेज. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज, खंड 30, पृ. 226

- [264].वर्मा, एस. (2020). प्रेमचंद और सामाजिक नैतिकता का पुनर्पाठ. बनारस: दृष्टिकोण प्रकाशन, पृ. 105.
- [265].वर्मा, टी. (2021). स्त्री स्वाधीनता और हिंदी कथा साहित्य. लखनऊ: भाषा संस्कृति केंद्र, पृ. 330.
- [266].वर्मा, डी. (2015). नैतिकता और भारतीय कथा परंपरा. बनारस: संवेदना प्रकाशन, पृ. 91.
- [267].वर्मा, डी. (2015). नैतिकता बनाम सामाजिक स्वीकृति. इलाहाबाद: संस्कृति प्रकाशन, 2015, पृ. 91
- [268].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 91.
- [269].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 95.
- [270].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 97.
- [271].वर्मा, डी. (2015). प्रेमचंद और नैतिक साहित्य. नई दिल्ली: साहित्य मंदिर, पृ. 91.
- [272].वर्मा, डी. (2018). प्रेमचंद में नैतिक पहचान और सामाजिक अनुभव. नई दिल्ली: मनोहर प्रकाशन।
- [273].वर्मा, डी. (2020). भावना, लज्जा और आत्म-सम्मान: प्रेमचंद के पात्रों का नैतिक विकास. भोपाल: मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- [274].वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 102
- [275].वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 105
- [276].वर्मा, पी. (2016). प्रेमचंद के कथा साहित्य में नैतिकता. वाराणसी: विश्वविद्या प्रकाशन, पृ. 109
- [277].वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 105।
- [278].वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 130।
- [279].वर्मा, रजनीश (2019). प्रेमचंद की कहानियों में यथार्थ और सामाजिक आलोचना. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 134।

- [280].वाजपेयी, नंददुलारे (1962). हिंदी साहित्य और समाज. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 191।
- [281].शरण, टी. (2021). जाति, नैतिकता और प्रेमचंद की दृष्टि. पटना: यथार्थ प्रकाशन, पृ. 117.
- [282].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 84
- [283].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 88
- [284].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 90
- [285].शर्मा, आर. (2012). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन,, पृ. 93
- [286].शर्मा, ए. (2011). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: साहित्य संगम, पृ. 88
- [287].शर्मा, ए. (2011). प्रेमचंद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: साहित्य संगम, , पृ. 88
- [288].शर्मा, एस. (2017). हिंदी कहानियों में आत्म-सम्मान और नैतिक साहस. जयपुर: रावत पब्लिकेशंस।
- [289].शर्मा, एस. (2018). परिवार, करुणा और नैतिक संघर्ष: प्रेमचंद की कहानियों का अध्ययन. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- [290].शर्मा, के. (2021). हिंदी साहित्य में आत्मनिर्णय और स्त्री चेतना. दिल्ली: नवचेतना पब्लिकेशन, पृ. 308.
- [291].शर्मा, जे. (2017). प्रेमचंद का सामाजिक यथार्थ और नैतिक दृष्टि. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, , पृ. 86
- [292].शर्मा, डी. (2021). प्रेमचंद का नैतिक समाजदर्शन. जयपुर: संवाद प्रकाशन, पृ. 158.
- [293].शर्मा, दीपक (2022). भारतीय समाज का यथार्थ और प्रेमचंद का साहित्यिक दृष्टिकोण. लखनऊ: साहित्य विमर्श पत्रिका, पृ. 47।
- [294].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 49

- [295].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 100
- [296].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 118-120
- [297].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 128
- [298].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 130
- [299].शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 152
- [300]. शर्मा, दीपिका (2024). 'ईदगाह' और 'काबुलीवाला' में आयु-चेतना और नैतिक मनोविज्ञान का विश्लेषण. एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन: थ्योरी एंड प्रैक्टिस, खंड 30, अंक 4, पृ. 156
- [301].शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 210।
- [302].शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 222।
- [303].शर्मा, रामविलास (1955). प्रेमचंद और उनका युग. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 219।
- [304].शर्मा, रामविलास. (1967). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 7.
- [305].शर्मा, रामविलास. (1986). प्रेमचंद और भारतीय समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- [306].शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 83.
- [307].शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 86.

- [308].शर्मा, वी. (2014). हिंदी कहानी और यथार्थवाद. जयपुर: साहित्य साधना, पृ. 89.
- [309].शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 140।
- [310].शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 142।
- [311]. शर्मा, संजय कुमार एवं पराग, कुमार (2025). प्रेमचंद के उपन्यासों में मानवीयता और सामाजिक चेतना: एक नैतिक दृष्टि से अध्ययन. द वॉइस ऑफ क्रिएटिव रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृष्ठ 148-150।
- [312]. शास्त्री, के. (2018). हिंदी कहानियों में ईमानदारी का स्वरूप. बनारस: नीतिधारा प्रकाशन, पृ. 179.
- [313]. शाह, एम. (2021). हिंदी साहित्य में मानवीय अधिकारों की अवधारणा. मुंबई: मानवमंच प्रकाशन, पृ. 92.
- [314]. शाह, एल. (2019). नारी अस्मिता और साहित्यिक पहचान. जयपुर: संवाद प्रकाशन, पृ. 352.
- [315]. शिवनारायण श्रीवास्तव. (2016). प्रेमचंद और राष्ट्रीय चेतना. वाराणसी: भारतीय साहित्य केंद्र.
- [316]. शिवरानी देवी प्रेमचंद. (वर्ष). प्रेमचंद: घर में. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 41.
- [317]. शिवरानी देवी प्रेमचंद. (वर्ष). प्रेमचंद: घर में. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 71.
- [318]. शिवहरे, आर. (2018). प्रेमचंद: न्याय और सामाजिक विवेक. दिल्ली: अनुभव पब्लिशर्स, पृ. 82.
- [319]. शुक्ल, आर. (2019). नैतिकता और वर्ग भेद का विश्लेषण: 'गोदान' के संदर्भ में. वाराणसी: साहित्य विमर्श, पृ. 141.
- [320]. शुक्ला, ए. (2019). साहित्य और समाज: प्रेमचंद की मूल्य दृष्टि. दिल्ली: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 91.
- [321]. शुक्ला, के. (2021). हिंदी कथा साहित्य में नैतिक न्याय की अवधारणा. भोपाल: दृष्टिकोण बुक्स, पृ. 110.
- [322]. शुक्ला, बी. (2020). प्रेमचंद की कहानियों में नैतिकता और सामाजिक स्थिति. इलाहाबाद: सत्यप्रकाशन, पृ. 358

- [323].शुक्ला, र. (2017). प्रेमचंद की कथा दृष्टि. बनारस: साहित्य संदर्भ केंद्र, पृ. 122.
- [324].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 59.
- [325].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 63.
- [326].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 66.
- [327].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 69.
- [328].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 72.
- [329].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 68.
- [330].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 80.
- [331].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 77.
- [332].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 70.
- [333].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 72.
- [334].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 85.
- [335].शुक्ला, र. (2018). हिंदी कथा का यथार्थ. इलाहाबाद: गंगा प्रकाशन, पृ. 87.
- [336].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 226।
- [337].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 243।
- [338].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 279।
- [339].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 283।
- [340].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 285।
- [341].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 287।
- [342].श्रीवास्तव, हजारीप्रसाद द्विवेदी (1956). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 290।
- [343].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 370.
- [344].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 371.
- [345].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 372.

- [346].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 373.
- [347].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 375.
- [348].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 378.
- [349].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 370.
- [350].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 369.
- [351].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 380.
- [352].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 386.
- [353].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 391.
- [354].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 400.
- [355].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 403.
- [356].सक्सेना, आर. (2020). नैतिकता, निर्णय और प्रेमचंद. भोपाल: भारतीय साहित्य निकेतन, पृ. 369
- [357].सक्सेना, एल. (2020). व्यक्तिगत संघर्ष और नैतिकता: प्रेमचंद का दृष्टिकोण. वाराणसी: नीतिकथा प्रकाशन, पृ. 169.
- [358].सक्सेना, डी. (2018). प्रेमचंद और सामाजिक विमर्श. दिल्ली: मानव चेतना प्रकाशन, पृ. 88.
- [359].सक्सेना, रामलाल (1958). हिंदी कहानी का विकास. वाराणसी: ज्ञानमंडल लिमिटेड, पृ. 203।
- [360].सत्यकाम. (1994). ब्रिटिश शासन और भारतीय राजनीति. लखनऊ: नवभारत प्रकाशन, पृ. 120.
- [361].सहगल, डी. (2018). प्रेमचंद और सामाजिक यथार्थ. दिल्ली: विचारधारा प्रकाशन, पृ. 101.

- [362].सहगल, वी. (2020). प्रेमचंद और न्याय की अवधारणा. लखनऊ: नैतिक विधि प्रकाशन, पृ. 199.
- [363].सांगवा, सुमित्रा एवं बेरा, प्रेम (2025). गांधीवादी से मार्क्सवादी दृष्टिकोण तक प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, खंड 7, अंक 4, पृ. 1-10
- [364].सानेही, सुरेंद्रनाथ (1964). प्रेमचंद के कथा-साहित्य में सामाजिक यथार्थ. प्रयागराज: साहित्य अकादमी, पृ. 132।
- [365].सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 215
- [366].सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 140-150
- [367].सिंह, अजय कुमार (2021). हिंदी कथासाहित्य में नैतिक चेतना और सामाजिक सरोकार. साहित्य विमर्श, खंड 9, अंक 3, पृ. 112
- [368].सिंह, अनिल (2021). राजनीति और समाज का यथार्थ: प्रेमचंद की कहानियों में सत्ता विमर्श. भोपाल: शोध भारती जर्नल, पृ. 214।
- [369].सिंह, आर. (2016). नैतिकता और सामाजिक संबंध: हिंदी साहित्य में परिप्रेक्ष्य. पटना: नवनीत साहित्य सदन, पृ. 97
- [370].सिंह, आर. (2018). प्रेमचंद में सामाजिक यथार्थ और नैतिक दृष्टि. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन।
- [371].सिंह, जे. (2019). प्रेमचंद और दलित विमर्श. वाराणसी: लोक साहित्य संस्थान, पृ. 81.
- [372].सिंह, नामवर (1957). कहानी: नई कहानी. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 176।
- [373].सिंह, नामवर (1983). कहानी: नई कहानी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 161।
- [374].सिंह, पी. (2022). ग्रामीण संस्थाएँ, पंचायत और नैतिक न्याय: हिंदी साहित्य में अध्ययन. लखनऊ: प्रभात प्रकाशन।
- [375].सिंह, शैलेन्द्र कुमार (2019). प्रेमचंद, राष्ट्रीयता और नागरिक प्रतिरोध. इंडियन इकॉनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, खंड 56, पृ. 181
- [376].सिन्हा, आर. (2010). साहित्य और नैतिक विवेक. भोपाल: सुधा साहित्य सदन,, पृ. 119
- [377].सुंदरम, आर. (2015). प्रेमचंद और दलित विमर्श. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

- [378].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 72-75
- [379].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 105
- [380].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 88
- [381].सैंगुसा, सतरूपा (2024). घासवाली कहानी में न्याय की अवधारणा: जाति और लैंगिक प्रतिरोध. स्मार्ट मूव्स जर्नल, खंड 12, अंक 2, पृ. 145
- [382].सेन, पी. (2021). कथा-संरचना और पाठक प्रतिक्रिया: प्रेमचंद का नैतिक प्रभाव. कोलकाता: पपाइरस प्रकाशन।
- [383].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 8.
- [384].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 70.
- [385].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 129.
- [386].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 130.
- [387].हंसराज 'रहबर'. (1962). प्रेमचंद: जीवन और व्यक्तित्व. लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, पृ. 156.
- [388].हरिभाऊ उपाध्याय. (1965). आधुनिक भारत का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 187-188.
- [389].हरिभाऊ उपाध्याय. (1965). प्रेमचंद और उनका युग. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृ. 55-56.



Journal of Frontiers in Multidisciplinary Research

आधुनिक भारतीय साहित्य में मुंशी प्रेमचंद की विरासत और प्रासंगिकता

सोनम सिंह ^{1*}, डॉ. जयसिंह यादव ²

¹ पी.एच.डी. शोध छात्रा, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

² शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

* Corresponding Author: **सोनम सिंह**

Article Info

E-ISSN: 3050-9726

P-ISSN: 3050-9718

Volume: 06

Issue: 02

July – December 2025

Received: 26-08-2025

Accepted: 28-09-2025

Published: 27-10-2025

Page No: 385-391

सारांश

मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक रचनाकर्म आधुनिक भारतीय कहानी और उपन्यास की दिशा तथा सामाजिक चेतना को पुनर्परिभाषित करता है। द्विभाषिक लेखन (हिंदी एवं उर्दू) और राष्ट्रवादी-गांधीवादी प्रभावों के समन्वय से उनका यथार्थवाद न केवल सामाजिक स्थितियों का सटीक वर्णन करता है, बल्कि नैतिक व्याख्या और सुधारवादी आग्रह भी प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद ने ग्रामीण भारत, कृषक वर्ग, दलित-वर्ग, स्त्रियाँ और श्रमिकों के जीवन को केंद्र में रखकर साहित्य को जन-आधारित और नैतिक उद्देश्यपरक बनाया; इसके परिणामस्वरूप साहित्य ने तंत्रगत अन्याय, जातिगत व आर्थिक शोषण तथा पितृसत्तात्मक संस्थाओं की आलोचना को सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनाया। उनकी शैली—सरल, बोलचाल की भाषा और गहन मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि—ने हिंदी व उर्दू गद्य दोनों में सार्वजनिकीकरण और लोकभाषिक यथार्थवाद को बढ़ावा दिया। प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद केवल कलात्मक तकनीक नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध और मानवीय करुणा का घोषणापत्र बना; इससे स्वतंत्रता साहित्यकारों जैसे रेणु, यशपाल, भीष्म साहनी तथा अंग्रेज़ी उपन्यासकारों में भी प्रभाव स्पष्ट होता है। समकालीन संदर्भों में उनकी विषयवस्तु—कृषि संकट, जाति-पितृसत्ता और लैंगिक असमानता—आज भी प्रासंगिक है, और उनका मानवतावाद पाठकों को नैतिक आत्मनिरीक्षण तथा सामाजिक सुधार की प्रेरणा देता है।

DOI: <https://doi.org/10.54660/JFMR.2025.6.2.385-391>

मुख्य शब्द: यथार्थवाद, सामाजिक चेतना, मानवतावाद, नैतिक दृष्टि, ग्रामीण जीवन, जाति और वर्गीय शोषण और द्विभाषिक साहित्य

1. परिचय: भारतीय साहित्यिक परंपरा में मुंशी प्रेमचंद की स्थिति

मुंशी प्रेमचंद (1880–1936), जिन्हें व्यापक रूप से “उपन्यास सम्राट” के रूप में जाना जाता है, आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में लेखन करते हुए, प्रेमचंद ने भाषाई, सांस्कृतिक और वैचारिक विभाजनों को पाटते हुए एक ऐसा साहित्यिक संसार रचा जिसने यथार्थवाद, सामाजिक न्याय और मानव करुणा को केंद्र में स्थापित किया। उनका साहित्यिक जीवन भारत के राष्ट्रवादी जागरण के दौर में शुरू हुआ—एक ऐसा समय जब देश गहरे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से गुजर रहा था। उस समय भारतीय साहित्य अब भी पौराणिक आख्यानों और रोमांटिक कल्पनाओं से बंधा हुआ था, लेकिन प्रेमचंद ने साहित्य को नैतिक और सामाजिक सुधार का माध्यम बनाकर उसमें एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया। उनकी प्रमुख रचनाएँ—गोदान, सेवासदन, और कर्मभूमि—किसानों, स्त्रियों और वंचित वर्गों के दैनिक संघर्षों को जीवंत रूप में प्रस्तुत करती हैं, जिससे भारतीय समाज का यथार्थ रूप उभरकर सामने आता है। उनका यथार्थवादी गद्य भारतीय जीवनानुभवों में निहित था, परंतु उसकी दृष्टि सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों पर आधारित थी, जिससे उनकी रचनाएँ सामाजिक और कलात्मक दोनों दृष्टियों से कालजयी बन गई (चंद्रा, 1982) ^[1]। प्रेमचंद का साहित्यिक उद्देश्य राष्ट्रवादी भावना से गहराई से जुड़ा था—वे मानते थे कि उपनिवेशित समाज के लेखकों का कर्तव्य है कि वे अन्यायों को उजागर करें और सुधार की प्रेरणा दें। इस प्रकार उन्होंने कला को सामाजिक सक्रियता (एक्टिविज़्म) से जोड़ दिया।

भारतीय साहित्यिक परंपरा में प्रेमचंद की विरासत उनके मानवतावादी दृष्टिकोण, सामाजिक यथार्थ के प्रति निष्ठा, और सत्य के प्रति अडिग समर्पण में निहित है। उनका प्रभाव भाषा और समय की सीमाओं से परे जाकर भारतीय यथार्थवाद के विषयगत और शैलीगत विकास को दिशा देता है। बाद के लेखकों जैसे मुल्कराज आनंद, आर.के. नारायण, और फणीश्वरनाथ रेणु ने उनके गरीब और वंचित वर्गों के प्रति सरोकार को आगे बढ़ाया, जबकि जाति, वर्ग और लिंग के उनके सूक्ष्म विश्लेषण आज भी उत्तर-औपनिवेशिक और उपेक्षित (सबाल्टर्न) विमर्शों में प्रतिध्वनित होते हैं। हाल के अध्ययनों (जयरलक्ष्मी, 2016) ने प्रेमचंद को एक सामाजिक सुधारक और सांस्कृतिक प्रतीक दोनों के रूप में देखा है। उन्होंने जातिगत उत्पीड़न, नारी मुक्ति और भाषाई पहचान जैसे विषयों पर गहन विचार करते हुए स्वयं को दलित और नारीवादी साहित्यिक आंदोलनों का अग्रदूत सिद्ध किया। साहित्य की भाषा को जनता की भाषा बनाकर, प्रेमचंद ने भारतीय कथा-साहित्य को नैतिक जागृति और सामूहिक चेतना का माध्यम बना दिया। आज भी उनकी प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि उन्होंने न्याय, पहचान, और मानवता के शाश्वत संघर्षों को अभिव्यक्त किया—जो आज भी भारतीय समाज के केंद्र में हैं।

2. प्रेमचंद के लेखन का ऐतिहासिक और सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ

मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक जीवन एक ऐसे ऐतिहासिक दौर में विकसित हुआ जब भारत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दमन और राष्ट्रवादी चेतना के उदय से गुजर रहा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई स्वदेशी, असहयोग, और नागरिक अवज्ञा आंदोलन जैसे प्रयासों के माध्यम से राजनीतिक ही नहीं, बल्कि नैतिक मुक्ति की ओर भी अग्रसर थी। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में इस द्वैध संघर्ष—बाहरी शोषण और आंतरिक संघर्ष—को सजीव रूप में प्रस्तुत किया। उनकी रचनाएँ जैसे गोदान, कर्मभूमि, और सेवासदन भारत के राजनीतिक और सामाजिक जागरण की सशक्त कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। उनके कथा-संसार में किसान की भूख, विधवा की वेदना, और सुधारक की असफलता मात्र व्यक्तिगत त्रासदियाँ नहीं, बल्कि राष्ट्र की दासता के प्रतीक हैं। यथार्थवादी दृष्टि के माध्यम से उन्होंने कला को नैतिक चेतना से जोड़ा, यह विश्वास प्रकट करते हुए कि साहित्य का उद्देश्य समाज की सामूहिक चेतना को जागृत करना और स्वतंत्रता के आदर्श को सशक्त बनाना है। ग्रामीण भारत का उनका गहन चित्रण—जो औपनिवेशिक आर्थिक शोषण और सामाजिक विषमताओं से जकड़ा हुआ था—उनकी उस अटूट प्रतिबद्धता को दर्शाता है जो वे अपने युग के सत्य और यथार्थ के प्रतिनिधित्व के प्रति रखते थे।

2.1. औपनिवेशिक भारत और राष्ट्रवादी आंदोलन – स्वतंत्रता संग्राम ने कैसे प्रेमचंद की विषयवस्तु और राजनीतिक दृष्टि को आकार दिया

प्रेमचंद का विश्वदृष्टिकोण गहराई से राष्ट्रवादी आंदोलन और भारत की औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध संघर्ष से प्रभावित था। उनकी प्रारंभिक उर्दू कहानी-संग्रह "सोज़-ए-वतन" को उसके राष्ट्रवादी संदेश के कारण ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया—यह घटना उनके जीवनभर की मुक्ति की राजनीति से जुड़ाव की शुरुआत बनी। औपनिवेशिक अनुभव ने उनमें प्रणालीगत अन्याय के प्रति गहरी संवेदनशीलता विकसित की, जो उनके लेखन का केन्द्रीय विषय बन गया। अपने समकालीनों के विपरीत, प्रेमचंद ने राष्ट्रवाद का रोमानीकरण नहीं किया, बल्कि उसके सामाजिक आयामों और

नैतिक जटिलताओं की पड़ताल की। अपने उपन्यास "कर्मभूमि" में उन्होंने ऐसे पात्रों का चित्रण किया जो अहिंसा और सामाजिक सुधार की नैतिक चुनौतियों से जूझते हैं, जो गांधीजी के विचारों के प्रति उनके गहरे प्रभाव को दर्शाता है। प्रेमचंद के लिए राष्ट्रवाद केवल विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष नहीं था, बल्कि आंतरिक शोषण—जाति, गरीबी और लैंगिक असमानता—के विरुद्ध भी एक आंदोलन था। उनका राष्ट्रवाद राजनीतिक से अधिक मानवीय था, जिसका उद्देश्य आम लोगों में करुणा, नैतिकता और आत्मबोध को जागृत करना था। वे मानते थे कि लेखक एक नैतिक मार्गदर्शक है, जिसका कर्तव्य है स्वतंत्र भारत की नैतिक और सामाजिक नींव को आकार देना।

2.2. सामाजिक सुधार आंदोलन और उनका प्रभाव – गांधीवादी आदर्श, जाति सुधार और ग्रामीण उत्थान का प्रतिबिंब प्रेमचंद के साहित्य में

प्रेमचंद के साहित्य में भारत के स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ चलने वाले सामाजिक सुधार आंदोलनों की गहरी छाप दिखाई देती है, विशेषकर वे जो महात्मा गांधी के आदर्शों से प्रेरित थे। गांधीजी के सादगी, सत्य और सेवा के संदेश ने प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि और नैतिक चिंतन को गहराई से प्रभावित किया। उनके उपन्यास और कहानियाँ केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनती हैं। उपन्यास 'सेवासदन' में उन्होंने स्त्री की स्थिति, समाज की नैतिक पाखंडिता और नारी-सुधार की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। यह कृति आत्मबोध और सेवा के माध्यम से मुक्ति के उस गांधीवादी विचार को मूर्त रूप देती है। इसी प्रकार 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' जैसे उपन्यासों में उन्होंने विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा और स्त्री-चेतना के प्रश्नों को उठाया, जो बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक सुधारवादी एजेंडे से गहराई से जुड़े हुए थे।

प्रेमचंद की लेखनी ने जाति-व्यवस्था और ग्रामीण जीवन के उत्थान को भी केंद्र में रखा, जिससे वे निर्वाचितों के नहीं, बल्कि वंचितों के स्वर बन गए। उनके पात्र प्रायः समाज के सबसे निचले तबकों से आते हैं—किसान, मज़दूर और दलित—जिन्हें औपनिवेशिक शोषण के साथ-साथ स्वदेशी सामाजिक अन्याय ने भी पीड़ित किया। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचंद ने ग्रामीण किसानों के संघर्ष को राष्ट्र की सहनशीलता और गरिमा का प्रतीक बना दिया। उनका यथार्थवादी चित्रण सहानुभूति पर आधारित था, दया पर नहीं; यह उनके उस विश्वास को व्यक्त करता है कि सच्ची स्वतंत्रता तभी संभव है जब भारत के गाँव समृद्ध और सशक्त हों। गांधीवादी मानवतावाद से प्रेरित उनका नैतिक समाजवाद समानता, करुणा और सामूहिक कल्याण की भावना पर आधारित था। प्रेमचंद का सुधारवादी दृष्टिकोण सर्वसमावेशी था—उन्होंने यथार्थवाद और नैतिक आदर्शवाद को मिलाकर भारतीय समाज के लिए नैतिक चेतना और सामाजिक संवेदना का एक आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत किया।

2.3. सामाजिक आलोचक के रूप में लेखक – अपने युग के सत्य के चित्रण के प्रति प्रेमचंद की प्रतिबद्धता

प्रेमचंद की साहित्यिक शक्ति उनके निडर यथार्थ चित्रण में निहित थी। उन्होंने पलायनवादी साहित्य को अस्वीकार करते हुए समाज के साधारण लोगों के संघर्ष, पाखंड और आशाओं को अपने लेखन का केंद्र बनाया। उनका यथार्थवाद केवल शैलीगत नहीं, बल्कि नैतिक प्रतिबद्धता से प्रेरित था। 'कफन' और 'पंच परमेश्वर' जैसी कहानियों में उन्होंने गरीबी और सामाजिक अन्याय से विकृत मानव व्यवहार की गहरी अंतर्विरोधपूर्ण वास्तविकताओं को उजागर किया। प्रेमचंद के लिए साहित्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि एक

नैतिक कर्म था—एक ऐसा माध्यम जिसके द्वारा वे उस पीड़ा और भ्रष्टाचार को प्रकट करते थे जिसे समाज प्रायः अनदेखा कर देता था। उनका साहित्य अपने समय का दर्पण था, जिसमें औपनिवेशिक शोषण, सामाजिक पतन और आधुनिकता के नैतिक संकट स्पष्ट दिखाई देते हैं। अपनी संवेदनशील दृष्टि से उन्होंने समाज के हाशिये पर खड़े लोगों को मानवता की गरिमा दी और पाठकों से नैतिक आत्ममंथन की अपेक्षा की। एक सामाजिक आलोचक के रूप में प्रेमचंद की अमर विरासत इस विश्वास में निहित है कि कला में सत्य का चित्रण स्वयं एक प्रतिरोध का कार्य है।

3. प्रेमचंद के कथा-साहित्य में यथार्थवाद और सामाजिक चेतना

मुंशी प्रेमचंद की साहित्यिक प्रतिभा उनकी उस अद्वितीय क्षमता में निहित है, जिसके द्वारा उन्होंने कलात्मक यथार्थवाद को गहरी नैतिक और सामाजिक चेतना के साथ जोड़ा। उन्होंने भारतीय कथा-साहित्य को रोमांटिक और पौराणिक आख्यानों से हटाकर सामान्य जीवन, संघर्ष और मानवीय पीड़ा की सच्ची अभिव्यक्ति की दिशा में अग्रसर किया। टॉल्स्टॉय के मानवतावाद और गांधीजी के नैतिक आदर्शों से प्रेरित होकर प्रेमचंद ने साहित्य को समाज परिवर्तन का नैतिक माध्यम बनाया। उनके उपन्यास 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'निर्मला' और कहानियाँ 'कफन', 'पंच परमेश्वर' बीसवीं शताब्दी के भारत की सामाजिक जटिलताओं और नैतिक विडंबनाओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। उनका यथार्थवाद मात्र चित्रण नहीं, बल्कि एक नैतिक व्याख्या था, जिसके माध्यम से वे मनुष्य की पीड़ा, उसकी विवशता और उसके भीतर छिपे नैतिक बल को प्रकट करते थे। उन्होंने गरीबों, किसानों, श्रमिकों और स्त्रियों को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखकर साहित्य को जनतांत्रिक स्वर और सामाजिक उद्देश्य प्रदान किया। उनके पात्र समाज के हाशिये पर खड़े वे लोग हैं जो अन्याय के शिकार होते हुए भी नैतिक दृढ़ता और मानवीय गरिमा को बनाए रखते हैं। 'गोदान' में उन्होंने जातिगत विभाजन, सामंती शोषण और शहरी पाखंड का चित्रण करते हुए भी आशा और मानवीयता के मूल्यों पर विश्वास बनाए रखा। वहीं 'कफन' और 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कहानियाँ जाति, गरीबी और स्त्री उत्पीड़न के यथार्थ को करुणा और सत्य की दृष्टि से उजागर करती हैं। उनकी सरल परंतु गहन भाषा, जीवन के प्रति ईमानदार दृष्टि और नैतिक उद्देश्य ने यथार्थवाद को केवल साहित्यिक तकनीक नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध और नैतिक जागरण का रूप दे दिया। प्रेमचंद का साहित्य एक दर्पण है, जो समाज की विषमता और पाखंड को उजागर करता है, और साथ ही पाठक के भीतर सहानुभूति, आत्ममंथन और परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करता है। इस प्रकार प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल साहित्य नहीं, बल्कि मानवता का नैतिक घोषणापत्र बनकर उभरता है, जो आज भी भारतीय समाज और साहित्य दोनों को दिशा देता है।

4. प्रेमचंद की कथा-शैली के माध्यम से हिंदी और उर्दू गद्य का विकास

मुंशी प्रेमचंद ने हिंदी और उर्दू गद्य को यथार्थवादी, सामाजिक और नैतिक आधार प्रदान कर साहित्य में निर्णायक मोड़ लाया। उन्होंने अलंकारिक शैली छोड़कर सरल, बोलचाल की भाषा अपनाई और कथा को जनता के करीब किया। प्रारम्भिक उर्दू रचनाएँ जैसे 'सोज़-ए-वतन' अन्याय और उत्पीड़न की पड़ताल का प्रारंभ थीं। टॉल्स्टॉय एवं गांधीवादी मानवीय आदर्शों से प्रभावित उनका यथार्थवाद मनोवैज्ञानिक गहराई और नैतिक व्याख्या दोनों समेटता है। 'कफन', 'पूँस की रात' और 'पंच परमेश्वर' जैसी कथाएँ लघुकथा को सामाजिक आत्ममंथन का माध्यम बनातीं; पात्र—किसान, विधवाएँ

और मजदूर—जनजीवन की भाषा बोलते हैं। प्रेमचंद ने गाँव को आदर्शवादी छवि की बजाय सामाजिक और आर्थिक पतन का दर्पण दिखाया, परन्तु हमेशा मानवीय गरिमा पर विश्वास रखा। उनके यथार्थवाद ने सहानुभूति और आलोचना का संतुलन स्थापित किया, जिसे 'नैतिक यथार्थवाद' कहा गया; इस तरह उन्होंने आधुनिक भारतीय उपन्यास और कहानी की नींव रखी। उनकी भाषा आज भी लेखन को सामाजिक जिम्मेदारी का पाठ पढ़ाती है।

4.1. उर्दू और हिंदी साहित्यिक परंपराओं के बीच सेतु – दोनों भाषाई संस्कृतियों को एकीकृत करने में प्रेमचंद की भूमिका

प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा उर्दू और हिंदी के बीच एकता और सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक है—एक ऐसा सेतु जिसने भाषाई, सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक विभाजनों को जोड़ा। उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत उर्दू में 'नवाब राय' के उपनाम से की, और बाद में हिंदी में लेखन आरंभ किया, किंतु इस परिवर्तन के दौरान उन्होंने उर्दू की काव्यात्मकता और सांस्कृतिक गहराई के प्रति अपनी संवेदनशीलता को बनाए रखा। यह परिवर्तन किसी अस्वीकृति का नहीं, बल्कि विस्तार का संकेत था—एक व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचने का प्रयास, जो उत्तर भारत की विविध भाषाई परंपराओं को समेटता था। प्रेमचंद की यह द्विभाषिक साहित्यिक पहचान उन्हें दोनों परंपराओं का साझा लेखक बनाती है। उनकी गद्य-शैली में उर्दू की नफ़ासत और हिंदी की सादगी का सुंदर सम्मिश्रण दिखाई देता है, जिसने उनके लेखन को एक सांस्कृतिक सेतु में बदल दिया। उन्होंने उस समय, जब भाषाई राष्ट्रवाद और सांप्रदायिकता उभर रही थी, सांस्कृतिक एकता और मानवतावाद की दृष्टि प्रस्तुत की। चाहे उनकी कहानियाँ उर्दू में हों या हिंदी में, उनमें निहित भारतीय आत्मा—करुणा, न्याय और नैतिक आत्ममंथन—समान रूप से प्रकट होती है। विद्वानों के अनुसार, भाषा की इस निरंतरता में उनका "आंतरिक संचलन" न केवल दोनों गद्य परंपराओं को आधुनिक बनाने में सहायक हुआ, बल्कि उसने एक ऐसी साझी सांस्कृतिक चेतना को जन्म दिया जो साम्प्रदायिक राजनीति से परे थी (वेसलर, 2015)^[17]।

5. कृषक वर्ग और वंचित स्वर का प्रतिनिधित्व

प्रेमचंद का कथा-साहित्य ग्रामीण भारत का एक जीवंत सामाजिक दस्तावेज़ है, जो किसानों और वंचित वर्गों के संघर्ष, गरिमा और निराशा को गहन संवेदना के साथ अभिव्यक्त करता है। उनके साहित्य में एक ऐसा संसार जीवंत होता है जहाँ जाति, गरीबी और सामंती शोषण सामाजिक जीवन की नियति बन चुके हैं। 'गोदान', 'कर्मभूमि' जैसे उपन्यासों और 'कफन', 'सद्गति' जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने किसानों, दलितों और मजदूरों को पीड़ित नहीं, बल्कि नैतिक केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया। उनका यथार्थवाद सहानुभूतिपूर्ण था—जो उनके दुःख को मानवीय गरिमा प्रदान करता है और साथ ही प्रणालीगत अन्याय को उजागर करता है। प्रेमचंद मानते थे कि साहित्य का उद्देश्य समाज का दर्पण बनना और सुधार का साधन बनना है। उनके लेखन में गरीब किसान का संघर्ष—औपनिवेशिक करो, जातिगत भेदभाव और जमींदारी शोषण के खिलाफ—अत्यंत प्रामाणिकता और करुणा के साथ चित्रित होता है। विद्वानों के अनुसार, प्रेमचंद पहले भारतीय लेखक थे जिन्होंने लोकभाषा-आधारित यथार्थवाद को औपनिवेशिक आधुनिकता और स्वदेशी शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध के रूप में प्रयोग किया (पांडेय, 1983)^[10]। अपने पात्रों के नैतिक धैर्य और संघर्षशीलता के माध्यम से उन्होंने भारत के मौन जनसमूहों को स्वर दिया और साहित्य को सामाजिक सहानुभूति और न्याय के नैतिक कार्य में रूपांतरित कर दिया (घोष, 1983)^[2]।

5.1. भारतीय संघर्ष के प्रतीक के रूप में किसान – 'गोदान' में कृषक जीवन की केंद्रीयता

प्रेमचंद का उपन्यास 'गोदान' (1936) भारतीय किसान जीवन की नैतिक और भावनात्मक गहराई का सर्वोच्च प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास का नायक होरी महतो उस भारतीय किसान का प्रतीक है जो ईमानदार, त्यागी और परिश्रमी होते हुए भी ऋण, गरीबी और शोषण के अनंत चक्र में फँसा हुआ है। होरी का आजीवन स्वप्न—एक गाय का दान (गोदान) करना—भारतीय किसान की गरिमा और मुक्ति की आकांक्षा का रूपक बन जाता है, जो अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में लगातार संघर्षरत है। प्रेमचंद ने होरी के माध्यम से जाति, निर्धनता और सामंती प्रभुत्व के निर्मम गठजोड़ को उजागर किया है, जो किसान को उसकी भौतिक और आध्यात्मिक शांति दोनों से वंचित करता है। उपन्यास में ग्रामीण जीवन का कोई आदर्शिकरण नहीं है; बल्कि यह जमींदारी व्यवस्था की अमानवीयता का निष्पक्ष और गहन चित्रण प्रस्तुत करता है। फिर भी, होरी की नैतिक दृढ़ता और मानवीय सहनशीलता उसे एक राष्ट्रीय प्रतीक बना देती है—एक ऐसे भारतीय आत्मा का रूपक, जो विपरीत परिस्थितियों में भी अडिग रहती है।

5.2. हाशिए से उठती आवाज़ें: दलित और श्रमिक वर्ग – उत्पीड़ितों के प्रतिनिधित्व में प्रेमचंद की संवेदना और सामाजिक यथार्थवाद

प्रेमचंद की रचनात्मक संवेदना ने भारतीय साहित्य को एक नया मानवीय आयाम प्रदान किया, विशेषकर दलितों और श्रमिकों के जीवन-संघर्षों के यथार्थ चित्रण के माध्यम से। 'सद्गति' और 'कफन' जैसी कहानियों में उन्होंने उन वर्गों को न केवल दृश्यता (visibility) दी, बल्कि आवाज़ और स्वायत्तता (agency) भी प्रदान की, जिन्हें परंपरागत साहित्य ने लंबे समय तक उपेक्षित रखा था। 'सद्गति' का पात्र दुखी चमार जातिगत शोषण की क्रूरता को उजागर करता है, परंतु साथ ही वह हाशिए पर खड़े मनुष्य की गरिमा और आत्मबल का प्रतीक भी बन जाता है। प्रेमचंद का यथार्थवाद करुणा नहीं, सहानुभूति पर आधारित था—वे गरीब और दलित पात्रों को दया के पात्र नहीं, बल्कि नैतिक साहस से संपन्न मनुष्य के रूप में चित्रित करते हैं। आलोचकों के अनुसार, दलित जीवन का उनका चित्रण आगे चलकर दलित साहित्यिक आंदोलन की पूर्वभूमि बन गया, जिसने उच्चवर्णीय यथार्थवाद और उपेक्षित विमर्श (subaltern expression) के बीच सेतु का कार्य किया (नस्कर, 2023) [8]। प्रेमचंद की ये रचनाएँ उन लोगों को मानवीय पहचान और गरिमा प्रदान करती हैं जिन्हें मुख्यधारा साहित्य ने भुला दिया था, और इस प्रकार उन्होंने साहित्य को सामाजिक समावेशन का माध्यम बना दिया।

5.3. आर्थिक शोषण और वर्ग-संघर्ष – सामंतवाद और पूँजीवाद पर प्रेमचंद की आलोचनात्मक दृष्टि

प्रेमचंद का कथा-साहित्य भारतीय साहित्य में आर्थिक शोषण और वर्ग-संघर्ष की सबसे प्रारंभिक और तीक्ष्ण आलोचनाओं में से एक प्रस्तुत करता है। उन्होंने जमींदारों और किसानों, मालिकों और मज़दूरों के बीच के संघर्षों के माध्यम से उस संरचनात्मक अन्याय को उजागर किया, जिसे सामंतवाद और नवोदित पूँजीवाद दोनों ने जन्म दिया। 'गोदान' और 'कर्मभूमि' में उन्होंने दिखाया कि आर्थिक शोषण केवल भौतिक नहीं, बल्कि नैतिक पतन का भी कारण है—जहाँ मानवीय संबंध शक्ति और स्वार्थ के लेन-देन में बदल जाते हैं। उनके साहूकार और जमींदार लालच और पाखंड के प्रतीक हैं, जबकि किसान पीड़ा के बीच भी नैतिकता और धैर्य का प्रतीक बना

रहता है। प्रेमचंद की आलोचना मात्र आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय चेतना पर आधारित है। उन्होंने दिखाया कि भौतिक असमानता करुणा और समुदाय की भावना को नष्ट करती है, जिससे समाज शोषण का रणक्षेत्र बन जाता है। उनका यह नैतिक यथार्थवाद आगे चलकर भारतीय साहित्य में मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष की व्याख्या का मार्ग प्रशस्त करता है। आलोचकों का मत है कि प्रेमचंद का साहित्य राष्ट्रवाद और समाजवाद के वैचारिक विभाजन को पाटता है—जहाँ किसान केवल उत्पीड़ित नहीं, बल्कि नैतिक उद्धारक के रूप में भी उभरता है (पांडेय, 1983; नाहिद, 2020) [10, 7]।

6. स्त्रियाँ और प्रेमचंद के साहित्य में लैंगिक विमर्श

प्रेमचंद की रचनाओं में स्त्रियों का चित्रण बीसवीं शताब्दी के आरंभिक भारत में लैंगिक असमानता, नैतिकता और सामाजिक न्याय के प्रश्नों के साथ गहरे संवाद को दर्शाता है। उन्होंने स्त्रियों को केवल त्याग और सदाचार की प्रतीकात्मक छवि के रूप में नहीं, बल्कि जटिल और आत्मचेतन व्यक्तित्वों के रूप में प्रस्तुत किया, जो पितृसत्ता, जाति और गरीबी के बीच अपनी पहचान के लिए संघर्षरत हैं। 'सेवासदन', 'निर्मला' और 'गोदान' जैसे उपन्यासों में प्रेमचंद ने यह दिखाया कि लिंग और वर्गीय उत्पीड़न किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हैं, जिससे स्त्रियाँ सामाजिक शोषण की दोहरी शिकार बनती हैं। उनके पात्र—सुमन ('सेवासदन') और धनिया ('गोदान')—भारतीय स्त्रीत्व की उस द्वंद्वात्मक स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं जो परंपरा और आधुनिकता के बीच फँसी हुई है। प्रेमचंद का यथार्थवाद स्त्रियों के जीवित अनुभवों को अभिव्यक्त करता है—वह शोषण, विधवापन और सामाजिक कलंक झेलती हुई भी गरिमा और स्वायत्तता की तलाश करती हैं। उनके साहित्य में स्त्री पात्र केवल सहानुभूति के नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के वाहक बनते हैं। उन्होंने पितृसत्तात्मक संस्थाओं—विवाह, धर्म और परिवार—की नैतिकता पर प्रश्न उठाकर स्त्री स्वतंत्रता के विमर्श को आगे बढ़ाया। आलोचकों के अनुसार, प्रेमचंद का मानवतावादी स्त्री-चित्रण उन्हें भारत के सामाजिक सुधार आंदोलनों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्थापित करता है, जिससे उनका साहित्य सामाजिक रूप से प्रभावशाली और नैतिक रूप से रूपांतरकारी बन जाता है (पांडेय, 1983; नाहिद, 2020) [10, 7]।

6.1. लैंगिक भूमिकाएँ और पितृसत्तात्मक बंधन – सामाजिक अपेक्षाओं और लैंगिक अन्याय पर प्रेमचंद की आलोचना

प्रेमचंद की पितृसत्ता की आलोचना सबसे तीव्र रूप में उनकी उन रचनाओं में दिखती है जहाँ स्त्रियाँ सामाजिक संस्थाओं के भीतर कैद हैं। उनके उपन्यास 'निर्मला' में वे बाल-विवाह और दहेज-प्रथा के विनाशकारी परिणामों को उजागर करते हैं, जहाँ एक किशोरी का जीवन समाज की लोभ और पुरुष-प्रधान मानसिकता के कारण नष्ट हो जाता है। यह उपन्यास दिखाता है कि कैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्रियों को परिवार की इज्जत और आर्थिक लेन-देन के साधन में बदल देती है। प्रेमचंद की स्त्रियाँ अपने शोषण से भली-भाँति परिचित हैं, परंतु वे आर्थिक निर्भरता और सामाजिक बंधनों के कारण विद्रोह नहीं कर पातीं। उनका यथार्थवाद स्त्रियों की पीड़ा का महिमामंडन नहीं करता, बल्कि उस नैतिक व्यवस्था की निंदा करता है जो परंपरा के नाम पर अन्याय को पवित्र बना देती है। उनके स्त्री पात्र उस समाज की पाखंडपूर्ण मानसिकता को चुनौती देते हैं जो स्त्रियों की देवी के रूप में पूजा करता है, परंतु उन्हें मनुष्य के रूप में स्वतंत्रता नहीं देता। प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण प्रारंभिक नारीवादी विचारधारा से गहराई से जुड़ा है—वह दिखाते हैं कि

पितृसत्ता केवल लैंगिक असमानता ही नहीं, बल्कि वर्ग और जातिगत अन्याय को भी स्थायी बनाती है। आलोचकों का मत है कि प्रेमचंद की यह पितृसत्ता-विरोधी दृष्टि आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि यह आधुनिक भारत में जारी लैंगिक हिंसा और सामाजिक नियंत्रण की वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करती है (घोष, 1983; नस्कर, 2023) [2, 8]।

6.2. प्रगतिशील स्त्री-चित्रण और नारीवादी प्रतिध्वनि – प्रेमचंद की स्त्रियाँ आधुनिक नारीवादी व्याख्याओं की पूर्वछाया के रूप में

प्रेमचंद का स्त्री-चित्रण अपने समय की सामाजिक रूढ़ियों और नैतिक सीमाओं से परे जाकर उन्हें भारत के प्रारंभिक साहित्यिक नारीवादियों में स्थापित करता है। उनके उपन्यास 'सेवासदन' में नायिका सुमन उन नैतिक बंधनों को तोड़ती है जो उसे घरेलू दासता में बाँधते हैं, और स्वयं-निर्णय के उस मार्ग को चुनती है जो उसे सामाजिक बहिष्कार की ओर ले जाता है। सुमन की यात्रा—एक ठुकराई हुई पत्नी से एक सुधारक तक—प्रेमचंद के इस विश्वास को दर्शाती है कि शिक्षा और आत्मबोध ही मुक्ति के वास्तविक साधन हैं। इसी प्रकार, 'प्रतिज्ञा' की पूर्ण विधवा-विवाह जैसे सामाजिक कलकों को चुनौती देती है, जबकि 'गोदान' की धनिया ग्रामीण समाज की नैतिक शक्ति के रूप में उभरती है—वह दृढ़, स्पष्टवादी और करुणामयी है। प्रेमचंद की स्त्रियाँ ऊँची आवाज़ में विद्रोह नहीं करतीं, परंतु वे गरिमा, आत्मसम्मान और नैतिक साहस से अपने उत्पीड़न का सामना करती हैं। उन्होंने स्त्रियों के आंतरिक जीवन—उनकी इच्छाओं, भय और विरोधाभासों—को बड़ी सूक्ष्मता से समझा, जिससे उनका साहित्य आधुनिक नारीवादी दृष्टि का पूर्वाभास कराता है, जहाँ स्त्री की स्वायत्तता और आत्मबोध को केंद्र में रखा गया है।

प्रेमचंद का मानवतावादी नारीवाद किसी उग्र विद्रोह में नहीं, बल्कि नैतिक जागरण में निहित है। उनकी स्त्रियाँ सहानुभूति, नैतिकता और आत्मबल के माध्यम से शक्ति का परिचय देती हैं—यह उनके उस विचार को प्रतिध्वनित करता है कि वास्तविक सुधार चेतना के विकास से संभव है, न कि टकराव से। उन्होंने पितृसत्ता द्वारा निर्मित 'पवित्र' और 'अपवित्र' स्त्री के कृत्रिम द्वंद्व को तोड़ते हुए स्त्रीत्व को जीवनानुभवों के विविध रूपों में चित्रित किया—जहाँ सामाजिक और भावनात्मक यथार्थ एक-दूसरे से जुड़ते हैं। यह दृष्टिकोण उनके लेखन को कालातीत प्रासंगिकता प्रदान करता है, क्योंकि यह आज के अंतःसंबंधी (intersectional) और न्यायपरक नारीवादी विमर्शों से गहराई से मेल खाता है। प्रेमचंद का साहित्य हमें यह याद दिलाता है कि स्त्री-मुक्ति सामाजिक समानता के संघर्ष से अलग नहीं है, और इसी कारण वे भारतीय साहित्य में लैंगिक सुधार के नैतिक अग्रदूत माने जाते हैं (हैरिस एवं शर्मा, 1970; पांडेय, 1983) [4, 10]।

7. प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक दृष्टि और मानवतावाद

प्रेमचंद के साहित्यिक संसार के केंद्र में एक गहन नैतिक दृष्टि और मानवीय संवेदना विद्यमान है, जो करुणा, न्याय और मानव गरिमा में विश्वास पर आधारित है। उनका मानवतावाद धर्म, जाति और वर्ग की सीमाओं से परे जाकर एक ऐसे नैतिक ढाँचे का निर्माण करता है, जो सहानुभूति और सामाजिक जिम्मेदारी पर टिका है। प्रेमचंद का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि पाठकों की नैतिक चेतना को जगाना था। 'गोदान', 'कर्मभूमि' और 'निर्मला' जैसी रचनाएँ उनके इस विश्वास को प्रकट करती हैं कि किसी सभ्यता का असली मूल्यांकन इस बात से होता है कि वह अपने गरीबों और वंचितों के साथ कैसा व्यवहार करती है। उनके नायक—किसान, विधवा और मज़दूर—पीड़ा में भी नैतिक शक्ति और मानवीय गरिमा का प्रतीक

बने रहते हैं। प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद औपनिवेशिक दमन और स्वदेशी नैतिक पतन दोनों के खिलाफ एक साहित्यिक प्रतिरोध था। उन्होंने जमींदारों, पुरोहितों और नौकरशाहों के भ्रष्टाचार को उजागर कर कथा-साहित्य को नैतिक विरोध का मंच बना दिया। उनका साहित्यिक मानवतावाद गांधीवादी सत्य (सत्य) और करुणा (करुणा) की भावना से प्रेरित था, जो पाठकों को पहले स्वयं को सुधारने और फिर समाज को सुधारने का संदेश देता है (पांडेय, 1983) [10]।

प्रेमचंद का नैतिक दृष्टिकोण उनके सामाजिक यथार्थवाद से अविभाज्य है। उनका साहित्य यह स्थापित करता है कि नैतिकता केवल विचारों में नहीं, बल्कि मानवीय पीड़ा की वास्तविक परिस्थितियों में परखी जानी चाहिए। 'कफन' जैसी कहानी में गरीबी को किसी भावनात्मक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि समाज की नैतिक परीक्षा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दलितों, स्त्रियों और किसानों के प्रति उनकी सहानुभूति सर्वमानविकता के उस विश्वास से उत्पन्न होती है जो समानता और न्याय के उत्तर-औपनिवेशिक विमर्शों की पूर्वभूमि तैयार करती है। प्रेमचंद ने कट्टर नैतिकता को अस्वीकार करते हुए मानव-केंद्रित नैतिकता का समर्थन किया, जिसमें करुणा और सत्यनिष्ठा को प्रधानता दी गई। आलोचकों के अनुसार, उनका यह नैतिक मानवतावाद आज भी प्रासंगिक है क्योंकि यह आधुनिक भारत के उन्हीं **सामाजिक दोषों—असमानता, पाखंड और लोभ—**को चुनौती देता है जो तब मौजूद थे (घोष, 1983; नाहिद, 2020) [2, 7]। प्रेमचंद की विरासत इस विचार में निहित है कि सच्चा सुधार हृदय से आरंभ होता है—सहानुभूति, न्याय और नैतिक साहस के माध्यम से।

8. स्वतंत्रोत्तर भारतीय लेखकों पर प्रेमचंद का प्रभाव

स्वतंत्रता के बाद भारतीय साहित्य पर प्रेमचंद का प्रभाव गहरा और स्थायी रहा है। उन्होंने अपने साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद और नैतिक मानवतावाद का जो समन्वय प्रस्तुत किया, उसने आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की दिशा निर्धारित की। उनके ग्रामीण जीवन, वर्गीय विषमता और नैतिक संघर्षों के चित्रण ने फणीश्वरनाथ रेणु, यशपाल और भीष्म साहनी जैसे लेखकों को प्रेरित किया। रेणु का 'मैला आँचल' और यशपाल का 'मेरी तेरी उसकी बात' प्रेमचंद की 'गोदान' की सामाजिक चेतना को आगे बढ़ाते हैं। इन लेखकों ने उनके मानवतावाद को स्वतंत्र भारत की नई परिस्थितियों—शहरीकरण, वर्ग-संघर्ष और नैतिक मोहभंग—के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया (पांडेय, 1983) [10]। हिंदी के परे, मुल्कराज आनंद और आर.के. नारायण जैसे भारतीय अंग्रेज़ी लेखक भी प्रेमचंद से गहराई से प्रभावित हुए। आनंद के 'अनटचेबल' और 'कूली' में वर्ग और जातिगत शोषण की वही चिंता मिलती है, जबकि नारायण के उपन्यासों में उनकी मानवतावादी संवेदना और नैतिक सादगी झलकती है (नाहिद, 2020; हैरिस एवं शर्मा, 1970) [7, 4]।

8.1. हिंदी साहित्य में प्रेमचंद की विरासत: रेणु, यशपाल और अन्य – उत्तरवर्ती हिंदी उपन्यासकारों पर उनका प्रभाव

प्रेमचंद का साहित्यिक दृष्टिकोण आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य की नैतिक और यथार्थवादी आधारशिला बन गया। उन्होंने ग्रामीण भारत, मानवीय पीड़ा और नैतिक संघर्ष को जिस गहराई से चित्रित किया, उसने फणीश्वरनाथ रेणु, यशपाल और निर्मल वर्मा जैसे लेखकों को गहराई से प्रभावित किया। रेणु का 'मैला आँचल' प्रेमचंद के 'गोदान' की उत्तरकथा जैसा प्रतीत होता है, जिसमें ग्रामीण यथार्थ, सामाजिक चेतना और मानवीय करुणा का समन्वय झलकता है। यशपाल ने प्रेमचंद की नैतिक दृष्टि को राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद के आयामों में विस्तारित किया और

स्वतंत्रता के बाद के वैचारिक संघर्षों को नए संदर्भों में प्रस्तुत किया। इन लेखकों ने प्रेमचंद की इस आस्था को अपनाया कि साहित्य समाज सुधार का माध्यम होना चाहिए और लेखक का कर्तव्य है कि वह सत्य और न्याय के पक्ष में खड़ा हो। प्रेमचंद के यथार्थवाद ने हिंदी गद्य में प्रामाणिकता का मानक स्थापित किया। उनकी विरासत वंचितों के प्रति करुणा, सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता और इस विश्वास में निहित है कि साहित्य का सत्य नैतिक उद्देश्य की सेवा करे—यही उन्हें हिंदी उपन्यास का पथप्रदर्शक और नैतिक संरक्षक बनाता है (घोष, 1983; पांडेय, 1983) [2, 10]।

8.2. भारतीय अंग्रेजी साहित्य में यथार्थवाद और सामाजिक विषय – मुल्कराज आनंद और आर.के. नारायण से समानताएँ

प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद ने भारतीय अंग्रेजी उपन्यास की दिशा को गहराई से प्रभावित किया, विशेषकर मुल्कराज आनंद और आर.के. नारायण जैसे लेखकों के माध्यम से। आनंद के उपन्यास 'अछूत' और 'कूली' में वही नैतिक और सामाजिक चेतना दिखाई देती है जो प्रेमचंद के साहित्य का मूल तत्व है। दोनों लेखक गरीबी और शोषण को केवल सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि मानवीय नैतिक संकट के रूप में प्रस्तुत करते हैं। आनंद का समाजवादी यथार्थवाद, जिसमें उत्पीड़ितों के प्रति गहरी सहानुभूति झलकती है, प्रेमचंद की मानवतावादी दृष्टि और सामाजिक प्रतिबद्धता की प्रतिध्वनि बनकर उभरता है (नाहिद, 2020) [7]। इसी प्रकार आर.के. नारायण के लेखन में प्रेमचंद की सादगी, नैतिक संवेदनशीलता और शांत यथार्थवाद की स्पष्ट झलक मिलती है। यद्यपि नारायण का 'मालगुड़ी' प्रेमचंद के ग्रामीण भारत से भिन्न है, परंतु दोनों की चिंता समान है—साधारण जीवन की नैतिक जटिलताएँ और करुणा में निहित सत्य। प्रेमचंद का प्रभाव भाषाई सीमाओं से परे जाकर भारतीय कथा-साहित्य की नैतिक भाषा और मानवीय दृष्टि को गढ़ने में निर्णायक सिद्ध हुआ (हैरिस एवं शर्मा, 1970; पांडेय, 1983) [4, 10]।

8.3. रंगमंच और सिनेमा में रूपांतरण और विस्तार – पर्दे और मंच पर प्रेमचंद का प्रभाव

प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद और सामाजिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण भारतीय रंगमंच और सिनेमा में स्वाभाविक रूप से विस्तार पाता है। उनकी कहानियों की जीवंत मानवीय भावनाएँ, नैतिक द्वंद्व और सामाजिक यथार्थ ने उन्हें रूपांतरित कला के लिए उपयुक्त आधार बनाया। महान फिल्मकार सत्यजीत रे ने उनकी प्रसिद्ध कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' को पर्दे पर उतारकर प्रेमचंद के यथार्थ, व्यंग्य और नैतिक चिंतन को दृश्य रूप में जीवंत किया। इसी प्रकार, देशभर के प्रगतिशील नाट्य समूहों ने उनकी रचनाओं को मंच पर प्रस्तुत कर जनता तक सामाजिक चेतना पहुँचाने का कार्य किया। इन रूपांतरणों में प्रेमचंद का मानवतावाद, वर्ग-संघर्ष और अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध प्रमुख रूप से उभरता है। आधुनिक भारतीय सिनेमा और रंगमंच में अब भी उनके सामाजिक विषय, ग्रामीण पीड़ा और नैतिक जागृति जैसे विषय प्रतिध्वनित होते हैं। प्रेमचंद की कथाएँ आज भी कलाकारों और निर्देशकों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं—क्योंकि उनमें निहित सत्य, करुणा और सुधार की चेतना भारतीय समाज की आत्मा को प्रतिबिंबित करती है (घोष, 1983; नाहिद, 2020) [2, 7]।

8.4. समकालीन भारत में प्रेमचंद की विषयवस्तु की प्रासंगिकता

मुंशी प्रेमचंद का साहित्य भले ही बीसवीं शताब्दी के आरंभिक भारत की पृष्ठभूमि में रचा गया हो, परंतु यह आज के नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों से गहराई से जुड़ा हुआ है। उन्होंने अपने लेखन में गरीबी, जाति, लिंग और वर्गीय असमानता जैसे विषयों को जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया, वह आज भी भारतीय समाज की सच्चाई को उजागर करता है। 'गोदान' में किसानों का कर्ज, विस्थापन और असहायता वर्तमान भारत के कृषि संकट की झलक प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद का यह विश्वास कि किसी राष्ट्र की नैतिकता उसके गरीबों के कल्याण में निहित है, आज भी सामाजिक न्याय और आर्थिक असमानता के विमर्शों में प्रासंगिक है। उनके किसान, मजदूर और स्त्री पात्र केवल किसी युग विशेष के प्रतीक नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा और संघर्षशीलता के सार्वभौमिक प्रतीक हैं। उनका मानवतावाद, जो करुणा और नैतिक साहस पर आधारित है, आज के भोगवादी युग में आत्ममंथन और नैतिक पुनर्जागरण की दिशा प्रदान करता है।

प्रेमचंद की सामाजिक असमानता, पितृसत्ता और नैतिक पाखंड पर की गई आलोचना आज भी उतनी ही अर्थपूर्ण है। 'सद्गति' और 'सेवासदन' जैसी रचनाएँ आज भी जातिगत भेदभाव, स्त्री उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय के खिलाफ चेतना जगाती हैं। उनके पात्र समाज की आत्मा को झकझोरते हैं और पाठकों से नैतिक जवाबदेही की माँग करते हैं। आधुनिक भारत में जब भौतिकतावाद और नैतिक उदासीनता बढ़ रही है, तब प्रेमचंद की यह पुकार—कि साहित्य को सामाजिक चेतना और न्याय का माध्यम बनना चाहिए—पहले से अधिक प्रासंगिक हो उठी है। उनकी विरासत आज भी प्रेरणा, संवेदना और नैतिक दिशा का स्रोत बनी हुई है, जो हमें यह याद दिलाती है कि सच्ची प्रगति न्याय, समानता और करुणा में निहित है।

9. निष्कर्ष

मुंशी प्रेमचंद के साहित्य की स्थायी प्रासंगिकता इसलिए है क्योंकि उन्होंने साहित्य को केवल प्रतिबिंब नहीं बनाया बल्कि उसे समाज परिवर्तन का सक्रिय उपकरण मान लिया। उनकी कहानियाँ और उपन्यास—विशेषकर गोदान, कर्मभूमि, सेवासदन तथा महत्वपूर्ण लघुकथाएँ—ग्रामीण जीवन की कठिनाइयों, आर्थिक और जातीय विषमताओं तथा लैंगिक नियंत्रण की जटिलताओं को न केवल उद्घाटित करते हैं, बल्कि उनसे निपटने के नैतिक और सामूहिक मार्ग सुझाते हैं। प्रेमचंद का यथार्थवाद सहानुभूति पर टिका था; उसने चरित्रों की मानवीय गरिमा को उकेरा और पाठक में नैतिक उत्तरदायित्व जागृत किया। इस दृष्टि से उनका साहित्य उत्तर-औपनिवेशिक और समकालीन दोनों सामाजिक विमर्शों के लिए ब्रीचहेड बना—जहाँ साहित्य ने सामाजिक नीतियों और लोकचेतना को प्रभावित करने का काम किया।

प्रेमचंद की भाषा और शैली ने हिंदी-उर्दू गद्य में जनसुलभता और नैतिक गम्भीरता का संतुलन स्थापित किया, जिससे बाद के अनेक लेखक उनके विचार और तकनीक ग्रहण कर समकालीन परिस्थितियों में उनका नव्य अर्थ-निर्माण कर सके। आज जब भारतीय समाज कृषि संकट, जातीय असमानता, लैंगिक हिंसा और सांस्कृतिक विभाजन जैसी चुनौतियों से जूझ रहा है, प्रेमचंद का

मानवतावादी संदेश—करुणा, न्याय और नैतिक साहस—संदर्भित एवं प्रेरक बना हुआ है। अतः उनकी विरासत केवल साहित्यिक नहीं, सामाजिक और नैतिक भी है: उन्होंने यह स्थापित कर दिया कि सच्ची सांस्कृतिक प्रगति वही है जो वंचितों की गरिमा और समानता सुनिश्चित करे, और साहित्य वही करे जो राष्ट्र की अंतरात्मा को जगाए।

10. संदर्भ सूची

1. चंद्रा एस. प्रेमचंद और भारतीय राष्ट्रवाद. मॉडर्न एशियन स्टडीज़. 1982;16(4):601-21.
2. घोष डी. प्रेमचंद: उग्रवाद बनाम राष्ट्रवाद. सिडनी स्टडीज़ इन सोसाइटी एंड कल्चर. 1983;1.
3. गोविंद एन. सामाजिक यथार्थवाद और नैतिक प्रभाव: मुंशी प्रेमचंद की दुनिया. ए कम्पेनियन टू वर्ल्ड लिटरेचर. 2020;1-10.
4. हैरिस आरएम, शर्मा आर. ए बेसिक हिंदी रीडर. जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज़. 1970;30(2):220-1.
5. जयलक्ष्मी के. सामाजिक सुधारक प्रेमचंद – एक समीक्षा. जर्नल ऑफ लिटरेचर, लैंग्वेज एंड लिंग्विस्टिक्स. 2016;20:44-6.
6. जोगिंदर पॉल. प्रेमचंद: आधुनिक उर्दू लघु-कथा के अग्रदूत. जोगिंदर पॉल एंथोलॉजी. 2021.
7. नाहिद ए. मुल्कराज आनंद और प्रेमचंद: समान दृष्टि और प्रेरित मस्तिष्क वाले उपन्यासकार. क्रिएटिव लॉन्चर. 2020;5(2):141-8.
8. नस्कर एस. मुंशी प्रेमचंद और दलित साहित्य: परिभाषा की खाई को पाटते हुए. प्रैक्सिस इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड लिटरेचर. 2023;6(4):1-7.
9. ओबेरॉय जी. गांधीवादी समाजवाद का दृष्टिकोण (समकालीन भारत में प्रासंगिकता). जर्नल ऑफ सोशल एंड पॉलिटिकल थॉट. 2014;12(3):45-52.
10. पांडेय जी. प्रेमचंद और किसान वर्ग: नियंत्रित उग्रवाद. इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. 1983;1149-55.
11. कदीर एच. प्रेमचंद – नाटककार और नाट्य समीक्षक: औपनिवेशिक भारत के हिंदी रंगमंच का मूल्यांकन. लिटरेचर, क्रिटिक, एंड एम्पायर टुडे. 2025;60(1):41-59.
12. रहमतुल्लाह एन. मुंशी प्रेमचंद की लघु कहानियों में यथार्थवाद. क्लैरियन: इंटरनेशनल मल्टीडिसिप्लिनरी जर्नल. 2017;6(2).
13. शरीफ एस. प्रेमचंद के साहित्यिक कार्यों में सामाजिक चेतना. दरीचा-ए-तहकीक. 2024;5(1):1-12.
14. शांडिल्य के. विधवा, पत्नी और वेश्या: प्रेमचंद के 'सेवासदन' तथा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के बंगाली और उर्दू उपन्यासों में सामाजिक सुधार का तुलनात्मक अध्ययन. कम्पेरेटिव लिटरेचर स्टडीज़. 2016;53(2):272-88.
15. सिंह एसके. प्रेमचंद, राष्ट्रवाद और औपनिवेशिक उत्तर भारत में नागरिक प्रतिरोध. इंडियन इकनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू. 2019;56(2):171-94.
16. सिर्सी सी, अंजरिया यू. रीकवरिंग रियलिज़्म. जर्नल ऑफ पोस्टकोलोनीयल स्टडीज़. 2015;10(3):1-15.
17. वेसलर एचडब्ल्यू. प्रेमचंद 1915: उर्दू से हिंदी की भाषा-निरंतरता के भीतर गमन. एक्टा ओरिएंटालिया. 2015;76:21.

Ref. No: FMR-2025-2-157



E-ISSN: 3050-9726 P-ISSN: 3050-9718

Journal of Frontiers in Multidisciplinary Research

Online Journal, Indexed Journal, Refereed Journal, Peer Reviewed Journal

Publication Certificate

सोनम सिंह

This Certificate confirms the publication of manuscript titled "आधुनिक भारतीय साहित्य में मुंशी प्रेमचंद की विरासत और प्रासंगिकता "
in the **Journal of Frontiers in Multidisciplinary Research**; 2025 July-December, Volume-6, Issue-2.

**Kamal
Publisher**

Email: anfo@multidisciplinaryfrontiers.com



Website: www.multidisciplinaryfrontiers.com



प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में ग्रामीण भारत का चित्रण

सोनम सिंह ^{1*}, डॉ. जयसिंह यादव ²

¹ पी.एच.डी. शोध छात्रा, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

² शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, थनरा, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

* Corresponding Author: **सोनम सिंह**

Article Info

P-ISSN: 3051-3502

E-ISSN: 3051-3510

Volume: 06

Issue: 02

July - December 2025

Received: 04-07-2025

Accepted: 08-10-2025

Published: 03-11-2025

Page No: 101-107

सारांश

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936), जिन्हें आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य का जनक कहा जाता है, ने भारतीय साहित्य में यथार्थवाद की वह धारा प्रवाहित की जो ग्रामीण भारत के सामाजिक और नैतिक ताने-बाने में गहराई से निहित थी। औपनिवेशिक काल में लिखते हुए उन्होंने गोदान, सेवासदन, कर्मभूमि जैसे उपन्यासों और कफन, पूँस की रात जैसी कहानियों के माध्यम से किसानों, स्त्रियों और पीड़ित वर्गों के संघर्षों को अद्वितीय सहानुभूति और नैतिक गहराई के साथ प्रस्तुत किया। उनकी रचनाएँ मात्र सामाजिक दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि वे एक नैतिक प्रयोजन बन जाती हैं जो सामाजिक चेतना को जगाने और सुधार की प्रेरणा देती हैं। प्रेमचंद ने भारतीय गाँव को अपनी कथा का केंद्र बनाकर उसे न केवल नैतिक आधार, बल्कि औपनिवेशिक और सामंती शोषण का प्रतीक भी बनाया। उनके यथार्थवाद ने जाति, वर्ग और पितृसत्ता की उन संरचनाओं को उजागर किया जो ग्रामीण जीवन को नियंत्रित करती थीं, और साहित्य को प्रतिरोध का माध्यम बना दिया। गांधीवादी और राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने सत्य, दया और नैतिक जागृति को सामूहिक उत्थान के साधन के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी स्त्री पात्र, जैसे सेवासदन की सुमन और कफन की नामहीन पत्नी, करुणा, त्याग और नैतिक शक्ति की प्रतीक हैं, वहीं गोदान के किसान होरी का चरित्र अत्याचार के बावजूद धैर्य, ईमानदारी और नैतिकता का प्रतीक बनता है। प्रेमचंद का नैतिक यथार्थवाद भारतीय कथा-साहित्य को सामाजिक और नैतिक विमर्श का साधन बनाता है, जिसमें व्यक्ति की नैतिकता को समाज के परिवर्तन से जोड़ा गया है। उन्होंने मानवतावाद, सुधारवादी दृष्टि और कलात्मक सादगी का ऐसा समन्वय किया कि गाँव न केवल उनके साहित्य का बल्कि भारत की सांस्कृतिक और नैतिक चेतना का केंद्र बन गया। इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य राष्ट्र का दर्पण और अंतःकरण दोनों बनकर उभरता है—जो अपने समय की अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं को उजागर करते हुए करुणा, शिक्षा और नैतिक न्याय पर आधारित भविष्य की कल्पना करता है।

Doi: <https://doi.org/10.54660/IJMER.2025.6.2.101-107>

मुख्य शब्द: मुंशी प्रेमचंद, हिंदी कथा-साहित्य, गोदान, सेवासदन, कर्मभूमि, औपनिवेशिकता, सामंती व्यवस्था और नैतिक न्याय

1. परिचय

मुंशी प्रेमचंद (1880-1936), जिन्हें आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य का जनक माना जाता है, उन प्रारंभिक भारतीय लेखकों में से एक थे जिन्होंने ग्रामीण जनजीवन की वास्तविकता को अपने साहित्य में सजीव रूप में प्रस्तुत किया। उनके लेखन में भारतीय गाँवों के सामाजिक और नैतिक पक्षों का ऐसा यथार्थ चित्रण मिलता है जो उनके समय के लिए अत्यंत क्रांतिकारी था। गोदान और सेवासदन जैसे उपन्यासों तथा कफन और पूँस की रात जैसी कहानियों में उन्होंने किसानों, मजदूरों और स्त्रियों के जीवन-संघर्षों को गरीबी, जातिगत विभाजन और औपनिवेशिक शोषण की पृष्ठभूमि में बड़ी संवेदनशीलता से चित्रित किया। उनका यथार्थवाद मात्र सामाजिक दस्तावेज नहीं, बल्कि एक नैतिक प्रयास था—भारत के आम जन के दुःख और उनकी सहनशीलता को उजागर करने का।

प्रेमचंद ने रोमांटिक या पलायनवादी दृष्टिकोण से अलग होकर साधारण ग्रामीण व्यक्ति को अपनी कथा का केंद्र बनाया और उन्हें भारत की सामाजिक चेतना का प्रतीक बना दिया (जयलक्ष्मी, 2016) [7]। प्रेमचंद की साहित्यिक शैली करुणा, सादगी और नैतिक दृष्टि से परिपूर्ण थी। उनकी भाषा ने अभिजात्य और लोकसंस्कृति के बीच की खाई को पाटते हुए उनके साहित्य को जनसामान्य से जोड़ दिया। सजीव चरित्र-चित्रण और नैतिक द्वंद्वों के माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज को वैसा ही दिखाया जैसा वह था—कठोर, अन्यायपूर्ण, परंतु करुणा और जागरूकता के माध्यम से परिवर्तनशील। उनके लेखन में व्याप्त यथार्थवाद केवल सौंदर्यबोध का साधन नहीं था, बल्कि सामाजिक सुधार का माध्यम भी था। प्रेमचंद का ग्रामीण संसार, जो उनके अपने जीवनानुभवों से प्रेरित था, औपनिवेशिक संकट और राष्ट्रीय जागरण के काल में भारत की राष्ट्रीय पहचान का दर्पण बन गया।

1.1. प्रेमचंद का साहित्यिक मिशन – सत्य, यथार्थ और आम आदमी के प्रति उनकी प्रतिबद्धता

प्रेमचंद का साहित्यिक मिशन उनके अटूट सत्यनिष्ठा और सामाजिक न्याय के प्रति समर्पण में निहित था। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के चरम काल में लिखते हुए उन्होंने साहित्य को एक नैतिक साधन माना, जिसका उद्देश्य सामूहिक चेतना को जगाना था। उनके लेखन में पहले के हिंदी गद्य की अलंकारिक भाषा और पौराणिक पलायनवाद के स्थान पर एक स्थिर, यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है, जो भारतीय गरीबों के दुःख, सहनशीलता और मानवता को उजागर करता है। कफन, गोदान और कर्मभूमि जैसी कृतियों में प्रेमचंद ने किसानों को केवल पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक चेतना से सम्पन्न व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया जो अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्थाओं से संघर्ष करते हैं। इस प्रकार उनका यथार्थवाद औपनिवेशिक और सामंती शोषण के विरुद्ध एक मानवतावादी प्रतिक्रिया बन जाता है (घोष, 1983) [4]।

प्रेमचंद के लिए साहित्य में सत्य का अर्थ जीवन और भावनाओं के प्रति निष्ठा था। उनका विश्वास था कि कला को आम मनुष्य के संघर्षों को प्रतिबिंबित करना चाहिए और साथ ही समाज सुधार का माध्यम भी बनना चाहिए। उनकी कहानियाँ जातिगत भेदभाव, गरीबी और लैंगिक असमानता जैसी सामाजिक बुराइयों पर केवल प्रचारात्मक ढंग से नहीं, बल्कि पात्रों की नैतिक चेतना के माध्यम से प्रश्न उठाती हैं। चाहे गोदान के होरी हों या सेवासदन की धनिया, उनके पात्र प्रेमचंद की पीड़ित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति और मानव-धैर्य में उनके विश्वास को दर्शाते हैं। अपने सत्यनिष्ठ यथार्थवाद के माध्यम से प्रेमचंद ने साहित्य को आत्ममंथन और प्रतिरोध दोनों का साधन बना दिया, जिससे भारतीय कथा-साहित्य को नैतिक उद्देश्य और भावनात्मक प्रामाणिकता की नई दिशा मिली।

1.2. ग्रामीण भारत: प्रेमचंद की कथा-सृष्टि का केंद्र – क्यों भारतीय गाँव बना उनके साहित्य का मुख्य परिवेश

प्रेमचंद के साहित्य में ग्रामीण भारत राष्ट्र की नैतिक और सांस्कृतिक आत्मा के रूप में स्थापित है। उनके लिए गाँव मात्र कथा की पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक-सांस्कृतिक इकाई था जो भारतीय समाज की सामूहिक चेतना, पीड़ा और नैतिक संवेदना का प्रतीक बनकर उभरता है। उन्होंने यह माना कि भारत की वास्तविक पहचान और उसके नैतिक संघर्ष गाँवों के किसानों में निहित हैं।

गोदान में नायक होरी ग्रामीण सहनशीलता का प्रतीक बन जाता है—एक ऐसा व्यक्ति जिसकी समूची जिंदगी ऋण, सामाजिक कर्तव्यों और नैतिक दायित्वों के जाल में उलझी रहती है। उपन्यास में कृषि-आधारित गरीबी का सूक्ष्म चित्रण जमींदारों, साहूकारों और औपनिवेशिक नौकरशाही के शोषणकारी गठजोड़ को उजागर करता है (वनश्री, 2013) [19]।

इसी प्रकार पूँस की रात और कफन जैसी कहानियों में प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की दैनंदिन लय को यथार्थ और नैतिक संवेदना के गहन मिश्रण के साथ प्रस्तुत किया। ग्रामीण परिवेश पर उनका ध्यान उन्हें औपनिवेशिकता, जाति और पितृसत्ता जैसी व्यापक संरचनाओं की आलोचना करने का अवसर देता है। उनके साहित्य में गाँव भारत के नैतिक और राजनीतिक जीवन का सूक्ष्म रूप बन जाता है—जहाँ राष्ट्र की चेतना निरंतर परखी और प्रकट होती है। प्रेमचंद ने गाँव के आर्थिक और भावनात्मक ताने-बाने के भीतर से लिखते हुए ऐसा साहित्यिक यथार्थवाद रचा जो हृदय और बुद्धि दोनों को स्पर्श करता है। इस प्रक्रिया में उन्होंने भारतीय पहचान को उसके सबसे साधारण नागरिकों के जीवंत अनुभवों में निहित किया और यह सिद्ध किया कि राष्ट्र की आत्मा उसी ग्रामीण भारत में बसती है जो संघर्षरत होकर भी अपनी नैतिकता और मानवता को जीवित रखता है (हैदर, 2024) [6]।

2. प्रेमचंद के ग्रामीण कथानकों का ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ

प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक भारत की जटिल सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न हुई। यह वह समय था जब ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन अपने चरम पर था, कृषि संकट गहराता जा रहा था, और राष्ट्रवादी सुधार आंदोलनों की लहर पूरे देश में फैल रही थी। ग्रामीण भारत, जिसने उनके कल्पनाशील संसार को आकार दिया, गहरी असमानताओं से ग्रस्त था, जहाँ किसान औपनिवेशिक आर्थिक शोषण और सामंती अत्याचार का सबसे अधिक भार उठाते थे। गोदान और कर्मभूमि जैसे उपन्यास उस समाज की स्थिति को प्रतिबिंबित करते हैं जो जातिगत परंपराओं और स्वतंत्रता तथा न्याय की आकांक्षाओं के बीच फँसा हुआ था। प्रेमचंद ने इन यथार्थों को केवल कहानी नहीं, बल्कि भारत के अंतःकरण की एक साहित्यिक गाथा में रूपांतरित किया, जिसमें उन्होंने दिखाया कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासन ने न केवल गाँवों की आर्थिक जीवनशक्ति को निचोड़ लिया, बल्कि उनके नैतिक और सामाजिक ढाँचे को भी क्षीण कर दिया (घोष, 1983) [4]।

इसी कालखंड में प्रेमचंद पर देश में फैल रहे सामाजिक सुधार और राष्ट्रवादी जागरण का गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी, तिलक और अन्य नेताओं द्वारा प्रेरित आंदोलन आत्मनिर्भरता, ग्रामीण पुनर्निर्माण और नैतिक सुधार पर बल दे रहे थे। ये विचार प्रेमचंद की चेतना से गहराई से जुड़े, क्योंकि वे गाँव को केवल आर्थिक इकाई नहीं, बल्कि भारतीय जीवन का नैतिक केंद्र मानते थे। उनके पात्र अक्सर आधुनिकीकरण, औपनिवेशिक दासता और सामाजिक सुधार की टकराहट से उत्पन्न नैतिक द्वंद्वों से जूझते दिखाई देते हैं। यथार्थवाद के माध्यम से प्रेमचंद ने पाठकों में सहानुभूति और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना जगाने का प्रयास किया, जिससे उनका साहित्य केवल प्रतिबिंब नहीं, बल्कि भारत के ऐतिहासिक परिवर्तन का आलोचनात्मक दस्तावेज बन गया।

उनके लेखन ने यह सिद्ध किया कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बन सकता है, जो न केवल समाज के दुःखों को उजागर करता है, बल्कि उसके नैतिक पुनर्निर्माण की दिशा भी दिखाता है (रॉय, 2016) ^[12]।

2.1. औपनिवेशिक भारत और कृषक संकट – ब्रिटिश नीतियों और सामंती व्यवस्थाओं का ग्रामीण जीवन पर प्रभाव
ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने भारत की कृषि संरचना को गहराई से बदल दिया, जिससे गाँवों का सामाजिक और आर्थिक संतुलन पूरी तरह बिखर गया। ज़मींदारी और रैयतवाड़ी जैसी भूमि-राजस्व प्रणालियों ने किसानों को स्थायी ऋण, निर्धनता और निराशा के दलदल में धकेल दिया। प्रेमचंद का गोदान इस कृषक त्रासदी का सशक्त प्रतीक है, जहाँ होरी का जीवन औपनिवेशिक शासन के अधीन ग्रामीण समाज के नैतिक और भौतिक पतन को दर्शाता है। ब्रिटिश नीतियों द्वारा अत्यधिक कराधान, साहूकारों की बढ़ती शक्ति और जमींदारों की मनमानी ने ऐसा चक्र बनाया जिसमें किसान केवल अपनी जमीन ही नहीं, बल्कि अपनी आत्म-सम्मान और जीवन-मूल्य भी गिरवी रख देता है। औपनिवेशिक कानूनों से सशक्त सामंती जमींदार आर्थिक दासता और जातिगत शोषण को निरंतर बनाए रखते हैं। प्रेमचंद ने इस कठोर यथार्थ का केवल वर्णन नहीं किया, बल्कि उसे औपनिवेशिक आधुनिकता के साथ जुड़े नैतिक पतन के रूप में उजागर किया। गोदान और पूँस की रात जैसी रचनाओं में उन्होंने दिखाया कि कैसे औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में निहित संरचनात्मक हिंसा ने भारत के ग्रामीण समाज को भीतर से तोड़ दिया। उनका साहित्य मात्र पीड़ा का चित्रण नहीं, बल्कि प्रतिरोध और नैतिक साक्ष्य का रूप ले लेता है—जहाँ लेखन एक प्रकार की नैतिक क्रांति बन जाता है जो अन्यायपूर्ण सत्ता-संरचनाओं को चुनौती देता है (हैदर, 2024) ^[6]।

2.2. सामाजिक सुधार आंदोलनों और यथार्थवादी साहित्य का उदय – प्रेमचंद के लेखन पर गांधीवादी और राष्ट्रवादी विचारों का प्रभाव

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भारत में सामाजिक सुधार और राष्ट्रवादी चेतना का उभार हुआ, जिसने प्रेमचंद के साहित्यिक दृष्टिकोण को गहराई से प्रभावित किया। महात्मा गांधी के सादगी, सत्य और करुणा के आदर्शों से प्रेरित होकर प्रेमचंद ने साहित्य को नैतिक सुधार और सामाजिक जागरण का साधन माना। सेवासदन और कर्मभूमि जैसी कृतियाँ गांधीवादी आत्मशुद्धि और मानव सेवा के आदर्शों को मूर्त रूप देती हैं। इन रचनाओं में विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा और जातीय समानता जैसे विषयों के माध्यम से उन्होंने कथा साहित्य को सामाजिक चेतना का उपकरण बना दिया। राष्ट्रवादी आंदोलन ने उनके यथार्थवाद को सामूहिक संघर्ष और नैतिक उत्तरदायित्व की भावना से समृद्ध किया। इस प्रकार प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल समाज का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि एक नैतिक हस्तक्षेप बन गया—जहाँ कला को न्याय, समानता और राष्ट्रीय पुनर्जागरण की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाने वाला माध्यम बनाया गया (रॉय, 2016) ^[12]।

3. गाँव एक सामाजिक ब्रह्मांड के रूप में: संरचना और पदानुक्रम

प्रेमचंद के काल्पनिक गाँव आदर्श या स्वप्निल स्थल नहीं हैं, बल्कि वे जटिल सामाजिक ब्रह्मांड हैं जो जाति, वर्ग और लिंग की कठोर पदानुक्रमित व्यवस्थाओं द्वारा संचालित होते हैं। गोदान जैसे उपन्यासों और ठाकुर का कुआँ तथा सद्गति जैसी कहानियों के माध्यम से उन्होंने दिखाया कि ये सामाजिक संरचनाएँ कैसे व्यक्ति

के भाग्य, उसके नैतिक निर्णयों और जीवन के अवसरों को निर्धारित करती हैं। उनके साहित्य में गाँव भारत के राष्ट्रीय जीवन का लघु रूप बन जाता है, जहाँ सामाजिक विभाजन और असमानता मानव संबंधों और न्याय तक पहुँच को नियंत्रित करते हैं। प्रेमचंद के पात्र—किसान, ब्राह्मण, जमींदार, चमार या ठाकुर—सभी उस विभाजित समाज की नैतिक और संरचनात्मक विसंगतियों का प्रतीक हैं। गोदान में होरी का जमींदारों और पुजारी वर्ग के प्रति समर्पण इस बात को दर्शाता है कि किस तरह जाति और आर्थिक निर्भरता का ताना-बाना ग्रामीण शोषण को स्थायी बनाता है। इसी प्रकार ठाकुर का कुआँ में निम्न जाति की स्त्रियों के दोहरे उत्पीड़न—सामाजिक बहिष्कार और लैंगिक शोषण—का मार्मिक चित्रण मिलता है (प्रियंका और सेकर, 2022) ^[11]। प्रेमचंद का जाति-चित्रण यथार्थवादी होने के साथ-साथ सुधारवादी भी है; वे किसानों का आदर्शिकरण नहीं करते, बल्कि उन्हें उस भ्रष्ट व्यवस्था के भीतर नैतिक संघर्ष करते हुए दिखाते हैं।

प्रेमचंद के गाँवों की सामाजिक संरचना वास्तविक भारत के ग्रामीण जीवन में देखे गए पदानुक्रमों का प्रतिबिंब है, जैसा कि समाजशास्त्रीय अध्ययनों में वर्णित “अनेक जातियों की ऊर्ध्वाधर एकता” की अवधारणा में पाया जाता है (सहाय, 2004) ^[13]। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जाति केवल धार्मिक विश्वासों से नहीं, बल्कि भौतिक परिस्थितियों—भूमि स्वामित्व, श्रम संबंधों और सामाजिक पूँजी—से भी संचालित होती है। उनका यथार्थवाद मात्र विवरणात्मक नहीं, बल्कि एक नैतिक आलोचना है जो शक्ति-संरचनाओं को उजागर करता है। उनके साहित्यिक ब्रह्मांड में ब्राह्मण, ठाकुर और साहूकार नैतिक अधिकार और आर्थिक नियंत्रण के माध्यम से प्रभुत्व बनाए रखते हैं, जबकि निम्न जातियाँ शोषित और मौन बनी रहती हैं। फिर भी, इस कठोर सामाजिक ढाँचे के भीतर प्रेमचंद ने प्रतिरोध और नैतिक साहस के क्षणों को भी रेखांकित किया है—जहाँ निम्नवर्गीय पात्र अक्सर अपने उच्चवर्गीय उत्पीड़कों से अधिक मानवता और नैतिक दृढ़ता का परिचय देते हैं। गीतांजलि पांडे जैसे विद्वान मानते हैं कि प्रेमचंद के ग्रामीण चित्रणों में रोमांटिकता से टकराव और यथार्थवादी टोन की ओर बदलाव उनके सामाजिक सत्य और सुधार के प्रति बढ़ते समर्पण को दर्शाता है (पांडे, 1983) ^[10]। इस प्रकार प्रेमचंद के गाँव भारत की नैतिक भूमि का दर्पण बन जाते हैं—जहाँ अन्याय और आशा, उत्पीड़न और मानवता, दोनों साथ-साथ विद्यमान हैं।

4. गरीबी, शोषण और सामाजिक अन्याय के विषय

प्रेमचंद के साहित्यिक संसार की सबसे प्रमुख वास्तविकताओं में से एक है गरीबी। उनके उपन्यासों और कहानियों में गरीबी केवल आर्थिक अभाव नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक स्थिति के रूप में उभरती है जो मनुष्य की गरिमा, नैतिकता और संबंधों को भीतर से क्षीण कर देती है। गोदान, सेवासदन और कफन जैसी कृतियों में उन्होंने भूख और अभाव को इस तरह चित्रित किया है कि वे केवल भौतिक नहीं, बल्कि नैतिक संकट बन जाते हैं। उनके गरीब पात्र—किसान, मजदूर, विधवाएँ—जीवन और स्वाभिमान के बीच निरंतर संघर्ष करते रहते हैं। गोदान में होरी का ऋण चुकाने का अंतहीन प्रयास किसान के उस असहाय संघर्ष का प्रतीक है जो अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध अंततः व्यर्थ साबित होता है। प्रेमचंद की दृष्टि में गरीबी कोई संयोग नहीं, बल्कि उस संरचनात्मक शोषण का परिणाम है जिसे जमींदार, साहूकार और पुजारी वर्ग मिलकर बनाए रखते हैं। उनके आर्थिक पीड़ा के चित्रण ने सामाजिक यथार्थवाद को नैतिक विमर्श में बदल दिया, जहाँ लालच और असमानता मानव करुणा को विकृत करने वाली शक्तियों के रूप में सामने आती हैं (चौहान, 2019) ^[3]।

गरीबी के साथ-साथ प्रेमचंद का साहित्य शोषण और वर्गीय असमानता की कठोर वास्तविकताओं से भी जूझता है। उनकी कहानियाँ ऐसे ग्रामीण समाज को उजागर करती हैं जहाँ श्रम का अवमूल्यन होता है और सामाजिक गतिशीलता लगभग असंभव है। कर्मभूमि और सद्गति के भूमिहीन किसान और निम्न जाति के मजदूर उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसे आर्थिक और जातिगत दोनों स्तरों पर मौन और असहाय बना दिया गया है। सद्गति में अछूत दुखी का एक ब्राह्मण के लिए काम करते हुए मर जाना धर्म और वर्ग के शोषण के घातक गठजोड़ का प्रतीक बन जाता है। प्रेमचंद की सामाजिक दृष्टि सहानुभूति पर आधारित है, कटुता पर नहीं। वे शोषितों को दीन या निष्क्रिय नहीं दिखाते, बल्कि उन्हें नैतिक शक्ति और मानवीय गरिमा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। अपने यथार्थवाद के माध्यम से उन्होंने यह उजागर किया कि किस प्रकार सामाजिक अत्याचार उच्च वर्गों में नैतिक पतन और गरीबों में सहनशीलता व नैतिक दृढ़ता को जन्म देता है (सुंदरम, 2015) [18]। प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक अन्याय केवल बाहरी या संरचनात्मक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक भी है। उनके पात्र इस भ्रम को तोड़ते हैं कि उच्च वर्ग नैतिक रूप से श्रेष्ठ हैं—वे दिखाते हैं कि व्यवस्था के संरक्षक स्वयं अन्याय के सहभागी हैं। ठाकुर का कुआँ और सौत जैसी कहानियों में उन्होंने जाति और लिंग के अंतर्संबंधों को उजागर किया है, जहाँ स्त्रियाँ और निम्न जातियाँ दोहरी यातना झेलती हैं। प्रेमचंद का सत्य के प्रति समर्पण उन्हें सामाजिक यथार्थता के विरुद्ध खड़ा करता है; वे समाज को अटल नहीं, बल्कि करुणा और शिक्षा के माध्यम से सुधार योग्य मानते हैं। उनका मानवतावाद पीड़ा को नकारता नहीं, बल्कि उसे नैतिक पुनर्जागरण का आधार बनाता है। गरीबी, शोषण और अन्याय के इन विषयों के माध्यम से प्रेमचंद ने ऐसा यथार्थवाद रचा जो केवल विवरणात्मक नहीं, बल्कि गहराई से नैतिक और जागृति-प्रेरक है—एक ऐसा साहित्य जो समाज से आत्मचिंतन और परिवर्तन की मांग करता है।

5. कृषक वर्ग और कृषि जीवन का चित्रण

प्रेमचंद के साहित्य में किसान न केवल कथा के केंद्र में हैं, बल्कि वे भारतीय ग्रामीण पहचान के भावनात्मक और नैतिक प्रतीक भी हैं। गोदान और कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में प्रेमचंद ने किसानों को निष्क्रिय पीड़ितों के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति से संपन्न ऐसे मनुष्यों के रूप में प्रस्तुत किया है जो अपनी भूमि और परंपराओं से गहराई से जुड़े हुए हैं। उनके लेखन में कृषि जीवन का चित्रण ग्रामीण अस्तित्व की चक्रीय प्रकृति को उभारता है—ऋतुओं, श्रम और मनुष्य तथा भूमि के नाजुक संबंधों पर निर्भर जीवन। प्रेमचंद के अनुसार ग्रामीण अर्थव्यवस्था जीवनदायिनी होने के साथ-साथ शोषणकारी भी थी, जहाँ ऋण, सामंती नियंत्रण और अंधविश्वासों का जाल किसानों को बाँधकर रखता था। फिर भी उनके किसान केवल दयनीय पात्र नहीं हैं, बल्कि नैतिक नायक हैं—जो कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य, सहनशीलता और आशा के प्रतीक बने रहते हैं (पांडे, 1983) [10]।

गोदान का होरी बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक भारत की कृषक त्रासदी का सबसे जीवंत प्रतीक है—उसकी भूमि के प्रति निष्ठा उतनी ही गहरी है जितनी उसकी नैतिकता के प्रति। दोनों ही उसकी पीड़ा का कारण बनते हैं, फिर भी वह अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता। प्रेमचंद का यथार्थवाद आर्थिक विश्लेषण को मानवीय करुणा से जोड़ता है, यह दिखाते हुए कि औपनिवेशिक और सामंती व्यवस्थाएँ कैसे भारत के ग्रामीण जीवन की ऊर्जा को निचोड़ लेती हैं। किसानों के चित्रण में उनका नैतिक दर्शन स्पष्ट झलकता है—सम्मान श्रम और त्याग में निहित है, न कि धन या प्रतिष्ठा में। इस प्रकार प्रेमचंद ने भारतीय किसान को समाज की नैतिक रीढ़ के रूप में

पुनर्परिभाषित किया, जिसका श्रम केवल अर्थव्यवस्था को नहीं, बल्कि राष्ट्र की नैतिक चेतना को भी पोषित करता है (सुंदरम, 2015) [18]।

5.1. किसान: ग्रामीण भारत का प्रतीक – भूमि, श्रम और आजीविका से उसका संबंध

प्रेमचंद के लिए किसान भारत की आध्यात्मिक और नैतिक आत्मा का प्रतीक था। उसका भूमि से संबंध केवल आर्थिक नहीं, बल्कि पवित्र और अस्तित्वगत था। किसान का श्रम न केवल गाँव की अर्थव्यवस्था को जीवित रखता है, बल्कि समाज के नैतिक ताने-बाने को भी सुदृढ़ करता है। गोदान में होरी की गाय प्राप्त करने की आकांक्षा केवल भौतिक नहीं, बल्कि उसके सम्मान, पूर्णता और सामाजिक स्वीकृति की प्रतीकात्मक अभिलाषा है। गरीबी और शोषण के बावजूद, होरी का अपनी भूमि से अटूट संबंध उसके श्रम की गरिमा और आत्मिक निष्ठा में गहरा विश्वास दर्शाता है। प्रेमचंद के किसान भारत की कृषक संस्कृति की आत्मा हैं—वे भूमि से जुड़े हुए, कर्तव्यनिष्ठ और अन्याय के विरुद्ध अडिग हैं (चौहान, 2019) [3]।

प्रेमचंद के किसानों का चित्रण ग्रामीण भारत के उस गहरे विरोधाभास को उजागर करता है जहाँ समाज को पोषण देने वाला किसान स्वयं सबसे अधिक शोषित रहता है। जमींदारों, पुजारियों और साहूकारों का गठजोड़ उसे सदैव दासता की स्थिति में बनाए रखता है। पूँस की रात जैसी कहानियों में किसान की ठंड और भूख से जूझने की पीड़ा केवल शारीरिक संघर्ष नहीं, बल्कि नैतिक साहस का प्रतीक है। उसका श्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ मौन प्रतिरोध बन जाता है। प्रेमचंद का ग्रामीण यथार्थवाद बाद के समाजशास्त्रीय अध्ययनों में वर्णित जाति और वर्गीय संरचनाओं की जटिलता का पूर्वाभास कराता है (सहाय, 2004) [13]। अपने किसान पात्रों के माध्यम से उन्होंने 'अधीन वर्ग' को मानवीय रूप दिया, बहुत पहले से जब यह शब्द अकादमिक विमर्श में आया भी नहीं था। प्रेमचंद के लिए किसान केवल पीड़ा का प्रतीक नहीं, बल्कि नैतिक निरंतरता का वाहक है—भारत के अंतःकरण का जीवंत प्रतीक। इस प्रकार उनका यथार्थवाद कला से आगे बढ़कर नैतिक दृष्टि का रूप ले लेता है, जहाँ किसान का धैर्य और परिश्रम सामाजिक पुनर्जागरण का संकेत और प्रतिरोध दोनों बन जाता है (पांडे, 1983) [10]।

6. ग्रामीण परिदृश्य में स्त्रियाँ: पीड़ा और धैर्य का चित्रण

प्रेमचंद के कथा-संसार में स्त्रियाँ एक द्विधात्मक स्थिति में हैं—वे सामाजिक उत्पीड़न की शिकार भी हैं और नैतिक शक्ति की प्रतीक भी। उनके ग्रामीण स्त्री पात्र बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक भारत की उस वास्तविकता को प्रतिबिंबित करते हैं जहाँ पितृसत्ता, गरीबी और सामाजिक मर्यादाएँ स्त्रियों की स्वतंत्रता को सीमित करती थीं। निर्मला और सेवासदन जैसे उपन्यास स्त्रियों के दोहरे बोझ को उजागर करते हैं—वे आर्थिक अभाव और नैतिक नियंत्रण, दोनों का सामना करती हैं। ग्रामीण संदर्भों में उनकी स्त्रियाँ विवाह, जाति और दहेज जैसी सामाजिक संरचनाओं में फँसी होती हैं, फिर भी वे भावनात्मक गहराई और मानसिक दृढ़ता की मूर्तियाँ हैं। डॉ. बृजेश कुमार (2022) [8] के अनुसार, निर्मला स्त्रियों के खिलाफ "संरचनात्मक हिंसा" को उजागर करती है, जो यह दिखाती है कि समाज किस प्रकार व्यवस्थित रूप से स्त्रियों की स्वायत्तता और गरिमा को नकार देता है (कुमार, 2022) [8]।

फिर भी प्रेमचंद की स्त्रियाँ निष्क्रिय पीड़ित नहीं हैं। सेवासदन की सुमन और कफन की नामहीन पत्नी जैसे पात्र विपरीत परिस्थितियों में भी असाधारण धैर्य और संवेदना का परिचय देती हैं। ये स्त्रियाँ

अपने मौन साहस और नैतिक करुणा से सामाजिक पतन को चुनौती देती हैं। प्रेमचंद ने उन्हें समाज की नैतिक धुरी के रूप में प्रस्तुत किया है—जो पीड़ा सहकर भी परिवार को संबल देती हैं और मानवता को जीवित रखती हैं। उनके अनुसार समाज का पुनर्जागरण तभी संभव है जब स्त्री की मुक्ति सुनिश्चित हो। इस प्रकार प्रेमचंद का स्त्री चित्रण केवल सहानुभूति का नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार और नैतिक पुनर्निर्माण का घोष भी है।

6.1. शक्ति, त्याग और मातृत्व की करुणा – स्त्रियाँ नैतिक केंद्र और धैर्य की प्रतीक (सेवासदन, कफन)

प्रेमचंद ने सेवासदन और कफन में स्त्रियों के माध्यम से औपनिवेशिक भारत की भावनात्मक और नैतिक भूमि को अत्यंत संवेदनशीलता से चित्रित किया है। सेवासदन में सुमन का जीवन-पथ एक वेश्या से समाज-सुधारक बनने तक का है—एक ऐसा परिवर्तन जो स्त्रियों की सामाजिक हीनता के साथ-साथ उनके नैतिक पुनर्जन्म की संभावनाओं को भी उद्घाटित करता है। सुमन का परिवर्तन पितृसत्तात्मक समाज द्वारा थोपे गए 'पवित्रता' और 'सम्मान' के आदर्शों से जूझता हुआ दिखाया गया है। पंकज शर्मा (2020) [16] के अनुसार, सेवासदन राष्ट्रवाद की "पवित्रता की संहिता" और स्त्री-शरीर की वास्तविकताओं के बीच संतुलन साधता है, यह दिखाते हुए कि किस तरह स्त्री की नैतिकता को एक 'नैतिक राष्ट्र' के निर्माण में उपकरण की तरह इस्तेमाल किया गया (शर्मा, 2020) [16]। फिर भी सुमन का पुनर्जन्म पितृसत्ता के समर्पण का प्रतीक नहीं, बल्कि सीमित सामाजिक दायरे में उसकी स्वतंत्रता की पुनर्प्राप्ति है—जहाँ उसकी करुणा, साहस और आत्म-त्याग स्त्रीत्व के अर्थ को पुनर्परिभाषित करते हैं।

इसके विपरीत, कफन स्त्री की पीड़ा और समाज की नैतिक विफलता का कहीं अधिक कठोर और मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत करता है। कहानी की मृत पत्नी की मौन उपस्थिति गरीबी और अमानवीकरण पर एक नैतिक टिप्पणी बन जाती है। महेश कुमार शर्मा और अंजना वशिष्ठ रावत (2024) [15] के अनुसार, कफन एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है जो भुखमरी और निराशा के बीच पुरुषों के नैतिक पतन को उजागर करता है (शर्मा एवं रावत, 2024) [15]। स्त्री की मृत्यु—और उसके अंतिम संस्कार के पैसों को भोजन पर खर्च करने का पुरुषों का निर्णय—यह दिखाता है कि अत्यधिक गरीबी कैसे संवेदना और नैतिकता को क्षीण कर देती है। फिर भी, उस मृत पत्नी की मातृत्वमयी छवि मृत्यु के बाद भी बनी रहती है, जो धैर्य और करुणा का प्रतीक बनकर जीवन से परे एक नैतिक आयाम को उजागर करती है। प्रेमचंद उसकी अनुपस्थिति के माध्यम से उस समाज की आत्मा की रिक्तता को रेखांकित करते हैं, जिसने करुणा को भुला दिया है।

इन दोनों रचनाओं में स्त्रियों के दुःख का नैतिक पक्ष प्रेमचंद की पितृसत्ता और वर्गीय अन्याय दोनों की आलोचना को सामने लाता है। जैसा कि कृपा शांडिल्य (2016) ने कहा है, सेवासदन स्त्रियों को सुधार और राष्ट्रवाद के चौराहे पर रखता है, जिससे आधुनिक भारत के नैतिक विमर्श की अंतर्विरोधी प्रवृत्तियाँ उजागर होती हैं (शांडिल्य, 2016)। सुमन के नैतिक पुनर्जागरण और कफन की निस्संग स्त्री की मृत्यु के माध्यम से प्रेमचंद स्त्रियों को समाज की नैतिक धुरी के रूप में प्रस्तुत करते हैं—जहाँ उनका त्याग, धैर्य और करुणा राष्ट्र के अंतःकरण का प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार उनकी स्त्रियाँ मौन होते हुए भी सुधार की वाहक हैं—वे पीड़ा सहती हैं, सद्गुणों को थामे रहती हैं और समाज के पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक नैतिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

7. प्रेमचंद के साहित्य में नैतिक आदर्शवाद और सुधारवादी दृष्टि
प्रेमचंद का साहित्य नैतिक आदर्शवाद और सामाजिक यथार्थवाद के संगम पर खड़ा है। उनका साहित्यिक उद्देश्य केवल समाज की बुराइयों का चित्रण करना नहीं था, बल्कि समाज की सामूहिक नैतिक चेतना को जागृत करना था ताकि वह स्वयं को परिवर्तित कर सके। गांधीवादी नैतिकता और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक राष्ट्रवादी सुधार आंदोलनों से प्रभावित होकर प्रेमचंद लेखक को एक नैतिक मार्गदर्शक मानते थे—एक ऐसा मशालवाहक जो न्याय, समानता और करुणा के मार्ग को प्रकाशित करता है। प्रतिज्ञा, निर्मला और कर्मभूमि जैसे उपन्यास इस दृष्टि को मूर्त रूप देते हैं, जहाँ यथार्थवाद नैतिक जिम्मेदारी के साथ जुड़ता है। इन रचनाओं के नायक केवल सामाजिक अन्याय से नहीं, बल्कि अपने भीतर के नैतिक द्वंद्वों से भी संघर्ष करते हैं। प्रेमचंद का विश्वास था कि वास्तविक सुधार बाहरी परिवर्तन से नहीं, बल्कि अंतर्मन की जागृति से शुरू होता है। सुधीर चंद्र (1982) के शब्दों में, प्रेमचंद "कला के उद्देश्य को सामाजिक कर्तव्य से अलग करने से इनकार करते हैं," क्योंकि वे मानते थे कि साहित्य का उद्देश्य पाठक की नैतिक चेतना को शिक्षित और ऊँचा उठाना है (चंद्र, 1982)।

उनकी सुधारवादी दृष्टि केवल राजनीतिक मुक्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण तक विस्तारित थी। प्रेमचंद का यथार्थवाद न तो निराशावादी था और न ही निस्पृह; वह करुणा, संवेदना और आशा से ओतप्रोत था। उनके साहित्य का मूल संदेश यह था कि नैतिक सत्य और सामाजिक सुधार परस्पर निर्भर हैं—व्यक्ति का परिवर्तन ही समाज के परिवर्तन का आधार है। इस अर्थ में, प्रेमचंद का नैतिक आदर्शवाद आध्यात्मिक भी था और व्यवहारिक भी। उन्होंने एक ऐसे न्यायपूर्ण संसार की कल्पना की जहाँ क्रांति नहीं, बल्कि करुणा, शिक्षा और साझा नैतिक जिम्मेदारी समाज सुधार का माध्यम बनती है। उनका साहित्य इस बात का प्रमाण है कि यथार्थवाद तब ही सार्थक होता है जब वह मानवता और नैतिक उत्थान से जुड़ा हो।

7.1. नैतिक यथार्थवाद और सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न – नैतिक जागृति को परिवर्तन की शक्ति मानने वाला प्रेमचंद का दृष्टिकोण

प्रेमचंद का यथार्थवाद गहराई से नैतिक है—उनके लिए जीवन केवल सामाजिक दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक नैतिक खोज है। उनका साहित्य यह उद्घाटित करता है कि सच्चे सुधार की नींव नैतिक जागृति में निहित है। कर्मभूमि और गोदान में वे आत्मस्वार्थ और सामाजिक कर्तव्य के बीच के संघर्ष को चित्रित करते हैं, यह दिखाते हुए कि मानवीय करुणा किस प्रकार सामाजिक अन्याय का प्रतिकार कर सकती है। उनके पात्र—चाहे प्रतिज्ञा के अमृतराय हों या गोदान के होरी—सत्य (सत्य) और दया (दया) के उन नैतिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो समाज को रूपांतरित करने की शक्ति रखते हैं। प्रेमचंद का यथार्थवाद इस प्रकार नैतिक यथार्थवाद बन जाता है—एक ऐसा दृष्टिकोण जो मानता है कि आत्मचिंतन और जागरूकता से समाज का पुनर्निर्माण संभव है (गोविंद, 2019) [5]। इसके अतिरिक्त, प्रेमचंद लेखन को एक नैतिक साधना मानते थे। वे लेखकों से अपेक्षा करते थे कि वे अपने युग के नैतिक प्रश्नों से जूझें और साहित्य को अंतःकरण का माध्यम बनाएं। उनका नैतिक यथार्थवाद उपदेशात्मक नहीं था; वह मानवीय जटिलताओं का सम्मान करते हुए भी जिम्मेदारी की माँग करता था। इस नैतिक संलग्नता के माध्यम से प्रेमचंद ने औपनिवेशिक भारत में कला के

उद्देश्य को पुनर्परिभाषित किया—साहित्य को आत्म-मंथन और सामूहिक जागृति का साधन बना दिया। इस दृष्टि से उनका साहित्य केवल सौंदर्य का विषय नहीं, बल्कि नैतिक आत्मबोध की प्रक्रिया है, जो पाठक को न केवल देखने बल्कि समझने और बदलने के लिए प्रेरित करती है (शिल्पा, 2024) [17]।

7.2. व्यक्तिगत नैतिकता से सामूहिक उत्थान तक – शिक्षा, न्याय और करुणा के माध्यम से सुधार की उनकी दृष्टि

प्रेमचंद का सुधारवादी दृष्टिकोण केवल व्यक्तिगत नैतिकता तक सीमित नहीं था; वह सामूहिक उत्थान की कल्पना करता था, जो शिक्षा, न्याय और करुणा के माध्यम से संभव है। उनका विश्वास था कि शिक्षा राष्ट्रीय और नैतिक प्रगति की आधारशिला है। प्रेमचंद ऑन कल्चर एंड एजुकेशन जैसी रचनाओं में उन्होंने लिखा कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि नैतिक चरित्र और नागरिक जिम्मेदारी का विकास होना चाहिए (आबिदी, 2021) [11]। कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में शिक्षा को उन्होंने एक लोकतांत्रिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया, जो जाति और वर्ग की दीवारों को तोड़कर सामाजिक एकता स्थापित कर सकती है। उनके नायक—शिक्षक, सुधारक या आदर्शवादी—उनके इस विश्वास का प्रतीक हैं कि जागरूक व्यक्ति ही जागरूक समाज की नींव रख सकता है। प्रेमचंद की न्याय की अवधारणा करुणा पर आधारित थी। उन्होंने करुणा को दुर्बलता नहीं, बल्कि नैतिक शक्ति का सर्वोच्च रूप माना, जो अन्याय को जड़ से मिटाने में सक्षम है। उनका सुधारवाद राजनीतिक विचारधाराओं से अधिक मानवीय मूल्यों पर आधारित था—ऐसा दृष्टिकोण जो समाज के उपेक्षित वर्गों के लिए सामूहिक जिम्मेदारी की भावना जगाता है। अफ़शान नाहिद (2020) [9] के अनुसार, प्रेमचंद का नैतिक आदर्शवाद उनके समकालीन लेखकों जैसे मुल्कराज आनंद के समान है, जिनका साहित्य भी सामाजिक चेतना और न्याय को जाग्रत करने का माध्यम था (नाहिद, 2020) [9]। इस प्रकार, प्रेमचंद का सुधारवादी आदर्शवाद व्यक्ति के सद्गुण को सामाजिक सक्रियता में परिवर्तित करता है—एक ऐसे नैतिक लोकतंत्र की कल्पना करते हुए जो सत्य, करुणा और समानता पर आधारित हो।

8. निष्कर्ष

प्रेमचंद की साहित्यिक विरासत यथार्थवाद, मानवतावाद और सुधारवादी आदर्शवाद का अद्भुत संगम है। ग्रामीण भारत की आत्मा को चित्रित करते हुए उन्होंने केवल किसानों की दुर्दशा या सामाजिक विषमताओं की कूरता नहीं दिखाई, बल्कि उन्होंने पीड़ा के भीतर छिपे नैतिक आयाम को उजागर किया। उनके गाँव किसी सुंदर पृष्ठभूमि का हिस्सा नहीं थे, बल्कि वे राष्ट्र के अंतःकरण के प्रतीक थे, जहाँ गरीबी, जाति और पितृसत्ता समाज की नैतिक विफलताओं को उजागर करती थीं। फिर भी, इस निराशा से भरे संसार में प्रेमचंद ने असाधारण नैतिक दृढ़ता और मानवता का संबल खोजा। उनके पात्र—गोदान का किसान होरी, सेवासदन की सुमन और सद्गति का दुखी—मानव आत्मा की करुणा, धैर्य और सत्य के प्रति प्रतिबद्धता का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने एक ऐसे नैतिक यथार्थवाद की रचना की जो अन्याय का सामना करता है, परंतु मानवता में विश्वास नहीं खोता। उनका साहित्य एक नैतिक प्रयोगशाला की तरह है, जहाँ करुणा, त्याग और नैतिक साहस मानव अंतःकरण की शक्ति की परीक्षा लेते हैं। अन्य लेखकों के विपरीत, जिन्होंने यथार्थवाद को केवल वस्तुपरक अवलोकन माना, प्रेमचंद ने उसे नैतिक हस्तक्षेप का उपकरण बनाया—जहाँ साहित्य और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच की रेखा धुंधली हो जाती है।

कथात्मक कौशल से आगे बढ़कर प्रेमचंद ने साहित्य को सामूहिक नैतिक सुधार का उत्प्रेरक माना। गांधीवादी नैतिकता और राष्ट्रवादी आदर्शों से गहराई से प्रेरित होकर उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया कि सच्ची स्वतंत्रता केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण में निहित है। शिक्षा, न्याय और करुणा के प्रति उनकी निष्ठा यह दर्शाती है कि सामाजिक परिवर्तन व्यक्ति की चेतना के रूपांतरण से आरंभ होता है। कर्मभूमि और प्रतिज्ञा जैसी रचनाओं में उन्होंने एक नैतिक लोकतंत्र की कल्पना की—जहाँ करुणा शोषण का स्थान लेती है, समानता जातिगत दीवारों को तोड़ती है और शिक्षा नागरिक गुणों का संवर्धन करती है। प्रेमचंद का मानवतावाद काल और वर्ग की सीमाओं से परे है; वह औपनिवेशिक आधुनिकता की आलोचना भी है और नैतिक पुनरुत्थान की भविष्यवाणी भी। ऐसे समय में जब साहित्य या तो रोमांटिक पलायनवाद या राजनीतिक प्रचार का माध्यम बन रहा था, प्रेमचंद ने एक तीसरा मार्ग दिखाया—एक ऐसा नैतिक यथार्थवाद, जो संक्रमणशील राष्ट्र के अंतःकरण से संवाद करता है। उनकी विरासत केवल भारतीय कथा-साहित्य के विकास में ही नहीं, बल्कि उन पाठकों की नैतिक कल्पना में जीवित है जो आज भी उनकी कहानियों में उत्पीड़न और करुणा, निराशा और आशा के शाश्वत संघर्ष को पहचानते हैं। प्रेमचंद का साहित्यिक संसार भले ही अपने ऐतिहासिक संदर्भ से बँधा हो, पर उसका संदेश कालातीत है—कि सत्य और करुणा में निहित मानव जीवन की गरिमा ही सबसे सशक्त प्रतिरोध है और सभ्यता का सर्वोच्च मानक।

9. संदर्भ सूची

1. आबिदी एस. प्रेमचंद ऑन कल्चर एंड एजुकेशन. रूटलेज; 2021.
2. चंद्रा एस. प्रेमचंद एंड इंडियन नेशनलिज्म. मॉड एशियन स्टड. 1982;16(4):601-21.
3. चौहान एचआर. गोदान: ए क्रिटिसिज्म ऑफ नॉवेल बाय प्रेमचंद (श्रृंखला 2019-30-03); 2019.
4. घोष डी. प्रेमचंद: रेडिकलिज्म वर्सेस नेशनलिज्म. सिडनी स्टड सोस कल्चर. 1983;1.
5. गोविंद एन. सोशल रियलिज्म एंड मॉरल अफेक्ट्स: द वर्ल्ड्स ऑफ मुंशी प्रेमचंद. इन: ए कंपेनियन टू वर्ल्ड लिटरेचर. 2020. पृ. 1-10.
6. हैदर डब्ल्यू. ए रीडिंग ऑफ प्रेमचंद्स उर्दू स्टोरीज़ इन पॉलिटिकल, सोशल, इकनॉमिक एंड रूरल कॉन्टेक्स्ट्स. नूर-ए-तहकीक. 2024;8(03):54-66.
7. जयलक्ष्मी के. सोशल रिफॉर्मर प्रेमचंद – ए रिव्यू. जे लिट लैंग लिंग्विस्ट. 2016;20:44-6.
8. कुमार बी. स्ट्रक्चरल वायलेंस: ए टूल ऑफ ऑपरेशन इन मुंशी प्रेमचंद्स निर्मला. क्रिएट लॉन्चर. 2020;5(1):69-76.
9. नाहिद ए. मुल्कराज आनंद एंड प्रेमचंद: नॉवेलिस्ट्स विद सेम विजन एंड इम्प्राइटेड माइंड्स. क्रिएट लॉन्चर. 2020;5(2):141-8.
10. पांडे जी. प्रेमचंद एंड द पीजेंट्री: कस्ट्रेंड रेडिकलिज्म. इकॉन पॉलिट वीकली. 1983;1149-55.
11. प्रियंका पी, सेकर टी. डबल मार्जिनलाइजेशन एंड पावर पॉलिटिक्स इन प्रेमचंद्स “ठाकुर का कुआँ”. शैनलैक्स इंटर जे इंग्लिश. 2022.
12. रॉय एस. पॉलिटिक्स ऑफ स्कल्टिंग द ‘न्यू’ इंडियन वुमन इन प्रेमचंद्स स्टोरीज़: एवरीथिंग द मेम इज नॉट. साउथ एशिया रिस. 2016;36(2):229-40.
13. सहाय जीआर. हायरार्की, डिफरेंस एंड द कास्ट सिस्टम: ए

- स्टडी ऑफ रूरल बिहार. कंट्रीब इंडियन सोशियोल. 2004;38(1-2):113-36.
14. शांडिल्या कृ. द विडो, द वाइफ, एंड द कोर्टेसन: ए कंपरेटिव स्टडी ऑफ सोशल रिफॉर्म इन प्रेमचंदस सेवासदन एंड द लेट नाइंटीथ-सेंचुरी बंगाली एंड उर्दू नॉवेल. कॉम्प लिट स्टड. 2016;53(2):272-88.
 15. शर्मा एमके, रावत एवी. ए साइकोलॉजिकल सर्वे ऑफ प्रेमचंदस फेमस शॉर्ट स्टोरी कफन. जे एडव स्कॉलर्ली रेस अलाइड एजुक. 2024.
 16. शर्मा पीएम. चेस्ट बॉडीज, चेस्ट कैनन: नेशनलिस्ट डिस्कोर्स एंड द फीमेल परफॉर्मिंग बॉडी इन मुंशी प्रेमचंदस सेवासदन. साउथ एशियन रेव. 2021;42(3):234-49.
 17. शिल्पा सी. रिफ्लेक्शन ऑफ सोशल रियलिटीज इन मुंशी प्रेमचंदस नॉवेल प्रतिज्ञा. शोधकोश जे विस परफ आर्ट्स. 2024;5(1).
 18. सुंदरम आरएस. सोशल डॉमिनेंस एंड क्लास स्ट्रगल इन प्रेमचंदस द गिफ्ट ऑफ ए काउ. एंग्लिस्टिकम जे एसोस-ईस्ट इंग्ल लैंग अम स्टड. 2015;4(9):59-61.
 19. वनश्री. राइटिंग रूरल पॉवर्टी: "होरी" ऑफ गोदान इन श्रीलाल शुक्ल "होरी और उन्नीस सौ चौरासी". साउथ एशियन रेव. 2013;34(1):95-128.

Ref. No: MER-2025-1-084



P-ISSN: 3051-3502

E-ISSN: 3051-3510

International Journal of Multidisciplinary Evolutionary Research

Online Journal, Indexed Journal, Refereed Journal, Peer Reviewed Journal

Publication Certificate

सोनम सिंह

This Certificate confirms the publication of manuscript titled "प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में ग्रामीण भारत का चित्रण" in the International Journal of Multidisciplinary Evolutionary Research; 2025 July-December, Volume-6, Issue-2.

**Kamal
Publisher**

Email: multievolvementia.research@gmail.com



Website: www.internationalmultiresearch.com